ओ३म्

पुराण-तत्त्व-प्रकाश

(पौराणिक क्रान्ति हेतु अठारह पुराणों एवं उपपुराणों का हृदयग्राही अध्ययन)

गुरु विरजानन्द दण्डी सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक २४५३ (१ख)
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

लेखक

चिम्मनलाल वैश्य, कासगंज

सहायक

पण्डित वंशीधर पाठक, आगरा

सम्पादक

प्रदीप कुमार शास्त्री

महर्षि पाणिनि आर्ष गुरुकुल

कुटिया, नलीखुर्द, कुंजपुरा, करनाल-१३२००१

चलभाष : ९४१६९१८८३५

प्रकाशक :

सत्यधर्म प्रकाशन

चलभाष : ०९८१२५-६०२३३

प्रकाशक : आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक
सत्यधर्म प्रकाशन
चलभाष : ०९८१२५-६०२३३

पुस्तक-प्राप्ति : **आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक**
द्वारा- महाविद्यालय गुरुकुल झज्झर,
जिला-झज्जर-१२४१०३ (हरियाणा)

संस्करण : प्रथम, वि०संवत् २०७१, सन् २०१४ ई०

मूल्य : ४००.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान :

१. **हरयाणा साहित्य-संस्थान**
महाविद्यालय गुरुकुल, झज्जर-१२४ १०३ (हरयाणा)
२. **आर्यसमाज मन्दिर, काकरिया**
रायेपुर दरवाजे से बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)
३. **कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा**
जिला ज्योतिबा फुले नगर (मुरादाबाद) उत्तरप्रदेश
४. **आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा,** अहमदाबाद
५. **दयानन्दमठ दीनानगर**, जिला गुरदासपुर (पंजाब)
चलभाष : ०९४१७३-३६६७३

टाइप-सैटिंग : **स्वस्ति कम्प्यूटर्स,** करनाल (हरियाणा)
दूरभाष : ०९२५५९-१२३१४

मुद्रक : **राधा प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१

प्रकाशकीय

आज 'पुराण-तत्त्व-प्रकाश' नामक ग्रन्थ पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए महान् हर्ष का अनुभव हो रहा है। पुराणों के कारण समाज में जिन कुरीतियों ने जन्म लिया तथा समाज के धार्मिक स्वरूप को छिन्न-भिन्न कर सर्वथा विकृत कर दिया, उसका श्री मुंशी चिम्मन लाल वैश्य ने बड़े परिश्रम से वास्तविक स्वरूप हमारे सामने उपस्थित किया है। साथ ही हमारे पौराणिक भाई जिन पुराणों को महर्षि व्यासकृत एवं वेदानुकूल कह-कहकर प्रचारित करते रहे हैं उसका भी वास्तविक स्वरूप पुराणों के अन्त:साक्ष्यों के आधार पर ही लेखक ने बड़े परिश्रम से प्रमाणपूर्वक सविनय प्रस्तुत किया।

पुस्तक के सम्पादक श्री प्रदीप कुमार शास्त्री (आचार्य—महर्षि पाणिनि आर्ष गुरुकुल, कुटिया, नलीखुर्द, कुंजपुरा, करनाल) एवं उनके सहयोगी वरिष्ठ छात्रों का मैं हार्दिक रूप से आभारी हूँ। इन सभी ने अत्यन्त मनोयोग से ग्रन्थ के सभी उद्धरणों का यथोपलब्ध मूल ग्रन्थों से मिलान तथा मुद्रण-पत्रों के संशोधन में दिनरात एक करके बहुत परिश्रम से कार्य किया है। ईश्वर से प्रार्थना है कि ये सभी विद्या एवम् अध्यात्म के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति करते हुए इसी प्रकार धर्म, समाज तथा राष्ट्र की सेवा करते रहे हैं। प्रिय महेन्द्र सिंह आर्य (करनाल) को भी मैं हार्दिक साधुवाद एवम् आशीर्वाद देता हूं जिन्होंने ग्रन्थ का टङ्कण कार्य बड़ी सावधानी के साथ सुव्यवस्थित रूप में किया है। पुस्तक बन्धनालय के सञ्चालक श्री रमेशचन्द्र जी आर्य का भी बहुत-बहुत धन्यवाद जिन्होंने इस ग्रन्थ को इतना सुन्दर रूप प्रदान किया।

—आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक'
प्रकाशक

सम्पादकीय

भारतीय मानव-मनीषा पुरातन काल से ही धर्मप्राण मनीषा रही है। धर्म अर्थात् किसी वस्तु के अस्तित्व का आधार। वह सूक्ष्म आधार जिसके कारण कोई भी वस्तु अपना पारमार्थिक अथवा व्यावहारिक अस्तित्व लिए हुए है। इस अस्तित्व के चिन्तन के लिए मनुष्यमात्र के पास दो प्रकार के साधन हैं—एक आन्तर (अन्तरिन्द्रिय, अन्तःकरण), दूसरा बाह्य (पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां)। चूंकि ज्ञेय पदार्थ भी दो प्रकार के हैं—एक आन्तर, जिनके ज्ञान में केवल अन्तरिन्द्रिय ही समर्थ हैं, बाह्य नहीं। दूसरे बाह्य पदार्थ, जिनके ज्ञान में ब्राह्य-इन्द्रियां प्रवृत्त होती हैं, लेकिन यहां भी विषयग्रहण में आन्तर-इन्द्रियों के विना बाह्य-इन्द्रियां पंगु हैं। किसी भी पदार्थ का दैनन्दिन व्यवहार में उपयोगी आंशिक स्वरूप ही हमारे सामने है। उसके सम्पूर्ण अस्तित्व के प्रति हमारी जिज्ञासा सदा बनी रहती है। उन पदार्थों में—आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, हमारा अस्तित्व (अनादि-सादि, अनन्त-सान्त) सृष्टि का आरम्भ-अन्त, कर्म, कर्मफल, स्वर्ग-नरक-मोक्ष, सुख-दुःख, यह दृश्यमान जगत्-ग्रह-नक्षत्र-तारे, पृथिवी, विभिन्न योनियाँ आदि-आदि जिज्ञास्य रहे हैं। इनके समाधान के लिए आज दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध है—एक—वेद तथा वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ, दूसरे—उनसे भिन्न ग्रन्थ। द्वितीय कोटि में अनेक प्रकार हैं, जिनमें—१. वेद-प्रशंसक—वेद की प्रशंसा करते हुए अपना सिद्धान्त रखना। २. वेद के प्रति उदासीन—वेद के प्रति उदासीन रहते हुए स्वसिद्धान्त-प्रतिपादन। ३. वेद-निन्दक—वेद की निन्दा करते हुए स्वसिद्धान्त-प्रतिपादन। उपलब्ध पुराणों में ये तीनों ही कोटियां विद्यमान हैं।

महाभारत युद्ध के बाद एक कालखण्ड ऐसा रहा जिसमें ब्राह्मणों ने वेदों का वास्तविक पारम्परिक अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान-प्रचार आदि कार्य अपने आलस्य-प्रमाद के कारण छोड़कर वेदों को केवल यज्ञ-प्रक्रिया तक सीमित कर दिया तथा इस प्रक्रिया को भी अत्यन्त जटिल बना दिया जिसके परिणाम-स्वरूप न केवल सामान्य जनता अपितु द्विजत्व का अधिकार

रखने वाले क्षत्रिय-वैश्य भी वेद की पहुंच से दूर हो गये, फलस्वरूप अध्यात्म एवं वैदिक चिन्तन से दूर होने के कारण इन सभी का जीवन अशान्त एवं जटिलता के साथ-साथ '**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति**' जैसे वाक्यों को घढ़कर यज्ञों की आड़ में निरीह पशुओं की बीभत्स हत्या कर आहुति तथा भक्षण आरम्भ कर दिया। इस कर्मकाण्डीय क्रूरता से सामान्य जनमानस पर्याप्त आक्रुष्ट हो गया। इसी ने बौद्ध-जैन जैसे वेदविरोधी सम्प्रदायों को जन्म दिया। एक टांग पर खड़े होकर मछली पर एक टक दृष्टि लगाये ध्यानावस्थित बगुले की तरह लोलुप, स्वार्थी, धूर्त, विद्याविरोधी ब्राह्मणों ने इस अवसर को अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के अनुकूल जानकर महर्षि वेदव्यास के नाम से इन पुराणों की रचना कर डाली। हालाँकि कुछेक पुराण पुरातन भी हैं जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से स्वीकार्य हैं। पुराण-रचना में इतनी विनम्र धूर्तता का आश्रय लिया गया कि वैदिक सिद्धान्तों का सीधे-सीधे खण्डन न करके विकल्प प्रदान किये गये। जैसे—अमुक एकादशी का व्रत करने से मोक्ष, पुत्र, अग्निष्टोम का फल, स्वर्ग, वाजपेय का फल, पापों का मोचन, अश्वमेध का फल, हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञों का फल, सभी वेदों के अध्ययन का फल और भी न जाने क्या-क्या!![१]

संस्कृत साहित्य में एक उक्ति प्रसिद्ध है कि '**अक्के चेन् मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्**' यदि घर बैठे अनायास ही वाञ्छित वस्तु प्राप्त हो रही है तो इधर-उधर भटक कर समययापन और परिश्रम किसलिए करना? इसी तरह यहां भी अश्वमेधादि यज्ञ अथवा वेदों के स्वाध्याय या अष्टांग योग के क्रियात्मक अभ्यास से जो फल मिलना है यदि उससे भी कई गुणा बढ़कर अच्छा फल एकादशी के व्रत अथवा गङ्गा में डुबकी से मिल रहा है तो ये कष्टसाध्य कार्य किसलिए करने! इस तरह जितना भी कर्मकाण्ड आज भारतीय समाज में दृष्टिगोचर हो रहा है वह प्रायः पुराणों की ही देन है।

आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दृष्टि से देवताओं को वैदिक व्यवस्था में जहाँ उपयोगी श्रद्धेय स्थान प्राप्त है वहीं पुराणों ने इन देवताओं की ऐसी

---

१. इस विषय में विशेष द्रष्टव्य, इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग का एकादश परिच्छेद।

तथा वर्ण्य विषय की प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संस्करण में मूलपाठ को भी यथातथ रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रमाणस्वरूप उद्धृत मूल संस्कृतपाठ का मूल पुराणग्रन्थों से मिलान करने में पर्याप्त समस्याओं का सामना करना पड़ा। प्रथम तो मूल ग्रन्थ बड़ी कठिनाई से उपलब्ध हुए, जो मिले भी तो उनके पाठ इतने अव्यवस्थित थे कि ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पुराण-सम्पादकों ने पुराणों को अपनी बपौती समझकर उनमें इतने अधिक यथेष्ट परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन कर दिये हैं कि शायद ही कोई पुराणगत उद्धरण स्व स्थान पर स्व रूप में उपलब्ध हुआ हो। क्योंकि अनेक पुराणों में पदपरिवर्त्तन, पंक्तिपरिवर्त्तन, आन्तरिक वर्गीकरण सबकुछ लगभग नया-नया सा ही दृग्गोचर हुआ। इनमें भी शिव-गरुड-नारद-भविष्य पुराणों में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा। पाठकों की सुविधा की दृष्टि से आरम्भ में विस्तृत विषय-सूची दी जा रही है। इस कार्य में मेरे अन्तेवासी ब्रह्मचारी विश्वम्भर, ब्रह्मचारी नीरज, ब्रह्मचारी मुकेश तथा ब्रह्मचारी सोनू ने अपनी अध्ययनगत व्यवस्तता होते हुए भी अहर्निश सहयोग किया। ईश्वर से प्रार्थना है कि ये सभी ब्रह्मचारी भविष्य में वैदिक आर्यावर्त्त के उन्नायक बनें। प्रस्तुत संस्करण में हमने पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों के अग्रलिखित संस्करणों का उपयोग किया है—

इस संस्करण की सहायक ग्रन्थ-सूची

१. **अष्टाध्यायी सूत्रपाठः,** रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत
२. **अथर्ववेद संहिता,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
३. **अग्निपुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
४. **अमरकोश** राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
५. **आर्य लेखक कोश,** दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर
६. **ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः,** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
७. **ऋग्वेद संहिता,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
८. **कूर्मपुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
९. **कूर्मपुराणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
१०. **गरुडमहापुराणम्,** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

११. **देवीभागवत महापुराणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
१२. **धातुपाठः,** रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत
१३. **निरुक्तभाष्यटीका,** परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली
१४. **श्रीपद्ममहापुराणम्,** नाग पब्लिशर्स, दिल्ली
१५. **बृहद् नारदीयपुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१६. **ब्रह्माण्ड-महापुराणम्,** चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१७. **ब्रह्म महापुराणम्,** नाग पब्लिशर्स, दिल्ली
१८. **ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्,** राधाकृष्ण मोर, कलकत्ता
१९. **भागवतमहापुराणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
२०. **भविष्यमहापुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
२१. **मार्कण्डेयमहापुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
२२. **मत्स्यमहापुराणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
२३. **महाभारत,** गीताप्रेस, गोरखपुर
२४. **मनुस्मृति,** आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
२५. **महाभाष्य,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
२६. **यजुर्वेद संहिता,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
२७. **लिङ्गमहापुराणम्,** चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
२८. **वामनपुराणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
२९. **वायुपुराणम्,** हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
३०. **वाराहपुराणम्,** चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
३१. **वाल्मीकि-रामायणम्,** गीताप्रेस, गोरखपुर
३२. **विष्णुमहापुराणम्,** परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
३३. **शतपथ-ब्राह्मण,** नाग प्रकाशन, दिल्ली
३४. **शिवमहापुराणम्,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
३५. **शुक्रनीति,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
३६. **षड्दर्शनसूत्रसंग्रहः,** सुधी प्रकाशन, वाराणसी
३७. **सत्यार्थप्रकाश,** रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत
३८. **सामवेद संहिता,** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

३९. **श्रीमद्भगवद्गीता,**　　　गीताप्रेस, गोरखपुर
४०. **श्रीस्कन्दमहापुराणम्,**　　　चौखम्बा, वाराणासी
४१. **श्रीहरिवंशपुराणम्,**　　　चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

सत्यधर्म प्रकाशन के सञ्चालक आचार्य श्री सत्यानन्द जी नैष्ठिक से जब इस ग्रन्थ के प्रकाशन की चर्चा चली तो आप इस विषय को लेकर इतने उत्साहित दिखे कि जैसे यह ग्रन्थ उनकी प्रकाशन योजना में पहले से ही था। सत्यधर्म प्रकाशन विगत लगभग चालीस वर्षों से अपने नाम के अनुसार सत्यधर्म के प्रकाशन में अनवरत संलग्न है। यहां से अब तक लगभग दो सौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस समय लगभग चालीस ग्रन्थ प्रकाशनाधीन हैं। यशस्वी आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक जी कहते हैं कि—"ये ग्रन्थ ही मेरे द्वारा तैयार किये गये मेरे अन्तेवासी ब्रह्मचारी हैं। ये सभी विश्व के कोने-कोने में जाकर व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र का सुधार कार्य कर रहे हैं। इन ग्रन्थों ने अब तक न जाने कितने ही अन्धियारे जीवनों को प्रकाशित किया है।" आचार्य सत्यानन्द जी का स्वभाव है कि यदि किसी पुस्तकालय में एक बार घुस गये तो इस समय अनुपलब्ध, प्रकाशन के योग्य चार-पांच पुस्तकें लेकर ही निकलते हैं। आपका अपना भी एक बृहत्काय पुस्तकालय है। आर्थिक स्रोत आपके अत्यन्त सीमित हैं, ग्रन्थ-प्रकाशन के लिए यदि आपको ब्याज पर भी पैसा उठाना पड़े तो उससे भी पीछे नहीं हटते। वास्तव में लगभग ७७ वर्ष की परिपक्व अवस्था में भी प्रकाशन के माध्यम से आप जो मानवता की सेवा कर रहे हैं वह सर्वदा श्रद्धेय एवं अनुकरणीय है। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप '**भूयश्च शरदः शतात्**' स्वस्थ दीर्घायुष्य प्राप्त करें।

आशा है यह ग्रन्थ जहां धर्मोपदेशकों के लिए तर्क एवं प्रमाण प्रस्तुत करेगा वहीं पौराणिक अन्ध परम्पराओं के कारण धर्मकर्म के नाम पर अन्धकूप में फंसे जनसामान्य का भी मार्ग प्रशस्त करेगा। साथ ही अनुसन्धाताओं के लिए भी अनुसन्धान की एक विधा उपस्थित करेगा। अन्त में सभी प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोगियों का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए **सर्वेभ्य ऋषिभ्य आचार्येभ्यो गुरुभ्यश्च नमो नमः।**

श्रावणी उपाकर्म　　　　**प्रदीप कुमार शास्त्री**
श्रावण वि०संवत् २०७१

समर्पण

प्रस्तुत ग्रन्थ का विषयवस्तु चूंकि पौराणिक अन्ध मान्यताओं को छिन्न-भिन्न कर वास्तविक वैदिक मान्यताओं की स्थापना करने वाला है। अत: समर्पण के लिए भी ऐसे व्यक्तित्व का चुनाव किया गया जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इसी कार्य में आहुत कर दिया। यथाप्रसङ्ग अमर हुतात्मा पूर्वज महापुरुषों, विद्वानों का स्मरण कर लेना निश्चित ही आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद होता है।

लेखक श्री चिम्मनलाल वैश्य के ही समानधर्मा **पण्डित रुद्रदत्त शर्मा** सम्पादकाचार्य एक कुशल पत्रकार, लेखक तथा शास्त्रार्थ महारथी थे। आपका जन्म भी मार्गशीर्ष त्रयोदशी वि०संवत् १९११ (सन् १८५४ ई०) धामपुर, जनपद बिजनौर (उत्तरप्रदेश) में हुआ। आपके पिता श्री पण्डित काशीनाथ शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् तथा ज्योतिष के पारङ्गत पण्डित थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। तत्पश्चात् आप अपने चाचा के पास वृन्दावन, मथुरा और काशी में अध्ययनार्थ रहे। इक्कीस वर्ष की अवस्था में अध्ययन समाप्त कर घर लौटे। अब आपने प्रथम मुरादाबाद तथा बाद में सहारनपुर में आर्योपदेशक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। प्रचार-कार्य हेतु आप उत्तरप्रदेश के अतिरिक्त बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में भी जाते थे। एक सफल लेखक, वक्ता, पत्रकार तथा शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में आपकी प्रतिभा चतुर्मुखी होकर व्यक्त हुई। प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् तथा संस्कृत के प्रौढ लेखक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के साथ आपके कई शास्त्रार्थ हुए।

पण्डित रुद्रदत्त शर्मा हिन्दी के विख्यात पत्रकार के रूप में जाने जाते हैं। आर्यसमाज मुरादाबाद के पाक्षिक पत्र 'आर्यविनय' का सम्पादन आपने १ मई सन् १८८५ से आरम्भ किया। तत्पश्चात् आप आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल-बिहार के मुखपत्र 'आर्यावर्त्त' के सम्पादक बनकर कलकत्ता चले गये। आपने आर्यमित्र, इन्द्रप्रस्थ प्रकाश, भारतमित्र, हिन्दी बंगवासी, हितवार्त्ता, श्री वेंकटेश्वर समाचार, सत्यवादी, प्रेम, मारवाड़ी आदि अनेक

पत्रों का समय-समय पर सम्पादन किया। यह दुर्भाग्य की बात है कि आजीवन सारस्वत साधना में संलग्न रहने वाला यह तपस्वी साहित्यकार अपने जीवन में आर्थिक कठिनाइयों से कभी मुक्त नहीं हो सका। आपके जीवन के अन्तिम दिन आर्थिक विपन्नता में व्यतीत हुए। इस प्रकार विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए आपका १७ नवम्बर सन् १९१८ में देहान्त हो गया।

लेखन-कार्य—१. स्वर्ग में सब्जैक्ट कमेटी—पुराणों में चित्रित देवी-देवताओं के विषय में व्यङ्ग्यात्मक प्रस्तुतिकरण। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन वि०संवत् १९५१ (सन् १८९५) में आर्यावर्त्त प्रेस दानापुर से हुआ। २. स्वर्ग में महात्मा (सन् १८९७)—इसमें अठारह पुराणों के कर्त्ताओं को वेदनिन्दक सिद्ध किया गया है। ३. आर्यमतमार्त्तण्ड नाटक (सन् १८१५)। ४. कण्ठी-जनेऊ का विवाद। ५. धर्मविषयक व्याख्यान (१८९५), ६. पाखण्डमूर्त्ति (१८८८), 'पुराण-परीक्षा' (१८९८), ८. पातञ्जल योगदर्शन के व्यासभाष्य तथा भोजवृत्ति का भाषानुवाद (१८८९), ९. ध्यान-योग-विधि, १०. शिक्षा-विज्ञान, ११. वीरसिंह दारोगा (उपन्यास), १२. जर्मन जासूस (उपन्यास), १३. अबला-विलाप नाटक।

डॉ० भवानीलाल जी भारतीय ने पण्डित रुद्रदत्त ग्रन्थावली भाग १ का सम्पादन कर सन् १९६५ में सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित कराया।

इस प्रकार पण्डित रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। सरस्वती और लक्ष्मी के शाश्वत वैर का आपको भी पात्र बनना पड़ा। ऐसे त्यागी, तपस्वी, कुम्भीधान्य, आर्यसिद्धान्तों के प्रति सर्वात्मना समर्पित पण्डित जी को यह ग्रन्थ समर्पित करते हुए ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारे अन्दर भी पण्डित जी जैसे व्यक्तित्वों के पदचिह्नों पर चलने की शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करे।

प्रदीप कुमार शास्त्री

लेखक-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक श्री मुंशी चिम्मनलाल वैश्य अपने समय के आर्य-सिद्धान्तों के सुप्रसिद्ध विचारशील लेखक रहे हैं। आपकी रचनाओं की प्रसिद्धि जहां उस समय के भारतीय सुशिक्षित वर्ग में थी, वहीं भारत से बाहर भी वे लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थीं। कई रचनाओं के तो कई-कई संस्करण उनके जीवनकाल में ही निकल चुके थे। ऐसा प्रस्तुत ग्रन्थ के (प्रथम-द्वितीय संस्करण) के पीछे छपे विज्ञापनों से ज्ञात होता है।

श्री मुंशी जी का स्मृतिग्रन्थ, नीतिग्रन्थ, दर्शन, उपनिषद् आदि वेदानुकूल ग्रन्थों के साथ-साथ रामायण, महाभारत, गीता, पुराण आदि का भी गम्भीर अध्ययन था। न केवल अध्ययन अपितु अधीत विषय का प्रस्तुतीकरण भी आपका असाधारण था। आपकी लेखनशैली इतनी रोचक है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी हास-परिहास में ही सिद्धान्तों को हृदयङ्गम किये बिना रह नहीं सकता। तथा विद्वानों के लिए भी उसमें विपुल सामग्री विद्यमान है।

आपका जन्म विक्रमी संवत् १९१० (सन् १८५४) में कासगंज, जिला एटा, उत्तरप्रदेश में हुआ था। आपके पिता जी का नाम श्री लाला टीकाराम था। बाद में आप तिलहर, जिला शाहजहांपुर में रहने लगे थे।[१]

रचनाएं—१. नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम (प्रथम भाग, सन् १८८९)—इस ग्रन्थ की लोकप्रियता के विषय में 'पुराण-तत्त्व-प्रकाश' (तृतीय भाग, द्वितीयावृत्ति, सन् १९१९) के अन्त में छपे विज्ञापन से जानें—"गृहस्थाश्रम अर्थात् नारायणी शिक्षा के प्रथम भाग का आपने इतना मान किया है जिसका मुझको स्वप्न में भी ध्यान न था उसकी चौबीस हजार कापियाँ हाथोंहाथ खरीद लीं।" "अपनी योग्यता के कारण यह बारहवीं बार छप चुकी है। गृहस्थ सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं जिसका इसमें आन्दोलन न हो।" इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग (पुत्री-

---

१. आर्य लेखक कोश, लेखक—डॉ० भवानीलाल भारतीय, पृष्ठ ७२।

उपदेश) के विषय में उक्त विज्ञापन में लिखा है कि—"आप इस पुस्तक को वेद, उपनिषदों, स्मृतियों का सार, गीता-महाभारतादि का तत्त्व, प्राचीन और अर्वाचीन तत्त्ववेत्ताओं के मालूमात का खजाना समझिये, हकीकत में किताब क्या है मानो गृहस्थाश्रम को स्वर्गाश्रम बनाने की कला है, जीवन-सुधार की कुञ्जी है, आनन्द और प्रेम उत्पन्न करने की आला है। पूर्ण आरोग्यता, अपूर्व बल, उत्तम बुद्धि और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने के लिए आश्चर्यजनक सद्वैद्य। सर्वत्र मान-प्रतिष्ठा कराने का उस्ताद है।" २. मित्रानन्द (सन् १८८३), ३. अनमोल रत्न (१८९१), ४. रत्नजोड़ी (हकीम लुकमान की शिक्षाओं का संग्रह), ५. रत्न भण्डार (रामायण से उद्धृत विभिन्न विषयों के श्लोकों का सरलार्थ सहित संग्रह), ६. मौत का डर, ७. मूर्त्तिपूजा विचार, ८. पुराणतत्त्व प्रकाश (तीन भाग), ९. नीति शिरोमणि (विदुरनीति का भाषानुवाद), १०. वीर्यरक्षा, ११. सन्ध्या-दर्पण, १२. गर्भाधान विधि, १३. ऋषि प्रसाद (महात्मा शौनक का सत्योपदेश), १४. भरतोपदेश (राम का भरत के प्रति उपदेश), १५. शिष्टाचार (सन् १८९३), १६. पत्रप्रकाश, १७. ब्रह्म-विचार, १८. रचना-बोधिनी, १९. प्रेमधारा (नारी-भूषण स्त्रीशिक्षा-विषयक), २०. यथार्थ शान्तिनिरूपण (शान्ति शतक), २१. द्वैत-प्रकाश, २२. संसारफल, २३. प्रेमपुष्पावली (एकता विषयक), २४. नीत्युक्त स्त्रीधर्म, २५. स्मृत्युक्त स्त्रीधर्म, २६. चित्रशाला, २७. ईश्वरसिद्धिः, २८. क्या आप रामायण पढ़ते हैं?, २९. गीताष्टक (ऋषियों के उपदेश), ३०. हम शीघ्र क्यों मरते हैं?, ३१. सत्यनारायण की प्राचीन कथा।

इन सैद्धान्तिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने कुछ सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवनचरित्र भी लिखे हैं। जिनमें—१. सरस्वतीचन्द्र जीवन (पण्डित लेखराम जी द्वारा लिखित जीवनचरित के आधार पर लिखित १०८ श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन), २. दशरथ, ३. राम, ४. लक्ष्मण, ५. भरत, ६. महात्मा विदुर, ७. युधिष्ठिर, ८. भीमसेन, ९. अर्जुन, १०. द्रोणाचार्य, ११. योधा भीमसेन, १२. महाराज धृतराष्ट्र, १३. महात्मा पूरणभक्त, १४. महारानी मन्दालसा, १५. पण्डित गुरुदत्त आदि। आपने शरीर विज्ञान विषयक एक 'देहविज्ञान' नामक पुस्तक भी लिखी थी।

आपकी सुपुत्री प्रियंवदा देवी भी एक विदुषी लेखिका थीं। उन्होंने

भी—१. कलियुगी परिवार का एक दृश्य, धर्मात्मा चाची अभागा भतीजा, तथा आनन्दमयी रात्रि का एक स्वप्न जैसी पारिवारिक स्त्रीविषयक पुस्तकें लिखीं।

आपके सुपुत्र श्री भद्रगुप्त वैश्य (वैद्य) एक कुशल वैद्य थे। जो कि एक औषधालय का सञ्चालन करते थे। औषधालय में अनेक रोगों से सम्बन्धित—पाक, तैल, भस्म, अरिष्ट, वटी, मञ्जन आदि का निर्माण किया जाता था। स्त्री-पुरुष सम्बन्धी लगभग सभी रोगों की चिकित्सा की जाती थी। 'पुराण-तत्त्व-प्रकाश' के तृतीय भाग की द्वितीयावृत्ति का संशोधन कर आपने ही सन् १९१९ में प्रकाशन किया था।

इस तरह श्री मुंशी चिम्मनलाल वैश्य का सम्पूर्ण जीवन एवं कर्मक्षेत्र वैदिक सिद्धान्तों/ विचारधारा से ओतप्रोत रहा है। आपके बाद आपके सुपुत्र ने इस कार्यभार को सम्भाला। डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'आर्य लेखक कोश' से पता चलता है कि 'नारायणी शिक्षा' का १२१वां संस्करण चिम्मन लाल एण्ड संस, अलीगढ़ से सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ, अर्थात् इनका प्रकाशन आदि का कार्य बाद में भी पर्याप्त लम्बे समय तक चलता रहा।

श्री वैश्य के विषय में हमें ज्ञात स्रोतों से इतनी ही जानकारी उपलब्ध हो सकी है।

—प्रदीप कुमार शास्त्री

यह ग्रन्थ क्या और क्यों ?

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व० १०.८.१ ॥

प्रिय भ्रातृगण!

आज मैं आपके समीप, **पुराण-तत्त्व-प्रकाश** को लेकर आता हूं। आप पक्षपात को त्याग, अवलोकन कर, सार को ग्रहण कीजिए; जिसके अर्थ मैंने परिश्रम किया है। इस पुराणतत्त्वप्रकाश के लिखने से मेरा प्रयोजन यही है कि सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों पर प्रकट हो जावे कि अठारह पुराण महर्षि व्यास के बनाये हुए नहीं हैं। हाँ, इन पुराणों को प्रायः स्वार्थी पुरुषों ने आर्यजाति को रसातल में पहुंचाने के अर्थ उक्त महात्मा के नाम से बना, प्रचलित कर दिये, जिससे उनका मनोरथ सिद्ध हो गया। अर्थात् भारतवासी नितान्त अज्ञ बन गये, वेद का नाम ही शेष रह गया, वास्तव में धर्म का स्वरूप ही उलट गया, और नाना मतमतान्तरों के कारण फूट का बाजार गर्म हो गया। धन, बल, पराक्रम, योग्यता पर पानी पड़ गया। सच पूछो तो भारत के शिर का मुकुट गिर गया तिस पर तुर्रा यह है कि हमारे सनातनी भाई इन पुराणों को व्यासकृत मानते ही चले जाते हैं।

क्या ही अच्छा हो कि हमारे पौराणिक भाई अपनी विचारदृष्टि, इन पुराणों के लेखों पर डालते हुए, उन आक्षेपों पर भी ध्यान दें जो उन पर मुसलमानों तथा ईसाई भाइयों ने किये हैं, जिससे हमारा प्राचीन महत्त्व संसार से उठ गया और हम सब मुर्दा क़ौम में शामिल हो गये। निकट था कि **हम अविद्या के अथाह समुद्र में डूब कर नष्ट हो जाते परन्तु परमात्मा के अनुग्रह और प्राचीन पुरुषों के तपोबल के पुण्य-प्रताप से इस भूमि में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म हो गया जिन्होंने ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन कर, पूर्णविद्या पढ़, योग्य विद्वान् और योगीराजों से विचार कर बहुत से प्रमाणों और युक्तियों से संसारी पुरुषों पर प्रकट कर दिया कि यह अठारह पुराण महर्षि व्यासप्रणीत नहीं है।**

परन्तु शोक तो यह है कि सनातनी भाइयों के हृदय में इस बात का पूर्ण निश्चय नहीं हुआ। इस कारण अब मैं योग्य पण्डितों की सहायता से विस्तारपूर्वक इस विषय का वर्णन करता हूँ, आप प्रेमपूर्वक प्रत्येक विषय को विचारपूर्ण निश्चय कर डंके की चोट पर अपने भाइयों और अन्य विदेशी जनों पर प्रकट कर दीजिए कि यह अठारह पुराण व्यासोक्त नहीं हैं और न वेदानुकूल हैं इस कारण यह मानने के योग्य भी नहीं हैं, हाँ, सनातनधर्म पुस्तक वेद है, वही ईश्वरीय ज्ञान है, इसलिए ईश्वर के प्रेमियो! आओ! हम सब मिलकर वैदिक-धर्म का अन्वेषण करें, जिसको जान सम्पूर्ण प्राणी परमात्मा की आज्ञा पालन करते हुए ओ३म् रूपी झण्डे के नीचे बैठ शान्ति प्राप्त कर स्वर्ग के सुखों को भोगें। ओं शम्॥

स्थान
तिलहर, यू०पी०
ज़िला शाहजहाँपुर
जून सन् १९०७ ई०

देश का शुभचिन्तक
चिम्मनलाल वैश्य
पुत्र—लाला टीकाराम जी वैश्य
निवासी—कासगंज, जिला एटा

धन्यवाद।

इस स्थान पर मैं उन पण्डितों और योग्य पुरुषों का धन्यवाद अदा करता हूँ जिन्होंने मुझको प्रत्येक प्रकार की सहायता देकर इस महान् कार्य को पूर्ण कराया। परमेश्वर उन सबको सर्व प्रकार के आनन्द मङ्गल दे जिससे वह भारत संतान के सुधार में लगे रहें।

चिम्मनलाल वैश्य

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	३०

प्रथम भाग

प्रथम परिच्छेद	**३५**
१. पुराण-क्रम-संख्या प्रकरण	३५
२. पुराणों का कालनिर्णय	४०
३. देवों पर दोषारोपण प्रकरण	४९
४. पुराणों द्वारा वेद का भ्रमभञ्जन प्रकरण	५१
५. पुराणों की श्लोक-संख्या में भेद	५२
६. पुराणों की रचना महाभारत के बाद	५४
७. पुराणों के प्रचलन के कारण	५४
८. पुराणों के सुनने का फल	५५
द्वितीय परिच्छेद	**५९**
९. पुराण की आवश्यकता	५९
१०. स्त्री-पुरुष एक समान	६०
११. स्त्री-अध्ययन प्रकरण	७६
तृतीय परिच्छेद	**८४**
१२. गुणकर्म से वर्णव्यवस्था	८४
१३. पुराण-प्रयोजन	९८
१४. वेद और पुराणों के अन्तर का संक्षिप्त ब्यौरा	१२७
चतुर्थ परिच्छेद	**१३२**
१५. तीनों देवों का एकत्व	१३२

१६. शिव जी का बड़प्पन १३४
१७. विष्णु जी की बड़ाई १४०
१८. ब्रह्म जी का महत्त्व १४५
१९. देवी जी के गुण १४६
२०. ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति १४९

पञ्चम परिच्छेद १५५

२१. महादेव जी की अपेक्षा विष्णु महाराज का बड़प्पन १५५
२२. महादेव जी का कपाली होकर विष्णु जी के पास जा यत्न पूछ, वैसा ही कर पवित्र होना। १५६
२३. और्व नामक ऋषि का महादेव जी को शाप देना और फिर उनके बतलाये हुए उपाय से शापमोचन होना १५७
२४. महादेव जी को युद्ध में श्रीकृष्ण महाराज का जीतना और पार्वती जी की प्रार्थना करने पर अस्त्र से मुक्ति कर शिव जी की प्रार्थना करने पर बाणासुर को छोड़ना। १५८
२५. विष्णु महाराज की आज्ञा से शिव का भस्म, हाड़, चर्म इत्यादि धारण कर तामस पुराणों को रचना, फिर पाप से छूटने के लिए विष्णु के दिये मन्त्र का जप कर आनन्द में रहना। १५९
२६. महादेव जी का राम जी की स्तुति करना। १६०
२७. शिव-महत्त्व अर्थात् विष्णु और ब्रह्मा जी से शिव जी का अधिक बड़प्पन। १६१
२८. श्रीकृष्ण जी महाराज का शिव के परमभक्त उपमन्यु से अपनी जय के लिये उपाय पूछ शिव का पूजन कर मङ्गल की प्राप्ति करना। १६४
२९. श्रीकृष्ण महाराज का शिव जी की तपस्या कर पुत्रलाभ करना। १६५
३०. विष्णु महाराज का स्तुति कर महादेव जी से वरप्राप्ति करना। १६६

३१. विष्णु और ब्रह्मा के संवाद में विष्णु के कथनानुसार शिव का आदि पुरुष होना है। १६६
३२. ब्रह्मा और विष्णु की स्तुति सुन महादेव जी का दोनों को वर देना। १६९
३३. विष्णु जी का हिमालय पर शिवलिङ्ग स्थापन कर, शिव की आराधना कर अपने नेत्र उखाड़ कर चढ़ाना फिर नेत्र और सुदर्शन चक्र का देना। १७०
३४. ब्रह्मा जी का देवताओं के सहित क्षीर सागर पर जा विष्णु जी की स्तुति कर उनसे पूछ कार्य करना। १७२
३५. शिव जी का ब्रह्मा-विष्णु से कहना कि मैं ही ईश्वर हूँ। १७३
३६. रामचन्द्र आदि का ब्रह्महत्या दूर करने के लिए शिव की उपासना करना। १७४
३७. सरयूतीर श्रीराम के भोजन कराने के समय शिव का अतिथि रूप में जा चमत्कार दिखलाना। १७५
३८. विष्णुभक्त राजा क्षुप और शिवभक्त दधीचि से युद्ध होना, क्षुप की मदद पर विष्णु महाराज का जाकर लड़ना और उससे हारना। १७७
३९. श्वेतमुनि का शिवलिङ्ग की पूजा कर मृत्यु को जीतना। १८०
४०. देवी का महत्त्व १८१
४१. विष्णु की निद्रा दूर करने के लिये ब्रह्मा जी का वम्री को उत्पन्न करना फिर सब देवताओं का भगवती की तपस्या कर, घोड़े का सिर जोड़ना। १८१
४२. ब्रह्मा, विष्णु, शिव का स्त्री होना फिर देवी जी की स्तुति कर यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना। १८५
४३. विष्णु ने देवी का यज्ञ कर सामर्थ्य प्राप्त किया। १८७
४४. श्री रामचन्द्र ने नवरात्रि व्रत कर रावण को मारा। १८८
४५. श्री विष्णु के कान के मैल से मधु-कैटभ का उत्पन्न होना और भगवती की तपस्या कर वर प्राप्त कर विष्णु से लड़ना,

विष्णु जी का भगवती की स्तुति कर उसको मारना। १८८

षष्ठ परिच्छेद **१९३**

४६. ईश्वर का अकर्मकर्तृत्व १९३
४७. ब्रह्म का निर्गुणत्व १९७
४८. मूर्त्तिपूजा का निषेध २०३
४९ मूर्त्तिपूजा का वास्तविक स्वरूप २०९

सप्तम परिच्छेद **२१७**

५०. फल-प्रकरण २१७
१. जगन्नाथ के पूजन का फल २१७
२. शीतनिवारण का फल २१८
३. दूधस्नान का फल २१८
४. शंख से स्नान का फल २१८
५. प्रदक्षिणा का फल २१८
६. भगवान् के मन्दिर में झाड़ू देने का फल २१८
७. मन्दिर लीपने का फल २१९
८. प्रणाम का फल २२१
९. चरणोदक का फल २२१
१०. मन्दिर बनवाने का फल २२२
११. शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा का फल २२३
१२. घृत और मधु से स्नान का फल २२३
१३. शालग्राम की पूजा का फल २२४
१४. भगवान् को घी समेत लाई और कौड़ी देने का फल २२५
१५. तुलसी माहात्म्य २२६
१६. पीपल और आंवले का माहात्म्य २२७
१७. मन्त्र-महिमा २२८
१८. धन के नाश न होने और नष्ट हुए के प्राप्त होने का सरल उपाय २३१

१९. लक्ष्मी के मिलने, कारागार से छूटने और शत्रुओं के मारने आदि का सरल उपाय २३२
२०. धान्य फल २३३
२१. धारा फल २३३
२२. विष्णु भगवान् की फूलों से पूजा का फल २३३
२३. चम्पा के फूलों का फल २३४
२४. सर्वहत्यामोक्षप्रायश्चित्त २३५
५१. राजा को छोड़कर अन्य शत्रुओं पर विजय पाने का उपाय २३६
५२. स्तोत्र-माहात्म्य २३९
अष्टम परिच्छेद **२४७**
५३. अवतार प्रकरण २४७
५४. अवतार-चरित्र-चित्रण २५२
१. श्री कृष्ण महाराज २५२
२. रामावतार २५६
रामचन्द्र जी ने ब्रह्महत्या दूर करने के अर्थ अगस्त्य मुनि की आज्ञानुसार अश्वमेध यज्ञ किया। २६०
३. कपिल अवतार २६२
४. राजा पृथु का अवतार २६३
५. दत्तात्रेय २६५
६. व्यास महाराज २६७
७. नारद २६९
८. वामन अवतार २७०
९. मोहिनी अवतार २७०
१०. परशुराम जी २७१
११. बलदेव जी २७१
बलदेव जी का शराब पीना और सूत को मार बारह वर्ष तक व्रत और प्रायश्चित्त करना। २७२

१२. एक टोली के मनुष्यों की बातचीत २७५

द्वितीय भाग

नवम परिच्छेद **२७७**

५५. देव और मुनि लीला २७९

१. इन्द्रलीला २७९

२. चन्द्रलीला २८३

३. सूर्यलीला २८४

४. वसिष्ठ और विश्वामित्र लीला २८७

५. बृहस्पति जी २८८

६. शुक्र जी २८८

७. अगस्त्य मुनि २८९

८. कश्यप मुनि २८९

९. भृगु जी २९०

१०. समीक्षा २९०

दशम परिच्छेद **२९४**

५६. त्रिदेव लीला २९४

१. ब्रह्मलीला २९४

२. विष्णुलीला २९८

राजा अम्बरीष की पुत्री श्रीमती के स्वयंवर में नारद और पर्वत मुनि को धोखा देकर आप ले जाना। ३००

३. महादेवलीला ३०६

दक्ष के यज्ञ को शिव के द्वारा विध्वंस करना। ३१०

महादेव जी की माया। ३१३

५७. शिव, ब्रह्मा और विष्णु की दशा ३१८

एकादश परिच्छेद **३२३**
५८. व्रतों की संख्या ३२३
५९. व्रत-तीर्थ-माहात्म्य प्रकरण ३२६
१. मोक्षदा एकादशी ३३२
२. सफला एकादशी ३३४
३. पुत्रदा एकादशी ३३७
४. षट्तिला एकादशी ३३८
५. जया एकादशी ३४०
६. विजया एकादशी ३४१
७. आमला एकादशी ३४४
८. पापमोचनी एकादशी ३४७
९. कामदा एकादशी ३५१
१०. वरूथिनी एकादशी ३५३
११. मोहिनी एकादशी ३५४
१२. अपरा एकादशी ३५६
१३. निर्जला एकादशी ३५९
१४. योगिनी एकादशी ३६०
१५. देवशयनी एकादशी ३६२
१६. कामिका एकादशी ३६२
१७. पुत्रदा एकादशी ३६४
१८. अजा एकादशी ३६६
१९. पद्मा एकादशी ३६७
२०. इन्द्रा एकादशी ३६९
२१. पापकुशा एकादशी ३७०
२२. रमा एकादशी ३७२
२३. प्रबोधिनी एकादशी ३७३
२४. कमला एकादशी ३७७
२५. कामदा एकादशी ३७८

गुरु विरजानन्द
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 2153 (ख)

६०. एकादशी जागरण माहात्म्य ३७९
६१. व्रत-माहात्म्य ३८१
१. त्रिस्पृशा व्रत ३८१
२. उन्मीलिनी व्रत ३८५
३. जयन्ती व्रत ३८७
४. जन्माष्टमी व्रत ३८९
५. शिवरात्री व्रत ३९२
६. चतुर्थी व्रत ३९५
७. वैदिक व्रत का वास्तविक स्वरूप ३९६
८. समीक्षा ३९९
द्वादश परिच्छेद **४०३**
६२. तीर्थ प्रकरण ४०३
६३. तीर्थों की संख्या तथा वास्तविक स्वरूप ४०३
६४. तीर्थ-फलाभाव प्रकरण ४०७
त्रयोदश परिच्छेद **४१६**
६५. तीर्थयात्रा-फल प्रकरण ४१६
१. हरिद्वार माहात्म्य ४१६
२. प्रयाग माहात्म्य ४१७
३. पुरुषोत्तम तीर्थ ४२१
४. मथुरा ४२२
५. शूकर क्षेत्र ४२३
चतुर्दश परिच्छेद **४२६**
६६. गङ्गा-माहात्म्य ४२६
गङ्गा जी की उत्पत्ति ४३२
गङ्गा की पापमुक्ति ४३७
तीर्थों की निस्सारता ४३८
उपसंहार ४३८

तृतीय भाग

पञ्चदश परिच्छेद **४४२**

६७. राजा वेन के मरने पर देवताओं का उसकी भुजाओं को मथकर निषार और पृथु का उत्पन्न करना। ४४४

६८. कण्ड मुनि से प्रम्लोचा अप्सरा में गर्भ रहना, फिर मुनि के शाप के भय से अप्सरा को मूर्च्छा का आना और गर्भ का पसीने की राह निकलना, जिसको उसने वृक्षों से पोंछा फिर वायु ने इकट्ठा किया और चन्द्रमा ने पोषण किया उससे मरीषा का जन्म होना। ४४६

६९. बलदेव जी महाराज का विवाह और रेवती जी के छोटे करने की सहज रीति। ४४८

७०. राजा निमि का मरना फिर देवताओं के मथने पर एक पुत्र का उत्पन्न होना। ४४९

७१. श्रीमान् बलदेव जी महाराज का मदिरापान कर यमुना को खींचना। ४५१

षोडश परिच्छेद **४५३**

७२. बल के शरीर से धातुओं की उत्पत्ति ४५३

७३. ज्वर की अद्भुत उत्पत्ति और उसका अपूर्व इलाज। ४५५

७४. राजा सगर की रानी के साठ हजार पुत्रों का उत्पन्न होना। ४५५

७५. देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति। ४५७

सप्तदश परिच्छेद **४५९**

७६. विश्वामित्र के शाप से सरस्वती में रक्त की धारा का होना फिर अन्य ऋषियों के वरदान से शुद्ध होना। ४५९

७७. ब्रह्मा के कानों से दिशाओं की उत्पत्ति। ४६०

७८. राजा विशश्चित से नरकियों को एक अनोखा लाभ। ४६०

७९. एक राजा के साथ हरिणी का वार्त्तालाप। ४६३

८०. राजा प्रियव्रत के रथ के पहिये से सात समुद्रों का होना। ४६४
८१. मनु की पुत्री इला का पुत्र हो जाना। ४६५
८२. व्यास जी के पुत्र की इच्छा से भगवती के द्वारा महादेव का तप करना और महादेव से वर पाना फिर घृताची को देख कामातुर हो वीर्यपात हो अरणी में गिरना और शुक्र का उत्पन्न होना। ४६५
८३. राजा शान्तनु का सन्तान उत्पन्न करना। ४६९

अष्टादश परिच्छेद **४७१**

८४. वनिता से अरुण और गरुड़ का उत्पन्न होना। ४७१
८५. बृहस्पति जी के पुत्र कच का शुक्राचार्य के निकट जा संजीवनी विद्या पढ़ना फिर उसका राक्षसों को टुकड़े-टुकड़े कर कुत्ते-स्यारों को खिलाना और शुक्र महाराज का जीवित निकालना। ४७२
८६. राजा ययाति का अपने पुत्र पूरु को बुढ़ापा देकर युवापन को लेना फिर एक सहस्र वर्ष आनन्द करने के पीछे फिर पुत्र से बुढ़ापा लेना, तरुणाई देना। ४७५
८७. धृतराष्ट्र महाराज के सौ पुत्रों की अद्‌भुत उत्पत्ति। ४७७
८८. गौतम मुनि का वीर्य एक सरकण्डे पर गिरना, उससे पुत्र और पुत्री का उत्पन्न होना जिनका राजा शान्तनु का कृपापूर्वक पालन कर कृप और कृपी नाम रखना। ४७८
८९. एक हिरणी के गर्भ से ऋष्यशृङ्ग का जन्म होना। ४७९
९०. राजा युवनाश्व की कोख से पुत्र का उत्पन्न होना। ४७९
९१. राजा सोमक का पुत्रों के अर्थ जन्तु नामक पुत्र की चर्बी से हवन करना, उसकी गन्ध से रानियों के पुत्र उत्पन्न होना। ४८१
९२. अष्टावक्र का गर्भ के भीतर बोलना और पिता के शाप से आठ जगह से टेढ़ा होना। ४८२

९३. एक मत्स्य का बढ़ना और प्रलय के समय नाव का रोकना ४८३
९४. विश्वामित्र ने चुराकर आपत्ति काल के समय कुत्ते का मांस पकाया फिर उसको इन्द्र बाज बन ले गया। ४८४
९५. राजा भङ्गास्वन का एक जलाशय में स्नान करके स्त्री होना, फिर तपस्या करके उसके सौ पुत्रों का होना। ४८६

एकोनविंश परिच्छेद ४८८

९६. गणेश-उत्पत्ति ४८८
९७. वामन पुराण से गणेश जी की उत्पत्ति ४८९
९८. लिङ्ग पुराण से गणेश जी की उत्पत्ति ४९१
९९. गणेश उपपुराण से गणेशोत्पत्ति ४९२

विंश परिच्छेद ४९४

१००. श्राद्ध प्रकरण ४९४
१०१. श्राद्ध का औचित्य ४९४
१०२. पितर शब्द का वास्तविक अर्थ ४९५
१०३. पौराणिक श्राद्ध ५०५
१०४. मांस से श्राद्ध की आज्ञा और पितरों की तृप्ति। ५०९
१०५. श्राद्ध की वास्तविकता (एक दृष्टान्त) ५१०
१०६. गया श्राद्ध की व्यर्थता ५१४
१०७. श्राद्ध को कब और किसने चलाया? ५१९
१०८. निमि और महात्मा नारद का श्राद्ध-विषयक संवाद। ५२०
१०९. समीक्षा ५२४

पुराण-तत्त्व-प्रकाश

(पौराणिक क्रान्ति हेतु अठारह पुराणों एवं
उपपुराणों का हृदयग्राही अध्ययन)

[भाग-१,२,३]

*[बड़े-बड़े पोथों में माथापच्ची किये बिना ही सभी
पुराणों/उपपुराणों के प्रतिपाद्य विषयों का वास्तविक
ज्ञान कराने वाला एक मात्र ग्रन्थ।]*

◆◆◆

॥ ओ३म् ॥

प्रस्तावना

एक सुयोग्य सनातनी पुरोहित जी का सहनशील आर्य सेठ यजमान के यहाँ—

—: प्रवेश :—

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख, उनको उपस्थान देते हुए, दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करके कहा कि महाराज! आइए, विराजिए।

सुयोग्य पण्डित जी—आयुष्मान् कह, अन्य वार्तालाप के पश्चात् सेठ जी से कहा कि आपने अभी तक **दयानन्दी ग्रन्थों** को ही देखा है, इस कारण आपकी बुद्धि विपरीत हो गई है जिससे आप परमात्मा को साकार नहीं मानते और ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य्य और भगवती आदि को कुछ का कुछ कहते हो एवं इन्द्र, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र इत्यादि देवताओं की निन्दा करते हो और गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि के स्नान और परमेश्वर के अवतारों की भक्ति और नाना तिथियों के उपवास, मूर्त्तिपूजा से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं मानते। मृतकश्राद्ध और तर्पण से मरे हुए पितरों की तृप्ति होना स्वीकार नहीं करते, इसी भांति "**श्रीवासुदेवाय नमः**" "**शिवाय नमः**" इत्यादि मन्त्रों, स्तोत्रों के जप और तिलकों के लगाने से पापों के नाश होने का खण्डन करते हो इसलिए अब आप कृपाकर एकवार अठारह पुराणों को जो वेदानुकूल हैं सुन लीजिए, आप हमारे यजमान और सच्चे भक्त हैं और आपके पुरुषा भी बड़े धर्मात्मा और योग्य पुरुष थे, इसलिए हमको आप जैसे सज्जन जनों के सनातन-धर्म त्यागने का बड़ा खेद होता है।

आर्य सेठ—श्री महाराज आप हमारे बड़े और पूज्य हैं, सदा से आपके बड़े हमारे कुल के पुरोहित होते चले आये हैं इस कारण आपकी आज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है, परन्तु धर्म विषय में सत्यसनातन वेदोक्त शिक्षा करना और उसी पर चलाना आपका परमकर्त्तव्य है उसी को

सनातन धर्म कहते हैं, वही माननीय है और परलोक में जहाँ माता, पिता बान्धवादि कुछ नहीं कर सकते वहाँ पूर्णरूप से धर्म ही सहायता करता है क्योंकि जीव स्वयं ही जन्म लेता है और मरता है, पाप और पुण्य को भोगता है जैसा **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० में लिखा है—

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ ४९.२१॥

और महाभारत में भी कहा है कि मरे हुए पुरुष के साथ उसकी स्त्री, पुत्र, मित्र, पिता, माता कोई नहीं जाता, किन्तु उसको ऐसे छोड़ देते हैं कि जिस प्रकार फलरहित वृक्ष को पक्षी। उसके कमाए हुए धन का कोई और ही स्वामी हो जाता है। उसके शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म कर देती है। उस जीव के साथ केवल उसका किया हुआ कर्म ही जाता है, इसलिए मनुष्य मात्र को उचित है कि यत्नपूर्वक धर्म का सञ्चय करें; क्योंकि संसार में केवल मनुष्य की योनि ही ऐसी है जो ज्ञान-विज्ञान द्वारा सम्यक् प्रकार परमात्मा को जान सुख भोग परमानन्द को प्राप्त करती है, अन्यथा नहीं। जैसा **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ६ अध्याय १६ में कहा है—

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम्।
आत्मानं यो न बुध्येत न क्वचिच्छुभमाप्नुयात्॥ ५८॥

इसी कारण तो अनेकशः पुरुष और स्त्रियों ने महान् कष्ट को सहन करते हुए धर्म को नहीं त्यागा, क्योंकि अमृत, जीवन, राज्य, पुत्र, यश, धन इत्यादि धर्म की एक कला के समान भी नहीं। इसी कारण पण्डित जी मैं भी धर्मविषय में लल्लोपत्तो करना ठीक नहीं समझता, क्योंकि धर्म ही सार है। इसीलिए कहा है कि जब तक शरीर स्वस्थ रहे तब तक मनुष्य धर्म का आचरण करता रहे, क्योंकि अस्वस्थ हो जाने पर कुछ नहीं होता, जैसा कि **शिवपुराण** अध्याय ३९ में लिखा है—

यावत्स्वास्थ्यशरीरत्वं तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थश्चोदितो ह्यन्यैर्न किंचित्कर्तुमुत्सहेत्॥

श्रीमान् ने कृपा कर मुझको अनेक बार यही उपदेश किया था, कि भाई! प्रथम अपने घर को देखना उचित है और बिना अपने घर के देखे अन्य की बात मानना बुद्धि के विपरीत है, पण्डित जी! मैंने आपके

कथनानुसार बहुधा पुराण मंगवाकर एक सुयोग्य पण्डित जी से सुने जिससे मुझको यह भी विदित हो गया कि आपने भी सम्पूर्ण पुराणों को यथावत् नहीं विचारा वरन् आप यह कदापि न कहते कि तुम देवताओं की निन्दा करते हो, पुरुषाओं की सनातन रीति को छोड़ते हो।

पण्डित जी महाराज! श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी देवताओं की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और हम सब देवताओं के सेवक हैं फिर निन्दा कैसी? देखिए दयालु विद्वान् का कर्त्तव्य है कि जो मनुष्य अविद्या में फंस सुमार्ग को छोड़ कुमार्ग में जाते हों उनको सत्यमार्ग से अन्यथा कभी न जाने दे क्योंकि वह गुरु व सुजन, माता, पिता, देवता और पति नहीं जो मृत्यु के छुड़ाने का उपाय न बतलावे जैसे **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ५ में लिखा है।

आप हमारे घराने के पुरोहित हैं और शास्त्रानुसार आपका कर्त्तव्य यही है कि आप हमारे साथ पूरा हित करें जो धर्म पर चलाने से होता है और धर्म वेद से जाना जाता है। सम्पूर्ण पुराण भी एक स्वर होकर कह रहे हैं कि ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है, पुराणों का कथन है कि पुराण वेदानुकूल बनाये गये हैं परन्तु शोक यह है कि पुराणों के बहुधा लेख वेद से नहीं मिलते। देखिए पुराणों ने ईश्वर को सगुण और निर्गुण माना है। फिर सगुण से त्रिदेव होना लिखा है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव, जिनकी बड़ी-बड़ी महिमा वर्णन की हैं परन्तु फिर आगे चल कर उन पर अनेक दोष लगाये हैं। इसी भांति जिनको देवता माना है उनके व्यवहारों का पाठ करने से मुझको तो बड़ी लज्जा आती है कि जिनके कहने और सुनने से सभ्यता का पता भी नहीं लगता। पण्डित जी महाराज! क्या करें उन ही विषयों को जब मुसलमान और ईसाई भाई हमें सुनाते हैं तो उस समय हमारी दशा शोचनीय हो जाती है, हम सब ऋषियों की सन्तान होने और वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने पर भी उनके सम्मुख बात कहने के योग्य नहीं रहते। तिस पर तुर्रा यह है कि भारतवर्ष के भूषण विद्वान् और योग्य पुरुष उन त्रिदेवादि की निन्दाओं को स्तुति कहते हैं, सच पूछिए तो पण्डित जी मेरी श्रद्धा आपके आधुनिक सनातन धर्म से इन पुराणों के सुनने और विचार करने से ही जाती रही, और श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कथन का महत्त्व मेरे हृदय में प्रवेश कर गया। यथार्थ में वह बड़े योगीराज

ऊर्ध्वरेता बालब्रह्मचारी थे, जिन्होंने ब्रह्मचर्य्य धारण कर, वेदों को पढ़, बड़े-बड़े विद्वानों से यथावत् विचार कर, संसार को कुमार्ग में जाने से ही नहीं रोका, वरन् वेदों को सनातन, ईश्वरकृत होने और प्राचीन पुरुषाओं के महत्त्व को जगत् में चिरायु रहने के लिए अपने तन, मन, विद्या और पुरुषार्थ को समर्पण कर दिया, जिसका हम सबको पूर्णरूप से धन्यवाद देना चाहिए, न कि जैसा वर्त्तमान समय में प्रायः आपकी नाममात्र की धर्मसभायें उनके विषय में मिथ्या कथन कर रही हैं और आपसे योग्य पुरुष भी उनको निन्दक कहते हैं, अस्तु। शोक तो यही है कि आप पक्षपात को त्यागकर कुछ विचार नहीं करते। क्या अच्छा हो कि आप प्रतिदिन सायङ्काल को यहाँ पधार कर पुराणों के उन विषयों को श्रवण करें जिनके अवलोकन करने ही से मेरी श्रद्धा और भक्ति आधुनिक सनातन धर्म से जाती रही, फिर आप अच्छे प्रकार विचार सत्य को ग्रहण कर अपने यजमानदि को उसी सनातन धर्म पर चलाइए जिससे प्राणी मात्र का कल्याण हो, आपको भी उसका यथार्थ फल मिले।

पण्डित जी—सेठ जी में आपकी अन्तिम वार्ता के अनुकूल कल से प्रतिदिन आकर आपके कथन को सुन, विचार करूंगा फिर जो मुझको सत्य प्रतीत होगा उसको मैं स्वीकार कर अपने यजमानों को उसी के अनुकूल चलाने का प्रयत्न करूंगा; परन्तु मेरा कहना आपसे यह है कि जो कुछ आप मुझको सुनावें उसको भारतवासियों के उपकारार्थ मुद्रित कराकर प्रकाशित करा दें इसके उपरान्त जो समय आप इस कार्य के लिए नियत करें उसकी सूचना भी नगर निवासियों को दे देना योग्य है जिससे अन्य पुरुषों को भी विचार करने का अवसर प्राप्त हो क्योंकि सर्वसाधारण मनुष्यों को धन तथा विद्या और समय के अभाव से बहुधा पुराणों की बातें सुनने और पढ़ने का अवसर नहीं मिलता, वह भी इनको सुन यथार्थ लाभ उठावें।

आर्य सेठ—मैं आपको धन्यवाद देता हूँ क्योंकि आपने मेरे निवेदन को स्वीकार कर लिया। धन्य है पण्डित जी यदि मेरे कथन के मुद्रित होने से भारतवासियों को कुछ लाभ होने की आशा है तो मैं आपकी आज्ञानुसार अपने कथन को अवश्यमेव मुद्रित कराने का प्रयत्न करूंगा और यह धार्मिक कथन छः बजे शाम से प्रारम्भ हुआ करेगा जिसकी सूचना आम

जन को भी दे दूंगा अन्त को हमारी आपसे यह भी प्रार्थना है कि हमारे कथन को सुन और विचार कर यदि किसी विषय में कुछ शङ्का हो तो आप स्वयं तथा अपने सनातनी मित्रों से उसका समाधान लिखाकर छपवा देवें जिससे आम जन को सत्यासत्य के जानने में सुगमता हो। लीजिए इस हेतु मैं भी हस्ताक्षर करे देता हूँ आप भी अपने हस्ताक्षर कर दीजिए।

पण्डित जी—बहुत अच्छा।

(दोनों ने हस्ताक्षर कर दिये)

हस्ताक्षर—
पं० रामप्रसाद
पूर्णप्रसाद वैश्य

पण्डित जी—अब हम जाते हैं—आपकी इच्छानुसार आपके सब कथन को सुन यदि हमारे और हमारे भाइयों को जो-जो अनुचित प्रतीत होगा उसका उत्तर भी अवश्य छपवा देंगे जिससे संसार के प्राणियों को यथावत् लाभ हो।

आर्य सेठ—अच्छा, श्री महाराज नमस्ते।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह कर चल दिए।

आर्य सेठ ने निम्नलिखित सूचना नगरनिवासियों को दी।

सूचना।

सर्वसज्जनों पर प्रकट हो कि १५ जून सन् १९०७ के ६ बजे शाम से प्रतिदिन मैं अपनी कोठी पर श्रीमान् पं० रामप्रसाद शर्मा जी के सम्मुख पुराणों के विषय में कथन करूंगा। कृपापूर्वक नियत समय पर पधार कर लाभ उठाइए और मुझको कृतार्थ कीजिए॥ इति॥

आपका शुभचिन्तक—

१५ जून सन् १९०७ **पूर्णप्रसाद**

ओ३म्

पुराण-तत्त्व-प्रकाश

भाग-१

प्रथम परिच्छेद

नियुक्त समय पर सेठ जी के यहाँ पण्डित जी का पधारना और आर्य सेठ का धर्मसम्बन्धी निवेदन करना।

आर्य सेठ जी श्रीमान् पण्डित जी को आते देखकर पूर्ववत् आइए महाराज! नमस्ते! विराजमान हूजिए। इतने में अभिलाषी श्रोतागण भी आ गये जो यथायोग्य अभिवादन आदि के पश्चात् सब शान्तचित्त होकर बैठ गये। तब सेठ जी ने निम्नलिखित मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना की—

ओं पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ —ऋ० १.३.१०॥

हे वाक्पते! सर्वविद्यामय! हमको आपकी कृपा से 'सरस्वती' सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो—"वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट, अन्नादि के साथ वर्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान "वसु" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो; जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों।

पुराण-क्रमसंख्या-प्रकरण

इसके उपरान्त सेठ जी ने श्रीमान् पण्डित जी से कहा कि समस्त सभ्य हिन्दू भाई अठारह पुराणों को मानते हैं। जैसा कि पुराणों में लिखा है। देखिए **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १२ अध्याय ७ में लेख है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्॥ २३॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥ २४॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) लिङ्ग, (६) गरुड़, (७) नारद, (८) भागवत, (९) अग्नि, (१०) स्कन्द, (११) भविष्य, (१२) ब्रह्मवैवर्त्त, (१३) मार्कण्डेय, (१४) वामन, (१५) वाराह, (१६) मत्स्य, (१७) कूर्म और (१८) ब्रह्माण्ड।

लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ३९ में लिखा है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा॥ ६१॥
भविष्यं नारदीयञ्च मार्कण्डेयमतः परम्।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गवाराहमेव च॥ ६२॥
वामनाख्यं ततः कूर्म्मं मात्स्यं गारुडमेव च।
स्कन्दं तथा च ब्रह्माण्डं तेषां भेदः प्रकथ्यते॥ ६३॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) भविष्य, (७) नारद, (८) मार्कण्डेय, (९) अग्नि, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिङ्ग, (१२) वाराह, (१३) वामन (१४) कूर्म, (१५) मत्स्य, (१६) गरुड़, (१७) स्कन्द (१८) ब्रह्माण्ड।

मार्कण्डेय पुराण माहात्म्य में लिखा है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा॥ १३४.८॥
तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च सप्तमम्।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा॥ ९॥
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गम् एकादशं स्मृतम्।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कन्दम् अत्र त्रयोदशम्॥ १०॥
चतुर्दशं वामनञ्च कौर्म्मं पञ्चदशं तथा।
मात्स्यञ्च गारुडञ्चैव ब्रह्माण्डञ्च ततः परम्॥ ११॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) नारद, (७) मार्कण्डेय, (८) अग्नि, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिङ्ग, (१२) वाराह, (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़ (१८) ब्रह्माण्ड।

शिवपुराण वायुसंहिता अध्याय १ में लिखा है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्॥ ४३॥
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गं वाराहमेव च।
स्कान्दञ्च वामनञ्चैव कौर्म्मं मात्स्यञ्च गारुडम्॥ ४४॥
ब्रह्माण्डञ्चाति पुराणोऽयं पुराणानामनुक्रमः॥ ४५॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) भविष्य, (७) नारदीय, (८) मार्कण्डेय, (९) अग्नि, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिङ्ग, (१२) वाराह (१३) स्कन्द, (१४) वामन (१५) कूर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़, (१८) ब्रह्माण्ड।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २३६ में लिखा है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथैव नारदीयन्तु मार्कण्डेयन्तु सप्तमम्॥ १४॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा।
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लिङ्गमेकादशं स्मृतम्॥ १५॥
द्वादशं च वराहं च वामनं च त्रयोदशम्।
कौर्मं चतुर्दशं प्रोक्तं मात्स्यं पञ्चदशं स्मृतम्॥ १६॥
षोडशं गारुडं प्रोक्तं स्कन्दं सप्तदशं स्मृतम्।
अष्टादशं तु ब्रह्माण्डं पुराणानि यथाक्रमम्॥ १७॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय, (८) अग्नि, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिङ्ग, (१२) वराह, (१३) वामन (१४) कूर्म, (१५) मत्स्य, (१६) गरुड़, (१७) स्कन्द (१८) ब्रह्माण्ड।

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय ३ में लिखा है—

चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम्।
तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम्॥ ३॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४॥
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल।
तथा चाऽयुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम्॥ ५॥
द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम्।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च॥ ६॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च।
चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक॥ ७॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम्॥ ८॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम्।
पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम्॥ ९॥
पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम्।
एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम्॥ १०॥
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम्।
सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम्॥ ११॥
एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम्।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः॥ १२॥

(१) मत्स्य, (२) मार्कण्डेय, (३) भागवत, (४) भविष्य, (५) ब्रह्माण्ड, (६) ब्रह्मवैवर्त्त, (७) ब्रह्म, (८) वामन, (९) वाराह, (१०) विष्णु, (११) वायु, (१२) अग्नि, (१३) नारद, (१४) पद्म, (१५) लिङ्ग, (१६) गरुड़, (१७) कूर्म, (१८) स्कन्द।

कूर्मपुराण अध्याय १ में लिखा है—

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम्॥ १३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥ १४॥
कौर्म्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥ १५॥

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) भविष्य, (७) नारद, (८) मार्कण्डेय, (९) अग्नि, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिङ्ग, (१२) वाराह, (१३) स्कन्द (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़ (१८) वायु।

श्रीमान् पण्डित जी देखिए, श्रीमद्भागवत, लिङ्ग, मार्कण्डेय, शिव और पद्म इन पांच पुराणों में ब्रह्म, पद्म, विष्णु और शिव की गणना समान है, परन्तु श्रीमद्भागवत में पांचवाँ लिङ्ग और लिङ्ग में पांचवाँ भागवत, शिव, पद्म और कूर्म में पांचवाँ भागवत को गिना है, इस प्रकार अन्य पुराणों की गणना का भेद है और देवी भागवत में और ही रीति से गणना की है। इसके सिवाय देवीभागवत, कूर्म और अग्नि पुराण में वायु पुराण का नाम आया है। इस भेद का कारण क्या है जब कि हमारे सनातनी भाई अठारह पुराणों का कर्त्ता व्यास जी महाराज को ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त पण्डित जी अग्नि और वह्नि का एक ही अर्थ है, परन्तु अग्नि और वह्नि दो पुराण पृथक्-पृथक् उपस्थित हैं, ब्रह्मवैवर्त्त यद्यपि एक ही पुराण प्रसिद्ध है, परन्तु वर्त्तमान समय में उसके भी दो प्रकार के पुस्तक पाए जाते हैं। इस कारण एक का नाम ब्रह्मवैवर्त्त और दूसरे का नाम प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण रखा गया है। स्कन्द पुराण का आजकल कोई स्वतन्त्र पुस्तक प्रचलित नहीं है, परन्तु कई भाग काशीखण्ड, रेवाखण्ड, तत्कालखण्ड और भीमखण्ड आदि नामों से स्वतन्त्र पुस्तकें मिलती हैं। इसी भांति भविष्य और शिव पुराण भी दो-दो प्रकार के मिलते हैं। इस सूरत में समस्त पुराणों की संख्या अधिक हो जाती है, परन्तु इनमें से अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी माने जाते हैं।

पुराणों का कालनिर्णय

अब पण्डित जी सबसे प्रथम यह जानना आवश्यक है कि व्यास जी महाराज का जन्म कब हुआ? और वह किस धर्म के मानने वाले थे? इसके अतिरिक्त यह भी जानना चाहिए कि पुराणों में जो कुछ लिखा है वह उनके धर्म के अनुकूल है वा प्रतिकूल? जब हम इन बातों पर विचार करते हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि व्यास पाराशर महाराज के पुत्र थे जो महाराज युधिष्ठिर के राज्यशासन के समय विद्यमान थे और महाराज युधिष्ठिर के राज्य के विषय में भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी **वाराहमिहिर वाराहीसंहिता** में लिखते हैं कि **विक्रमी संवत् आरम्भ होने से ५१८ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर का २५२६ सवंत् था इसलिए २५२६+५१८+१९६४ अर्थात् ५००८ वर्ष महाराज युधिष्ठिर के राज्य को व्यतीत हुए हो गये।** यदि पौराणिकों का यह वचन "**अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः**" (अर्थात् सत्यवती के पुत्र व्यास ने १८ पुराणों को बनाया।) सत्य है तो विष्णु और लिङ्ग पुराण के निम्नलिखित वाक्यों और मार्कण्डेय में व्यास और सूत के सम्बन्ध न होने से स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि पुराण भी अपने को व्यास महाराज का बनाया हुआ सिद्ध नहीं कर सकते। जैसा कि **विष्णु पुराण** अंश १ अध्याय १ में लिखा है—

एवं तातेन तेनाहमनुनीतो महात्मना।
उपसंहृतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात्॥ २५॥

हे मैत्रेय! जब मैंने अपने दादा वसिष्ठ के कहने से राक्षसों का नाश करने वाला यज्ञ बन्द किया तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझको यह वर दिया कि तुम पुराण बनाने वाले होगे—

पुराणसंहिताकर्त्ता भवान् वत्स भविष्यति।
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान्॥ ३०॥

लिङ्गपुराण अध्याय ६४ में लिखा है कि पुलस्त्य मुनि ने पराशर से कहा कि—"हे पुत्र! इस बड़े भारी वेद में तैने वसिष्ठ जी के वचन से क्षमा की और हमारे पुत्र राक्षसों का संहार नहीं किया इस कारण से हम बहुत प्रसन्न हैं। अब हम तुमको वर देते हैं कि पुराणसंहिता करने का तुमको सामर्थ्य होगा और देवताओं का परमार्थ तुम ठीक-ठीक जानोगे, कर्म की

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति में तुम्हारी बुद्धि निर्मल और निःसन्देह रहेगी"। यह सुनकर वसिष्ठ जी ने भी पाराशर से कहा कि पुलस्त्य जी जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। पाराशर मुनि भी इसी भांति वसिष्ठ और पुलस्त्य जी का अनुग्रह पाय विष्णु पुराण रचते भए। जैसा कि—

त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम्।
पुराणसंहिताकर्त्ता भवान् वत्स भविष्यति॥ ११७॥
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान्।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमला मतिः॥ ११८॥
मत्प्रसादादसन्दिग्धा तव वत्स भविष्यति।
ततश्च प्राह भगवान् वसिष्ठो वदतां वरः॥ ११९॥
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति।
अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः॥ १२०॥
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः॥ १२१॥

इस पर भी यह मान ही लिया जावे कि पुराणों को व्यास महाराज ने ही बनाया तो उनको बने ५००८ वर्ष से कुछ अधिक हुए परन्तु ऐसा भी जाना नहीं जाता क्योंकि पुराण अपने-अपने बनने का समय पृथक्-पृथक् बतला रहे हैं देखिए **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १९३ में लिखा है कि नारद जी व्याकुल अवस्था में सनकादिकों को मिले। तब उन्होंने इस मलीनता होने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी के किनारे, हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग, सेतुबन्धु तथा और तीर्थों में इधर-उधर घूमता हुआ आया हूं परन्तु कहीं भी मन के संतोष का करने वाला कल्याण नहीं देखा। सम्पूर्ण आश्रम, तीर्थ, नदियां, कुण्ड और देवताओं के स्थान मुसलमानों से भर गये हैं और अनेक स्थानों को दुष्टों ने गिरा दिया है। जैसा कि—

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितो ह्रदाः।
देवतायतनान्यत्र दुष्टैरुच्छेदितानि च॥ ३५॥

प्रिय पण्डित जी! इतिहासों के देखने से विदित होता है कि यह दशा भारत में महमूद गज़नबी से लेकर औरंगजेब के समय तक होती रही

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि **पद्मपुराण** संवत् १०१४ और १७२६ के बीच में बनाया गया और **ब्रह्माण्ड पुराण** में लिखा है कि जो घोर कलियुग में तमाकू पीता है वह नरक को जाता है—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वे वर्णाश्रमे नराः।

तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे॥

पद्मपुराण में लिखा है कि जो तमाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्राह्मण गांव का सूकर होता है।

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।

दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

इतिहास इस विषय में एक स्वर होकर कह रहे हैं कि तम्बाकू अमेरिका से अकबर के समय में भारतवर्ष में आया इससे भी प्रकट होता है कि यह दोनों पुराण अकबर के पीछे बनाये गये और अकबर का समय विक्रम के १६१३ से १६६२ तक रहा।

इसके अतिरिक्त स्वामी शङ्कराचार्य रामानुज महाराज से प्रथम हो चुके थे क्योंकि रामानुज जी ने शङ्करभाष्य का निषेध किया है और यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि शङ्कर स्वामी सारे संसार को माया और अपने को ब्रह्म मानते थे और सम्पूर्ण हिंदू शङ्करस्वामी को महादेव का अवतार कहते थे जिनका होना बौद्ध मत से प्रथम नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने बौद्धमत का खण्डन किया है। **पद्मपुराण** में पार्वती जी के प्रश्न के उत्तर में महादेव जी कहते हैं—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध उच्यते।

मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥ ७॥ अध्याय २३६।

हे देवि! कलियुग में मैंने ब्राह्मण का रूप धारण कर मायावाद प्रवर्त्तन किया (जो छिपा हुआ बौद्ध मत है) इसलिए पद्मपुराण बुद्ध, शङ्कर, रामानुज के पीछे बना इसके उपरान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ३ में बुद्ध महाराज को अवतार माना है जैसा कि—

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम्।

बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीटकेषु भविष्यति॥ २४॥

इतिहास से विदित होता है कि बुद्ध विक्रमी सवत् ६१४ से पूर्व उत्पन्न हुए और ८० वर्ष की आयु में मर गये जिसको २५६७ वर्ष व्यतीत हुए। परन्तु व्यास महाराज के जन्म को ५००८ वर्ष हुए। इससे प्रकट होता है कि श्रीमद्भागवत व्यास महाराज की बनाई हुई नहीं है। इसके अनन्तर इस बात को सब मानते हैं कि शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को भागवत सुनाई परन्तु इतिहास से यह प्रकट नहीं होता। क्योंकि कौरव और पाण्डवों के युद्ध के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर गद्दी पर बैठे जिन्होंने ३६ वर्ष ८ महीने २५ दिन राज्य किया और उनकी मृत्यु के पीछे परीक्षित ने ६० वर्ष राज्य किया और **भागवत** में लिखा है कि परीक्षित के राज्य के पीछे अर्थात् महाभारत के ९६ वर्ष के पश्चात् शुकदेव जी ने उनको भागवत सुनाया परन्तु **महाभारत** के **शान्ति पर्व** अध्याय ३३३ से प्रकट होता है कि जब लड़ाई समाप्त हुई और भीष्म जी के अन्त समय पर युधिष्ठिर उनसे उपदेश सुनने को गये तब उन्होंने शुकदेव जी के विषय में कहा कि बहुत दिन व्यतीत हुए कि उनका देवलोक हो गया—

शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वान्तरिक्षगाम्।
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं ब्रह्मभूतोऽभवत् तदा॥ १९॥

यह कह व्यास शोकातुर हुए। युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर प्रकट होता है कि मानों उन्होंने उसको देखा नहीं। उस समय राजा परीक्षित गर्भ में भी न थे फिर भला जब कि शुकदेव जी राजा परीक्षित के जन्म से प्रथम ही मर गये थे तो फिर उनका ९६ वर्ष पीछे भागवत सुनना किस प्रकार हो सकता है और व्यास जी महाराज इनसे बहुत पहिले हुए तो फिर क्योंकर व्यास जी ने भागवत को बनाया इस के उपरान्त ज्ञानेश्वर मिश्र ने जो गीता की टीका बनाई है उसमें उन्होंने १२७२ शकाब्द में हेमाद्रि का होना सिद्ध किया है और उन्हीं के समय में पण्डित बोपदेव जी हुए जिन्होंने राजा सचिव हिमाद्र को भागवत सुनाई थी इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि भागवत को बने बहुत थोड़े दिन हुए। **अग्निपुराण** अध्याय १६ में लिखा है कि मायामोहरूप शुद्धोदन का बेटा हुआ जैसा कि—

मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत्॥ २॥

इससे प्रकट हो रहा है कि यह पुराण बुद्ध के जन्म के पीछे बनाया

गया।

इसी प्रकार **भविष्य पुराण** में भी बुद्ध, पीपाभक्त, अकबर और गुरु नानक की उत्पत्ति का वर्णन है फिर वह व्यास महाराज का बनाया हुआ क्यों कर हुआ ? देखिए **भविष्य पुराण** के तृतीय प्रति सर्ग पर्व अ० ६ में लिखा है—

एतस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्तुतो हरिः।
काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः॥ ३६॥
बौद्धधर्मञ्च संस्कृत्य पटले प्राप्तवान् हरिः॥ ३७॥

सम्पूर्ण इतिहासवेत्ता एक स्वर हो कह रहे हैं कि रामानुज विक्रम की १२वीं शताब्दी में हुए जिन्होंने वैष्णव मत चला कर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म से लोगों को चक्राङ्कित किया; परन्तु वैष्णव मत का खण्डन **लिङ्ग पुराण** में है—

शङ्खचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
स जीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥

अर्थात् जिसके शरीर पर तपाकर शङ्ख, चक्र आदि की छापें लगाई गई हैं वह जीते जी मुर्दा और सब धर्मों से पतित के समान त्यागने योग्य है। इससे स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि यह **लिङ्गपुराण** भी व्यास जी का बनाया हुआ नहीं है क्योंकि रामानुज जी को आज तक ७६१ वर्ष हुए और व्यास जी को ५००८ वर्ष हुए। इसलिए इस पुराण के कर्त्ता व्यास जी नहीं।

जगन्नाथ जी का मन्दिर संवत् १२३१ विक्रमी में उड़ीसा के राजा **अनङ्ग भीमदेव** ने बनाया था इसको सब इतिहासवेत्ता मानते हैं और मन्दिर पर भी यही संवत् पड़ा है और इसका माहात्म्य स्कन्द पुराण में लिखा है इससे प्रकट होता है कि स्कन्ध पुराण संवत् १२३१ के पीछे बनाया गया।

ब्रह्मवैवर्त्तादि की भविष्य वाणियों के पढ़ने से जाना जाता है कि वह मुसलमानों के भारताक्रमण के पश्चात् बने हैं क्योंकि उनमें यह लिखा है कि कांची और काश्मीर मण्डल का राज्य यवन भोग करेंगे।

गान्धारे सिन्धुसौवीरे कांचीकाश्मीरमण्डलम्।

भोक्ष्यन्ति निन्द्यकृतयो यवनाः कलिदूषिताः॥

अर्थात् यवन लोग; खन्दार, सिन्ध, कांची और काश्मीर में राज्य करेंगे। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि जब मुसलमानी राज्य उक्त देशों में हो गया था तब **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण** बना था यदि यह भविष्य वाणी होती तो यह लिखते कि सम्पूर्ण भारत यवनों के आधीन हो जायगा सो नहीं लिखा। देखिए **गरुडपुराण** अध्याय ५५ में लिखा है—

पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।५।

अर्थात् भारत के पूर्व की ओर किरात और पश्चिम में यवन बसते हैं। भला पण्डित जी महाराज! क्या व्यास जी के समय में इस भारतखण्ड में मुसलमान रहते थे, कदापि नहीं। इससे जाना जाता है कि यह पुराण भी थोड़े ही समय का बना हुआ है।

पण्डित जी महाराज पुराणवालों ने पुराणों में जो लक्षण लिखे हैं उनमें भी परस्पर मतभेद है और वह लक्षण भी पूरे-पूरे उपर्युक्त पुराणों में नहीं मिलते। पुराणों का सामान्य लक्षण यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचिरतं दिव्याः पुण्याः प्रासङ्गिकीः कथाः॥ कूर्म १.२५॥

अर्थात् जिसमें सर्गनाम जगत् की उत्पत्ति और प्रतिसर्ग प्रलय सृष्टि के आरम्भ से वंश वा कुलों का वर्णन मन्वन्तरों की व्यवस्था अनेक कुलों में उत्पन्न हुए प्रधान पुरुषों के चरित्रों का वर्णन हो उनको पुराण कहते हैं। **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १२ अध्याय ७ में दश लक्षण लिखे हैं—

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।

वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥ ९॥

दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।

केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥ १०॥

ऐसा ही **विष्णु पुराण** अं० ३ अध्याय ६ में लिखा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।

सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्॥ २५॥

परन्तु **अग्निपुराण** और **भविष्य** में व्याकरण-कोश-वैद्यक, ज्योतिष, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, गृहादि बनाना और सामुद्रिक इत्यादि विषय भी लिखे हैं। फिर आप यह क्योंकर कह सकते हैं कि यह पुराण व्यासोक्त हैं? और यह भी देखिए कि पण्डितवर वराहमिहर ने अपने समय के प्रचलित मान्य पुस्तकों की जो सूची लिखी है उसमें भी तो पुराण ग्रन्थों के नाम तक भी नहीं लिखे। इसके उपरान्त उन्होंने जो मथुरापुरी का वर्णन किया है उसमें लिखा है कि मथुरानगरी में बौद्धों के बड़े-बड़े बीस मन्दिर और २००० बौद्ध धर्मोपदेशक थे। इसके अतिरिक्त चीन के प्रसिद्ध यात्री फाहिङ्ग ने ख्रीष्टाब्द की ५ वीं शताब्दी में जो भारत की यात्रा की थी उसने अपनी यात्रा-पुस्तक में लिखा है कि मथुरापुरी बौद्ध मन्दिरों से परिपूर्ण हो रही है। इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिन पुराणों में मथुरापुरी को विष्णु के मन्दिरों से परिपूर्ण लिखा है वह सब पुराण ख्रीष्टाब्द की पाँचवीं शताब्दी के पश्चात् बनाये गये हैं।

इसके अनन्तर दो भागवत होने के कारण आपस में झगड़ा बना रहता है। यदि दोनों को पुराणों में गिना जाय तो १८ के स्थान पर १९ पुराण होते हैं, वह सम्भव नहीं। वैष्णव लोग श्रीमद्भागवत को; शाक्त लोग देवी भागवत को महापुराण मानते हैं। इस विषय में अपने-अपने पक्ष के प्रमाण भी देते हैं जैसा कि **पद्मपुराण** में लिखा है—

शैवमादि पुराणं च देवीभागवतं तथा।

और भी लिखते हैं—

भगवत्याः कालिकायास्तु माहात्म्यं यत्र वर्ण्यते।
नानादैत्यवधोपेतं तद्वै भागवतं विदुः॥ ८॥
कलौ केचिद्दुरात्मानो धूर्त्ता वैष्णवमानिनः।
अन्यद्भागवतं नाम कल्पयिष्यन्ति मानवाः॥ ८॥

अर्थात् भगवती कालिका का जिसमें माहात्म्य लिखा हो वह भागवत है। कलियुग में बहुत से धूर्त्त जो अपने को वैष्णव मानते हैं, दूसरी भागवत बनावेंगे।

पण्डित जी महाराज! यदि पुराणों का बनाने वाला एक मनुष्य होता तो भी इस प्रकार के शब्द वह न कहता। इससे भी प्रकट होता है कि

पुराण व्यास महाराज के बनाये हुए नहीं हैं।

देवी भागवत स्कन्ध ३ में लिखा है—

वेदशाखाः पुराणानि वेदान्तभारतं तथा।
कृत्वा संमोहसं मूढोऽभवं राजन्मनस्यपि॥

अर्थात् वेदों की शाखा और पुराण तथा वेदान्तसूत्र और भारत बनाकर भी मैं व्यास जी मोह से मूढ़ हो गया तब देवीभागवत बनाई। **देवीयामल तन्त्र** में लिखा है—

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मतम्।
पारीक्षितायोपदिष्टं सत्यवत्यङ्गजन्मना॥ १॥
यत्र देव्यवताराश्च बहवः प्रतिपादिताः।

श्रीमद्भागवत नामक पुराण वेदसम्मत परीक्षित के पुत्र जनमेजय को व्यास जी ने उपदेश किया जिसमें देवी के बहुत अवतार प्रतिपादित किए।

श्रीमान् अब इसका न्याय सनातनी भाइयों के सिर है। हमारे विचार में दोनों और अन्य सब पुराण व्यास महाराज के बनाये नहीं हैं।

अब आपको यह भी विचारना उचित है कि व्यास महाराज बड़े विद्वान्, धर्मात्मा और योगिराज थे जिन्होंने वेदान्तसूत्र और मीमांसा की व्याख्या और योग पर भाष्य किया है जिसमें बड़े-बड़े गम्भीर विषय भरे पड़े हैं जिनके समझने वाले वर्त्तमान समय में बहुत ही कम दृष्टि आते हैं। जो सब प्रकार के वेद, बुद्धि और सृष्टिक्रम के अनुकूल हैं। देखिए वह कहते हैं—"**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**" अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। और योगदर्शन में मुक्ति के प्रकरण में यम, नियमादि सेवन की आज्ञा की है परन्तु पुराणों में जिनको वह व्यासकृत मानते हैं, इस लेख के विपरीत मुक्ति के साधन बतलाये हैं फिर भला वह पुराण क्योंकर महर्षिव्यासकृत हो सकते हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त इन पुराणों में अनेक बातें वेद, बुद्धि और सृष्टिक्रम के विपरीत भरी पड़ी हैं। फिर मैं नहीं जानता कि व्यास जैसे बुद्धिमान् पुरुष ने इन पुराणों को बनाया जिन पर तुच्छबुद्धि के मनुष्य शङ्का करते हैं। श्रीमान् पण्डित जी संक्षेप में आप भी सुन लीजिए, देखिए—राजा वेन के मरने पर उसकी भुजाओं को मथ निषाद और पृथु का उत्पन्न करना, प्रम्लोचा में गर्भ का रहना, फिर मुनि के शाप से गर्भ का

पसीना की राह निकल वृक्षों पर से पोंछ उससे मरीषा का जन्म होना, वैवस्वत मुनि की छींक से इक्ष्वाकु और हरिणी के गर्भ से ऋष्यशृङ्ग—राजा युवनाश्व की कोख से पुत्र, राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का होना, अष्टावक्र का गर्भ के भीतर बोलना, राजा प्रियव्रत के रथ के पहिये से सात समुद्रों का होना, राजा ययाति का अपने पुत्रों को बुढ़ापा देकर यौवन का लेना, गौतम मुनि का वीर्य एक सरकण्डे पर गिर पुत्र और पुत्री का उत्पन्न होना, राजा वसु के वीर्य को बाज का ले जाना, मार्ग में यमुना में गिर मछली का निगलना फिर उसके पुत्र, पुत्री का होना, वनता से अरुण और गरुड़ का उत्पन्न होना, राजा भोगाश्वन का एक जलाशय में स्नान करते ही स्त्री हो जाना फिर मुनि की पुत्री का वसिष्ठ की स्तुति करने पर उसका पुरुष हो जाना, शुक्र के शिष्य कच का राक्षसों को टुकड़े-टुकड़े कर कुत्ते सियारों को खिलाना और अपनी पुत्री के अधिक अनुरोध करने पर उसको उनके पेट से जीवित निकालना, देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति, राजा वलाश्व के क्रोध करने पर उसके शरीर से हाथी, घोड़े और सेना का उत्पन्न होना, बल के शरीर कटने पर धातुओं का उत्पन्न होना, ज्वर की अद्भुत उत्पत्ति और उसका अनोखा इलाज, पतिव्रता के प्रताप से सूर्य का छिप जाना, शुक्र महाराज के फूटे नेत्र की अपूर्व औषधि, राजा सोमक का पुत्रों के गर्भ जन्तु नाम पुत्र की चर्बी से हवन करना और उसकी गन्ध से रानियों के गर्भ का रहना फिर सन्तान का होना, नारद मुनि और अर्जुन महाराज का स्त्री हो सन्तान उत्पन्न करना फिर पुरुष हो जाना, एक वेद से व्यास महाराज का चार वेद करना, ब्रह्मा जी के शरीर छोड़ने से दिन का होना, समुद्र मथने पर कामधेनु गाय, कल्पवृक्ष, मदिरा, अमृत, विष, उच्चैश्श्रवा नाम अश्व व ऐरावत नाम गज और लक्ष्मी का निकलना इत्यादि बातें भरी पड़ी हैं।

इसके उपरान्त इन पुराणों में पूर्वापर विरोध भी पाया जाता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि उपर्युक्त अठारह पुराण किसी एक विद्वान् के भी बनाये हुए नहीं हैं क्योंकि साधारण मनुष्य भी अपने वचनों को आप खण्डन करना अच्छा नहीं समझता फिर विद्वान् तो कभी भी ऐसा नहीं कर सकते, न कि व्यास जैसे विद्वान् और ज्ञानी जिनको सनातनधर्मी परमेश्वर का अवतार मानते हैं। देखिए एक स्थान पर पुराणों में श्रीकृष्ण महाराज

को साक्षात् ईश्वर दूसरे स्थान पर नारायण के वार का अंशावतार लिखा है। **पद्म पुराण** में विष्णु की महिमा गाते हुए लिखा है कि जो मोहवश होकर विष्णु को त्याग कर अन्य देवता की पूजा करता है वह पाखण्डी है और विष्णु के सिवाय और देवताओं पर चढ़ा हुआ पदार्थ जो ब्राह्मण एकबार भी खाता है, वह अवश्य चाण्डाल हो जाता है।

शिवपुराण में शिव की महिमा करते हुए कहा है कि त्रिलोकी के स्वामी, नाथ ब्रह्मा और विष्णु के मालिक यही हैं, जो कोई इनको छोड़कर अन्य देवता की उपासना करता है वह चाण्डाल के समान पतित हो जाता है। **भविष्यपुराण** में सूर्यनारायण की पूजा की महिमा गाई है। **देवीभागवत** में देवी के प्रताप के सम्मुख ब्रह्मा, विष्णु और शिव को तुच्छ ठहराया है वरन् देवी के सम्मुख यह तीनों स्त्री हो गये फिर स्तुति करने पर उसी के प्रसाद से स्त्रीत्व उनसे गया और फिर अपने स्वरूप में हुए। इसके उपरान्त एक ही विषय को पृथक्-पृथक् पुराणों में जुदा-जुदा रीति से वर्णन किया है। जैसे कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और गङ्गा आदि की उत्पत्ति।

देवों पर दोषारोपण प्रकरण

इन सब बातों को छोड़कर पौराणिक जन परमेश्वर को सर्वव्यापक, सर्वसामर्थ्य, सर्वान्तर्यामी, निराकार और अजन्मा कहते हैं फिर उसी परमेश्वर के ब्रह्म, विष्णु, शिव, यह शरीरधारी मान उनमें अनेकानेक दोषारोपण कर निर्दोष को दोषी बना उसकी पवित्रता में धब्बा लगाते हैं। इसी प्रकार उसके अवतारों को मान उनकी पूर्णरूप से निन्दा लिख डाली है। फिर अन्य देवताओं की और ऋषियों की निन्दा का क्या ठीक! ब्रह्मा का अपनी पुत्री पर आसक्त होना और प्रसङ्ग करना, महादेव के विवाह में पार्वती के अङ्गुष्ठ को देखकर वीर्यपात करना, एक स्त्री के होते एक गोप की स्त्री से विवाह करना, श्रीकृष्ण महाराज की गायों को चुराना, अपने पुत्र नारद को वृथा शाप देना कि तुम दासीपुत्र हो, शिव के सम्मुख मिथ्या बोलना, ब्रह्मा के सिर को काल भैरव को नख से काटना, पार्वती के शाप से ढाल का वृक्ष होना उसकी ढाल से और नाक से वाराह का निकलना, जांघ से एक स्त्री का उत्पन्न होना, केश से सर्प और गान से गन्धर्व का उत्पन्न होना सावित्र के शाप से पूजा को संसार से उठाना।

विष्णु महाराज का जालन्धर की पतिव्रता स्त्री वृन्दा का सतीत्व नष्ट करना, राक्षसों को, स्त्री का रूप धर उनको मोहित करना, नारद मुनि को स्त्री बना सन्तान उत्पन्न कर फिर पुरुष बना देना, शंखचूढ़ की स्त्री के साथ प्रसङ्ग करना, राजा अम्बरीष की कन्या के अर्थ नारद और पर्वत मुनि को धोका देकर आप ले आना और पूछने पर उनसे मिथ्या बोलना, सिरका कटना और घोड़े का सिर लगाना, भृगु ऋषि की स्त्री का सिर काटना, महादेवी जी .... बढ़ाकर ऋषियों की स्त्रियों का मोहित करना, पार्वती के विरह में सप्तऋषियों का स्मरण करना, अतिविषयी होना, अतिथि बनकर सुदर्शन की स्त्री से अनुचित व्यवहार कर परीक्षा लेना, अपने पुत्र गणेश का शिर लड़ाई में काटना, फिर हाथी का सिर जोड़ना, विष्णु महाराज के कहने से राक्षसों के परास्त करने के लिए उनको धर्म से च्युत करने के लिए तामस पुराणों का बनाना, बायें अङ्गूठे के नख से ब्रह्मा जी का पांचवा सिर काटना, फिर कपाली होना, ब्रह्महत्या दूर करने के अर्थ विष्णु महाराज की स्तुति कर उपाय पूछना, तीर्थों में जा अविमुक्त तीर्थ जा हत्यामोचन होना, पुष्कर तीर्थ में यज्ञ के समय नग्न जाना और फिर वहाँ उनको ब्राह्मणों का मारना फिर उनको शाप देना कि कलियुग में तुम वेद से विमुख हो जाओगे।

विष्णु महाराज के मोहिनीरूप को देखने की इच्छा प्रकट करना, फिर उनकी माया से मोहित हो विष्णुरूपी स्त्री के पीछे दौड़ना और आलिङ्गन करने से वीर्यपात होने और धरती पर गिरने से सोने की खानि का होना, भयंकर रूप का धारण कर रहना, विष का पीना, राजा इला का एक मास स्त्री और एक मास पुरुष का होना।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का एक होना फिर उनका एक-दूसरे से बड़प्पन दिखलाना, बलदेव जी महाराज का शराब पीना, देवी पर मांस चढ़ाना, श्रीकृष्ण महाराज का राधा पर मोहित होकर अवतार पाना, श्री रामचन्द्र जी का सीता के विरह में दु:खित होना, समुद्र पर पुल बांधने और रावण के मारने के लिए व्रत आदि का करना।

इसी प्रकार इन्द्र ने जो देवताओं के राजा थे, अपने कार्य की सिद्धि के लिए अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र के पास भेजा, गौतममुनि की स्त्री

अहल्या का पतिव्रत भ्रष्ट करना, कुबेर की स्त्री के सतीत्व का नाश मारना, और अपनी सौतेली माता दिति के उदर में सूक्ष्मरूप से घुस के गर्भ के उञ्चास टुकड़े करना।

एक मुनि के पास जाकर बूढ़े पक्षी का रूप धारण कर मनुष्यमाँस भक्षण की इच्छा प्रकट करना, चन्द्रमा जी का अपने गुरु बृहस्पति की स्त्री के साथ समागम कर बुध को उत्पन्न करना, बृहस्पति जी का अपने बड़े भाई उतथ्य की स्त्री से प्रसङ्ग करना, शुक्र का रूप धारण कर राक्षसों से मिथ्या बोल उनको धर्ममार्ग से हटाना, सूर्य्य महाराज का घोड़ा बन अपनी स्त्री संज्ञा से घोड़ी के रूप में प्रसङ्ग कर पुत्र उत्पन्न करना, कुन्ती से बाल्यअवस्था में रमण कर गर्भ स्थापन करना, श्रीकृष्ण महाराज की सोलह सहस्र एकसौ आठ स्त्रियों का अपने पुत्र सांब पर मोहित हो प्रसंङ्ग की इच्छा का उत्पन्न होना, इत्यादि दोष लगाये हैं **परन्तु बुद्ध महाराज पर कोई कलङ्क नहीं लगाया जिन्होंने संसार में नास्तिकता को फैला दिया। इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि इन पुराणों को व्यास महाराज ने नहीं बनाया वरन् बौद्ध लोगों ने बनाया है।**

श्रीमान् पण्डित जी! मैं पुराणों की लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करूं, हाँ पुराणों के रहस्य को वही पुरुष अच्छे प्रकार से जान सकते हैं जो अठारह पुराणों अथवा दश-पांच पुराणों को विचारपूर्वक पढ़ते हैं, उनका ही मन पुराणों से उपराम हो जाता है और वेदों का महत्त्व उनके हृदय में जम जाता है। ज़रा और भी सुन लीजिए कि इस बात को तो समस्त हिंदू, आर्य एकस्वर होकर मान रहे हैं कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अपना ज्ञान वेद द्वारा दिया फिर सनातनधर्मियों के कथनानुसार व्यास महाराज ने वेदानुकूल १८ पुराण बनाये जो हमारी सम्मति में अत्यन्त ही निर्मूल हैं परन्तु इस स्थान पर यह मान भी लिया जावे तो भी तो ठिकाना नहीं लगता।

पुराणों द्वारा वेद का भ्रमभञ्जन प्रकरण

देखिए, **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण** के ब्रह्मखण्ड अध्याय १ के आदि में लिखा है कि यह पुराण सब पुराणों में बड़ा वरन् वेद की भूलचूक सुधारने वाला है जैसा कि—

भगवन्! यत् त्वया पृष्टं ज्ञानं सर्वमभीप्सितम्।
सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम्॥ ४२॥
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्॥ ४३॥

यदि आप यह मानें कि यह पुराण वेद के भ्रम को सुधारने वाला है तो यह पुराण निर्भ्रान्त रहा और वेद जो ईश्वरीय ज्ञान है भ्रान्त वाला रहा तो फिर परमात्मा का पूर्णज्ञानी होना भी नहीं बनता, इधर यह लेख कि पुराण वेदानुकूल बनाये गये हैं तो फिर यदि वेदों में भ्रम है तो क्या फिर पुराण भ्रमरहित हो सकते हैं? हां, यह दावा केवल इसी पुराण का है तो फिर १७ पुराण ही वेदानुकूल रहे न कि अठारह; परन्तु तुर्रा तो यह है कि इस पुराण को भी तो व्यासोक्त माना है, पण्डित जी क्या कहें! क्या यह बातें व्यास जी जैसे ज्ञानी महात्माओं की हो सकती हैं? कदापि नहीं।

पुराणों की श्लोक-संख्याओं में भेद

अब आप और भी सुनिये, इस पृथ्वी पर चार लाख श्लोक व्यास महाराज के कहे हुए प्रकट रहते हैं, उन्हीं से अठारह पुराण बनाये गये हैं। देखिए, **मत्स्यपुराण** अध्याय ५३ में लिखा है—

तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते॥ ११॥
चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा॥ ५७॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२, अध्याय १३, श्लोक ९ में लिखा है—

एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १ में लिखा है—

तदेवात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्॥ ५३॥

इन पुराणों में श्लोकों की गणना निम्नलिखित है, उसको भी देख लीजिए। किसी में चार लाख नहीं अर्थात् न्यूनाधिक है—

		मत्स्य	भागवत	देवीभागवत	अग्नि
१	ब्रह्म	१३०००	१००००	१००००	५००००
२	पद्म	५५०००	५५०००	५००००	१२०००
३	विष्णु	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००

४	वायु	२४०००	२४०००	२४६००	१४०००
५	भागवत	१८०००	१८०००	१८०००	१८०००
६	नारदीय	२५०००	२५०००	२५०००	२५०००
७	मार्कण्डेय	९०००	९०००	९०००	९०००
८	आग्नेय	१६०००	१५०००	१६०००	१२०००
९	भविष्य	१४०००	१४०००	१४५००	१४०००
१०	ब्रह्मवैवर्त्त	१८०००	१८०००	१८०००	१८०००
११	लिङ्ग	११०००	११०००	११०००	११०००
१२	स्कन्द	८१०००	८१०००	८१०००	८४०००
१३	वामन	१००००	१००००	१००००	१००००
१४	कूर्म	१८०००	१७०००	१७०००	८०००
१५	मत्स्य	१४०००	१४०००	१४०००	१३०००
१६	गरुड़	१८०००	१९०००	१९०००	८०००
१७	ब्रह्माण्ड	१२२००	१२०००	१२१००	१२०००
१८	वाराह	२४०००	२४०००	२४०००	१४०००
		४०३२००	**३९९०००**	**३९६२००**	**३५५०००**

कहिये पण्डित जी क्या यही व्यास जैसे योग्य विद्वानों और अवतारियों का ज्ञान है? क्या यह त्रिकालदर्शियों की पहचान है? इसके अतिरिक्त मत्स्यपुराण और अग्नि में वायुपुराण और भागवत और देवीभागवत में शिवपुराण का नाम गिनाया है इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, वामन इन पुराणों की संख्या उपरोक्त चारों पुराणों में समान मिलती है और अन्य पुराणों की संख्या भिन्न-भिन्न लिखी है परन्तु **लिङ्गपुराण** अध्याय ६४ में विष्णुपुराण के विषय में लिखा है कि उसमें छह अंश और छह हज़ार श्लोक हैं। जैसा कि—

षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसञ्चयम्॥ १२१ ॥

षट्साहस्त्रमितं सर्व्वं वेदार्थेन च संयुतम्॥ १२२ ॥

और **मार्कण्डेय पुराण** में लिखा है कि पूर्वकाल में ज्ञानी मार्कण्डेय मुनि ने छह हज़ार नौ सो श्लोक नियत किये हैं। जैसा कि माहात्म्य

(अध्याय १३४) में लिखा है—

श्लोकानां षट्सहस्त्राणि तथा चाष्टशतानि च॥ ३८॥

श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादश समाहिताः॥ ३९॥

अब आप ही बतलाइए यह क्या तमाशा है। क्या यह भूलें महात्मा व्यास जैसे ज्ञानियों के काम में हो सकती हैं, यदि आप ऐसा ही मान लें तो फिर उनके अन्य लेखों के प्रमाण होने का क्या प्रमाण है? श्रीमान् यह सब बनावटी बातें हैं, यथार्थ में यह पुराण किसी प्रकार से व्यास महाराज के बनाये हुए नहीं हैं।

पुराणों की रचना महाभारत के बाद

पण्डित जी महाराज! सम्पूर्ण विद्वान् इस विषय में एकसम्मति हैं कि यह सब पुराण महाभारत के पीछे बने। जैसा कि **मत्स्य** अध्याय ५३ में लिखा है—

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।

भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥ ६९॥

इसके उपरान्त **पुराणों में महाभारत की चर्चा है परन्तु महाभारत में पुराणों की कुछ भी व्याख्या नहीं।**

पुराणों के प्रचलन के कारण

अब श्रीमान् पण्डित जी यदि मैं एक-एक पुराण की समीक्षा करूं तो बहुत काल चाहिए इसलिए मैं सब पुराणों से आवश्यक-आवश्यक विषयों को सुनाता हूं जिससे आप और अन्य सब पाठकगणों पर भले प्रकार प्रकट हो जावेगा कि उपर्युक्त अठारह पुराण महर्षि व्यासकृत नहीं हैं और उनके प्रचलित होने के निम्नलिखित कारण जान पड़ते हैं—

(१) महाभारत के बड़े भारी संग्राम में बड़े-बड़े ज्ञानी, विद्वान् और महात्माओं का मारा जाना।

(२) माण्डलिक राज्य होने से धर्म की ओर से राज्यभय न रहना, धार्मिकावस्था का नष्ट होना।

(३) ब्राह्मणों का लोभादि में फंस मदोन्मत्त क्षत्री राजाओं की शुश्रूषा के कारण उनकी इच्छानुसार धार्मिक व्यवस्था देना।

(४) ब्रह्मचर्याश्रम की उत्तम प्रणाली को उठा गुरुकुल की शिक्षा को दूर कर बाल्यावस्था में विवाह का आर्डर जारी करा विषय भोग में लगा बुद्धिहीन कर देना।

(५) स्त्रियों को शूद्र बता, शिक्षा से विमुख रख, चेली बना अपने कार्य की पूर्त्ति करना।

(६) पाप निवृत्ति के लिए राम, कृष्ण, गङ्गा आदि के नाम काशी, प्रयाग इत्यादि तीर्थों के दर्शन और नाना प्रकार के व्रत बना उनके बड़े-बड़े माहात्म्य सुना-सुना निर्भयता प्रदान कर सत्यधर्म अर्थात् वेदमार्ग से विमुख कर देना।

(७) सच्चे साधु-महात्मा-विद्वानों के "ब्रह्मवाक्य जनार्दन" इस वाक्य के स्थान पर अविद्वानों, मूर्खों और अज्ञानियों के वाक्य को सर्वोपरि मानना।

(८) निराकार, अद्वितीय, अजन्मा, परमात्मा का जन्म बता कर मिट्टी, पत्थर, काष्ठ, पीतलादि की देवताओं की कपोलकल्पित मूर्त्तियाँ नियत कर, उनके पूजन की नाना विधि बता मुक्ति करा देना।

(९) श्रीमहाराज इनके प्रचलित होने के उपर्युक्त कारणों के सिवाय सबसे बड़ा कारण यह भी हुआ कि इन पुराणों में यह अच्छे प्रकार लिख दिया कि इनके सुनने से ही बड़े-बड़े महापाप एक ही जन्म के नहीं वरन् करोड़ों जन्मों के नष्ट हो जाते हैं, इस नुसखे ने भारत पर ऐसा प्रभाव डाला कि सारे भारत में इन्हीं का डंका बज गया, भारतवासी वेदों के नाम तक भूल गये। कृपाकर प्रथम आप भी उनमें से कुछ सुन लीजिए। फिर देखिए! आपका मन कैसा पसीजता है।

पुराणों के सुनने का फल

पद्म पुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १९७ में लिखा है कि जो पुराणों को सुनते हैं वह पुत्रहीन पुत्रको, धनकी इच्छा करने वाला धनको, विद्याकी इच्छा वाला विद्याको और मोक्षकी इच्छा वाला मोक्षको पाते हैं और उनके निश्चय करोड़ जन्मों के इकट्ठे किये हुए पापसमूहों को नाशकर भगवान् के लोक को जाते हैं—

ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु।
पापजालं तु ते हत्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम्॥ ३२॥

पद्म चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय २५।

पञ्चम पातालखण्ड ११५ में लिखा है कि वेदाध्ययन, तप, मन्त्र, हवन इतना फल नहीं देते जितना पुराणों का सुनना फल देता है—

न स्वाध्यायस्तपो वापि न मन्त्रो न जुहोतयः।
फलन्ति न तथा तिष्ये पुराणश्रवणं यथा॥ ४२॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय १५ में कहा है कि जो क्रमपूर्वक पुराणों को सुनता है, वह ब्रह्महत्या के बन्धन से छूट जाता है। हे रामचन्द्रजी! मदिरापान करने और सुवर्ण चुराने, गुरु की स्त्री के सङ्ग भोग करने के पाप से विमुक्त हो जाता है—

एवं पुराणं शृणुयाच्च यस्तु स ब्रह्महत्याकृतपापबन्धात्।
सुरापीतिः स्वर्णहरश्च राम गुर्वङ्गनागश्च विमुक्तिमेति॥ ३८॥

अन्य भी जो पूर्व के किये हुए पुरुषों के पाप होते हैं वह सब नष्ट हो जाते हैं। इस जन्म के भी सौ वर्ष तक के किये हुए वक्ता-श्रोता के पाप नष्ट हो जाते हैं—

पापानि चान्यानि कृतानि पुंभिः
सर्वाणि नश्यन्ति पुरा कृतानि।
इहापि यान्यब्दशतार्जितानि
श्रोतुर्विनश्यन्ति तथा च वक्तुः॥ ३९॥

और इसी अध्याय में यह भी लिखा है कि जो कोई सब पुराणों के नाम को लेता और सुनता है उसके धन का कभी नाश न हो वृद्धि होती तथा वेद के सुनने से अधिक और पुष्कर तीर्थ में दान करने के समान फल मिलता है—

यश्च सर्वपुराणानि षट्त्रिंशत्तु प्रकीर्त्तयेत्।
शृणोति वा न तस्यास्ति वित्तच्छेदः कदाचन॥ ८८॥
पुष्करे दानपुण्यं श्रवणादस्य जायते।
सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्यां चाधिगच्छति॥

शिवपुराण-धर्मसंहिता अध्याय ४९ में लिखा है कि अर्थ, काम, मोक्ष के निमित्त यज्ञ, दान और तीर्थसेवा से जो फल मिलता है, वह फल मनुष्यों को पुराण श्रवण करने से प्राप्त होता है—

धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा।

यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया॥

वामन-पुराण अध्याय ९५ में लिखा है जिस प्रकार गङ्गा जी में स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं उसी भांति पुराण सुनने से भी पाप नाश होते हैं—

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात्।

तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम्॥ २॥

मार्कण्डेय-पुराण के माहात्म्य (अध्याय १३४) में लिखा है कि जो कोई अठारह पुराणों के नाम तीनों सन्ध्याओं में जपता है उसको अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और ब्रह्महत्यादिक जो पाप हैं उन पापों का ऐसे नाश हो जाता है जिस प्रकार हवा के लगने से तृण उड़ जाता है—

अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत्।

त्रिसन्ध्यं जपते नित्यमश्वमेधफलं लभेत्॥ १२॥

ब्रह्महत्यादिपापानि यान्यन्यान्यशुभानि च।

तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा॥ १५॥

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २३ में लिखा है कि जिस प्रकार मुझको पुराण प्रिय हैं ऐसे अङ्गों सहित चारों वेद प्रिय नहीं हैं—

यथैतानि ममेष्टानि पुराणानि सदा मुने।

न तथा चतुरो वेदान् चाङ्गानि महामते॥ ६२॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड-उत्तरार्द्ध अध्याय १०४ में लिखा है कि जो सब वेदों के भीतर प्रविष्ट होता है व सब शास्त्रों को जानता है परन्तु पुराण नहीं सुनता, उसकी अच्छी तरह से गति नहीं देखते—

अन्तं गतस्य वेदानां सर्वशास्त्रार्थवेदिनः।

पुंसोऽश्रुतपुराणस्य न सम्यग्याति दर्शनम्॥ २१॥

श्रीमान् पण्डित जी देखा—कैसे-कैसे कार्य रचकर वेदों के मान को घटाया। और पुराणों की प्रतिष्ठा को बढ़ाया तब ही तो भारतवासी तन, मन, धनसे पुराणों की आज्ञा पालन में लग गये। इसके उपरान्त **पद्म पुराण** प्रथम सृष्टिखण्ड अध्याय १ में यह भी लिख दिया कि ब्रह्मा जी ने सब शास्त्रों से प्रथम पुराणों को कहा जो धर्म, अर्थ और काम के देने वाले हैं—

सर्वज्ञात्सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥ ४५।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ४६॥

फिर क्या फिर तो जो कुछ पण्डितों के जी में आया, किया-कराया और अब भी कर रहे हैं।

श्रीमान् समय हो गया इसलिए विश्राम देता हूँ। पण्डित जी ने कहा कि अच्छा सेठ जी अब हम जाते हैं। सुयोग्य **पण्डितजी**—आयुष्मान् कह कर चल दिये, तब अन्य महाशयों ने यथायोग्य किया और पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया, सब अपने गृह को गये।

॥ इति प्रथम परिच्छेद॥

परन्तु बुद्ध महाराज पर कोई कलङ्क नहीं लगाया जिन्होंने संसार में नास्तिकता को फैला दिया। इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि इन पुराणों को व्यास महाराज ने नहीं बनाया वरन् बौद्ध लोगों ने बनाया है। (पृ० ५१)

द्वितीय परिच्छेद

पुराणों की आवश्यकता

पूर्ववत् पण्डित जी का आगमन देख, सेठ जी ने नमस्ते की।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह कर बैठ गये और घरकी बातचीत होने लगी, इतने में अन्य महाशयगण आ गये सब यथायोग्य कर बैठ गये।

आर्य सेठ—पण्डित जी! आज मेरा प्रथम कहना यह है कि जब परमात्मा ने अपना ज्ञान सृष्टि के आदि में वेद द्वारा दे दिया था जिसको सम्पूर्ण पुराण भी स्वीकार करते हैं तो फिर पुराणों के बनाने की क्या आवश्यकता हुई? यद्यपि इसका उत्तर **श्रीद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ४ में इस प्रकार दिया है कि "स्त्री और शूद्र और इनसे जो अधम हैं उनको वेदत्रय सुनने का अधिकार नहीं है" इसलिए उन सबके कल्याण के अर्थ व्यास जी महाराज ने वेदों के अर्थ लेकर महाभारत आदि पुराण रचे। यदि हम इसको थोड़ी देर के लिए प्रमाणकोटि में मान भी लें तो इसमें दो बातें उत्पन्न होती हैं। प्रथम—यदि यह वेदों के अर्थों को लेकर ही बनाये गये हैं तो वेदों के अनुकूल क्यों नहीं और उनमें आपस में विरोध क्यों है? द्वितीय—जब यह स्त्री तथा शूद्र, अधम जातियों ही के लिए बनाये गये तो फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को इनके श्रवण से क्या लाभ? देखिए—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥ २५॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।
वेदार्थं च समुद्धृत्य भारते प्रोक्तवान् मुनिः॥ २६॥

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय ३ में भी लिखा है—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥ २१॥

स्त्री-पुरुष एक समान

परन्तु पण्डित जी **यजुर्वेद** अध्याय २६ मन्त्र २ में परमेश्वर आज्ञा देता है कि जैसा मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के देनेहारी चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो—

यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

पण्डित जी! अब आप इस बात पर विचार कीजिए कि परमेश्वर सब का पिता है वह सबका पालन पुत्रवत् करता है, उसके बनाये हुए पदार्थ सम्पूर्ण प्राणियों को एकसा लाभ देते हैं और उनमें सबका भाग बराबर है, जो जितना चाहे बुद्धि, बल के अनुसार ग्रहण करे। जैसा वायु, जल, पृथिवी, सूर्य्य, चन्द्र आदि में सबको एकसा ही अधिकार है, दसों इन्द्रियाँ भी स्त्री, शूद्र एवं मनुष्यमात्र के एक समान हैं। सबकी उत्पत्ति और मरण का एक ही प्रकार है, फिर क्या ईश्वरीय ज्ञान प्राणीमात्र के लिए नहीं है? इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी कहाती हैं। **पद्मपुराण** सृष्टिखण्ड अध्याय ३ से विदित होता है कि ब्रह्मा जी के कहने पर जब उनके पुत्रों ने सृष्टि नहीं रची तब उनको अति क्रोध उत्पन्न हुआ जिससे तीनों लोक जलने लगे और हाहाकार मच गया तब उनकी भौंहें कुटिल हो गईं, मस्तक में सुकड़न पड़ गई उससे रुद्र का अवतार हुआ जिसमें आधे अङ्ग स्त्री और आधे पुरुष के थे तब ब्रह्मा के कहने से उन्होंने स्त्री और पुरुष रूप को पृथक्-पृथक् कर दिया—

ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः।
यस्य क्रोधात्समुद्भूतं ज्वालामालावदीपितम्॥ १७१॥
ब्रह्मणस्तु तदा ज्योतिस्त्रैलोक्यमखिलं दहत्।
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात्॥ १७२॥
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः।
अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्॥ १७३॥
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः।

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत्॥ १७४॥

षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २४३ में महादेव जी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा है कि तीनों लोकों में जो स्त्रीलिङ्ग हैं वह सब जानकी जी हैं और हे प्रभो! पुल्लिङ्ग में जो हैं वह सब आप हैं—

स्त्रीलिङ्गेषु त्रिलोकेषु यत्तत्सर्वं हि जानकी।
पुन्नामलाञ्छितं यत्तु तत्सर्वं हि भवान्प्रभो॥ ३६॥

सृष्टिखण्ड अध्याय ३ में लिखा है कि ब्रह्मा जी के कहने पर महादेव जी ने अपना शरीर पृथक् कर लिया, स्त्री का अलग फिर जो पुरुष था उसमें ग्यारह हो गये।

शिवपुराण वायुसंहिता पूर्वार्द्ध अध्याय १४ में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचने की इच्छा की तो अपने आधे शरीर से नारी और आधे से पुरुष हो गये, जो नारीरूप था उससे शतरूपा प्रकट हुई—

स्वयमप्यर्द्धतो नारी चार्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
याऽर्द्धेन नारी सा तस्माच्छतरूपा व्यजायत॥ २॥

वायुपुराण अध्याय १० श्लोक ७ में भी कहा है—

स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोऽहदभास्वराम्।
द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्॥ ७॥
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत॥ ८॥

ऐसा ही **मार्कण्डेय पुराण** अध्याय ५० में लिखा है कि जब ब्रह्मा के पुत्रों ने सृष्टि न की तब ब्रह्मा जी को कोप उत्पन्न हुआ और वह सूर्य के समान महातेजवान् हो आधा पुरुष का प्रकट हुआ और कहा कि आत्मा का विभाग करो यह सुनकर ब्रह्मा ने पृथक्-पृथक् कर दिया—

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः॥ ९॥
अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान्।
विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः॥ १०॥
स चोक्तो वै पृथक् स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत्॥ ११॥

लिङ्गपुराण अध्याय ५ में लिखा है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी ने शिव जी को अर्द्धनारीश्वर देखकर कहा कि आप स्त्री पुरुष विभाग करें तब शिव जी के देह से सती जी पृथक् हो गईं, जगत् में जितनी स्त्री जाति हैं वह सब सती का अंश हैं और सम्पूर्ण पुरुष जाति तथा ग्यारह रुद्र शिव जी का अंश हैं—

अर्द्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकाण्डजः।
विभजस्वेति चाहादौ यदा जाता तदाऽभवत्॥ २८॥
तस्याश्चैवांशजाः सर्व्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा।
एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा॥ २९॥
स्त्रीलिङ्गमखिलं सा वै पुल्लिङ्गा नीललोहिताः॥ ३०॥

और अध्याय ३३ में महादेव ने मुनियों से कहा है कि जगत् में जितने स्त्रीलिङ्ग हैं सब मेरे देह से उत्पन्न भई प्रकृति का स्वरूप हैं यह सब प्रकृति पुरुषरूप नारी नरों से व्याप्त है इसलिए किसी की भी निन्दा न करनी चाहिए—

स्त्रीलिङ्गमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा॥ ३॥
पुल्लिङ्गः पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥ ४॥
न निन्देद् यतिनं तस्माद् दिग्वाससमनुत्तमम्॥ ५॥

फिर अध्याय ४१ में लिखा है कि जब ब्रह्मा के मानसी पुत्रों से सृष्टि की वृद्धि न हुई तब उनके साथ तप करने लगे और जब शिव जी प्रसन्न हुए तब ब्रह्मा जी का ललाट भेदकर स्त्री-पुरुष रूप से उत्पन्न हुए—

न व्यवर्द्धन्त लोकेऽस्मिन्प्रजाः कमलयोनिना।
वृद्ध्यर्थं भगवान् ब्रह्मा पुत्रैर्वै मानसैः सह॥ ७॥
दुश्चरं विचचारेशं समुद्दिश्य तपः स्वयम्।
तुष्टस्तु तपसा तस्य भवो ज्ञात्वा स वाञ्छितम्॥ ८॥
ललाटमध्यं निर्भिद्य ब्रह्मणः पुरुषस्य तु।
पुत्रस्तेऽहमिति प्रोच्य स्त्रीपुंरूपोऽभवत् तदा॥ ९॥

शिवपुराण वायुसंहिता उत्तरार्द्ध अध्याय ५ लिखा है—

जैसे शिव वैसी देवी जैसी देवी तैसे शिव हैं, चन्द्रमा और चांदनी के समान हैं। इनमें अन्तर जानना उचित नहीं, चांदनी के बिना चन्द्रमा शोभित नहीं होता और चन्द्रमा के बिना चांदनी नहीं, ऐसे ही बिना शक्ति के शिव शोभित नहीं होते—

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरे विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥ ९॥
चन्द्रो न खलु भात्येष यथा चन्द्रिकया विना।
न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः॥ १०॥

और अध्याय ५ में लिखा है कि शिवा और शिव के बिना यह चराचर जगत् उत्पन्न नहीं होता, स्त्री और पुरुषों से उत्पन्न हुआ यह जगत् स्त्रीपुरुषात्मक है। स्त्री और पुरुषों की विभूति स्त्री, पुरुषों से अधिष्ठित है परमात्मा शिव और वह शिवा कहलाती है। और क्या कहें सब पुरुष शङ्कर हैं और सब स्त्रियां पार्वती हैं इस कारण सब स्त्री और पुरुष उनकी विभूतियां हैं—

शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।
सर्वे स्त्रीपुरुषास्तस्मात्तयोरेव विभूतयः॥ ५४॥

वाराहपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय २ में लिखा है कि रुद्र नाम ब्रह्मा जी के क्रोध करने से जो उत्पन्न हुए वो अर्द्धनारी नर होने से अर्द्धनारीश्वर कहलाये उनको ब्रह्मा जी ने आज्ञा दी कि निज देह का विभाग करो अर्थात् स्त्री और पुरुष जुदे-जुदे होकर रहो, ऐसा ही रुद्र ने किया—

योऽसौ रुद्रेति विख्यातः पुत्रः क्रोधसमुद्भवः॥ ४८॥
अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिभयङ्करः।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे पुनः॥ ४९॥
तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं चकार सः॥ ५०॥

इसके उपरान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ३ में लिखा है कि विष्णु महाराज ने मोहिनी अर्थात् स्त्री का रूप धारण कर राक्षसों को मोहित कर अपना कार्य सिद्ध किया—

अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७ ॥

पुनः स्कन्ध ८, अध्याय ८ में भी लिखा है कि विष्णु भगवान् ने अद्भुत स्त्री का स्वरूप धारण किया—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥

ऐसा ही **विष्णु पुराण** अंश १ अध्याय ९ में लिखा है—

मायया मोहयित्वा तान् विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः ।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥ १०८ ॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय २ में लिखा है कि सृष्टिकर्ता श्रीकृष्ण प्रभु की प्रेरणा और अपनी इच्छा से दो प्रकार के रूप अर्थात् बायें भाग से स्त्रीरूप और दक्षिण भाग से पुरुष उत्पन्न हुआ—

स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च ।
सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥ २८ ॥
स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ।
स्त्रीरूपा वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ॥ २९ ॥

अग्निपुराण अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मा ने आधे अङ्ग से पुरुष और आधे से नारी को उत्पन्न किया—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ १६ ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत् प्रजाः ॥ १७ ॥

पण्डित जी! आप ही बतलाये कि जब आपके पुराण, स्त्री और पुरुषों की उपर्युक्त प्रकार से उत्पत्ति जो वेद के विपरीत है बतलाते हैं और स्वयं विष्णु जी ने भी मोहिनी अर्थात् स्त्री का रूप धारण कर राक्षसों से अपना कार्य किया। फिर बतलाइए स्त्रियों को वेद श्रवण का अधिकार क्यों नहीं रहा, वह शूद्रा क्यों कर हो सकती हैं? क्योंकि वर्ण, गुण-कर्म-स्वभाव से होते हैं। इस कारण स्त्रियों पर ही क्या? जिनके गुण, कर्म, स्वभाव उत्तम होते हैं वह स्त्री और पुरुष उत्तम और जिनके मध्यम कनिष्ठ और नीच होते हैं, वह मध्यम कनिष्ठ नीच श्रेणियों में प्रगणित हो जाते हैं। इसके उपरान्त **शिवपुराण** धर्मसंहिता अध्याय ४४ से प्रकट होता है कि

सूर्य, इन्द्र और अग्नि स्त्रियों के चरित्र जानने के लिए चले, मार्ग में अरुन्धती मिलीं, उनसे प्रश्न किया, तब अरुन्धती ने उत्तर में कहा कि हे साधुओ! आप निस्सन्देह जानो कि स्त्रियाँ देवसम्मति हैं उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीन प्रकार की होती हैं—

स्त्रीणां हि चरितं प्रष्टुमतो यामः स्वमालयम्।
इत्युक्त्वा तानुवाचेदमुत्तमाधममध्यमाः॥ २८॥
सन्ति नो विस्मयः कार्यः स्त्रियो हि देवसम्मताः॥ २९॥

गीता के अध्याय ११ में श्रीकृष्ण महाराज ने सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणियों को दैवी और आसुरी सम्पत्ति में विभाग किया है। दैवी सम्पत्ति में वह प्राणी गिने जाते हैं, जो शुद्ध रह कर, प्रसन्नचित्त हो, आपत्ति विचार कर, दानशील, बाह्य इन्द्रियों को रोकने के लिए अग्निहोत्रादि यज्ञों का अनुष्ठान, ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्योपासनादि करते हैं। फिर भला स्त्रियों को वेदश्रवणादि का अधिकार क्यों नहीं रहा, जब कि वह शिवपुराण के लेखानुसार दैवी सम्पत्ति हैं। इसके उपरान्त **विष्णुपुराण** अंश ६ अध्याय ३ में देवता लोग जब व्यास जी के समीप गये तो व्यास जी ने स्त्रियों को साधु कहा, इस पर उन्होंने पूछा—यह साधु क्योंकर हैं? तब व्यास ने उत्तर दिया कि स्त्रियाँ मनसा, वाचा, कर्मणा पति की सेवा करने से पतिलोक को चली जाती हैं। देखिए—पण्डित जी पतिसेवा में बहुधा कार्य सम्मिलित हैं जिनका उपदेश **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ७ अध्याय ११ में नारद मुनि ने किया है। उसमें लिखा है स्त्रियों का पति देवता है, उनकी सेवा करे, अनुकूल रहे, देवर जेठ की भी सेवा कर आज्ञा का पालन करती रहे, घर के सब पदार्थों को और आप भी सब प्रकार से शुद्ध रहे। साध्वी स्त्री गृह के छोटे-बड़े सब कार्यों को करे, इन्द्रियों को जीते, प्रिय-सत्य वाक्यों से पति की सेवा करे, जो लाभ हो उसमें सन्तोष कर भोगों में लोलुप न हो, आलस्य न करे, धर्म को जानती रहे, प्रिय-सत्य बोले, मदान्ध न हो, पवित्र होकर अयोग्य पति की भी सेवा करे—

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्॥ २५॥
सम्मार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः॥

स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा॥ २६॥
कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम्॥ २७॥
सन्तुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतित्वं पतितं भजेत्॥ १८॥
या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥ २९॥

कहिए पण्डित जी, क्या इस समय नारदमुनि के उपदेश के अनुकूल स्त्रियां उपर्युक्त धर्म का पालन कर रही हैं? कदापि नहीं, क्योंकि इन्द्रियों का निग्रह करना और विषयों का मिथ्या आनन्द विषवत् त्यागना बिना पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्णविद्या और ज्ञान के नहीं हो सकता और सन्तोषरूपी महान् सुख जितेन्द्रियों को ही मिलता है, अन्यथा अजितेन्द्रियों को नहीं। पदार्थों का संग्रह कर यथावत् रखना और उपयोग में लाना, भोजन बनाना बिना पदार्थ और वैद्यकविद्या के नहीं हो सकता और बिना इसके आरोग्यता नहीं मिलती जो सब आनन्दों की जड़ है। इसलिए नियमानुकूल चलना अभीष्ट है जो बिना ब्रह्मचर्य आश्रम पालन किये दुस्तर है इसके उपरान्त पति आदि से सत्य-प्रिय और यथावत् बोलना क्या बिना विद्या और उत्तम शिक्षा के हो सकता है? कदापि नहीं, स्वच्छता का आनन्द भी उन्हीं स्त्रियों को मिलता है जो विदुषी होती हैं। इन सब बातों के उपरान्त मदान्ध न होना और अयोग्य पति की भी सेवा करना, क्या अनपढ़ स्त्रियाँ कर सकती हैं? कदापि नहीं कर सकतीं। इसलिए नारदमुनि का उपदेश अर्थात् स्त्रीधर्म से प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है कि विद्यावती स्त्रियाँ ही उपर्युक्त धर्म का पालन कर सकती हैं इस हेतु स्त्रियों की यथावत् शिक्षा करनी चाहिए और प्रथम ऐसा ही होता था। इसके उपरान्त सम्पूर्ण पुराण स्त्रियों के लिए नाना व्रतों के रखने का उपदेश कर रहे हैं जिनमें अनेकानेक मन्त्र बोलने और जप करने की आज्ञा है। देखिए, **शिव पुराण** धर्म संहिता अध्याय ३७ में लिखा है—

(अघोरे शीं हीं हुं फट्) मन्त्र १७।

इस मन्त्र का भक्ति से जप करने से सम्पूर्ण वर्ण, आश्रम, बाल, वृद्ध,

स्त्रियाँ कोई हो आस्तिक श्रद्धावाला प्रतिदिन भक्ति करने से शिव के प्रसाद से सिद्ध हो जाते हैं—

सर्वाश्रमाणां वर्णानां बालवृद्धस्त्रियामपि।

आस्तिकः श्रद्दधानश्च अहन्यहनि भावतः॥ ५९॥

सिद्ध्यते हि किमाश्चर्यं प्रसादाच्छङ्करस्य वै॥ ६०॥

शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय १७ में लिखा है कि (नमः शिवाय) स्त्रियाँ इस मन्त्र को पाँच लाख जप कर पुरुष रूप को प्राप्त हो क्रम से मुक्ति को पाती हैं—

स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पञ्चलक्षं जपेत्पुनः।

मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान्मुक्तो भवेद् बुधः॥

इसके उपरान्त विवाह में प्रतिज्ञायें करनी पड़ती हैं—

ओम् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि....

जिस प्रकार अन्न के साथ प्राण और प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है, उसी भांति सत्यता की गांठ से तुमको बांधती हूँ वा बांधता हूँ।

ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।

यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव॥

हे वर! हे स्वामिन्! वा हे पत्नी (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मान्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा, प्राण और मन है (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्माादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे।

इसी भांति और भी प्रतिज्ञाएँ करते हैं। इसके अतिरिक्त परमेश्वर आज्ञा देते हैं।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ अथर्व० ३.३०.३॥

हे गृहस्थो! तुम्हारा पुत्र माता के साथ प्रीतियुक्त मन वाला अनुकूल आचरणयुक्त और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला होवे

जैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्ता करो जैसे स्त्री पति की प्रसन्नता के लिए माधुर्यगुणयुक्त वाणी को कहे वैसे पति भी शान्त होकर अपनी पत्नी से सदा मधुरभाषण किया करे।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ अथर्व० ३.३०.६॥

इसी प्रकार अनेक प्रतिज्ञायें करने की आज्ञा है।

लीजिए पण्डित जी अब तो मन्त्र जपने की आज्ञा पुराण दे रहे हैं, फिर आप ही बतलाइए मन्त्र का शुद्ध-शुद्ध आचरण बिना व्याकरण पढ़े कभी हो सकता है? कदापि नहीं। इससे जान पड़ता है कि स्त्रियाँ प्राचीन काल में व्याकरण पढ़ती थीं। इसके उपरान्त पारमार्थिक कामों को स्त्री, पुरुष मिल कर किया करते थे। देखिए, **पद्मपुराण** सृष्टिखण्ड अध्याय १६ में लिखा है—

ब्रह्मा जी ने पुष्कर क्षेत्र में यज्ञ किया और उनकी पत्नी के आने में देर हुई तब ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा कि हमारे लिए कोई स्त्री लाओ जिससे यज्ञ हो जावे। तब एक अहीर की पुत्री जिसकी शोभा सब स्त्रियों से उत्तम थी, जिसके रूप आदि का वर्णन वहाँ विस्तावर्पूक लिखा है, इन्द्र पकड़ कर ले चले, तब वह रो-रो कर कहती थी कि यदि मुझसे आपका कार्य चले तो आप मेरे माता-पिता से मांगिये। इन्द्र ने ले जाकर ब्रह्मा जी के समीप खड़ा कर दिया, जिसको ब्रह्मा जी ने दूसरी लक्ष्मी समझ उससे कहा कि तुमको सब अपना प्रभुत्व देंगे, यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक हमारे साथ रहना पसन्द करो। इतने में अग्नि प्रज्वलित होने का समय हो गया। तब महाराज से कहा कि इस देवी का नाम जो अभी आई है गायत्री है, इतना कह तुरन्त गान्धर्व विवाह कर लिया, फिर अध्वर्यु ने उत्तम वस्त्र पहनाकर, यज्ञशाला में बिठलाकर, देवताओं के साथ सहस्र वर्ष तक यज्ञ किया—

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा किञ्चित्कोपसमन्वितः।
पत्नीं चान्यां मदर्थे वै शीघ्रं शक्र इहानय॥ १२८॥
यथा प्रवर्तते यज्ञः कालहीनो न जायते।
तथा शीघ्रं विधत्स्व त्वं नारीं काञ्चिदुपानय॥ १२९॥

एवमुक्तस्तदा शक्रो गत्वा सर्वं धरातलम्।
स्त्रियो दृष्टाश्च यास्तेन सर्वाः परपरिग्रहाः॥ १३१॥
आभीरकन्या रूपाढ्या सुनासा चारुलोचना।
न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगी॥ १३२॥
तत्तच्छरीरसंलग्नं तन्वङ्ग्या ददृशे वरम्।
तां दृष्ट्वा चिन्तयामास यद्येषा कन्यका भवेत्॥ १३५॥
इत्थमाभाष्यमाणस्तु तदा शक्रोऽनयच्च ताम्।
ब्रह्मणः पुरतः स्थाप्य प्राहास्यार्थे मयाबले॥ १६४॥
एवं चिन्तापराधीना यावत्सा गोपकन्यका।
तावद् ब्रह्मा हरिं प्राह यज्ञार्थं सत्वरं वचः॥ १८४॥
देवी चैषा महाभागा गायत्री नामतः प्रभो।
एवमुक्ते तदा विष्णुर्ब्रह्माणं प्रोक्तवानिदम्॥ १८५॥
तदेनामुद्वहस्वाद्य मया दत्तां जगत्प्रभो।
गान्धर्वेण विवाहेन विकल्पं मा कृथाश्चिरम्॥ १८६॥
तामवाप्य तदा ब्रह्मा जगादाद्ध्वर्युसत्तमम्।
कृता पत्नी मया ह्येषा सदने मे निवेशय॥ १८८॥
मृगशृङ्गधरा बाला क्षौमवस्त्रावगुण्ठिता।
पत्नीशालां तदानीता ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः॥ १८९॥
तथा युगसहस्रं तु स यज्ञः पुष्करेऽभवत्॥ १९१॥

और **पद्मपुराण** पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ६७ में लिखा है कि रामचन्द्र जी ने राजसूय यज्ञ किया और सीता के न होने पर सुवर्ण की स्त्री बना ग्रन्थीबन्धन किया और जब लक्ष्मण जी के जाने पर सीता स्वयं आ गई तो राम का उनके साथ ग्रन्थीबन्धन कराया गया—

समागतां वीक्ष्य पत्नीं रामचन्द्रस्य कुम्भजः।
सुवर्णपत्नीं धिक्कृत्य तामधाद्धर्मचारिणीम्॥ १६॥

उन सीता के साथ श्रीरामचन्द्र जी यज्ञ के बीच में तारा के साथ जिस

प्रकार शरद् ऋतु में चन्द्रमा शोभित होता है उसी भांति शोभायमान हुए—

रामस्तदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतया सह।

तारयानुगतो यद्वच्छशीव शरदुत्प्रभः ॥ १७॥

और फिर समय आने पर धर्मचारिणी सीता जी के साथ सब पाप दूर करने वाले यज्ञ का आरम्भ करने लगे—

प्रयोगमकरोत्तत्र काले प्राप्ते मनोरमे।

वैदेह्या धर्मचारिण्या सर्वपापापनोदनम्॥ १८॥

यथार्थ में धर्म, अर्थ, काम के साधन का प्रबल कारण स्त्री है जो कोई उसको त्याग देता है उसका विशेष धर्म छूट जाता है जैसा कि **मार्कण्डेयपुराण** अध्याय ६८ में कहा है—

पत्नी धर्म्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम्।

विशेषतश्च धर्मस्य स त्यक्तस्त्यजता हि ताम्॥ ९॥

हे राजन्! विना स्त्री के ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र अपने कर्म के योग्य नहीं रहता। इसलिए जो कोई स्त्री को त्याग कर कार्य करता है उसका विशेष धर्म छूट जाता है और अपने कर्म के योग्य नहीं रहता—

अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्मणाम्।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृप॥ १०॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय १९ में, मन्दालसा की सखी ने शत्रुजित के पुत्र ऋतुध्वज से विवाह होने पर कहा कि स्त्री अर्थ, धर्म और काम में अपने स्वामी की सहायक है। इसलिये स्वामी को चाहिये कि स्त्री की रक्षा और पालन सदा किया करे—

भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्य्या हि पतिना सदा॥ ६९॥

धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्य्या भर्त्तुः सहायिनी।

जो स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर एक-दूसरे के वश में हों तो धर्म, अर्थ, काम तीनों उसको प्राप्त होते हैं—

या भार्य्या च भर्त्ता च परस्परं वशानुगौ॥ ७०॥

तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गतम्।

हे प्रभो! स्त्री को छोड़ पुरुष किसी प्रकार धर्म, अर्थ वा काम को

प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि ये तीनों स्त्री और पुरुषों के सम्बन्ध से होते हैं—

कथं भार्य्यामृतेधर्म्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो॥ ७१ ॥

प्राप्नोति काममर्थं वा तस्यां त्रितयमाहितम्।

इसी प्रकार पुरुष को छोड़ कर स्त्री भी समर्थ नहीं है कि धर्मादिक को साध सके इसलिए ये तीनों दाम्पत्य ही में रहते हैं—

तथैव भर्त्तारमृते भार्य्या धर्म्मादिसाधने॥ ७२ ॥

न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रितः।

हे राजपुत्र! देवता, पितर, भाई, बन्धु और अभ्यागत इत्यादि का पूजन विना स्त्री के नहीं हो सकता—

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम्॥ ७३ ॥

न पुम्भिः शक्यते कर्त्तुमृते भार्य्यां नृपात्मज।

यदि पुरुष धन प्राप्त करके घर में लावे तो भी विना स्त्री के वह धन नष्ट हो जाता है इसी प्रकार कुभार्य्या के रहने पर भी नष्ट हो जाता है—

प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम्॥ ७४॥

क्षयमेति विना भार्य्यां कुभार्य्यासंश्रयेऽपि च।

पुत्र से पिता अन्नादि से अभ्यागत और पूजा से देवता लोग तृप्त रहते हैं इसी प्रकार अच्छी स्त्री से पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं—

पितॄन् पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि॥ ७६ ॥

पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीं भार्य्यां नरोऽवति।

स्त्रियां भी विना स्वामी के धर्म, अर्थ, काम और सन्तानों को नहीं प्राप्त कर सकतीं, इसी प्रकार यह तीनों वर्ग परस्पर की प्रीति में रहते हैं—

स्त्रियाश्चापि विना भर्त्ता धर्मकामार्थसन्ततिः॥ ७७॥

नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६० में लिखा है—

यज्ञाः सिद्धिं तदा यान्ति यदा स्याद् गृहिणी गृहे।

एकाकी स समर्थो न धर्मार्थसाधनाय च॥ ६ ॥

जब गृहस्थ अपनी गृहिणी के सङ्ग यज्ञ करता है तो उसके सब यज्ञ सिद्ध होते हैं, अकेले करने से नहीं होते।

पद्मपुराण प्रथम सृष्टि खण्ड अध्याय १९ में लिखा है कि जो गृहस्थ अकेला पुष्कर स्नान को जावे तो उसको चाहिये कि कमल के पत्ते की स्त्री बनाकर उसके सङ्ग ग्रन्थिबन्धन करके स्नानादि करे—

एकाकिना गतेनापि सन्ध्या वन्द्या यथाक्रमम्।
पौष्करेणाथ तोयेन भृङ्गारे निहितेन तु॥ ५१॥

इन्हीं लेखों के कारण वर्त्तमान समय में पण्डितगण जिस पुरुष की स्त्री नहीं होती उसके समीप कुशकी स्त्री बना कर रख यज्ञादि क्रिया कराते हैं। हमारी समझ में सुवर्ण-कमल और कुशकी स्त्री बना कर रखने से कुछ लाभ नहीं। हाँ, वेदानुकूल जहाँ तक हो सके स्त्री और पुरुष एक साथ रह कर परस्पर प्रीति से सांसारिक और पारलौकिक कार्यों को करें। न कि पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और स्त्री, शूद्र इनका जोड़ा गृहस्थाश्रम में बना जीवन की गाड़ी को खिंचा कर सुख की आशा करना अत्यन्त ही भूल की बात है। पण्डित जी! विद्वान् का विद्वान् और मूर्ख से मूर्ख का मेल होता है न कि इस प्रकार का जैसा कि पौराणिक जन बताते हैं अर्थात् पुरुष को वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार, स्त्री को पढ़ने और सुनने का स्वत्व नहीं। फिर भला आनन्द कैसा? इसके उपरान्त तुर्रा यह है कि व्यास जी महाराज ने यह सब पुराण वेदों के अर्थ लेकर अर्थात् वेदानुकूल बनाये जिनके सुनने आदि का अधिकार स्त्री इत्यादि को है, परन्तु वेदों के पढ़ने का नहीं। इसके अतिरिक्त पुराणों में यह भी लिखा है कि जब ब्रह्मचारी गुरुकुल से आवे तब अपने समान तुल्य, गुण, कर्म, स्वभाववाली, सुलक्षणा युवती से विवाह करे। क्या बिना विद्या के सुलक्षणा हो सकती है? कदापि नहीं, इसीलिए तो वेदों में लिखा है कि कुमारी कन्यायें ब्रह्मचर्य धारण कर गृहस्थाश्रम तथा धर्म की शिक्षा को सीख श्रेष्ठ बनें। **यजुर्वेद** (३.५३) में कहा है—स्त्रियाँ पदार्थ विद्या पढ़ें और अध्याय २३ मन्त्र ४२ में आज्ञा है कि वैद्यकविद्या को पढ़ स्त्रियों की औषधी करें और अध्याय १९ मन्त्र १५ में व्याकरण पढ़ने की आज्ञा है इसी भांति युद्ध में जाने का भी उपदेश है अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं के सीखने की आज्ञा है इसी हेतु माता को परम गुरु कहा है क्योंकि जिसकी माता विद्या-निधि

होती है, वही सन्तान सुयोग्य हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसीलिए मातृमान् कह कर पितृमान् कहा है; प्राचीन कालमें पुरुषों के समान स्त्रियाँ अधिकार रखती थीं अर्थात् जिस प्रकार गुणों से पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते थे, उसी प्रकार विद्या आदि गुणों के कारण स्त्रियाँ भी ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा होती थीं, जब ही तो भारत स्वर्गधाम बना हुआ था। इतिहासों के देखने और पुराणों के पाठ करने से विदित होता है कि प्राचीन काल में अनेकानेक स्त्रियाँ विद्यावती हुईं, उनमें से कुछ के संकेतमात्र वृतान्त सुनाता हूँ। सुलभा ने राजा जनक को योग विद्या की अनेक सूक्ष्म बातें बतलाई थीं और अपने समान घर न मिलने के कारण ब्रह्मचर्य ही से संन्यास ग्रहण कर देश का उपकार दिया था। विद्योत्तमा ने अपने मूर्ख पति कालिदास को कविशिरोमणि बना दिया। वसुन्धरा ने अपने पति बुद्धदेव के संन्यास धारण करने पर स्वयं संन्यास लेकर जगत् का उपकार किया। इसी प्रकार अत्रि के साथ अनुसुइया, वसिष्ठ के साथ अरुन्धती और महर्षि पतञ्जलि के साथ उनकी स्त्री, इस भांति सैकड़ों स्त्रियां ऋषियों के साथ गई थीं।

इसके अतिरिक्त जब राजा लोग तीसरे आश्रम को जाते थे तब उनके साथ में बहुधा रानियां भी जाती थीं। देखो, **मार्कण्डेय पुराण** में लिखा है—

राजा करन्ध राज के साथ उनकी वीर रानी वानप्रस्थाश्रम में गई थी। कालान्तर में जब राजा परलोकवासी हो गया तो रानी भार्गव मुनि के स्थान पर जाकर उनकी सेवा में प्रवृत्त रहकर तपस्या में लगी रही। राजा ऋतुध्वज स्त्री सहित, राजा नरिष्यन्त के साथ इन्द्रसेना तथा राजा अलर्क के साथ मंदालसा तप करने गई थीं।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ में लिखा है कि राजा नाभि अपनी स्त्री मरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम पर तप करने को गये थे। महारानी द्रौपदी ने सत्यभामा को पतिव्रतधर्म का उपदेश किया था और अश्वत्थामा ने जब इनके पुत्रों को मार डाला और अर्जुन उनको पकड़ द्रोपदी के सम्मुख लाये, उस समय धैर्य को धारण कर अश्वत्थामा को नहीं मारने दिया और कहा कि जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों के मारे जाने से व्याकुल हो रही हूँ उसी भांति इसके मारे जाने पर इसकी माता कृपी दुःखी होगी।

कहिए पण्डित जी! इतना धैर्य और आत्मप्रिय बिना विद्या और ज्ञान के कभी हो सकता है? महारानी कुन्ती ने वीर रस से भरा हुआ पत्र अर्जुन को लिखा था? गान्धारी ने राजसभा में दुर्योधन को पाण्डवों से न लड़ने के लिए कैसा उपदेश दिया था। शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त के त्यागने पर कैसा धीरज धारण किया था। इसी प्रकार महारानी दमयन्ती ने अपने पति के वियोग में कैसे-कैसे कष्ट सहन किये? श्रीमान्! प्राचीन भारत और वर्त्तमान समय की स्त्रियों की योग्यता का वृत्तान्त जानना हो तो आप मेरी बनाई **नारायणी शिक्षा** अर्थात् गृहस्थाश्रम को देख लीजिए जिसमें गृहस्थ सम्बन्धी सब ही विषयों पर आन्दोलन किया गया है। आम पब्लिक ने उसको इतना पसन्द किया है जो अब पन्द्रहवीं वार छपकर आई है जिसमें बड़े साइज के ६०० सफे पर भी मूल्य १ ॥) मात्र है आशा है कि भारतवर्ष में इसके सिवाय इतनी सस्ती और ऐसी उपयोगी पुस्तक आपको दूसरी न मिलेगी।

इसी भांति जब राजा हरिश्चन्द्र पर सत्य के पालन करने से विपत्ति पड़ी तो उसकी रानी ने प्रत्येक रीति से उसका साथ दिया, यहां तक कि उसका छोटा बच्चा रोता था, राजा बाजार में बिक रहे थे, रानी कहती थी कि मुझको भी बेच दीजिए, अन्त को पुत्रशोक भी सहा। क्या यह अपार दुःख विना विद्या के कोई सहन कर सकता है? कदापि नहीं। पण्डित जी! वाल्मीकि रामायण का आपने अनेक वार पाठ किया होगा। देखिए, जब रामचन्द्र जी वन चलने को तैयार हुए उस समय सीता जी से कहा कि मैं वन को जाता हूं, तुम मेरे पीछे मेरे पिता की अच्छे प्रकार सेवा कर मेरे दुःख से दुःखी माता-पिता को प्रसन्न करना। सीता जी ने वन में साथ चलने के लिए प्रार्थना की। उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि वन में सिंह आदि घातक जन्तु रहते हैं, पृथिवी पर सोना होता है, भोजन वनफल मिलते हैं, मार्ग बड़ा ही दुस्तर है जिसमें मायाधारी राक्षस रहते हैं, तुम कोमल स्वभाव हो, तुम्हारा रहना यहां ही भला है। इसके उत्तर में सीता जी ने नम्रतापूर्वक कहा कि आपने जो शिक्षा दी है, मेरे हित की है।

परन्तु माता, पिता, भगिनी, भाई और अन्य परिवार विना पति के स्त्री को कोई नहीं तार सकता।

तन, धन, धाम धरणि पुर राजू। पतिविहीन सब शोकसमाजू॥

भोग रोग सम भूषण भारू। यमयातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ तुम विन जग माहीं।
मो कहँ सुखद कतहुं कछु नाहीं॥

जिसको सुन रामजी का मन पिघल गया और उनको साथ ले गये। वन में रावण संन्यासी का रूप धर उनके पास गया, फिर भिक्षा मांगकर निवेदन किया—तुम मेरे साथ चलो, भवनों में रहो, सुख भोगो, कहां तपस्वी के साथ फिरती हो? मैं तीनों लोकों में प्रसिद्ध हूं। तब उस पतिव्रता ने कहा कि मैं सुमेरु पर्वत के समान, जितेन्द्रिय रामकी पत्नी हूं। क्या तुम सूर्य्य-चन्द्र को हाथ से पकड़ उठाना चाहते हो? तिस पर भी जब वह लंका को ले गया और वहां अशोक वाटिका में नाना भांति के लालच दिखलाकर अनेक प्रकार के भय दिये, परन्तु उस सती ने अपने सत्य कर्त्तव्य का त्याग नहीं किया। इसके पश्चात् जब अयोध्या में आई तब सासुओं की सेवा करना अपना परमधर्म जाना और गर्भावस्था के समय श्रीराम ने उनको त्याग दिया। उस समय भी उन्होंने परम धीरज को धारण कर कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया जो विना विद्यावती के अत्यन्त कठिन है।

सुमित्रा देवी ने अपने धर्मात्मा पुत्र लक्ष्मणजी को श्रीरामचन्द्र जी के साथ जाने के लिए कैसा सारगर्भित उपदेश दिया था कि हे तात! तुम रामचन्द्रजी को दशरथ और सीता जी को मेरे समान वन को सरिस अयोध्या जानते हुए सुखपूर्वक जाओ और उनकी यथार्थ सेवा कर धर्म का पालन करो जो तुम्हारा कर्त्तव्य है। वन में अत्रि मुनि की धर्मपत्नी अनुसूया जी ने जो सीता को शिक्षा की थी उसका सारांश यही था कि स्त्री का देवता पति ही है। वही तीर्थ और पार लगाने वाला सच्चा मल्लाह है।

देखिए, बाली के मारे जाने पर तारा ने कैसा विलाप किया था जिसके पढ़ने से हृदय कम्पायमान होता है।

फ़िर भी रामचन्द्रजी के उपदेश करने पर जब कुछ शान्ति हुई तब कहा कि उस बाली की क्रिया करो, फिर अङ्गद का राज्य देख आनन्द भोगो। उस समय तारा ने हनुमान् जी से कहा कि एक ओर अङ्गद के समान सौ पुत्र हों और एक ओर मरे हुए वीर बाली के अङ्गों से लिपटना

हो तो भी पुत्रों के सुख से मृतक पति के अङ्गों का लिपटना श्रेष्ठ है।

मन्दोदरी ने अपने पति रावण को कैसा सारगर्भित उपदेश किया था कि हे पति! आप सीता की ओर कुदृष्टि न करें क्योंकि शास्त्र में परस्त्री दर्शन बड़ा पाप बतलाया है। आप सीता को देकर रामचन्द्र जी से सम्मति कर लीजिये, इसी में तुम्हारा कल्याण है॥

स्त्री-अध्ययन प्रकरण

इसके उपरान्त स्त्रियां सन्ध्या और हवन भी किया करती थीं। देखो, जब हुनमान् जी सीता को ढूंढने के लिए गये और अशोकवाटिका में उनके दर्शन न हुए तब वह नदी के तट पर जा यह विचार करने लगे अब सायंकाल हो गया। सीता अवश्यमेव यहां सन्ध्यार्थ आएगी। जैसा **सुन्दरकाण्ड** सर्ग १४ श्लोक ४९ में लिखा है—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥

और अध्याय १५ से प्रकट है कि सीता उस नदी के तट पर सायंकाल को आई और हनुमान् ने उनको देखा।

अयोध्याकाण्ड सर्ग २० श्लोक १४ से विदित होता है कि श्रीरामचन्द्र जी महाराज जब वन जाने के लिए तय्यार हुए तब माताजी से विदा होने के लिए उनके महलों में गये तो उस समय कौशल्यादेवी वस्त्र धारण किये प्रसन्नचित्त नित्य व्रत में लगी हुई मन्त्र पढ़-पढ़ कर अग्नि में आहुति दे रही थी—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला॥

मार्कण्डेयपुराण के अध्याय २५, २६, २७ से अच्छे प्रकार प्रकट होता है कि मन्दालसा ने अपने पुत्र विक्रान्त को बाल अवस्था से ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया जिससे तरुणावस्था तक माता से ज्ञान प्राप्त कर गृहस्थाश्रम से न्यारा हो गया—

इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभति बोधितः।
चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्ममः॥ २३.२३॥

इसी भांति जब दूसरा पुत्र सुबाहु हुआ तब उसने उपदेश देने का प्रारम्भ किया। वह भी बड़ा होने पर गृहस्थाश्रम से विरक्त हो गया। फिर तीसरे पुत्र अरिमर्दन भी चले गये जब चौथे पुत्र अलर्क का जन्म हुआ तब वह उसको भी आत्मज्ञान का उपदेश करने लगी। तब उसके पुत्र ने कहा कि हे मेरी प्यारी स्त्री! तूने तीन पुत्रों को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा कर विरक्त बना दिया और वह घर से निकल-निकल सब चले गये, इसको भी तू ऐसा ही करना चाहती है फिर भला विना गृहस्थी के देवता, पितरों और भूतों की तृप्ति क्योंकर होगी? इस कारण इस पुत्र को कर्ममार्ग सिखला। यह सुन मन्दालसा ने कहा कि हे पुत्र! तू आनन्दयुक्त बढ़ और कर्म करके मेरे स्वामी का चित्त सन्तुष्ट और मित्रों का उपकार, दुष्टों का नाश कर—

पुत्र वर्द्धस्व मद्भर्त्तुर्मनो नन्दय कर्म्मभिः।
मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च॥ २३.५५॥

हे पुत्र! तू धन्य है, शत्रुरहित होकर एकक्षत्र पृथिवी पालन कर सुखी हो और धर्म से तू देवपदवी को प्राप्त हो—

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो धर्म्मात्फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम्॥ ५६॥

यज्ञों में ब्राह्मणों को भोजन और दान दे, भाई-बन्धु की इच्छा पूरी किया कर और दूसरे की भलाई का सदा मन में ध्यान रख और परस्त्री-गमन से सदा बच—

धरामरान् पर्व्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः॥ ५७॥

यज्ञादिक से देवतों को और धन से ब्राह्मणों को, कामना से स्त्री को सन्तुष्ट रख और दुष्टों का युद्ध से तोष रखना—

यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर॥ ६०॥

बाल्यावस्था में मित्र, भाई, बन्धुओं का मन प्रसन्न कर चित्त को प्रसन्न करना और युवावस्था में अपनी स्त्री को, और बुढ़ापे में वनवासी होना—

बालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमार।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम्॥ ६१ ॥

राज्य करते समय मित्रों को प्रसन्न करना, साधु सेवा के साथ यज्ञ करना, दुष्टों का नाश करके अश्वमेध यज्ञ करना, गुरु-ब्राह्मण की भलाई के लिए प्राण भी जाएं तो चिन्ता न करना—

राज्यं कुर्व्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः।
दुष्टान्निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः॥ ६२ ॥

इस प्रकार मन्दालसा उसको शिक्षा करती रही। जब वह कौमार अवस्था को पहुंचा तब राजा ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया। फिर अलर्क ने अपनी माता को प्रणाम कर कहा कि हे माता! यहां परलोक के सुख देने वाला जो कर्म हो उसका उपदेश मुझको दे। मैं वैसा ही करूंगा—

मया यदम्ब कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै।
सुखाय वद तत्सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे॥ २८.३ ॥

यह सुन मन्दालसा ने जिस उत्तमता से राज्य धर्म, वर्णाश्रम, गृहस्थाश्रम इत्यादि का उपदेश किया है उसके पाठ करने से उसकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। जब अलर्क युवा हो गये और विवाह भी हो गया उसके पीछे अलर्क के पिता वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तब पुत्र को गद्दी दे। मन्दालसा सहित तप करने के लिए वन को चलने की इच्छा की। उस समय मन्दालसा ने फिर अपने पुत्र से कहा कि जब तुमको भाई बन्धु, शत्रु अथवा धन के नाश हो जाने पर दुःख पड़े और वह दुःख सहा न जाय तब तुम इस अंगूठी को जो मैं तुम्हें देती हूँ जिसमें श्लोक तुम्हारे धैर्य होने के वास्ते थोड़े अक्षरों में लिखा है, पढ़कर इस घर को छोड़ देना—

मन्दालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः।
कामोपभोगसंसर्गप्रहाणाय सुतस्य वै॥ ३३.५ ॥
यदा दुःखमसह्यन्ते प्रियबन्धुवियोगजम्।
शत्रुबान्धोद्भवं वापि वित्तनाशात्मसम्भवः॥ ६ ॥
भवेत्तत्कुर्व्वतो राज्यं गृहधर्म्मावलम्बिनः।
दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही॥ ७ ॥

यह कह वह सोने की अंगूठी अलर्क को देकर गृहस्थ के योग्य आशीर्वाद दे दोनों जंगल में तपस्या करने के लिए चले गये।

कहिये पण्डित जी! जब स्त्रियों को पुराण पढ़ने की आज्ञा नहीं बतलाते तो फिर पुराणों में मन्दालसा की विद्या और ज्ञान और शिक्षा का यह प्रभाव क्यों दर्शाया है? अब बताइए कि कौन सी आज्ञा ठीक है?

अब अंगूठी पर लिखे श्लोकों को सुनिए—

सङ्गः सर्व्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
सद्भिः सह स कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥ ३४.२३॥

संसारी पुरुषों की सङ्गति छोड़ देनी चाहिये और जो न छूट सके तो साधु लोगों की सङ्गति करे क्योंकि साधुओं की सङ्गति ही संसार की औषधि है।

कामः सर्व्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्य्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥ २४॥

सब प्रकार के काम को छोड़ देना चाहिये यदि न छूटे तो मुक्ति की इच्छा से उसका यत्न करे, यह यत्न काम की ओषधि है।

इसी पुराण के अध्याय २० में लिखा है कि जब राजा कुवलयाश्व मारा गया और मन्दालसा ने उसके मरण की खबर पा अपने प्राणों को त्याग दिया और राजा शत्रुजित ने सभा में उस समय के योग्य उपदेश को दिया तब कुवलयाश्व की माता ने अपने स्वामी के मुंह से बेटे के मारे जाने के समाचार सुन राजा से कहा कि हे राजन्! पुत्र पाकर इस प्रकार की बड़ाई न तो मेरी माता ने और न सास ने पाई जिस प्रकार मुनि की रक्षा के लिए मैंने पुत्र का समर में मर जाना सुना—

न मे मात्रा न मे स्वस्त्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी।
श्रुत्वा मुनिपरित्राहे हतं पुत्रं यथा मया॥ २०.४२॥

सोच तो उन लोगों के लिए है जो क्रूर, दरिद्री या रोग से दुःखी होकर मरते हैं बल्कि माता को ऐसे पुत्र का जनना व्यर्थ है—

शोचतां बान्धवानां ये निःश्वसनेनातिदुःखिताः।
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा॥ ४३॥

जो लड़का समर में ब्राह्मण, गौकी रक्षा के लिए निडर होकर तीक्ष्ण हथियार से मारा जाय। वह मनुष्य जो चाहना करने वाले दोस्तों और शत्रुओं को भी पीठ नहीं दिखाता, उसकी माता को पुत्रवती कहना चाहिये और उसी के पिता को पुत्रवान्—

सङ्ग्रामे युद्ध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे।
क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः॥ ४४॥

स्त्रियां जो गर्भ की पीड़ा को उठाती हैं, वह दुःख उनको तभी सफल होता है जब उनके पुत्र लड़ाई में विजय पाते हैं या उसी में अपने प्राण दे देते हैं—

गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा।
यदारिविजयी वा स्यात् सङ्ग्रामे वा हतः सुतः॥ ४६॥

गुरु गोविन्दसिंह जी की स्त्री ने अपनी सन्तानों को जितेन्द्रिय बना कैसे-कैसे उच्चभाव प्रवेश किये, जिसके कारण उन्होंने धर्म के अर्थ अपने सर्वस्व को बलिदान कर संसार की काया पलटने के लिये बिजुली के समान काम किया।

इसके उपरान्त रूपवती मृगनयनी मीराबाई गानविद्या में पूरी योग्यता रखती थी। इनमें से मीराबाई के बनाये भजन वैराग्य उत्पन्न करनेवाले अब तक गाये जाते हैं। क्यों पण्डित जी! क्या गानविद्या का आनन्द विना विद्या के आ सकता था और क्या विना विद्या के उत्तम कविता कोई कर सकता है? कदापि नहीं। देखो, कलावती नाम की स्त्री पद्मिनी नाम की विद्या को अच्छे प्रकार से जानती थी, जिसने यह विद्या अपने पति को भी पढ़ाई थी।

लीलावती ने संस्कृत में लीलावती नामक पुस्तक का निर्माण किया। जिसके प्रश्न बड़े-बड़े गणितज्ञों के छक्के छुड़ा देते हैं। लक्ष्मी देवी ने मिताक्षरा टीका की थी जो वल्लभभट्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इसके उपरान्त कूर्मदेवी और दुर्गावती और अहल्याबाई और कासिमबाजार की महारानी स्वर्णमयी राजप्रबन्ध के कारण प्रसिद्ध हो रही हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य जी की मैत्रेयी और कात्यायनी ये दो स्त्रियां थीं। जब ऋषि ने वानप्रस्थ आश्रम में जाने का विचार किया, उस समय अपने

सम्पूर्ण धन को बांटना चाहा। तब मैत्रेयी जी ने कहा कि स्वामिन्! क्या संसारी पदार्थों से मैं अमर हो सकती हूँ? ऋषि ने कहा नहीं। तब मैत्रेयी ने कहा कि फिर मैं आपके इस धन को लेकर क्या करूं? इस पर पति-पत्नी में शास्त्रीय विचार प्रारम्भ हुआ जिसको सुन याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी की बड़ी प्रशंसा की थी।

मैत्रेयी के समय में वचक्नु ऋषि की गार्गी नामक एक पुत्री थी जिसने राजा जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य जी से शास्त्रार्थ किया था। महर्षि मनु की पुत्री देवहूती जी अति योग्य थी जिसने कर्दम ऋषि से विवाह कर वन में तपस्विनी बन ब्रह्मज्ञान में प्रवीणता प्राप्त की थी। जिनको सांख्यशास्त्र का रचनेवाला कपिल नामक पुत्र हुआ। यह सब माता की प्रवीणता का ही कारण था। कलावती काशीराज की पुत्री थी जिसने दुर्वासा ऋषि से विद्या पढ़ी थी। वेदवती राजा कुशध्वज की पुत्री थी जो योगविद्या में प्रवीण थी जिसने योगद्वारा प्राणों का त्याग किया था।

यक्षोवती जो दत्तात्रेय की शिष्या थी जिसने राजा एकाभ्र को कई एक वेदमन्त्रों की व्याख्या कर समझाया था।

योगवासिष्ठ के निर्वाण प्रकरण से ब्रह्मज्ञानी की विद्या का वृत्तान्त ज्ञात होता है कि जिसने राजा शिखध्वज को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था—भानुमती जो राजा भोज के समय हुई थी जिसने इन्द्रजाल अर्थात् हाथ के कर्त्तव्य की विद्या को निकाला। संयुक्ता जो राजा जयचन्द की पुत्री थी जिसने स्वयंवर में राजा के शत्रु पृथ्वीराज की मूर्त्ति के गले में जयमाला डाल दी थी जिससे राजा जयचन्द अप्रसन्न हो गया और संयुक्ता को बन्दी-घर में भेज दिया। पृथ्वीराज यह समाचार सुन सेना लेकर गया और जयचन्द को परास्तकर रानी को दिल्ली लाकर विवाह कर लिया। इसका जयचन्द को बड़ा ही क्लेश हो रहा था। इतने में मुहम्मदगौरी ने दिल्ली पर चढ़ाई की, संयुक्ता सिपाही भेष में जयचन्द के तम्बू में गई—कहा कि हे पिता! आप शत्रु से मिलकर क्यों हमारे देश और वंश का नाश करने के लिए तैयार हुए हो। मेरे अपराध को क्षमा कर आप मुसलमानों से मिलकर स्त्रियों के सतीत्व आदि का नाश न कराइये। जब राजा जयचन्द ने उसकी प्रार्थना स्वीकार न की, अन्त को पृथ्वीराज मारा गया। रानी दिल्ली में अग्नि में प्रवेश कर मर गई। फिर जयचन्द अपनी पुत्री की

अन्तिम शिक्षा को स्मरण करके पछताता रहा। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में स्त्रियां नाना प्रकार की विद्याओं में उत्तीर्ण होकर भारत के यश को प्रकाशित कर रही हैं।

श्रीमान् पण्डित जी! क्या आप कह सकते हैं कि रानी सुतारा जो हरिश्चन्द्र की रानी थी उसने अपने पति के साथ कैसा धर्म पर बलिदान किया था। महारानी सीता ने अपने पति के साथ किस प्रकार वनों के दु:खों को सहन कर फिर आकर किस प्रकार सासुओं आदि की सेवा की थी।

कहिये पण्डित जी! क्या यह कार्य बिना पढ़ी स्त्री कर सकती है? यदि कर सकती है तो आप ही बतलाइए कि किस मूर्खा स्त्री ने लीलावती के समान गणित में पुस्तक लिखी?

बतलाइए कि लक्ष्मीदेवी की भांति किसने मिताक्षरा की टीका की? सुनाइए, किसने उपर्युक्त मन्दोदरी, सीता, द्रौपदी, शकुन्तला, दमयन्ती, सुतारा आदि स्त्रियों की भांति उत्तम अनोखे कार्य किये? भला,

बतलाइए कि मन्दालसा की भांति किस अनपढ़ स्त्री ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञानी बनाया? सुमित्रा देवी की भांति किसने अपने पुत्र को बड़े भाई की सेवा के लिए वन में उनके वनवास होने पर भेजा? भला आज जबकि वैदिक धर्म की अवनति होती जाती है, काशीराज की छोटी कन्या के समान आज कौन पुकार मचाने वाली है?

विद्याधरी के समान मण्डन मिश्र और शङ्कर के शास्त्रार्थ की मध्यस्थिका इस समय कौन बनती है? इसके उपरान्त अपने पति के पराजय होने पर उसने जिस योग्यता से अपने पति की विजय कराई कौन ऐसी चतुर अनपढ़ स्त्री उपस्थित है?

इसके अतिरिक्त गार्गी ने याज्ञवल्क्य और सुलभा ने जनक से शास्त्रार्थ किया था क्या यह सब शूद्रा थीं? यदि यह शूद्रा थीं तो आपके पुराणों के कथनानुसार इनको क्यों शिक्षा दी? क्या उस समय आपके पुराण मौजूद न थे या कि इनकी आज्ञाओं का कोई पालन न करता था? फिर भला इनको आप क्यों परमेश्वरीय ज्ञान अर्थात् वेदश्रवण की अधिकारिणी नहीं बताते, जिनके लिए पुराण बनाने की आवश्यकता हुई? पण्डित जी! सन्तानसुधार की कल स्त्री है, गृहप्रबन्ध की जड़ स्त्री है, पति को आनन्द पहुंचाने

वाली स्त्री है, विपत्ति में पूर्ण साथ देने वाली स्त्री है। भला फिर आप ही बतलाइए कि वर्त्तमान सन्तानें क्यों नहीं प्राचीन काल की भांति माता, पिता, आचार्य की आज्ञा पालन करती हैं, वे धर्म पर बलिदान होने वाली सन्तानें कहाँ गईं ? पिता, माता आदि के सुख के लिए आज दुःख उठाने वाली सन्तानें कहाँ हैं ? कौन पति की आज्ञा से पुत्र को बेच धर्म का पालन करने को उपस्थित है ? वह शूरवीर कहाँ हैं जिन्होंने पिता के दुःख के लिए अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर पिता की मनोकामना पूर्ण की ? पण्डित जी ! मैं कहाँ तक आपको सुनाऊं, पौराणिक पण्डितों ने अपने प्रयोजन साधनार्थ सर्वोन्नति की जड़ स्त्रियों को शूद्रा कह कर उनको वेदादि विद्या से विमुख रख ब्रह्मचर्य को उठा **अष्टवर्षा भवेद् गौरी** सुना अल्पावस्था में विवाह कराकर बल, बुद्धि साहसहीन कर अपनी चेली बना तन, मन, धन स्वामी जी के अर्पण करने का आर्डर पास कर भारत को चौपट कर दिया। पण्डित जी ! प्रथम सबको वेदश्रवण का अधिकार था। हाँ, फिर जब अपने प्रयोजन सिद्ध करने के अर्थ शूद्र बनाया, तब ही पुराणों को व्यास जी के नाम से बनाना आरम्भ कर दिया।

पण्डित जी—सेठ जी ! आपका यह सब कथन मेरे पसन्द हैं क्योंकि स्त्री, पुरुष का जोड़ा है यदि पुरुष शिक्षा से योग्य बनता है तो स्त्रियाँ भी योग्य बनती हैं। यदि वेद का ज्ञान पुरुषों को शान्ति देने वाला है तो स्त्रियों को भी उसी भांति लाभदायक है। इसलिए पुत्रियों को अवश्य ही वेदादि पढ़ाना चाहिए। हमने यह आज ही सुना कि पुराण स्त्री, शूद्र और वर्णसङ्करों के लिए ही बनाये गये। अच्छा, अब समय हो गया, समाप्त कीजिए।

आर्य सेठ—बहुत अच्छा।

आर्य सेठ—श्री महाराज नमस्ते।

अन्य भद्रपुरुषों ने यथायोग्य की, सुयोग्य पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया और सब चल दिए।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद ॥

तृतीय परिच्छेद

गुण-कर्म से वर्णव्यवस्था

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख प्रेमपूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइए, पधारिये। इसके पश्चात् अन्य महाशयगणों ने यथायोग्य की।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह कर बैठ गये।

आर्य सेठ—श्रीमान् पुराणों का यह दावा है कि पुराण स्त्रियों और शूद्रों के लिए बनाये गये। स्त्रियों की शिक्षा आदि के विषय में तो मैं आपको सुना चुका। आज मैं यह निवेदन करूंगा कि शूद्र किसको कहते हैं और उनका कर्तव्य क्या है।

पण्डितजी—बहुत अच्छा, सनातनधर्मी तो वीर्य से अर्थात् जन्म से ही शूद्र मानते हैं और उनको वेद पढ़ाना पाप समझते हैं।

आर्य सेठ—संसार में सम्पूर्ण मनुष्य एक जाति के हैं जिनमें से गुण, कर्म और स्वभाव से वर्णव्यवस्था नियत होती है। देखो, **यजुर्वेद** में परमेश्वर आज्ञा देते हैं कि सृष्टि के बीच जो मुख के सदृश अर्थात् जो गुण, कर्म और स्वभाव में सबसे उत्तम हो वह **ब्राह्मण** और जिसमें बाहू के समान बल अधिक हो वह **क्षत्रिय** और जो ऊरू के बल से सब पदार्थों को देश-देशान्तरों में ले जावे वह **वैश्य** और जो पग अर्थात् नीचे के अङ्ग के समान विद्या आदि गुणों में न्यून हों वा मूर्खादि गुणों से युक्त हों उनको **शूद्र** कहते हैं। जैसा कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रोऽअजायत॥ यजुः० ३१.११॥

इस विषय में **महाभारत** वनपर्व अध्याय ३१३ देखिए, जिसमें यक्ष और युधिष्ठर का संवाद है और युधिष्ठिर ने स्पष्ट कह दिया है कि कुल और वेदपाठ से ब्राह्मण नहीं होता किन्तु आचरणों का नाम ब्राह्मण है॥ जैसा कि—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥ १०८॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥ १०९॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः॥ ११०॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ १११॥

इसी पर्व के अध्याय १८० में सर्प और युधिष्ठिर का संवाद है, उससे भी स्पष्ट प्रकट है कि जिसमें सत्य-दान-क्षमा-शील-लज्जा और घृणा हो उसको ही ब्राह्मण कहते हैं—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्य तपो घृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ २१॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अध्याय ५ में लिखा है कि ब्राह्मण वेद के पूर्ण ज्ञाता होने के पश्चात् उनमें सत्त्वगुण शम-दम-सत्य-अनुग्रह-तप सहनशीलता अनुभवजन्यज्ञान यह आठ लक्षण भी रहते हैं—

धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम्।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र॥ २४॥

शान्तिपर्व अध्याय ६३ में लिखा है कि ब्राह्मणों को उचित है कि राजा की सेवकाई, कृषि से प्राप्त धन, वाणिज्य से जीविका (निर्वाह), कुटिलता, व्यभिचार, ब्याज लेना इन सब कार्यों का परित्याग करे। अधम ब्राह्मण दुश्चरित्री; निज धर्म को त्यागने वाला, वृषलीपति, धूर्त्त, नाचने वाला, ग्रामप्रेष्य कुकर्मों में रत रहने वाला शूद्र के समान है—

राजप्रेष्यं कृषिधनं जीवनञ्च वणिक्पथा।
कौटिल्यं कौलटेयञ्च कुसीदञ्च विवर्जयेत्॥ ३॥

शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धुर्दुश्चारित्रो यश्च धर्मादपेतः।
वृषलीपतिः पिशुनो नर्त्तनश्च ग्रामप्रेष्यो यश्च भवेद् विकर्मा॥ ४॥

इसलिये जो धार्मिक, सुशील, दयालु, सहनशील, ममतारहित, सरल, कोमलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान् पुरुष यज्ञादिकों का अनुष्ठान करके सोमपान करते हैं वे ही ब्राह्मण हैं, इसके अतिरिक्त पाप कर्म करने वाले ब्राह्मण नहीं गिने जाते—

यः स्याद् दान्तः सोमपश्चार्यशीलः सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः।
ऋजुर्मृदुरनृशंसः क्षमावान् स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा ॥८॥

भविष्य पुराण ब्रह्मपर्व अध्याय २ में लिखा है कि जो ब्राह्मण यज्ञ करते हैं और उनमें अनसूया, दया, क्षान्ति, अनायास, मङ्गल, शौच और स्पृहा यह आठ गुण भी हैं और संस्कारों से युक्त हैं, वे ही ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक को जाते हैं—

अनसूया दया क्षान्तिरनायासञ्च मङ्गलम्।
अकापर्णण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह ॥ १५५ ॥
य एतेऽष्टगुणास्तात कीर्त्यन्तेवै मनीषिभिः।
एतेषां लक्षणं वीरश्रृणु सर्वमशेषतः ॥ १५६ ॥
वपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विज।
ब्रह्मत्वमिह सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ १६५ ॥

शिवपुराण—विद्येश्वरी संहिता अध्याय १३ में लिखा है कि सदाचार युक्त विद्वान् ब्राह्मण वेदाचार युक्त होने से आगे कहे हुए एक-एक गुणों से भी द्विज कहलाता है। अल्पाचार थोड़ा वेद पढ़ा हुआ राजसेवक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, ब्राह्मण है और कुछ आचार वाला, खेती, वाणिज्य करने वाला वैश्य ब्राह्मण कहाता है और स्वयं हल जोते वह शूद्र ब्राह्मण है, निन्दा करने वाला पराया द्रोह करने वाला चाण्डाल ब्राह्मण है—

अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः।
किञ्चिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा ॥ ३ ॥
शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः।
असूयालुः परद्रोही चण्डालद्विज उच्यते ॥ ४ ॥

शिवपुराण धर्म संहिता—अध्याय २ में सनत्कुमार ने व्यास जी के पूछने पर कहा है कि विद्या और जन्म से ही ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं होता किन्तु

सदाचार ब्राह्मण में रहता है इस कारण वह सबसे श्रेष्ठ है—

विद्यया जन्मना वापि न श्रेयान्ब्राह्मणो भवेत्।
आचारो ब्राह्मणस्येह तस्माच्छ्रेष्ठतरः सदा॥ १४॥

और अध्याय ४१ में व्यासजी ने पूछा कि ब्राह्मणत्व दुष्प्राय है वा स्वभाव से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य होते हैं?—

ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्रायं निसर्गाद् ब्राह्मणो भवेत्।
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा निसर्गादेव जायते॥

नीचे स्थान से उत्कृष्ट जाति किस प्रकार प्राप्त होती है सो आप कहिये। सनत्कुमार ने कहा है कि व्यासजी! मनुष्य अपने आपसे ही स्थानभ्रष्ट होता है—

किमुत्सृतिमधःस्थानादाप्नुवन्ति ह्यतो वद।
॥ सनत्कुमार उवाच॥
दुष्कृतेन तु कालेन स्थानाद् भ्रश्यन्ति मानवाः॥

इस कारण श्रेष्ठ स्थान में प्राप्त होकर उस स्थान से अपने को रक्षित करे जो ब्राह्मणत्व छोड़कर क्षत्रिययोनि में उत्पन्न करता है—

श्रेष्ठं स्थानं समासाद्य तस्माद्रक्षेत पण्डितः।
यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रियोन्यां प्रसूयते॥

वह मूढ़ अधर्म सेवन से उसी में वर्तमान हो जाता है। ब्रह्मत्व से भ्रष्ट होकर क्षत्रियत्व को प्राप्त होता है—

ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्टः क्षत्रियत्वं निषेवते।
अधर्मसेवनान्मूढस्तथैव परिवर्तते॥

फिर वह सहस्र जाति के अन्तर (बीच) में अन्धकार ही में प्रविष्ट होता है। इस कारण परमस्थान को प्राप्त होकर प्रमाद से उसे नष्ट न करे—

जात्यन्तरसहस्रेण तमसा विशते यतः।
तस्मात्प्राप्य परं स्थानं प्रमाद्यन्न तु नाशयेत्॥

सनत्कुमार संहिता अध्याय ५३ में लिखा है कि जो जाति से ब्राह्मण हो, सर्वशास्त्र का पण्डित हो और तप, शौच से युक्त हो, इन तीनों से युक्त

होने से ही यथार्थ ब्राह्मण है—

जात्या च यो भवेद् विप्रः सर्व्वांगमविशारदः।
तपःशौचसमायुक्तस्त्र्यवो नाम्नास उच्यते॥ १५॥

अग्निहोत्र, तप, योग, शौच, आर्जव, सत्य, वेदपाठ करना यह ब्राह्मण के कर्म हैं—

अग्निहोत्रं तपो योगः शौचमार्ज्जवमेव च।
सत्यं वेदप्रसङ्गश्च द्विजकर्म्म परं स्मृतम्॥ १९॥

ब्राह्मण झूठ नहीं बोलते, न हिंसा करते हैं और वह पापकारी भी नहीं होते—

नानृतं ब्राह्मणो ब्रूते न हन्ति प्राणिनं द्विजः।
न सेवां कुरुते विप्रो न द्विजः पापकृद् भवेत्॥ २०॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ३६ में राजा शतानीक ने सुमन्त मुनि से पूछा कि महाराज जाति उत्तम है या कर्म? तब मुनि ने कहा कि यही प्रश्न मुनियों ने ब्रह्मा जी से पूछा था तब उन्होंने कहा था कि यदि जीव ही ब्राह्मण है तो वह संसार में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, शूकर आदि योनियों में घूमता है फिर क्योंकर ब्राह्मण हो? जिस प्रकार गौओं में अश्व पृथक् जाना जाता है, इस भांति मनुष्यों में ब्राह्मण नहीं जाना जाता, जिस प्रकार नीलगाय का गला, कम्बल करके होता है ऐसा भी कोई चिह्न नहीं जो और मनुष्यों से ब्राह्मण को जान ले इसलिए जाति भी ब्राह्मण नहीं, गौ, बकरी, भेड़, ऊंट, गधे, खच्चर, घोड़े, हाथी आदि की नौकरी, बनिया, लुहार आदि कारीगर नट आदि का काम करें मांस, लहसुन, प्याज, आदि खाए, मद्य पीने, मांस, लवण आदि रस दूध बेचने आदि कारणों से वेद-वेदाङ्ग का पठन-पाठन भी करने हारा, उत्तम कुल में उत्पन्न ब्राह्मणत्व से हीन होते हैं। इसलिए ब्राह्मणत्व एक शरीर में स्थिर नहीं हो सकता। मनु जी ने भी यह कहा है कि मांस, लवण, लाक्षा, दूध आदि पदार्थ बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और गौ, खेती, नौकरी, नट, वैश्य आदि का कर्म करे वह ब्राह्मण शूद्र के तुल्य होता है। इस प्रकार ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण बन जाता है।

और अध्याय ३७ में लिखा है कि वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण नहीं होते क्योंकि रावण आदि राक्षसों ने भी तो वेद पढ़े थे और भी शूद्र, चाण्डाल, धीवर आदि कोई-कोई छल से वेद पढ़ लेते हैं परन्तु ब्राह्मण नहीं हो सकते, कई शूद्र दूसरे देश जाय, ब्राह्मण बन वेद पढ़ लेते हैं और उत्तम ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेते हैं अथवा बिना वेद पढ़े भी पञ्चगौड़ पञ्चद्राविड़ आदि में किसी प्रकार के ब्राह्मण बन सत्कुल में विवाह कर लेते हैं। इस कारण वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण की पहिचान नहीं हो सकती।

शास्त्रकार यह कहते हैं कि आचारहीन को वेद पवित्र नहीं कर सकते। सर्वाङ्गसहित भली भांति वेद क्यों न पढ़े हों, क्योंकि वेद पढ़ना तो ब्राह्मण का एक शिल्प है आचरण ही मुख्य है, कई शूद्र सन्ध्योपासनादि करते हैं, दण्ड, मृगचर्म, मेखला, यज्ञोपवीत आदि धारण कर लेते हैं, उनको कोई निषेध नहीं कर सकता। अभिचार आदि कर्म शूद्र भी कर सकते हैं, तप, सत्य आदि के प्रभाव से देवता का अनुग्रह और मन्त्रसिद्धि शूद्रों को भी होती है, श्राप, अनुग्रह का सामर्थ्य भी तप करने से शूद्रों में हो जाता है, यह सब बातें ब्राह्मण और शूद्रों में तुल्य हो सकती हैं। संस्कार भी तो ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं क्योंकि व्यासादिकों के गर्भाधान, सीमन्त आदि किसी ने नहीं किए। शरीर भी सब मनुष्यों के तुल्य ही हैं इसके उपरान्त म्लेच्छ आदि शरीर से पुष्ट और बलवान् होते हैं। देह, आत्मा, वचन, सुख, ऐश्वर्य, रोग, आज्ञा, वीर्य, आकृति, इन्द्रियां, व्यापार, आयु, दुर्बलता, पुष्टता, चञ्चलता, स्थिरता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, रूप, ओषधि, गर्भ, देह की मलिनता, उज्ज्वलता आदि अस्थि, रोम, मांस, त्वचा त्रिवर्ग में रुचि इत्यादि पदार्थ ब्राह्मण और शूद्र में तुल्य ही होते हैं। इन बातों से शूद्र और ब्राह्मण का भेद देवता भी नहीं कर सकते और ब्राह्मण चन्द्रकिरणों के समान श्वेतवर्ण नहीं है। क्षत्रिय टेसू वर्ण के समान रक्तवर्ण नहीं, वैश्य हरिताल से पीले नहीं और शूद्र कोयले से काले नहीं होते कि सबको पृथक्-पृथक् पहिचान लेते, चलना, फिरना, बैठना, उठना, सोना, सुख, दुःख सबको समान हैं फिर मनुष्य चार प्रकार के क्योंकर हुए, एक पिता के एक ही जाति के होते हैं। इसी प्रकार इस जगत् का पिता एक परमेश्वर है। फिर उसकी सन्तान में क्योंकर जाति भेद हो सकता है? जैसे एक वृक्ष के फल रूप, स्वादु आदि करके तुल्य होते हैं

इसी विधि परमेश्वर रूपी वृक्ष से उत्पन्न हुए मनुष्य रूपी फल सब समान हैं। कौशिक, काश्यप, गौतम, कौण्डिन्य, माण्डव्य, वसिष्ठ, आत्रेय, कौत्स अङ्गिरा, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, भार्गव, भारद्वाज आदि गोत्र भी ब्राह्मणत्व का हेतु नहीं क्योंकि यह गोत्र अन्य वर्णों में भी होते हैं। शरीर के अङ्गों को ब्राह्मण कहो तो अङ्ग कट जाने से ब्राह्मणत्व जाता रहेगा।

यदि सम्पूर्ण शरीर को ब्राह्मण कहो तो मरने के अनन्तर उस शरीर का जो दाह करेगा वह ब्रह्महत्या का भागी होगा, और जो कहो कि ब्राह्मण की कन्या के साथ जो विवाह करे वह ब्राह्मण होता है और वही ब्राह्मण जब क्षत्री की कन्या से विवाह करेगा तब क्षत्री हो जायगा क्योंकि ब्राह्मणों को चारों वर्णों की कन्या से विवाह करना लिखा है इसलिए जाति, देह, कर्म, वेदाध्ययन आदि कोई भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं हो सकते।

अध्याय ३८ में कहा है कि रूप, ऐश्वर्य विद्या और जाति का अभिमान वृथा है क्योंकि यह जीवन वनस्पति, शंख, चींटी, भ्रमर, हाथी आदि अनेक योनियों में जाय नट की भांति नाना प्रकार की देह धारता है फिर जाति का अभिमान कहाँ रहा? इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य कभी जाति का गर्व न करे क्योंकि जाति स्थिर नहीं रहती। जो कहे कि संस्कारों से ब्राह्मण होता है तो गर्भाधान आदि जिनके संस्कार होते हैं उनकी कुछ आयु नहीं बढ़ जाती और संस्कारहीन अल्पायु नहीं होते, सुख दुःख दोनों को होता है। इसके उपरान्त उत्तम संस्कार जिनके हुए हों वे दुराचरण करके पतित हो जाते हैं और नरक में पड़ते हैं। और संस्कारहीन उत्तम चाल-चलन से भले कहाते हैं और स्वर्ग पाते हैं। संस्कार युक्त पुरुष भी द्यूत, वेश्यासङ्ग आदि कुकर्मों में आसक्त हो जाते हैं और संस्कार हीन जप, तप, दान आदि सुकर्म करते हैं। ऋषि व्यासादि संस्कारहीन भी होकर उत्तम आचरण करने से सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ठहरे, इससे संस्कार भी ब्राह्मणत्व का निमित्त नहीं।

जो कहो कि जन्म से ब्राह्मण होते हैं तो देखो कि व्यास जी कैवर्ती से, पराशर चाण्डाली के गर्भ से उत्पन्न हुए। इसी प्रकार और भी—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत्॥ २२॥

भविष्य ब्रह्मपर्व अध्याय ४२॥

श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २७॥

इसी प्रकार हज़ारों अधम योनियों से जन्मे और उत्तम ब्राह्मण गिने गये। सब संस्कार हीन और जन्म भी उत्तम नहीं परन्तु प्रबल तप करके सब ब्राह्मण हुए। संस्कार भी होय और विद्या, तप आदि भी हों तो उत्तमोत्तम ब्राह्मण हो जाता है। सब संस्कारों से संस्कृत होकर भी महापातक करने से ब्राह्मणपना खो बैठता है इसलिए ब्राह्मणत्व नियत नहीं साङ्केतिक है अर्थात् ब्राह्मणत्व एक संकेत है।

लब्धसंस्कारदेहाश्च महापातकिनो नराः।
यस्मान्निवर्त्तते ब्रह्म तस्मात्साङ्केतिकं विदुः॥ ३२॥

इसके उपरान्त अध्याय ३९ में लिखिा है कि शुक्र व विष्टा से उत्पन्न हुई कीट के तुल्य यह देह अति मलिन क्योंकर शुद्ध होती है? मन में तो दुष्टता भरी रही है और बाहर से सब संस्कार होते हैं। कोई-कोई वैदिक संस्कारों से तो युक्त है परन्तु आचरणों में शूद्रों से भी अधिक मलिन हो जाते हैं क्रूर कर्म करने हारा, ब्रह्मघ्नी, गुरुदारागामी, नास्तिक, मायाजाल कलि आदि में आसक्त इत्यादि दोषों से युक्त निषिद्ध आचरण करने हारा, धूर्त्त, शठ, पापी, सर्वभक्षी, सर्वविक्रमी ऐसे जो ब्राह्मण हों तो उनके चाहे सब संस्कार क्यों न हों वे सब वेद-वेदाङ्ग पढ़े हों परन्तु कभी उनकी निष्कृति नहीं होती। जो इष्ट-अनिष्ट ब्राह्मण को होते हैं वे शूद्र को भी होते हैं इसलिए वेदपाठ अग्निहोत्र आदि कोई कर्म भी ब्राह्मण के हेतु नहीं, वैधव्य वियोग मरणादि सबको होती है, वात, पित्त, कफ़, लोभ, धन की तृष्णा सबको होती है दयाहीन, हिंसक, परम दाम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन, अति दुष्ट ऐसे पुरुष वेद पढ़ संसार को ठगते हैं। वेद विक्रय कर अपना पोषण करते हैं। अनेक प्रकार के छल-छिद्र कर प्रजा की हिंसा करते हैं। केवल अपना सांसारिक सुख साधते हैं ऐसे ब्राह्मण, शूद्र से भी अधम होते हैं इसलिए जाति वृथा है, सकामा शूद्रा के ब्राह्मण सङ्ग करके गर्भ स्थापना कर देता है और ब्राह्मणी को शूद्र से गर्भ हो जाता है फिर जातिभेद कहाँ ठहरा, जातिभेद तो गौ, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं में है जो अपनी जाति की स्त्री के बिना दूसरी जाति की स्त्री से सङ्ग नहीं करते, न

दूसरी जाति में गर्भ रख सकते हैं पशु जाति की स्त्री से मनुष्य सङ्ग करे तो सुख नहीं होता और न गर्भ रहता है इसी प्रकार मनुष्य स्त्री पशु से मैथुन करे तो न गर्भ धारे और न उसके आनन्द होय परन्तु मनुष्य जाति में किसी वर्ण के साथ सङ्ग करे तब ही आनन्द मिले और गर्भ धारे इससे जाति भेद नहीं बन सकता। जो मनुष्यों में जाति कल्पना है केवल व्यवहार के लिए संकेत है, वास्तव में सत्य नहीं। जो और चालीसवें अध्याय में लिखा है कि जो ग्राह्य-अग्राह्य के तत्त्व को जान अन्याय और कुमार्ग का त्याग करे, जितेन्द्रिय स्थिर रहे, सबके हित में तत्पर हो, भली भांति वेदवेदाङ्ग शास्त्र जानता हो, समाधि में स्थित हो, क्रोधहीन हो, मत्सर, मद, शोक आदि करके वर्जित हो, वेद के पठन-पाठन में आसक्त हो, विशेष करके किसी का सङ्ग न करे, एकान्त और पवित्र स्थान में रहे, सुख, दुःख में समान हो, धर्मनिष्ठ हो, पाप से डरे, निर्णय, निरहंकार, दानशूर, ब्रह्मवेत्ता, शान्तस्वभाव और तपस्वी हों वे ब्राह्मण कहाते हैं। इसी प्रकार के ब्राह्मण, जगत् के हित के लिए उत्पन्न किये गये हैं। ब्रह्म के भक्त होने से ब्राह्मण, क्षत्र के रक्षा करने हारे क्षत्रिय, वार्त्ता का सेवन से वैश्य और श्रुति से द्रुति होने से शूद्र कहाए। क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच, धृति, दया, मृदुता, संतोष, तप, निरहङ्कार, अक्रोधता, अनसूयता, अशठता, अस्तेय, अमात्सर्य्य, धर्म, ज्ञान, ब्रह्मचर्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैराग, पापभीरु, अद्वेष, गुरुश्रुशूषा इत्यादि गुण जिनमें देखे उनको सृष्टि के समय ब्राह्मण ठहराया। जो बलवान् और दूसरों की रक्षा करने में समर्थ देखे वे मनुष्य क्षत्रिय कहलाये। जो वृत्ति और धनके उपार्जन करने में तत्पर हुए उनकी वैश्य संज्ञा हुई। और जो निस्तेज, अल्प बल, शोचते और दबते हुए इन तीनों की सेवा में तत्पर हुए वे शूद्र कहलाये। इसी भांति अपने-अपने स्वभाव के अनुसार वर्ण कल्पित हुए और शम, तप, दम, शौच, क्षान्ति, सीधापन, ज्ञान, विज्ञान आस्तिक्य ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। शौर्य्य, तेज, धृति, दाक्ष्य, युद्ध में अपलायन अर्थात् पीछे न फिरना, दान और ईश्वरभाव ये क्षत्रियों का स्वाभाविक कर्म है। जिसके ज्ञानरूपी शिखा और तपोरूपी सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत हो उनको स्वायम्भुव मनु ने ब्राह्मण कहा है। चाहे जिस वर्ण में उत्पन्न हुआ हो और पाप कर्म्मों से निवृत्त होकर उत्तम आचरण रक्खे, वह ब्राह्मण के समान ही है। शील करके युक्त ब्राह्मण से अधिक होता है आचार से रहित ब्राह्मण

शूद्र से भी निष्कृष्ट माना जाता है और जो अपने घर में मद्य न बनावे और बाज़ार आदि में बेचे भी नहीं, वही शूद्र उत्तम होता है। प्रथम तो जीवनमात्र एक जाति है फिर मनुष्यादि जाति पृथक्-पृथक् हैं, उनमें स्त्री पुरुष आदि भेद हैं, उनमें भी बालक तरुण वृद्ध ये जाति हैं इसके बिना और जाति की कल्पना संकेत मात्र है, जिस प्रकार देव और पुरुष मिलकर कार्य्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार उत्तम जाति और सत्कर्म का योग होने से पूर्णसिद्धि होती है—

किं देहस्योत्तपेनासौ निसर्गमलिनः स्थितः।
शुक्रशोणितसंभूतः स मलोद्भवकीटवत्॥

भविष्यत् पुराण ब्राह्म० अध्याय ४३ व ४४ में लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तैर्विविधैर्विधिविस्तरैः।
देहिनोऽतिशयं केचिदुपगच्छन्ति मानवाः॥ ४३.३॥
वैदिकाखिलसंस्कारसारभूता द्विजातयः।
सर्वकार्यकरान् सर्वान् वृषलानतिशेरते॥ ५॥
चण्डकर्मा विकर्मस्थो ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्तेनो गोघ्नः सुरापाणः परस्त्रीरमणप्रियः॥ ६॥
शमस्तपो दमः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ ४४.२५॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम्॥ २६॥
निर्वृत्तः पापकर्मभ्यो ब्राह्मणः स विधीयते। ३०॥
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत्।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत्॥ ३१॥
न सुरां सन्धयेद्यस्तु आपणेषु गृहेषु च। ३२।

इसलिए प्रथम सबकी शिक्षा होनी चाहिए फिर वर्णव्यवस्था नियत करना अभीष्ट है। देखो प्राचीनकाल में भी इसी के अनुसार बहुधा शूद्र पढ़े-लिखे, तपस्वी, ज्ञानी होते थे। रामायण से विदित होता है कि जब

महात्मा रामचन्द्र जी वनवास को गये और शबरी के स्थान पर पहुंचे, जो सकल धर्मों के अनुष्ठान करने वाली तपस्विनी थी जैसा कि—

शबरीं धर्म्मचारिणीं श्रमणां धर्म्मनिपुणामभिगच्छेति राघवः ॥

अब आपको यह भी ज्ञात होना चाहिए कि शबरी किस जाति की थी ? देखिए, **अमरकोष**—

भेदाः किरातशवरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः ॥ २.१०.२० ॥

अर्थात् किरात और शवर, पुलिन्द और म्लेच्छ जाति यह सब चाण्डाल के भेद हैं। इससे प्रकट है कि शवरी एक अधम शूद्रा थी।

जब श्रीराम आदि शवरी के स्थान पर पहुँचे तो उसने उठकर दोनों के चरण पकड़ कर प्रणाम किया फिर विधिपूर्वक पैर धोने तथा आचमन के लिए जल दिया। जैसा कि **वाल्मीकि रामायण** आरण्यकाण्ड सर्ग ७४ में लिखा है।

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ६ ॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। ७।

इससे यह भी प्रकट होता है कि श्रीराम जी ने शवरी के हाथ से जल लेकर आचमन किया। राजा दशरथ को शब्दभेदी तीर मारने का बड़ा अभ्यास था। एक दिन रात्रि को घूमते हुए राजा ने सरयू की ओर जाना कि हाथी पानी पी रहा है, तुरन्त तीर मारा जो एक मनुष्य के लगा। अब यह विचारना चाहिए कि वह कौन था और उसके माता-पिता कौन थे, **वाल्मीकि रामायण** अयोध्याकाण्ड सर्ग ६३ से विदित होता है कि उसकी माता शूद्रा थी और पिता वैश्य थे। शास्त्र में ऐसे को करण नाम शूद्र कहा है। मरते समय दशरथ जी से उसने कहा कि राजन्! आपको ब्रह्महत्या का भय न हो क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूं—

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥ ५१ ॥

इसके उपरान्त वह तपस्वी का भेष धारण किये हुए शास्त्र का अध्ययन करता था—

जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः ॥ २८ ॥

इसके पश्चात् उसके अन्ध पिता विलाप कर कह रहे थे कि मधुर स्वर से शास्त्रों और पुराणों को पढ़ता हुआ अब मैं किसका शब्द सुनूंगा?—

कस्य वा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयङ्गमम्।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद् विशेषतः॥ ६४.३२॥

कौन मनुष्य मुझको स्नान, सन्ध्या, होम करावेगा? जैसा कि—

कोमां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः॥ ३३॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय १३४ से विदित होता है कि वपुष्मान् के पिता इन्द्रसेना के साथ वानप्रस्थ में गये थे। राजा वपुष्मान् ने पुरानी शत्रुता के कारण वन में जाकर मार डाला, तब रानी इन्द्रसेना ने उसके मारे जाने के समाचार एक शूद्र तापस के द्वारा भेजे थे। जैसा कि लिखा है—

प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम्॥ २०॥

जब वह तपस्वी शूद्र राजा के समीप आया और सब वृत्तान्त कहा तब राजा ने अपने पुरोहित और स्त्रियों को बुलाकर उनसे कहा कि वपुष्मान् ने मेरे पिता को मार डाला है, वह स्वर्गवासी हो गये, यह बात एक शूद्र तपस्वी आकर कह गया है। देखो—

यदत्र कृत्यं तद् ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम्।
श्रुतं भवद्भिर्य्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना॥ १३६.३॥

देखो **छान्दोग्योपनिषद्** के अध्याय ४ खण्ड २ में **हारे त्वा शूद्र०** इत्यादि वाक्य देखो। जानश्रुति शूद्र को रैक्व महर्षि ने विद्या पढ़ाई तथा छान्दोग्य अध्याय ४ खण्ड ४ में जाबाल अज्ञात कुल को गौतम ऋषि ने विद्या पढ़ाई थी। इसी भांति **ऋग्वेद** मण्डल १० अनुवाक ३ सूक्त ३० से ३४ तक देखिए।

इन चार सूक्तों का ऋषि कवष, ऐलूष हुआ है। इन सूक्तों को कवष, ऐलूष ने बहुत से ऋषियों को पढ़ाया और **ऋग्वेद** मण्डल १ अनुवाक १७ सूक्त ११६-१२६ तक का फैलाने वाला कक्षीवान् हुआ है जो बङ्ग देश के राजा की दासी का पुत्र था। फिर कैसे आश्चर्य की बात है कि आज वह वेद सुनने के अधिकारी नहीं रहे। पण्डित जी महाराज! आप ही विचार करें। देखिए **शतपथ** काण्ड १ प्र० १ अ० १ ब्रा० ४ कण्डिका १२ में

स्पष्ट आज्ञा है कि चारों वर्ण वेदमन्त्रों से यज्ञ की हवि को शुद्ध करें। देखिए, **महाभारत** शान्तिपर्व अध्याय ३२७ में कि वेदव्यास जी शुकाचार्य्य इत्यादि अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं कि हे शिष्यो! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को क्रमशः वेद का उपदेश करो क्योंकि वेद का अध्ययन करना मनुष्य का मुख्य कार्य है—

वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत्स्मृतम्॥ ४८॥

शुक्रनीति में लिखा है कि विद्या पढ़ने के लिए चारों वर्णों के मनुष्यों को ब्रह्मचारी होना चाहिए—

विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् सर्वेषां पालने गृही॥ ४१॥

प्रिय पण्डित जी! अब तो आपको भले प्रकार पुराणों से ही विदित हो गया कि वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव ही से होते हैं। इसलिए अब आपको पुराणों के उन लेखों का आदर न करना चाहिए जो जन्म से वर्ण मानने की आज्ञा देते हैं क्योंकि यह आज्ञा उनकी वेद के विपरीत है। इसके अतिरिक्त पुराणों के सुनाने वाले सूत जी महाराज हुए हैं जिन्होंने अनेकानेक ऋषियों को पुराण सुनाये और वह ऋषि उनको उच्चासन पर बिठा सर्वप्रकार से उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करते थे और सूतों की गणना वर्णसङ्करों में की है। देखो, **पद्मपुराण सृष्टिखण्ड** प्रथम अध्याय में लिखा है—

अधरोत्तरधारेण जज्ञे तद्वर्णसङ्करम्॥ ३४॥

उसी स्थान पर यह भी लिखा है कि सूत वह कहाते हैं जो क्षत्रिय ब्राह्मण से उत्पन्न करे। कहने का तात्पर्य यह है कि सूत जी का जन्म विलोम में हुआ था परन्तु वृद्धों की सेवा और महात्माओं के सत्सङ्ग से नीचे कुल में जन्म होने की मानसी पीड़ा को नष्ट कर उत्तम बन गये। जैसा कि सूत जी ने स्वयं **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय १८ में कहा है—

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्याऽपि विलोमजाताः
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः॥ १८॥

श्रीमान् पण्डित जी! इससे अधिक क्या प्रमाण आपको दूं? इसी भांति उपर्युक्त पुस्तक के स्कन्ध ९ अध्याय २ में लिखा है कि दिष्ट का पुत्र नाभाग करके वैश्य हो गया। जैसा कि—

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ २३ ॥

अब आप बुद्धि से विचारिए कि दश इन्द्रियाँ प्रत्येक स्त्री-पुरुष को दी हैं तो क्या स्त्री और शूद्र उनसे देखने का कार्य लें, न लें? यदि कोई किसी की आँखों को फोड़ डाले तो वह दण्डभागी होता है। उसी भांति परमात्मा ने बुद्धि, विद्या ग्रहण करके सत्, असत् के विचार करने के लिए दी है। यह विद्या मनुष्य के हृदय के नेत्र हैं तो फिर जो मनुष्य चर्मचक्षु फोड़ने से दण्डभागी होते हैं तो क्या हृदयरूपी आंखें फोड़ने वाले पुरुषों को दण्ड न होना चाहिए? पण्डित जी मुख्य अभिप्राय स्वार्थी जनों का मूर्ख बनाने ही से चलता है इसलिए इन्होंने—

'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः' (गौतम धर्मसूत्र २.३.४)

यह बनावटी श्रुति, सुना स्त्री और शूद्रों को निरक्षर रखने का आर्डर पास कर दिया। परन्तु पण्डित जी **अथर्ववेद** काण्ड० ५ अ० ५ व० ११ में परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! सत्य स्वरूप महागम्भीर और सत्यवेद विद्या के प्रकट करने में जातवेद हूं। मैं किसी दास व आर्य का पक्षपात नहीं करता किन्तु जो मेरी न्यायाचरणरूप सत्यव्रताज्ञा का पालन करेगा उसी का मैं उद्धार करूंगा।

इस हेतु पण्डित जी परमात्मा का भय कर पक्षपात को त्याग सम्पूर्ण स्त्री और पुरुषों को आत्मवत् समझ शिक्षा करा फिर यथायोग्य गुण, कर्म और स्वभाव को मिलाकर वर्ण नियत कीजिए जिससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सन्तानें अपने से नीच वर्ण में जाने के भय से विद्यादि गुणों के प्राप्त करने में लगी रहें और शूद्र नीच वर्ण उत्तम बनने के ख्याल से उत्तम गुणों की प्राप्ति करने का यत्न करते रहें। यदि आप जन्म से ही शूद्रों की सन्तान को शूद्र मानते हैं तो फिर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की सन्तानों में पुत्र को ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और उन्हीं की पुत्रियों को शूद्र किस हिसाब से बतलाते हैं? यदि वह शूद्र ही हैं तो फिर उनका विवाह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य किस हिसाब से धड़ाधड़ करते चले जाते हैं और यह भी विचार नहीं करते कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इनके वीर्य से शूद्राणी में जो सन्तान उत्पन्न होती है वह क्योंकर वर्णसङ्कर नहीं मानी जाती? इसके उपरान्त **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १४१ में लेख है कि जहाँ धर्मावती और साभ्रवती

का सङ्ग हुआ है वहाँ के स्नान करने से विदुर महाराज की शूद्रता जाती रही। जैसा कि—

तत्र वै कृतवान् स्नानं विदुरो धर्मरूपवान्।
त्यक्तं तत्र हि शूद्रत्वं धर्मावत्यां न संशयः॥ ४३॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में सनातनधर्म सभा इस लेख के अनुसार शूद्रों की शूद्रता दूर करने के लिए क्यों नहीं सबको इस सङ्गम पर स्नान का आदेश कर देती ?

सच तो यह है कि जब तक भारतवर्ष में गुण, कर्म और स्वभाव से वर्ण नियत होने की प्रणाली प्रचलित रही, भारत के सौभाग्य की उन्नति होती रही और जब से स्वार्थी पुरुषों ने नाना लीला रच विद्या के प्रचार को रोका, तब ही से जन्म से वर्ण नियत कर देश को चौपट कर दिया। क्या विदुर महाराज की शूद्रता स्नान से जाति रही थी ? नहीं-नहीं वरन् उनके गुण, कर्म और स्वभाव से जिनके विषय में महाभारत में बड़ी प्रशंसा लिखी है, इन्हीं महात्मा की बनाई हुई विदुरनीति इस समय भी संसार का उपकार कर रही है, इसलिए पण्डित जी अब सनातनी भाइयों को योग्य है कि पक्षपात को त्याग प्रेमपूर्वक वेदानुकूल वर्णव्यवस्था के स्थापित करने का यत्न करें वरन् वह दिन निकट आने वाला है कि भारतवासी स्वयं विद्या आदि गुणों से वर्ण नियत करने की प्रणाली को प्रचलित कर देंगे। फिर आपके हाथ से यह भी कार्य जाता रहेगा। श्रीमान् पर अब अच्छे प्रकार विदित हो गया होगा कि व्यास जी ने पुराणों को शूद्रों और स्त्रियों के लिए नहीं बनाया।

पुराण-प्रयोजन

श्रीमान् पण्डित जी ! पुराणों के बनाने का दूसरा कारण पुराणों से यह विदित होता है कि कृतयुग में धर्म के चार चरण, त्रेता में तीन, द्वापर में दो, कलियुग में एक चरण रह जाता है। जैसा कि **वाराह पुराण** पूर्वार्द्ध अध्याय ३२ में लिखा है—

इत्युक्तः समवस्थोऽसौ चतुष्पात् स्यात् कृते युगे।
त्रेतायां त्रिपदश्चासौ द्विपादो द्वापरेऽभवत्॥ ५॥

कलावेकेन पादेन प्रजाः पालयते प्रभुः । ६ ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृतिखण्ड अध्याय ७ में भी लिखा है—

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः ॥

कलौ प्रवृत्ते चैकपात् सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥ ६८ ॥

पद्मपुराण क्रियायोगसार अध्याय २६ में भी लिखा है कि कलियुग में धर्म का एक पाद रह जाता है—

एकपादो भवेद्धर्मः सर्वे पापरता जनाः ॥ १६ ॥

लिङ्गपुराण अध्याय ३९ में लिखा है कि कृतयुग में धर्म के चार चरण, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलि में सत्तामात्र रहता है—

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः ।

त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः ॥ १३ ॥

त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेणाधिष्ठितः ॥ १४ ॥

कूर्मपुराण अध्याय २९ में भी लिखा है कि—

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।

त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद्द्विपादो द्वापरे स्थितः ॥ १३ ॥

त्रिपादहीनस्तिष्ठेत्तु सत्तामात्रेण तिष्ठति । १४ ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय ३ में लिखा है कि कृतयुग में चार, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में धर्म का एक चरण रह जाता है, अन्त को वह भी नष्ट हो जाता है—

कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।

एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी लिखा है। इसके उपरान्त कलियुग में मनुष्य नाना पापों से युक्त और न्यूनावस्था वाले होते हैं। जैसा कि—

कूर्मपुराण अध्याय २९ में लिखा है कि घोर कलियुग में मनुष्य पाप करने वाले महापापी और वर्णाश्रम से रहित हो जाएंगे—

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्त्तिनः ।

भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिताः ॥ २ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय ७१ में लिखा है कि इस घोर कलियुग में मनुष्य थोड़ी उमर के होकर अधर्म में नित्य ही रत रहते हैं फिर उनकी नाम में भी निष्ठा नहीं होती—

अस्मिन् कलियुगे घोरेऽल्पायुषश्चैव मानवाः ।
विधर्मेषु रता नित्यं नामनिष्ठा न वै पुनः ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण पाखण्डी अधर्म में सदा रत, सन्ध्या से हीन, व्रतों से भ्रष्ट, दुष्ट और मलिन रूप से रहते हैं—

पाखण्डिनस्तथा विप्रा धर्मेषु विरताः सदा ।
सन्ध्याहीना व्रतभ्रष्टा दुष्टा मलिनरूपिणः ॥ ५७ ॥

जैसे ब्राह्मण वैसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य भी भगवान् के भक्त नहीं होते—

यथा विप्रास्तथा क्षत्रा वैश्याश्चैव पुनःपुनः ।
एवं शूद्रास्तथान्ये च न वै भागवता नराः ॥ ५८ ॥

क्रियायोगसार अध्याय २९ में कहा है कि कलियुग में धर्म का एक चरण रह गया, सब मनुष्य पाप में रत हो गये, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पाप में परायण, अत्यन्त कामी, क्रूर, वेद की निन्दा करने वाले, जुआ-चोरी आदि पाप युक्त होंगे—

एकपादो भवेद्धर्मः सर्वे पापरता जनाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः पापपरायणाः ॥ १६ ॥
अत्यन्तकामिनः क्रूरा भविष्यन्ति कलौ युगे ।
वेदनिन्दाकराश्चैव द्यूतचौर्यकरास्तथा ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अध्याय १ में कहा है कि कलियुग में मनुष्य अल्पायु, मन्द, मन्दगति, मन्दभाग्य, रोगादि पीड़ित होंगे—

प्रायेणाल्पायुषः साधो कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दा सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥

और स्कन्ध १२ अध्याय ३ में लिखा है कि कलियुग में लोभी, दुराचारी, निर्दयी, सूखी लड़ाई लड़ने वाले, दुर्भागी, बड़ी तृष्णायुक्त शूद्र

और दास मुख्य इस युग में प्रजा होगी—

तस्मिन् लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रा दासोत्तराः प्रजाः॥ २५॥

मत्स्यपुराण अध्याय १४४ में लिखा है कि कलियुग में सब प्रजा मिथ्यावादी और लोभी हो जाती है और बुरे इष्ट, बुरा पढ़ना, दुराचार और दुरागम इत्यादि ब्राह्मणों के कर्मों से प्रजा को बड़ा भय उत्पन्न होता है। हिंसा, अभिमान, ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा, क्षमा न करना, अधर्म, लोभ और मोह यह सब बातें बढ़ जाती हैं और विषयभोग अधिक हो जाते हैं—

अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ये चैव प्रजाः स्थिताः।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥ ३५॥
विप्राणां कर्म्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम्।
हिंसा मानस्तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽधृतिः॥ ३६॥
पुष्ये भवन्ति जन्तूनां लोभो मोहश्च सर्वशः।
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम्॥ ३७॥

इसी अध्याय में लिखा है कि कलियुग में सब लोग हिंसा, चोरी, मिथ्या और छल आदि दोषों में लिप्त होंगे और तपस्वी लोगों में माया, पाखण्ड और दम्भ यह सब स्वभाव से उत्पन्न हो जाते हैं—

हिंसा स्तेयानृते माया वधश्चैव तपस्विनाम्।
एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः॥ ३०॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय ७ में लिखा है कि कलियुग में सब ही मनुष्य शठ, क्रूर, दाम्भिक, अहङ्कारी, चोर, हिंसक और स्त्रीलोलुप इत्यादि हो जायेंगे—

शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः।
चौराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम्॥ १८॥

सब आश्रमों के मनुष्य म्लेच्छ होंगे—

आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे॥ ५५॥

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय २ में लिखा है कि कलियुग

में दुराचारी पुरुष होंगे जिनके मन पराई बुराई में रत, पराये द्रव्य की इच्छा रखने वाले, पराई स्त्रियों में मन लगाने वाले, पराई हिंसा में लवलीन, नास्तिक बुद्धिवाले, माता-पिता से द्वेष रखने वाले इत्यादि होंगे। जिन सब पापियों को तारने के लिए व्यास जी महाराज ने पुराण नाम सुधारस को बनाया जिसको बिना प्यास के पीने से देवता हो जाते हैं। परन्तु पण्डित जी पुराणों के यह लेख भी ठीक नहीं जान पड़ते क्योंकि वेद में ऐसी कोई आज्ञा नहीं है कि कृतयुग में धर्म के चार चरण, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलि में एक चरण रह जायगा, फिर हम इस बात को क्योंकर ठीक मानें? इसके उपरान्त पुराणों का यह लेख कि जब-जब संसार में अधिक पाप होता है तब-तब परमेश्वर अवतार लेकर दुष्टों का नाश करता है। यदि हम इस असत्य बात को भी मान लें तो भी तो यह बात ठीक नहीं होती, देखिए, कृतयुग जो १७२८००० वर्ष का और कलि ४३२००० का अर्थात् कृतयुग की आयु से कलियुग की आयु चौथाई होती है और कृतयुग में मच्छ, कच्छ, वाराह और नरसिंह, यह चार अवतार हुए अर्थात् मच्छ का अवतार, हयग्रीव के मारने के लिए जो वेद को चुरा ले गया था। कच्छ पृथ्वी के स्थिर करने के लिए, जब दैत्य उसको डगमगाते थे। वाराह अवतार हिरण्याक्ष के मार डालने के लिए हुआ क्योंकि वह पृथ्वी को बटोर के समुद्र में ले गया था। नरसिंह का अवतार हिरण्यकशिपु के मार डालने के लिए हुआ और कलियुग में एक अवतार होने की पुराण सूचना देते हैं तो फिर श्रीमान् पण्डित जी कलियुग क्योंकर पापी ठहरा जिसके लिए पुराण बनाये गये?

देखिए, पूर्व विद्वानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों में बांटा है। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं। प्रत्येक की संख्या इस प्रकार है—कृतयुग १७२८०००। त्रेता १२९६०००। द्वापर ८६४०००। कलियुग ४३२००० कुल ४३२००००।

इससे प्रकट है कि हर चतुर्युगी की आयु ४३२०००० वर्ष की होती है यदि इसको ७१ से गुणा कर दिया जावे तो एक मन्वन्तर हो जाता है जिसके ३०६७२०००० वर्ष हुए। इसी प्रकार से १४ मन्वन्तर व्यतीत हों तो संसार की आयु पूर्ण हो जाती है। इसी को ब्राह्मदिन और जिस समय तक अन्धकार रहता है उसको ब्राह्मरात्रि कहते हैं।

अर्थात् काल की संख्या ब्राह्मदिन और ब्राह्मरात्रि है और छोटे पल, विपल और निमिष। अब यहाँ यह विचार करना भी उचित है कि काल क्या वस्तु है? देखिए, **वैशेषिक दर्शन** अध्याय २ में लिखा है—

अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥ ६ ॥

पहिले, पीछे, एक साथ और शीघ्र यह काल के चिह्न हैं। अब यह बात कि कृतयुगादि में धर्म ही होता रहा और कलियुग में अधर्म ही होगा, नहीं। इतिहासों के देखने से यह भी विदित होता है कि सब युगों में पापी और पुण्यात्मा, देव और असुर होते चले आये हैं। यदि काल का ही कर्त्तव्य है तो फिर कोई पापी कृतयुग में नहीं होना चाहिए? सो ऐसा प्रतीत नहीं होता, वरन् प्रत्येक समय में कर्त्तव्य का फल होता है। ईश्वरीय नियम सदा एक से रहते हैं। देखिए, सृष्टि के आरम्भ से पृथ्वी ईश्वरीय कीली पर सूर्य्य की परिक्रमा देती है। सूर्य पूर्व से निकलता और चन्द्रमा रात्रि में दिखलाई देता है। मनुष्य के दश इन्द्रियाँ होती हैं, पृथ्वी में बीज उगते हैं, आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, इसी भांति ईश्वरीय नियम सदा एक से ही बने रहते हैं, इस कारण कलि धर्म में बाधा नहीं डालता, वरन् मनुष्य अपने कर्त्तव्य से प्रत्येक समय अर्थात् कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग में धर्म का साधन कर धर्मात्मा और अधर्म का काम कर अधर्मी बन सकता है और बनते रहे और आगे भी बनेंगे, न कि युग। देखिए, हमारे इस कथन की पुष्टि में **श्रीमद्भागवत स्कन्ध** १२ अध्याय ३ में लिखा है कि जब मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सतोगुण में स्थित होवें तब कृतयुग जानो, उस समय में सत्त्वगुण करके ज्ञान और तप में रुचि होती है—

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनो बुद्धीन्द्रियाणि च।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७ ॥

और जब सकाम में श्रद्धा होय तब रजोगुण युक्त त्रेतायुग जानिए—

यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम्।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

और जब लोभ, तृष्णा, गर्व, दम्भ, मत्सरता, सकाम कर्म में प्रीति होय, तब रजोगुण, तमोगुण मुख्य ऐसा द्वापर जानिए—

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥

जब कपट, झूठ, आलस, निन्दा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता यह होयं तब तमोगुण मुख्य कलियुग जानिए—

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

इसके उपरान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय १७ में जब राजा परीक्षित भ्रमण करने गये तो उनको सरस्वती के तट पर एक स्थान पर धर्म और पृथ्वी वार्त्तालाप करते हुए मिले। वह कह रहे थे कि तप करना, पवित्र रहना, सत्य बोलना, दया करना यह धर्म के चार चरण हैं और विस्मय, स्त्री-प्रसङ्ग और मद यह अधर्म के तीन अंश हैं। इनमें धर्म के तीन पाद टूट गये, एक रह गया है। जैसा कि—

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्त्तिताः।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥ २४ ॥

यह सुन राजा ने कलि के मारने के लिए खड्ग हाथ में उठाया, उस समय वह भयभीत हो राजा के पैरों पर गिर पड़ा। राजा ने शरणागत आया हुआ जान मारा नहीं और कहा कि हे अधर्म के मित्र! तू मेरे राज्य से निकल जा वरन् तेरे रहने से लोभ, चोरी, अनारीपन, क्लेश और दम्भ इन सबकी बढ़ती होगी! तब कलिने प्रार्थना की कि जहाँ आपकी आज्ञा हो वहाँ जाकर मैं रहूँ! उस समय राजा ने कहा कि जुआ-मदिरा-वेश्या और जहाँ कसाई जीवों को मारते हैं, तुम इन चार जगहों में रहो। जैसा कि—

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ।
द्यूतं पानं स्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८ ॥

इस पर कलि ने कहा कि मेरा कुटुम्ब बहुत है, इतने स्थान में मेरी गुजर न होगी। तब राजा ने कहा कि सुवर्ण-झूठ-मद-काम और बैर इन पांच में और जाओ—यह सुन कलि उपर्युक्त स्थान में रहने लगा—

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात् प्रभुः।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम्॥ ३९ ॥

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः।
औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत्॥ ४०॥

पण्डितजी! अब मैं आपसे पूछता हूँ क्या कृतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में उपर्युक्त स्थानों में अधर्म नहीं रहता था अर्थात् जो लोग इन व्यसनों में फंसते थे, क्या अधर्मी नहीं कहलाते थे? फिर कलिने क्या किया? यदि पुराणों के लेखानुसार किया था तो फिर यह लेख भी उसी स्थान पर क्यों लिखा गया कि जो मनुष्य इस संसार में अपनी उन्नति चाहे, वह इन पांचों का सेवन न करे विशेषकर गुरु और राजा—

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित्।
विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः॥ ४१॥

श्रीमान् यदि हमारे गुरुजन कलि को पापी न बनाते और श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त लेख पर ध्यान देकर लोभ, चोरी, अनारीपन, क्लेश, दम्भ, झूठ, मद, काम में न फंसते तो क्योंकर भारत के सिर का मुकुट गिर जाता?

इसके उपरान्त क्या कलि कोई जीवधारी था, जिसने राजा से वार्त्तालाप किया? शोक है, जड़ पदार्थों में भी पौराणिक पुरुष बातचीत करने की शक्ति बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय १८ में स्पष्ट लिखा है कि धीरता से धर्म करने वाले शूर पुरुषों का कलियुग कुछ नहीं कर सकता। हाँ मदान्ध पुरुषों में कलि शीघ्र घुस जाता है। जिस प्रकार बालकों में भेड़िया। जैसा कि—

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्त्तते॥ ८॥

पद्मपुराण स्वर्ग तृतीय खण्ड अध्याय ९७ में कहा है कि कलियुग में विशेष करके पुराण श्रवण को छोड़कर अन्य धर्म आलस्य से शिथिल पुरुषों को नहीं।

अब तो श्रीमान् को पूरा निश्चय हो गया कि मदान्ध और आलस्य से शिथिल पुरुषों को कलि हानि पहुंचाता है। तो क्या कृतयुग, त्रेता और द्वापर में मदान्ध और शिथिल पुरुष धर्मकार्य कर सकते थे? कदापि नहीं,

सत्य तो यही है। ऐसे-ऐसे लेखों ने मनुष्यों को और भी निकम्मा बना देश को चौपट कर दिया।

श्रीमान् पण्डित जी! युग कुछ नहीं करता वरन् कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। इस पर तुर्रा यह है कि जिस प्रकार पुराणों के कर्त्ताओं ने कलि को पापी बनाया उससे विशेष उसकी प्रशंसा भी कर दी। देखिए, **पद्मपुराण** सप्तम क्रियायोगसार खण्ड के अध्याय २६ में लिखा है कि गुणवानों में श्रेष्ठ तथापि कलियुग में बड़ा गुण यह है कि कृतयुग में बारह वर्षों में जो पुण्य का साधन होता है, त्रेता में ६ वर्ष, द्वापर में एक महीने में, वह कलियुग में एक ही दिनरात्रि में होता है—

तथाप्यस्ति महानस्य गुणो गुणवतां वर।
सत्ये द्वादशभिर्वर्षैर्भवेत् पुण्यस्य साधनम्॥ ४०॥
तदर्द्धेन च त्रेतायां मासेन द्वापरे भवेत्।
अहोरात्रेणैव विप्र भवेत् तच्च कलौ युगे॥ ४१॥

तिससे कलियुग में मनुष्यों की मृत्युलोक में उत्तम गति होती है और युग में बारह वर्षों में भगवान् को पूजन कर जो फल होता है वह फल कलियुग में मनुष्य को हरि जी का एक वार नाम लेने से होता है और उसको सत्य-सत्य निस्सन्देह कलियुग कुछ बाधा नहीं करता। जैसा कि—

तस्मात् कलियुगे नृणां मर्त्येनैवोत्तमा गतिः।
द्वादशाब्दैर्युगेऽन्यस्मिन् हरिमभ्यर्च्य यत् फलम्॥ ४२॥
हरेर्नामैकमप्यत्र कलौ वदति यो नरः॥ ४३॥
कलिर्न बाधते तञ्च सत्यं सत्यं न संशयः। ४४।

विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय २ में व्यास महाराज ने कलियुग को साधु कहा है और लिखा है कि जो जप, तप, ब्रह्मचर्यादि करने से कृतयुग में १० वर्ष में फल मिलता है वह त्रेता में १ वर्ष, द्वापर में एक मास, वही फल कलियुग में रात्रिदिन में मिलता है। इसी कारण सब युगों में कलियुग को हमने साधु कहा है—

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥ १५ ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भषितम्॥ १६ ॥

और लिखा है कि कृतयुगादि में द्विजातियों को जप, तपस्या आदि में बड़ा क्लेश होता था, अब कलियुग में भगवत्कीर्त्तन से सब काम सिद्ध होते हैं—

अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिद्ध्यति वै कलौ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्विषैः ॥ ३४ ॥
ततस्तृतीयमप्येतद् मम धन्यतरं मतम्।
धर्मसंसाधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥ ३६ ॥

लिङ्गपुराण अध्याय ४० में लिखा है कि त्रेता में जो सिद्धि एक वर्ष में होती है, वही द्वापर में एक महीने में और कलियुग में एक दिनरात में होती है—

त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथाक्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुते कलौ ॥ ४७ ॥

पद्मपुराण में श्रीमद्भागवत माहात्म्य के अध्याय २ में लिखा है—नारद जी मुक्ति से कहते हैं कि कलियुग के समान और कोई युग नहीं है। जैसा कि—

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ॥ १३ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १९२ में लिखा है कि राजा परीक्षित ने सार से सार फल देने वाले कलियुग को कलियुगी मनुष्यों के कल्याण के लिए स्थापित किया और **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ११ अध्याय ५ उत्तरार्द्ध में लिखा है कि जो मनुष्य श्रेष्ठ गुणज्ञ सारग्राही हैं वह चारों युगों में कलियुग की स्तुति करते हैं क्योंकि और युगों में ध्यान, ज्ञान, पूजा करके जो फल होता है सो सब स्वार्थ कलियुग में भगवान् के भजन-कीर्त्तन मात्र से होता है—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥ ३६॥

स्कन्ध १२ अध्याय ३ में भी लिखा है कि कलि दोषों की खानि है परन्तु तो भी उसमें एक बड़ा गुण यह है कि श्रीकृष्ण का कीर्त्तन करते ही सम्पूर्ण बन्धन से छूट श्रीकृष्ण को जाय के प्राप्त होता है। जैसा कि—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥ ५१॥

इसके उपरान्त जो फल तप, भोग, समाधि से नहीं होता, वह फल कलियुग में केशव के कहने से होता है। जैसा कि **श्रीमद्भागवत** के माहात्म्य अध्याय १ में लिखा है—

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्त्तनात्॥ ६७॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ८० में महादेवी जी ने कहा कि हरि का नाम ही केवल वह हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण यह मङ्गलरूप मन्त्र है जो लोग इसको नित्य पढ़ते हैं उनको कलियुग बाधा नहीं करता—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्॥ २॥
हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति मङ्गलम्।
एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥ ३॥

चाहे अपवित्र हो वा पवित्र सब कालों में व सब प्रकार से जैसे बने तैसे नाम के स्मरण करने से क्षणमात्र में प्राणी संसार से छूट जाता है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा।
नामसंस्मरणदेव संसारान्मुच्यते क्षणात्॥ ८॥

नाना प्रकार के अपराधों से युक्त भी प्राणी हो तो उसको चाहिए कि रामकृष्णादि नामों का स्मरण करता रहे क्योंकि कलियुग में अङ्गों सहित यज्ञ, व्रत, दान नहीं हो सकते—

नानापराधयुक्तस्य नामापि च हरत्यघम्।
यज्ञव्रततपोदानं साङ्गं नैव कलौ युगे ।९।

इसलिए कलियुग में तरने के दो उपाय मुख्य हैं—एक गङ्गा स्नान, दूसरा हरि का नाम लेना क्योंकि हज़ारों हत्याओं, सहस्रों उग्र पाप व कोटि गुरु-स्त्रियों के सङ्ग सम्भोग, चोरी करना ऐसे ही और भी बड़े और छोटे पाप श्रीहरि के प्रिय गोविन्द इस नाम से दूर हो जाते हैं—

गङ्गास्नानं हरेर्नाम निरपायमिदं द्वयम्॥ १० ॥

हत्यायुतं पापसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणं च।

स्तेयान्यथान्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना न च सन्ति भद्रे॥ ११ ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय २ में लिखा है—मित्रद्रोही, ब्रह्महत्यारा, गुरुस्त्रीगामी, स्त्री, राजा और गौओं का मारने वाला तथा जो अन्य भांति के जो पाप हैं, उन सबका प्रायश्चित्त विष्णु का नामोच्चार है। जैसा कि—

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः।

स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे॥ ९ ॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।

नामव्याहरणं विष्णोर्य्यतस्तद्विषया मतिः॥ १० ॥

अब कहिए, पण्डित जी! प्रथम तो कलि को पापी बताया और नाना दोष गिनाये फिर उसकी प्रशंसा इतनी की कि कृतयुग की प्रजा कलियुग में उत्पन्न होने की इच्छा करती है क्योंकि कलियुग के सर्व जीव नारायण परायण होते हैं। जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ११ अध्याय में लिखा है—

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्।

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः॥ ३८ ॥

इतना नहीं वरन् द्रव्य, देश और शरीर से जो दोष कलियुग में होते हैं। वह सब पुरुषोत्तम भगवान् पुरुष के चित्त में स्थित होकर हर लेते हैं। जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १२ अध्याय ३ में लिखा है—

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।

सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः॥ ४५ ॥

कलि का प्रभाव दूर करने के लिए **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तर खण्ड

अध्याय ११८ में लिखा है कि जो मनुष्य भगवान् की चढ़ी हुई तुलसी को मुंह, शिर और देह से धारण करता है, उसको कलियुग स्पर्श नहीं करता। परन्तु शोक इस बात का है कि ऐसे-ऐसे सहज नुसखे होते हुए भारत में कलि का प्रभाव मौजूद है। इसके उपरान्त अध्याय १९८ में लिखा है कि व्यास महाराज १७ पुराण और महाभारत को रच कर प्रसन्न मन न हुए, तब नारद जी इस बात को जान उनके समीप गये और पूजा पाय उन्होंने व्यास जी से कहा कि आप मन में क्लेशित क्यों रहते हैं? तब व्यास जी ने कहा कि मुझे मालूम नहीं कि मेरा मन क्योंकर मोहयुक्त रहता है? आप विज्ञान में कुशल हैं कृपा कर आप ही वर्णन कीजिए। जैसा कि—

पुराणसप्तकं सार्द्धं शुश्रूवुर्हृष्टमानसाः।
दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः॥ ९४॥
नाप्तवान् मनसस्तोषं भारतेनापि भामिनि।
ज्ञात्वास्य हृदयं खिन्नं नारदो देवदर्शनः॥ ९५॥
समाजगाम भगवान् व्यासस्याश्रममुत्तमम्।
तं दृष्ट्वा वासवीसूनुः सत्कृत्यासनपूर्वकम्॥ ९६॥
नारदं पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा।
अथ तं नारदः प्राह किं भवान् क्लिष्टमानसः॥ ९७॥
ध्यायते तत्समाचक्ष्व सर्वं सन्देहकारणम्।
इति पृष्टः स मुनिना पराशरसुतोऽब्रवीत्॥ ९८॥
ब्रह्मन् किं कारणं चेतो मोहे जाने न तत्त्वहम्।
भवान् विज्ञानकुशलो ज्ञात्वा तत्प्रब्रवीतु मे॥ ९९॥
एवं विज्ञापितस्तेन नारदोऽध्यात्मकोविदः।
उवाच परमं तत्त्वं यदुक्तं विधिनात्मने॥ १००॥

यह सुन अध्यात्मविद्या में निपुण नारद जी ने जो परमतत्त्व उनसे ब्रह्मा जी ने कहा था कहने लगे कि हे पापरहित! आपने इस लोक में अवतार लेकर वेदों के विभाग किए, इतिहाससहित पुराण रचे, जहाँ वर्णाश्रम निवासियों का सब त्रयीधर्म कहा है। कलियुग में मनुष्यों की

अल्पायु देख के जिनको सबके सुख लेने का अधिकार है स्त्री, शूद्र, ब्राह्मण, बन्धु और साधुओं का सङ्गम धर्म आदिक आपने उनमें वर्णन किये हैं परन्तु प्रधानता से भगवान् की महिमा वर्णन नहीं की। हे मुनिजी! सब धर्मक्रिया से शून्य दोषनिधि कलियुग में पाप करने वालों को बिना कृष्ण जी की कथा रूप अमृत के गति नहीं है यही इस घोर कलियुग में गुण है। कृष्ण जी के कीर्त्तन ही से कर्मबन्धन से छूट जाते हैं। यज्ञ, दान, तपस्या, कर्म, ज्ञान और ध्यान कृतयुगादि में सिद्धि देने वाले होते हैं। कलियुग में नाम कीर्त्तन ही सिद्धि देने वाला है इसलिए कलियुग के मनुष्यों के उद्धार के लिए आप श्रीमद्भागवत नाम पुराण का वर्णन कीजिए जिसमें प्रवृत्त होने से आपका मन निश्चय प्रसन्न हो जावे और लोक कृतकृत्यता को प्राप्त हो—

न गतिः पापकर्तॄणां विना कृष्णकथामृतम्।
एष एव गुणो ह्यस्मिन् घोरे कलियुगे नराः॥ १०६॥
यत् कृष्णकीर्तनेनैव मुच्यन्ते कर्मबन्धनात्।
यज्ञो दानं तपः कर्म ज्ञानं ध्यानं कृतादिषु॥ १०७॥
सिद्धिदं च तथा ब्रह्मन् नामकीर्त्तनकं कलौ।
अतो वै कलिजातानामुद्धारार्थं नृणां भवान्॥ १०८॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वर्णयत्वलम्।
येन प्रवर्तितेनाङ्ग भवतो मानसं ध्रुवम्॥ १०९॥

महादेव जी बोले कि हे पार्वती! इस प्रकार नारद मुनि अमित तेजस्वी व्यास जी को आज्ञा देकर भगवान् के गुण गाते हुए इच्छापूर्वक चले गये। फिर व्यास जी ने श्रेष्ठ भागवत को बनाया—

नारदे तु गते पश्चाद् व्यासः सर्वार्थदर्शनः।
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम्॥ ११२॥

जिसको सूत जी ने कहा कि उन्होंने शुकदेव जी से और उन्होंने राजा परीक्षित को सुनाई इसी से यह सब पुराणों के ऊपर विराजमान है जो भक्ति से इस माहात्म्य को सुनता वा पढ़ता है, वह परम गति पाता है। ब्राह्मण पढ़कर वेदों को, क्षत्रिय जीत को, वैश्य धन को और शूद्र सुन कर

ही गति को प्राप्त होते हैं—

शौनकादिऋषिभ्यस्तु तेन प्रोक्ता यथार्थतः।
वरीवर्ति पुराणानामुपरीयं नगात्मजे॥ ११६॥
यः शृणोति नरो भक्त्या माहात्म्यं पठतेऽपि च।
अनुमोदनेन वासोऽपि लभते परमां गतिम्॥ १२०॥
द्विजोऽधीत्याप्नुयाद्वेदान् क्षत्रियस्तु लभेज्जयम्।
धनं वैश्यस्तथा शूद्रः श्रुत्वैव लभते गतिम्॥ १२१॥

श्रीमान् पण्डित जी! इस स्थान पर विचार कीजिए कि प्रथम तो पौराणिक लोग व्यास जी को परमेश्वर का अवतार मानते हैं। द्वितीय वेद को अच्छे प्रकार जान सत्रह पुराणों को बनाया तिस पर उनकी शान्ति नहीं हुई तो उन १७ पुराणों को पढ़ने वालों की शान्ति कैसे हुई होगी? विचार दृष्टि से तो यह वेदों की निन्दा वरन् महानिन्दा करना है। परन्तु स्मृतिकार वेदों की निन्दा करने वालों को नास्तिक बतलाते हैं। अब आप बतलावें कि हम इन व्यास जी को क्या कहें और पुराणों में अनेकानेक स्थानों पर लिखा है कि वेद सनातन पुस्तक हैं, वही सनातनधर्म हैं, उसके अनुसार धर्म कार्य करना चाहिए, इसके अतिरिक्त जो कोई कार्य करता है वह पाप का भागी होता है। सुनिये—

लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय १० में लिखा है कि श्रुतिस्मृति के धर्म करने से धर्मात्मा कहाता और उन्हीं में कहा हुआ वर्णाश्रम धर्म और शिष्टाचार से विरुद्ध न हो वही धन उत्तम है—

श्रौतस्मार्त्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्म्मज्ञ उच्यते॥ ८॥
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्म्मो वर्णाश्रमात्मकः॥ २२॥
शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्म्मः साधुरुच्यते॥ २३॥

अध्याय ७८ में लिखा है कि जो मनुष्य वेद विरुद्ध व्रत, आचार इत्यादि करते हैं वह श्रुतिस्मृति से विमुख हैं। उन पाखण्डियों का उत्तम वर्ण वाले स्पर्श तथा उनसे सम्भाषण न करें—

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः।
पाषण्डिन इति ख्याता न सम्भाष्याद्विजातिभिः॥ २१॥

न स्प्रष्टव्या न द्रष्टव्या दृष्ट्वा भानुं समीक्षते॥ २२॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १ में लिखा है कि धर्म वही है जो वेद में लिखा है उसके अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण का रूप है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम॥ ४०॥

स्कन्ध ११ अध्याय ३ में लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होता है—

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।

नैषकर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः॥ ४६॥

स्कन्ध ५ अध्याय २६ में लिखा है कि जो वेदमार्ग को छोड़ कर चलते हैं वह कालसूत्र नाम नर्क में जाते हैं—

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः। पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति.......... ॥ १५॥

विष्णुपुराण अंश २ अध्याय ६ में लिखा है कि जो वेदविरुद्ध कार्य्य करते हैं उनको लवण नाम नर्क होता है—

वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयिकश्च यः।

अगम्यगामी यश्च स्यात्ते यान्ति लवणं द्विज॥ १३॥

और अंश ३ अध्याय १७-१८ में लिखा है कि जो वेदोक्त धर्म को छोड़ अन्य मार्ग में जाता है वही महापापी नङ्गा कहाता है। इसलिए कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के वस्त्र वे ही हैं—

ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज।

एतामुज्झति यो मोहात् स जनः पातकी द्विजः॥ १७.५॥

त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः।

नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः॥ १७.६॥

ततो मैत्रेय तन्मार्गवर्तिनो येऽभवञ्जनाः।

नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरणं तथा॥ १८.३६॥

देवी भागवत स्कन्ध १ अध्याय १८ में राजा जनक ने कहा है कि

चारों वर्ण धर्म के नाश हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं इसलिए सबको वेद के अनुसार कार्य करने से सुख की प्राप्ति होती है—

धर्मनाशे विनष्टः स्याद् वर्णाचारोऽतिवर्तितः।

अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम्॥ ४७॥

मत्स्यपुराण अध्याय ५२ में लिखा है कि श्रुतिस्मृतियों के कहे हुए धर्मों को यत्नपूर्वक करना चाहिए—

कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः॥ १२॥

और अध्याय २१४ में लिखा है कि राजा वेदत्रयी पढ़े हुए ब्राह्मणों को रखकर उनकी सेवा करे असत्शास्त्र के जानने वालों का सङ्ग कभी न करे क्योंकि मूढ़ लोग सब विद्वानों के कंटक हैं—

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रं सुनिश्चितान्।

नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः॥ ५०॥

मार्कण्डेयपुराण अध्याय १० में लिखा है कि जो वेदों की निन्दा करता है उसको मृत्यु के समय मोह प्राप्त होता है—

ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा वेदविनिन्दकाः॥ ५९॥

भविष्यत् पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय ७ में लिखा है कि वेदनिन्दक को सत् पुरुष अपने समीप न रहने देवे—

योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।

स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ५७॥

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६७ में लिखा है कि जो कोई वेदों की निन्दा करते हैं वा वेदविहित आचार की निन्दा करते हैं, ज्ञानी पण्डितों ने इसको महापापों में बताया है—

वेदनिन्दां प्रकुर्वन्ति ब्रह्माचारस्य कुत्सनम्।

महापातकमेवापि ज्ञातव्यं ज्ञानपण्डितैः॥ ४॥

षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २३५ में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेदस्मृति के कहे हुए आचार को नहीं करता वह सब लोकों में निन्दित, पाखण्डी जानने योग्य है—

श्रुतिस्मृत्युदिताचारं यस्तु नाचरति द्विजः।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः॥ ६॥

तथा अध्याय २५३ में लिखा है कि नित्य अच्छे प्रकार से वेद और स्मृति के कहे हुए कर्म करने चाहिएं बुद्धिमान् मनुष्य वेद और स्मृति के कहे हुए कर्म को न छोड़े—

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् नित्यमत्र समाचरेत्।
श्रुतिस्मृत्युक्तकर्माणि नातिक्रामेत बुद्धिमान्॥ ३५॥

जो वैष्णव वेद और स्मृति के कहे हुए आचार को नहीं सेवता वह पाखण्डयुक्त मनुष्य रौरव नरक में बसता है—

श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं यो न सेवेत वैष्णवः।
स च पाखण्डमापन्नो रौरवे नरके वसेत्॥ ३६॥

शिवपुराण कैलाससंहिता अध्याय ८ में लिखा है कि अपने आश्रम में रत सब तीनों वर्णों को श्रुति, स्मृति के धर्म ही का अनुष्ठान करना चाहिए दूसरा नहीं—

त्रैवर्णिकानां सर्वेषां स्वस्वाश्रमरतात्मनाम्।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मोऽनुष्ठेयो नापरः क्वचित्॥ २१॥

वायुसंहिता पूर्वार्द्ध अध्याय २८ में लिखा है कि धर्म में वेद ही हमको प्रमाण है—

"प्रमाणं श्रुतिरेव नः" ॥ ५॥

वायुसंहिता उत्तरार्द्ध अध्याय १२ में लिखा है कि जिसको वेद-शास्त्र में जो कर्म विधान कर दिया है उसको वही कर्म करना चाहिए, दूसरा नहीं—

यस्य यद्विहितं कर्म्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः।
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः॥ १५७॥

सनत्कुमारसंहिता अध्याय ४ में कहा है कि जो श्रुतिस्मृति के धर्म को नष्ट करता है वह भयङ्कर रूप वाले प्राणियों से युक्त घोररूप परम दारुण घोरनरक में नीचे मुख कर हज़ार वर्ष तक डाला जाता है—

मलापहस्य मूलानि हिंस्यमानो हि मानवः।
भैरवाणि च रूपाणि घोरं परमदारुणम्॥ ६१॥
अधोमुखेन पतति वर्षाणां च सहस्रशः॥ ६२॥

इस पर भी स्त्री और शूद्रों के अर्थ अथवा कलियुगी पापियों के उद्धार के अर्थ व्यास महाराज ने १७ पुराण बनाये परन्तु शोक इस बात का है कि इतने पर भी स्वयं व्यास महाराज को आनन्द नहीं आया तो फिर नारदमुनि की आज्ञानुसार भगवत्कीर्तन अर्थात् श्रीकृष्ण महाराज के चरित्रों का कथन किया तब शान्ति हुई। पण्डित जी आप यहाँ पर ध्यान दें, कि पौराणिक लोग कृष्ण महाराज को विष्णु का अवतार मानते हैं और विष्णु परमात्मा का नाम है, तो क्या वेद में उस निराकार सर्वव्यापक के महत्त्व का वर्णन नहीं है और यदि है तो फिर उसके विचार में व्यास जी की शान्ति क्यों नहीं हुई? इसके उपरान्त कृतयुग में यज्ञ, दान, तप, कर्म और ज्ञान से सिद्धि होती थी और इनसे कलियुग में नहीं रही तो फिर मैं पूछता हूँ कि इन पुराणों में यज्ञ, दान, तप, कर्म और ध्यान, ज्ञान के क्यों गुण गाये गये? इसके अतिरिक्त वेदों का ज्ञान सृष्टि के आदि में दिया गया जो प्रलय तक रहता है फिर संसार के प्रकट होते ही प्रकट हो जाता है अर्थात् कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के लिए होता है। क्या पण्डित जी! वेद में कोई ऐसी ऋचा मौजूद है कि वेद का ज्ञान कलियुग के लिए नहीं? यदि नहीं तो कलियुगी मनुष्यों के लिए पुराण क्यों बनाने की ज़रूरत हुई? देखिए, ईश्वर सर्वज्ञान वाला है तो फिर वेद अधूरे ज्ञान का पुस्तक क्योंकर हो सकता है? इसके उपरान्त **शिवपुराण** के माहात्म्य अध्याय २ में लिखा है कि इस पुराण के सुनने से मुक्तिकी प्राप्ति एवं लालची-मिथ्यावादी-दम्भी-हिंसक-मत्सरी-व्यभिचारी-देवताओं के द्रव्य खाने वाले और अभिमानी, वर्णाश्रम से पतित तथा महापातक आदि पाप करने वाले पुरुषों की शुद्धि हो जाती है—

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः।
कामादिनिरता नित्यं तेऽपि शुद्ध्यन्त्यनेन वै॥ ५॥
पुराणस्यास्य पुण्यं सन्महापातकनाशनम्।
भक्तिमुक्तिप्रदं चैव शिवसन्तोषहेतुकम्॥ १३॥

इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी लिखा है। तो फिर यह लेख भी क्या माननीय नहीं? यदि है तो व्यास महाराज को पुराणों के पाठ से शान्ति क्यों नहीं हुई? जबकि इसमें यह लेख भी उपस्थित है कि विशेषकर कलियुग में शिवपुराण के सिवाय दूसरा धर्म मनुष्यों को मुक्तिसाधन करने वाला नहीं है। जैसा कि अध्याय १ में लिखा है—

विशेषतः कलौ शैवपुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिसाधनकृद् मुने॥ २५॥

इसके उपरान्त आप यह भी विचारिये कि जब तक व्यास जी का अवतार नहीं हुआ तब तक जो ऋषि, मुनि, महात्मा, योगीराज इत्यादि सज्जन पुरुष जो वेदानुकूल कार्य्य करते रहे उनकी आत्मा की शान्ति हुई वा नहीं यदि हुई तो यह कहना कि वेदों के ज्ञान से व्यास जी की शान्ति नहीं हुई मिथ्या है।

इसलिए **भागवतपुराण** का व्यास जी का बनाना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। हाँ, जिस प्रकार मुसलमान साहिबान मानते हैं कि आख़ीर पैग़म्बर जनाब मुहम्मदसाहब के उत्पन्न होने से पहले की धर्मपुस्तकें इंजील और तोरेतादि सब मंसूख़ हो गईं और क़ुरानशरीफ़ ही आगे को खुदा की किताब क़ाबिल मानने के रह गई जो हज़रत मुहम्मदसाहब पर उतरी। यदि पण्डित जी हमारे सनातनी भाई ऐसा ही मानते हैं तो फिर सनातनधर्मियों को श्रीमद्भागवत के लेखानुसार शिव, देवी, गणपति, सूर्य, रामादि को छोड़कर श्रीकृष्ण व विष्णु भगवान् के ही गुण गाना चाहिए क्योंकि उन्हीं के गुणकीर्त्तन से उनके चित्त की शान्ति हुई। फिर अन्य पुराणों की क्या आवश्यकता रही? परन्तु यहाँ तो जब सनातनी भाई परस्पर मिलते हैं तो वह अपने-अपने पुराण और उपासक की प्रशंसा करते हैं जिसके कारण नाना मत भारत में फैल गये। अब इस माहात्म्य को भी संक्षेप से सुन लीजिए। देखिए, प्रत्येक पुराण अपनी ही तानता है—

देवी भागवत

स्कन्ध १२ अध्याय १४ में लिखा है कि इसके समान पुण्य पवित्र पापनाशक अन्य कोई नहीं इसके पद-पद में मनुष्य अश्वमेध का फल पाता है—

नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ५ ॥

मत्स्य

अध्याय २९१ में सूत जी ने कहा है कि हे ऋषियो! यह धर्म, अर्थ और काम का सिद्ध करने वाला महापुण्य पवित्र मत्स्यपुराण मैंने तुम्हारे आगे कह दिया। यह पुराण सब शास्त्रों का मुकुट रूप महापवित्र, आयु, कीर्त्ति और कल्याण का बढ़ाने वाला महापातकों का हर्त्ता होकर महाशुभ है। जो इस पुराण के एक पद का भी पाठ करता है वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक में अनेक सुखों को भोगता है—

अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद् दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥ ३२ ॥

वामन

अध्याय ९५ में लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण में रत्न के दान का और अग्निहोत्री श्रेष्ठ भूखे विप्र को अन्न के दान का जो फल है वह इस पुराण के पाठ से होता है। इसके सुनने से पाप नाश हो जाता है—

चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यं श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम्।
प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे महान्ति पापान्यपि नारदाशु ॥ ११ ॥

वाराह

उत्तरार्द्ध अध्याय १४२ में लिखा है कि जो उत्तमों से रहित अभक्ष भोजन करते हैं वह महा अधम हैं, उन भाग्यहीनों के लिए यह सुमार्ग हमने बड़े परिश्रम और यत्न से प्रकाश किया है। हे धरणि! जो अनेक भांति के पुण्य देने हारे पदार्थ हैं उनके सेवन से बहुत काल में चित्त शुद्ध होता है। इस वाराहपुराण के श्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो हमारा समीपवर्त्ती होता है—

एवमेतन्महाशास्त्रं देवि संसारमोक्षणम्।
मम भक्तव्यस्थायै प्रयुक्तं परमं प्रियम् ॥ १४८.२७ ॥

ब्रह्मवैवर्त्त

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय १ के आदि में लिखा है कि यह पुराण सारे पुराणों मे बड़ा वरन् वेद की भूलचूक को भी सुधारने वाला है—

भगवन् यत् त्वया पृष्टं ज्ञानं सर्वमभीप्सितम्।
सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम्॥ ४२॥
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्॥ ४३॥

भागवत

स्कन्ध १ अध्याय ३ में लिखा है कि भागवत ही एक ऐसा पुराण है जो नष्ट दृष्टि वालों के लिए सूर्य के समान है। स्कन्ध १२ अध्याय १३ में लिखा है कि जिस प्रकार नदी में गङ्गा, देवताओं में अच्युत, वैष्णवों में शुभ, क्षेत्रों में काशी, श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है। जैसा कि—

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः॥ १.३.४४॥
निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णावानां यथा शम्भुर्पुराणानामिदं तथा॥ १२.१३.१६॥
क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः॥ १२.१३.१७॥

लिङ्ग

उत्तरार्द्ध अध्याय ५५ में लिखा है कि इस लिङ्गपुराण को जो पुरुष आदि से अन्त तक पढ़े, श्रवण करे अथवा ब्राह्मणों को सुनाये वह परम गति को पाता है। तप, यज्ञ, दान, अध्ययन, कर्म, विद्या आदि से जो फल प्राप्त होता है, वही इस पुराण के सुनाने से होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा उसके वंश में कोई विद्याहीन, प्रमादी नहीं होता—

लैङ्गमाद्यन्तमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि॥ ३९॥
द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्॥ ४०॥

मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः ॥ ४२ ॥

वंशस्य चाक्षया विद्या चाप्रमादश्च सर्वतः ॥ ४३ ॥

गरुड़

अध्याय १७ में लिखा है कि सब प्रकार के यत्नों से गरुड़ पुराण सुनने योग्य है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का देने वाला है और दुःखनाशक है। यह सुनने वालों को पवित्र करने वाला, सब पापों का नाशक, सकल कामनाओं का देने वाला है। ब्राह्मण को विद्या, क्षत्री को राज्य, वैश्य को धन और शूद्र को पातक से शुद्ध करता है—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल।

धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम्॥ १० ॥

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।

शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥ ११ ॥

ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं लभेत्।

वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः शुद्ध्यति पातकात्॥ १२ ॥

मार्कण्डेय

माहात्म्य में लिखा है कि जो कोई इस पुराण को अच्छे ब्राह्मणों से पढ़वा कर सुन, उसकी पूजा करता है वह मनुष्य सब पापों से छूटकर अपने कुल को पवित्र करता है और आप भी पवित्र हो सनातन विष्णु लोक को जाता है। अध्याय १३४ में लिखा है कि यह कलियुग के पापों को नष्ट करता है सो मैं आपसे कहता हूं—

पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्र उत्तमे॥ २४ ॥

श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः।

सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम्॥ २५ ॥

पूतो याति न सन्देहो विष्णुलोकं सनातनम्॥ २६ ॥

दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम।

तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम्॥

शिवपुराण

शिवपुराण माहात्म्य में लिखा है कि हे मुने! इस शिवपुराण से अधिक कलियुगी मनुष्यों के मन का शुद्ध करनेवाला दूसरा पुराण नहीं—

एतस्मात् परं किञ्चित्पुराणाच्छैवतो मुने।
न विद्यते मनःशुद्ध्यै कलिजानां विशेषतः॥ १०॥

विशेषकर कलियुग में शिवपुराण के सिवाय दूसरा धर्म मनुष्यों को मुक्तिसाधन करने वाला नहीं—

विशेषतः कलौ शैवपुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिसाधनकृद् मुने॥ २५॥

सनत्कुमार संहिता अध्याय १ में लिखा है कि श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास अनेक शास्त्रादि इस शिवपुराण की अल्पकला को भी प्राप्त नहीं होते—

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च।
एतच्छिवपुराणस्य नार्हन्त्यल्पां कलामपि॥ ६४॥

विष्णु

अंश ६ अध्याय ८ में लिखा है कि जो कोई कलि पापनाशन यह पुराण सुनेगा वह सब पापों से छूट जाएगा—

इत्येत् परमं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम्।
यः शृणोति नरः पापैः स सर्वैर्द्विज मुच्यते॥ ५०॥

तथा इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जिस विष्णु पुराण में चराचर के गुरु ब्रह्मज्ञानमय सकल संसार के आदि, मध्य, अन्त में रहने वाले श्रीभगवान् विष्णु कहे गये हैं तिस परम पवित्र पुराण के सुनने व भक्ति सहित पुरुष के पढ़ने से जो फल मिलता है वह समस्त भुवन में नहीं क्योंकि इसके सुनने से एकान्त सिद्धरूप हरि ही फल मिलते हैं जिस अच्युत में बुद्धि लगाने से नरक को नहीं जाता व जिसके चिन्तन मात्र से स्वर्ग भी मिलता है व जिसमें मन लगाने से ब्रह्मलोक को भी जाता है—

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ॥ ५७ ॥

अग्निपुराण

अध्याय २७१ में लिखा है कि अग्निपुराण का कर्त्ता, श्रोता जनार्दन भगवान् है इससे अग्निपुराण सर्ववेद, सर्वविद्या, सर्वज्ञानमय और श्रेष्ठ है—

आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्त्ता श्रोता जनार्दनः।
तस्मात् पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत्॥ १७॥
सर्वविद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम्॥ १८॥

अध्याय ३८३ में लिखा है कि अग्निपुराण शास्त्र के समान कोई शास्त्र नहीं जो इसके एक श्लोक को भी पढ़ता है वह सौ कुल का उद्धार कर ब्रह्मलोक को जाता है। अग्नि ने इस अग्निपुराण को वेदसम्मत कहा (बनाया) है इससे श्रेष्ठतर कोई ग्रन्थ नहीं है, न शास्त्र, न इससे श्रेष्ठ कोई श्रुति है, न इससे परे ज्ञान और न इससे परे कोई स्मृति है—

अग्निना प्रोक्तमाग्नेयं पुराणं वेदसम्मतम्। ४७।
नास्मात्परतरो ग्रन्थो नास्मात्परतरा गतिः ॥ ४८ ॥
नास्मात्परतरं शास्त्रं नास्मात्परतरा श्रुतिः।
नास्मात्परतरं ज्ञानं नास्मात्परतरा स्मृतिः ॥ ४९ ॥

श्रीमान् को अच्छे प्रकार से प्रकट हो गया कि यह पुराण बड़े-बड़े पापियों के तारने के लिए बनाये गये हैं जैसा कि उनमें लेख है और अनेकानेक पाप उनके श्रवण मात्र से ही जाते रहते हैं इसके अतिरिक्त **शिवपुराण वायुसंहिता** उत्तरार्द्ध अध्याय १२ में तो शिव जी महाराज स्वयं प्रतिज्ञा कर कहते हैं कि पृथ्वी तल पर कैसा ही पतित क्यों न हो वह मेरी पञ्चाक्षरी विद्या से मुक्त हो जाता है—

मम पञ्चाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी।
मयैवमसकृद् देवि प्रतिज्ञातं धरातले।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययाऽनया॥ ४९ ॥

परन्तु शोक इस बात का भी है कि पुराणों में बहुधा ऐसे वचन भी मिलते हैं कि अमुक-अमुक कथा व प्रसङ्ग अमुक-अमुक पुरुषों को न सुनानी चाहिए, कुछ आप भी सुन लीजिए—

शिवपुराण

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय २ में कहा है कि यह मत्सरहीन विद्वानों के जानने योग्य वस्तु है और सत्पुरुषों के कृत्य से युक्त त्रिवर्ग का देने वाला है—

अमत्सरान्तर्बुधवेद्यवस्तु सत्सङ्क्लृप्तमन्त्रौघत्रिवर्गयुक्तम्॥ ६६ ॥

ज्ञानसंहिता अध्याय ७८ और **कैलाससंहिता** अध्याय १२ में लिखा है कि इसकी कथा नास्तिक, श्रद्धाहीन और अभक्त को न सुनानी चाहिए—

नास्तिकाय न वक्तव्यं श्रद्धाहीनाय वै सदा।

अभक्ताय न वाच्यं हि न चाशुश्रूषवे तथा॥ १४३ ॥

वायुसंहिता पूर्वार्द्ध अध्याय २ में लिखा है कि वह पतित, मूढ़ और कुत्सित-दुर्जनों की दृष्टि में नहीं आता—

अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्ज्जनैरपि कुत्सितैः॥ ६१ ॥

अध्याय ४ में लिखा है यह श्रेष्ठज्ञान अशान्त पुरुष को देना नहीं चाहिए, अपुत्र, असुवृत्त, सदाचरणहीन तथा अशिष्य को यह ज्ञान न देना चाहिए—

न प्रशान्ताय दातव्यमेतद् ज्ञानमनुत्तमम्।

नापुत्रायासुवृत्ताय नाशिष्याय च सर्व्वथा॥ ४२ ॥

वायुसंहिता उत्तरार्द्ध अध्याय ५ में लिखा है कि जो शिष्य न हो, शठ हो, अभक्त हो उनके निमित्त ऐसे अर्थों का उच्चारण न करे, यह वेद का अनुशासन है—

नाशिष्येभ्यः शठेभ्यो वा नाभक्तेभ्यः कदाचन।

व्याहरेदीदृशानर्थानिति वेदानुशासनम्॥ ८३ ॥

अध्याय २४ में लिखा है कि नास्तिक, शठ, कृतघ्न, तामस, पाखण्डी पापी यह सब मुझ से दूर रहें—

नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः।
पाषण्डश्चातिपापश्च वर्त्ततां दूरतो मम॥

भविष्यपुराण-उत्तरार्द्ध अध्याय २०८ श्रीकृष्ण महाराज का वचन है, कि दाम्भिक, शठ, नास्तिक, दुराचार आदि को यह प्रकाश न करना चाहिए किन्तु साधु, जितेन्द्रिय, सदाचार, देव, ब्राह्मण, भक्तपुरुष होयं वे पठन, श्रवण के अधिकारी हैं—

नैतत् प्रकाशनीयं हि दाम्भिकाय शठाय वा।
नास्तिकायान्यमनसे कुतर्कोपहताय च॥ ८॥
साधुवृत्ताय दान्ताय सत्यार्जवरताय च।
एतदाख्यायमानं हि शुभामुत्पादयेद् गतिम्॥ ९॥

मार्कण्डेयपुराण माहात्म्य अध्याय १३४ में लिखा है कि इस पुराण को नास्तिकों, वृद्ध, अपमानी, गुरु-ब्राह्मण के निन्दक और व्रतत्यागी, माता-पिता वेदशास्त्र के निन्दक जातित्यागी को कण्ठगत प्राण होने तक भी न दे। लोभ व मोह और डर से भी न दे; यदि कोई इन लोगों के आगे पढ़े व पढ़ावे वह नरक को जाता है। जैसा कि—

नास्तिकाय न दातव्यं वृद्धादिप्रभविष्णवे॥ २७॥
गुरुद्विजातिनिन्दाय तथा भग्नव्रताय च।
मातापित्रोर्निन्दकाय वेदशास्त्रादिनिन्दिने॥ २८॥
भिन्नमर्य्यादिने चैव तथा वै ज्ञातिकोपिने।
एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ २९॥
लोभाद्वा यदि वा मोहाद्भयाद्वापि विशेषतः।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेद् नरकं ध्रुवम्॥ ३०॥

वामन पुराण अध्याय ९५ में वामन जी ने नारद जी से कहा है कि इस परमरहस्य को तुम हरिभक्तिवर्जित और ब्राह्मण की निन्दा में युक्त ऐसे पापी पुरुषों से न कहना—

इदं रहस्यं परमं तवोक्तं न वाच्यमेतद् हरिभक्तिवर्जिते।
द्विजस्य निन्दारतिहीनदक्षिणे सहेतुवाक्यावृतपापसत्त्वे॥ १३॥

वाराहपुराण अध्याय १३९ में लिखा है कि मूर्ख, चुग़लख़ोर, श्रद्धा न रखने वाले, कुटिल और शास्त्रदूषित पुरुष को न सुनावे—

न पठेद् मूर्खमध्ये तु पिशुनानां पुरो न च। १०७।

अश्रद्धधाने क्रूरे वा न पठेद् देवले तथा। १०८।

मा पठेच्छास्त्रदूषाय अध्यायं वा कदाचन। १०९।

अध्याय १४५ में लिखा है कि इस कथा के अधिकारी वह हैं जो शठता, पिशुनता, गुरुद्रोह, पञ्चमहापातक आदि दुष्टकर्मों से रहित हैं और हमारे भक्त हो लोभ, मोह, अनाचार आदि से वर्जित हों—

पिशुनाय न दातव्यं न शठाय गुरुद्रुहे।

ये च पापाः कृतघ्नाश्च द्विजदेवापराधिनः॥ १११॥

कुशिष्याय न दातव्यं न दद्याच्छास्त्रदूषके।

नीचाय न च दातव्यं ये न जानन्ति सेवितुम्। ११२।

कूर्म पुराण अध्याय १ में लिखा है कि नास्तिक के लिए इस पुण्यकारी कथा को न कहे किन्तु श्रद्धा रखने वाले शान्त और धार्मिक द्विजाति के लिए कहे—

न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात् कदाचन॥ १०॥

श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये॥ ११॥

पद्म पुराण

षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८५ में महादेव जी ने कहा है कि श्रद्धारहित, पापात्मा, नास्तिक, सन्देहयुक्त और हेतुनिष्ठ यह पांच पूजा के फल के भागी नहीं हैं—

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्नसंशयः।

हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजाफलभागिनः॥ १९॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ३५ में लिखा है कि नास्तिक से न कहना और न श्रद्धाहीन पुरुष से कहना, निन्दक व शठ से भी न कहना, न भक्ति के वैरी को देना। रामभक्त शान्तस्वभाव तथा काम, क्रोध से रहित पुरुषों के सब दु:ख नाश करने वाला यह पदार्थ कहना—

नास्तिकाय न वक्तव्यं न चाऽश्रद्धालवे पुनः।
निन्दकाय शठायापि न देयं भक्तिवैरिणे॥ ४४॥
रामभक्ताय शान्ताय कामक्रोधवियोगिने।
वक्तव्यं सर्वदुःखस्य नाशकारकमुत्तमम्॥ ४५॥

पण्डित जी! इन सब बातों को विचारते हुए यह भी आप जान लें कि यह सब पुराण वेदानुकूल बनाये गये हैं। जैसा कि —

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अध्याय ३ में लिखा है—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम्॥ ४०॥

वेद के समान भागवत नाम पुराण सुनाते हुए।

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम्॥ ४२॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २५५ में लिखा है—

एतत्ते सर्वमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्।
ब्रह्मणा कथितं राजन् मनुः स्वायम्भुवोऽन्तरे॥ ११८॥

वसिष्ठ जी ने कहा कि हमने तुमसे ब्रह्मा जी के कहे हुए वेदसम्मत सब पुराण कहे॥ ११८॥

वायुपुराण अध्याय १ में लिखा है कि धर्म और न्याय की युक्तियों से सुभूषित और वेद के समान पुराण हैं—

पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मतम्।
धर्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषितम्॥ ९॥

अध्याय ४ में कहा है कि वेदसम्मत वायुपुराण को कहता हूँ—

पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसम्मतम्॥ १२॥

शिवपुराण वायुसंहिता अध्याय १ में कहा है कि यह शिवपुराण वेदसम्मत है। जैसा कि—

यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मतम्॥ ४९॥

ऐसा ही विद्येश्वरी संहिता अध्याय २ में भी कहा है।

अग्निपुराण अध्याय १ में लिखा है कि अग्नि पुराण वेद के तुल्य है—

अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं वेदसम्मतम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम्॥ १०॥

विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय ८ में पाराशर मुनि ने कहा है कि यह वेदसम्मत पुराण तुम से कहा—

एतत् ते यद् मयाख्यातं पुराणं वेदसम्मतम्। १२।

परन्तु पण्डित जी! यह भी ठीक नहीं इन दोनों में ज़मीन आसमान का अन्तर है। देखिए—

वेद और पुराणों के अन्तर का संक्षिप्त ब्यौरा।

(१) वेद सनातन ईश्वरीय वाक्य है, परन्तु पुराण सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् मनुष्यकृत हैं।

(२) वेद, बुद्धि, सृष्टिक्रम और सत्यज्ञान के अनुकूल है, पुराणों में सहस्रों वाक्य बुद्धि, सृष्टिक्रम और सत्यज्ञान के प्रतिकूल हैं।

(३) वेदों में एक ईश्वर की उपासना करने की आज्ञा है, परन्तु पुराणों में नाना देव और वृक्षादि के पूजन की आज्ञा है।

(४) वेदों के अनुकूल ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है, परन्तु पुराणों में कृष्ण, राम, तुलसी, शालिग्राम, गङ्गा आदि के केवल नामोच्चारण ही से मुक्ति हो जाती है।

(५) वेदों में मरने के पीछे मनुष्य का किया हुआ सत्कर्म सहायक होता है, परन्तु पुराणों के लेखानुसार पुत्रादि के लिये गया-आदिक तीर्थ में श्राद्धादिक कर्म और कट्टहा-इत्यादि का (जिसकी इस समय पुराणों के अनुसार बड़ी चर्चा है) देना भी सहायक होता है।

(६) वेदों में स्त्री-पुरुषों को वेदादि विद्याओं के पढ़ने की आज्ञा है, परन्तु पुराणों में स्त्री को शूद्रा बता वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं।

(७) वेदानुकूल ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम लिखे हैं और पुराणों में भी इनके गुण गाये हैं तो भी **अष्टवर्षा भवेद् गौरी०** के अनुसार विवाह कर ब्रह्मचर्याश्रम का खोज मारा जाता है जिसके कारण अन्य आश्रमों का सत्यानाश हो गया।

(८) वेदों में ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव को

मिला कर विवाह करने की आज्ञा है यहाँ पुराणों में कुम्भ, मीन इत्यादि को मिलाकर विवाह करते हैं।

(९) वेदों में प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा है, परन्तु पुराणों में इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के कपोलकल्पित, मन्त्रों के जप और अनेकानेक प्रकार की पूजा के बड़े-बड़े माहात्म्य और विधान लिखे हैं।

(१०) वेदों में ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य को एक ही ब्रह्मगायत्री के उपदेश करने की आज्ञा है यहाँ पौराणिक पण्डितों ने तीन और २४ गायत्री बना लीं इसी भांति दो काल सन्ध्या के स्थान पर तीन काल नियत कर लिए।

(११) वेदों में गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण नियत करने की आज्ञा है जिसको पुराण भी कहते हैं, परन्तु यहाँ जन्म से ही पुराणों की आज्ञा बतलाते हैं और मानते हैं।

(१२) वेदों में मधु और मांस का निषेध है, परन्तु पुराणों के लेखानुसार यज्ञ करके घोड़े और गाय को खाना भी लिखा है। और बकरे, शराब तो प्रतिदिन देवी का नाम लेकर खाते चले जाते हैं और बड़े-बड़े देवताओं के भोग लगाने की आज्ञा है।

(१३) चोरी, जारी, हिंसा करना आदि वेद में बुरे कर्म बतलाये हैं, परन्तु पुराणों के बड़े-बड़े देवता इन कार्यों को बेधड़क करते थे।

(१४) वेदों में स्त्रियों के लिए सर्वोपरि पतिसेवा करना लिखा है, परन्तु पुराणों में इसकी महिमा गाते हुए उपवास और वृक्षादि की पूजा और गङ्गा आदि स्नान से उनकी भी मुक्ति बतलाई है।

(१५) वेदों में उत्तम सत्सङ्गादि करने को तीर्थ माना है, परन्तु पुराणों में गङ्गादि स्थानविशेष को तीर्थ बतलाया है और उनके बड़े-बड़े माहात्म्यों से पुराण भरे पड़े हैं।

(१६) वेदों में सत्यादि नियमों के पालन का नाम तप कहा है, पुराणों में धूनी लगा बीच में बैठने को तप कहा है।

(१७) वेदों में नियम पालन को व्रत बतलाया है, वहाँ पुराणों में भूखे रहने को व्रत कहा है।

(१८) वेदों में स्त्रियों को एकान्त में पुरुष से सम्भाषण करने की आज्ञा नहीं, परन्तु पुराणों के अनुसार उनको चेली बना आनन्द से गुरुमन्त्र देते हैं।

(१९) वेदानुकूल कर्मों का फल प्रत्येक को मिलता है, परन्तु पुराणों के कथनानुसार पुत्रादि के कर्मों से बड़े-बड़े पापी तरना लिखा है।

(२०) वेदानुकूल मनुष्य की आयु अधिक से अधिक ४०० वर्ष, परन्तु पुराणों में ११ अरब वर्ष तक की आयु लिखी है।

(२१) वेदों में परमेश्वर, सच्चिदानन्दस्वरूप, अजन्मा, सर्वसामर्थ्य, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, निराकार, अजर, अमर, अभय, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, न्यायकारी, दयालु, अनन्त, सब जीवों का न्याय से फलदाता आदि लक्षण वाला माना है, परन्तु पुराणों में ईश्वर साकार, निराकार, विकार वाला माना है जो स्वभक्तों की रक्षा के अर्थ कच्छ, मच्छ और वाराह आदि अवतार लेता है।

(२२) वेदों में ईश्वर को सर्वशक्तिमान् माना है जो अपनी सामर्थ्य से सब कार्य स्वयं कर लेता है, परन्तु पुराणों में इस पर धब्बा लगाया गया है क्योंकि उसको भक्तों की रक्षा के लिए पृथ्वी पर अवतार अर्थात् जन्म लेना पड़ता है जैसा प्रह्लाद की रक्षा के लिए नरसिंह, राजा बलि को छलने के लिए वामन, पृथ्वी को लाने के लिए वाराह, समुद्र-मन्थन के लिए कच्छप आदि अवतार धारण करने पड़े।

(२३) वेदों में पुरुषों को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पति के साथ विवाह करने की आज्ञा है और पुराणों की शिक्षा से एक पुरुष जितनी चाहे उतनी स्त्रियाँ करले, देखो श्रीकृष्ण महाराज के १६१०८ स्त्रियाँ लिखी हैं।

इसके उपरान्त जब हम **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २३५ पर दृष्टि डालते हैं तो प्रकट होता है कि जब नमुचि आदि महादैत्यों ने जो केशव के भक्त थे, उन्होंने इन्द्रादि देवताओं को भयभीत कर दिया, तब देवता विष्णु महाराज के समीप गये और प्रार्थना की। तब उन्होंने महादेव जी से कहा कि दैत्यों के जीतने और मोहित करने के लिए तामस पुराणों अर्थात् पाखण्ड धर्म को कहिए। तब महादेव जी ने तामस पुराणों को बनाया। अध्याय २३६ में लिखा है कि मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द,

आग्नेय यह छह पुराण तामस हैं।

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे॥ १८॥

विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड, पद्म, वाराह ये शुभ सात्त्विक पुराण जानने चाहिएं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्राह्म ये राजस जानिये। तिनमें से सात्त्विक मोक्ष के देने वाले, राजस सदैव शुभ और तामस नरक की प्राप्ति के हेतु हैं—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने॥ १९॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च॥ २०॥
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे।
सात्त्विका मोक्षदाः प्रोक्ता राजसाः सर्वदा शुभाः॥ २१॥
तथैव तामसा देवि निरयप्राप्तिहेतवः॥ २२॥

श्रीमान् पण्डित जी! यदि यह बात सत्य है तो फिर सनातनी भाइयों को अठारह पुराण मोक्ष देने वाले नहीं मानना चाहिए। विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड, पद्म, वाराह, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये बारह स्वर्ग ले जाने वाले हैं फिर तामस पुराण जो नर्क ले जाने वाले हैं, त्याग देना चाहिए और उन बारह में से केवल भागवत से ही व्यास महाराज की शान्ति हुई इसीलिए पुराणों के लेखानुसार कलियुग में केवल एक ही भागवत नामक पुराण तारने वाला रहा परन्तु **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय १९३ में नारद महाराज कहते हैं कि कुकर्म के आचरण से सार सब ओर से इस समय में जाता रहा पदार्थ भूमि में इस प्रकार स्थित है जैसे बीज हीन भूसी। ब्राह्मणों ने भागवत की वार्त्ता घर-घर और जन-जन में धन के लाभ से पहुंचा दी इससे कथा का सार जाता रहा—

पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा।
विप्रैर्भागवती वार्त्ता गेहे गेहे जने जने॥ ७३॥

कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः। ७४।

भला पण्डित जी! जब नारदमुनि स्वयं भक्ति से कह रहे हैं कि कलियुग में तुझे घर-घर, जन-जन में स्थापित करूंगा। जैसा कि—

तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने॥ १९४.१४॥

तो फिर ब्राह्मणों का क्या दोष? यदि उसी समय सार जाता रहा तो अब तो बिलकुल ही सार नहीं रहा तो फिर श्रीमद्भागवत का सुनना-सुनाना भी व्यर्थ हुआ। पण्डित जी! पुराणलीला का पार पाना अत्यन्त ही कठिन है। हाँ, जिस प्रकार सोना कसौटी पर लगाने से अपने मूल्य को बता देता है इसी भांति इन पुराणों को समझ लीजिए, केवल विलम्ब इतना है कि जब तक आप बुद्धि रूपी कसौटी पर नहीं रखते उसी समय तक वह व्यास महाराज के बनाये हुए हैं फिर जहाँ बुद्धि से विचारा वहाँ तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह व्यास प्रणीत नहीं है और न यह धर्मपुस्तक है। परमात्मा का बताने वाला केवल वेद ही है, वही सनातनधर्म पुस्तक है, उसी के अनुकूल आचार-व्यवहार करने से प्राणियों को मुक्ति हुई, आगे भी होगी। हाँ, विद्या के अभाव होने से स्वार्थियों के हथकण्डों ने भारत को चोपट कर दिया। सच तो यह है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मचर्य के तपोबल से ईश्वरीय नियमों को यथावत् जान संसारी भय और मिथ्या प्रतिष्ठा पर लात मार पुराणों के झूठे लेखों की चिन्ता न कर (जैसा कि **पद्मपुराण** चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १ में लिखा है कि जो मनुष्य पुराणों की कथा सुन कर निन्दा करते हैं और हँसते हैं उनके हाथों में बहुत क्लेश देने वाले नरक सदैव स्थित रहते हैं) स्पष्ट कह दिया कि यह अठारह पुराण व्यास प्रणीत नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं। अब मैं इस विषय को समाप्त करता हूँ, अब समय हो गया।

पण्डित जी—अच्छा अब हम जाते हैं।

आर्य सेठ—श्रीमहाराज! नमस्ते।

पण्डित जी ने आयुष्मान् कहा और अन्य सबने यथायोग्य की और चल दिए।

॥ इति तृतीय परिच्छेद॥

चतुर्थ परिच्छेद

तीनों देवों का एकत्व

नियत समय पर पण्डित जी का आगमन आर्य सेठ, उठ कर स्वागत कर श्रीमान् आइए, महाराज नमस्ते।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह कर बैठ गये और अन्य सब सज्जन महाशय भी आ गये।

आर्य सेठ—पण्डित जी! बहुधा पुराणों में लिखा है कि तीनों देव एक की सेवा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश में से किसी एक की सेवा करने से तीनों ही प्रसन्न हो जाते हैं जो तीनों में भेदबुद्धि करते हैं, वह अवश्य नरक को जाते हैं। **वाराह पुराण** पूर्वार्द्ध अध्याय ७२ में लिखा है—

कर्मवेदयुजां विप्र ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः।
वयं त्रयोऽपि मन्त्राद्या नात्र कार्या विचारणा॥ १३॥

उत्तरार्द्ध अध्याय १३५ में लिखा है कि जो कल्याण करने हारे कैलाशवासी शङ्कर जी की सेवा करते हैं वे हमारे भी सेवक हैं और जो हमारी सेवा करते हैं वे शङ्कर के सेवक हैं, हम और शङ्कर में कुछ भेद नहीं—

अहं यत्र शिवस्तत्र शिवो यत्र वसुन्धरे।
तत्राहमपि तिष्ठामि आवयोर्नान्तरः क्वचित्॥ १४५.१०२॥

लिङ्गपुराण अध्याय ३ में लिखा है कि—

आदिकर्त्ता च भूतानां संहर्त्ता परिपालकः।
तस्माद् महेश्वरो देवो ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवः॥ ३७॥
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्व्वात्मको यतः।
एतदण्डे तथा लोका इमे कर्त्ता पितामहः॥ ३८॥

वह परमेश्वर तीन रूप धारण कर सृष्टि, स्थिति, संहार सदा किया

करता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों एक ही परमेश्वर हैं।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ७१ में लिखा है—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।
एकमूर्त्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदाः प्रकीर्तिताः॥ २१-२२॥

शिव विष्णु के रूप में वा विष्णु शिव के रूप में शिव के हृदय में और विष्णु के हृदय में शिव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों एक ही हैं और कुछ अन्तर नहीं है और ऐसा ही षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८१ में कहा है कि जैसे विष्णु जी हैं वैसे ही महादेव जी, इनमें कुछ अन्तर नहीं।

पञ्चम पाताल खण्ड अध्याय ९७ में लिखा है कि शिव, ब्रह्मा, विष्णु इन तीनों को त्रयी कहते हैं इनमें दीपक, अग्नि, बत्ती तथा तेल के संयोग का सा सम्बन्ध है—

भवो ब्रह्मा च विष्णुश्च त्रयमेव त्रयी मता।
दीपोऽग्निर्वर्तिस्नेहैस्तु यथा विप्र तथा हरिः॥ २८॥

भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय २०५ में लिखा है कि जो ब्रह्मा सो विष्णु, जो विष्णु सो शिव, जो शिव सो सूर्य, जो सूर्य सो अग्नि, जो अग्नि सो कार्तिकेय, जो कार्तिकेय सो गणपति इनमें कुछ भेद नहीं है—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते॥ ११॥
पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः।
गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्त्तिताः॥ १२॥

शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय ४ में लिखा है कि मेरे हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में मैं, जो कोई अन्तर नहीं जानता, वही हमारा भक्त है—

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम॥ ६४॥

अध्याय ५ में कहा है कि हममें और तुममें विचारदृष्टि से अणुमात्र

का भी भेद नहीं है, यथार्थ में तो तुम अनेक रूप से प्राप्त होने वाले हो—

आवयोरन्तरं नैव ह्यणुमात्रं विचारतः।

वस्तुत्वे चाप्यनेकत्वं चरतोऽपि तथैव च॥ १९॥

देवीभागवत स्कन्ध ३ अध्याय ६ में लिखा है कि जो कोई मनुष्य विष्णु और शिव और ब्रह्मा में भेद करेगा वह नरक को जावेगा क्योंकि जो हरि सोई शिव और जो शिव सोई हरि इसी प्रकार ब्रह्मा भी—

यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः।

एतयोर्भेदमातिष्ठन् नरकाय भवेद् नरः॥ ५५॥

परन्तु पण्डित जी! जब हम ध्यान से पुराणों को देखते हैं तो उपर्युक्त कथन के विरुद्ध बहुतायत से ऐसे लेख मिलते हैं जिनसे तीनों पृथक्-पृथक् जान पड़ते हैं। कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई शिव और कोई-कोई इनके अतिरिक्त देवी इत्यादि के गुण गाता है। जैसा कि विष्णुपुराण में विष्णु महाराज को परमात्मा मान शिवादि को तुच्छ ठहराया है। शिवपुराण और लिङ्गपुराण में शिव को परमेश्वर ठहरा कर विष्णु-ब्रह्मा को सेवक और देवीभागवत में देवी महारानी को बड़ा मान कर अन्य को तुच्छ ठहराया है। इसी भांति भागवत में श्रीकृष्ण और भविष्यपुराण में सूर्य्यभगवान् के गुणों का महत्त्व दिखलाया है। फिर उनकी उपासना में भी न्यूनाधिक फलादि का वर्णन किया अर्थात् वह बात जो प्रथम लिख आये हैं कि एक की पूजा करने से तीनों प्रसन्न हो जाते हैं, ठीक नहीं रहती। कृपा करके कुछ इस विषय को भी सुन लीजिए।

शिव जी का बड़प्पन

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १५ में कहा है कि महादेव के समान देवता नहीं है, न महादेव के समान गति है, दान विषय में महादेव के समान कोई नहीं है और न कोई पुरुष संग्राम में ही महादेव के समान है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।

नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥ ११॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अध्याय ७ में कहा है—

न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम्॥ ३१॥

तुम्हारी जो परमज्योति है सो सब लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इनको भी गम्य नहीं है।

और **महाभारत** अनुशासन पर्व अध्याय १६ में कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वदेव और महर्षि लोग तुम्हें यथार्थरूप से नहीं जानते, फिर मैं तुम्हें किस प्रकार से जानूं—

ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः।
न विदुस्त्वां तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम्॥ १५॥

कूर्मपुराण, अध्याय ९ में महादेव ने विष्णु जी से कहा कि आप सब कार्य के कर्त्ता हैं, मैं आदि देव हूं, तुम सोम हो, मैं सूर्य हूं, आप रात्रि, मैं दिन, तुम प्रकृति, मैं अव्यक्तपुरुष, आप ज्ञान, मैं ज्ञाता हूं, आप माया, मैं ईश्वर हूं, आप विद्यात्मिका शक्ति, मैं शक्तिमान् ईश्वर हूं—

तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहम् अधिदैवतम्॥ ८२॥
भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान् रात्रिरहं दिनम्॥ ८३॥
भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान् मायाहमीश्वरः॥ ८४॥
भवान् विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः॥ ८५॥

देवीभागवत पञ्चम स्कन्ध प्रथम अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा से विष्णु और विष्णु से महादेव बड़े हैं, और **लिङ्गपुराण** अध्याय १७ में लिखा है कि प्रलयकाल के समय ब्रह्मा और विष्णु में घोर संग्राम हुआ, वहाँ एक लिङ्ग उत्पन्न हुआ। उसके अन्त के पाने के अर्थ विष्णु शूकर का और ब्रह्मा हंस का रूप धारण कर नीचे और ऊपर गये परन्तु अन्त किसी को नहीं मिला और दोनों शम्भु की माया से भयभीत हो गये।

शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय २५ में विष्णु जी ने स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण देवता और ऋषि, ब्रह्मा और विष्णु, सिद्धि के लिए शङ्कर की पूजा करते हैं—

ते पूजयन्ति सर्वे वै देवा ऋषिगणास्तथा।
ब्रह्मा चैव तथा विष्णुरन्ये देवाश्च ये पुनः॥ ४८॥
पूजयन्ति तदा देवं नित्यं सिद्धिसमीहया॥ ४९॥

कूर्मपुराण अध्याय ३४ में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज ने एक वर्ष तक पाशुपतव्रत से शिव की आराधना की, तब शिव ने प्रसन्न होकर उनको वर दिया कि जो गोविन्द को मेरी भक्ति से विधिपूर्वक पूजेंगे, वह ज्ञान को प्राप्त करेंगे—

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः।
उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्वृतः॥ २०॥
ददौ कृष्णस्य भगवान् वरदो वरमुत्तमम्। २३॥
येऽर्च्चयिष्यन्ति गोविन्दं मद्भक्त्या विधिपूर्वकम्।
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मयम्॥ २४॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड उत्तरार्द्ध अध्याय १०९ में लिखा है कि शिव की पूजा से शिवलोक मिलता है, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि उनके द्वार के द्वारपालक हैं। लक्ष्मी, सरस्वती दोनों देहली झाड़ती हैं, अन्य देवों की स्त्रियाँ दासीकर्म में लगी रहती हैं। जैसा कि—

इष्टान् भोगान् अवाप्याथ शिवलोके महीयते।
ब्रह्मविष्णुमहेन्द्राद्यास्तत्पुरे द्वारपालकाः॥ ५७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदेव्यौ देहल्याद्यर्च्चने क्षितेः।
नियुक्ते देवदेवस्य देवाश्च सुरयोषितः॥ ५८॥

पुनः अध्याय १०९ में ही लिखा है कि शिव यह मङ्गल नाम जिसकी वाणी पर टिकता है शीघ्र ही उसके महापापों की कोटियाँ भस्म हो जाती हैं—

शिवेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।
भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातककोटयः॥ ७८॥

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय २३ में लिखा है कि वे धन्य हैं और कृतार्थ हैं, उनका देह धारण करना सफल है, उन्होंने अपना कुल

उद्धार कर दिया है जो शिव की उपासना करते हैं—

ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम्।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते॥ ५ ॥

ज्ञान संहिता अध्याय ८ में लिखा है कि विष्णु महाराज ने एक करोड़ छियासठ सहस्र वर्ष तक महादेव जी की आराधना कर उनको प्रसन्न किया जिन्होंने उनको अनेकानेक वर दिये और अध्याय २० श्लोक २४ में विष्णु जी ने कहा है कि शिव जी की पूजा किये बिना कोई पुरुष सिद्धि को नहीं पाता है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ११० में भीष्म जी ने कहा है—

यं विष्णुरिन्द्रः शम्भुश्च ब्रह्मा लोकपितामहः।
स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम्॥
तमर्चयन्ति ये शश्वद् दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिव का जो पूजन करता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। ऐसा ही अनुशासन पर्व अध्याय १४ श्लोक २३२ में लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु और समस्त देवता उनके लिङ्ग की पूजा किया करते हैं, उससे बढ़ कर दूसरा कौन है, इस कारण वही सबका इष्टदेव है।

लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय ११ में लिखा है कि जिस राजा के राज्य में शिव को छोड़ मनुष्य अन्य देवता का पूजन करते हैं वह राजा अपने राज्य सहित रौरवनरक को जाता है—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्यदेवताः।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ३५ ॥

शिव को छोड़ अन्य देवताओं में भक्ति करना ऐसा है जैसा स्त्री अपने पति को त्याग कर जार पुरुष में आसक्त होती है—

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते॥ ३६ ॥

और पूर्वार्द्ध अध्याय १०७ में लिखा है कि हे पुत्र! स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी आदि सब स्थानों में रत्नों के प्रवाह बहते हैं परन्तु भाग्यहीन पुरुषों

को नहीं मिल सकते। राज्य, स्वर्ग, मोक्ष तथा क्षीर आदि उत्तम भोजन और भांति-भांति के पदार्थ शिव के अनुग्रह के बिना नहीं मिलते इसलिए अन्य देवों के आराधन करने वाले अनेक दुःख भोगते हैं केवल शिव आराधन से ही सब दुःख दूर हो जाते हैं—

तटिनी रत्नपूर्णास्ते स्वर्गपातालगोचराः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे॥ १२॥
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षञ्च भोजनं क्षीरसम्भवम्।
न लभन्ते प्रियाण्येषां नो तुष्यति सदा भवः॥ १३॥
भवप्रसादजं सर्व्वं नान्यदेवप्रसादजम्।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमन्ति च॥ १४॥

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १७ में कहा है कि संसार में मुक्त करने वाले महादेव के अतिरिक्त अन्य देवता मनुष्यों के तपोबल को नष्ट किया करते हैं—

एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम्।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्॥ १६९॥

और हे कृष्ण! देवों के देव महादेव के विषय में जो असूया करते हैं वे पूर्व पुरुषों तथा पुत्रों सहित नरक में डूबते हैं—

यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम्।
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः॥ १८॥

पुराणपरीक्षा में **शिव पुराण** से लिखा है—

तथान्यदेवताभक्तिर्ब्राह्मणस्य विगर्हिता।
विदूरमतिविप्राणाञ्चाण्डालत्वं प्रयच्छति।
तस्य सर्वाणि नश्यन्ति पितरं नरकं नयेत्॥

शिव को छोड़ कर दूसरे देव की भक्ति से ब्राह्मण चाण्डाल हो जाता है और उसका पिता नरक में जाता है।

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय २३ में लिखा है कि जिसके माथे पर विभूति नहीं, अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं, मुख में शिवमयी वाणी नहीं

उसको अधम के समान त्याग देना चाहिए—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा॥ १३॥

अध्याय २४ में लिखा है कि भस्म रहित मस्तक, शिवालय रहित ग्राम, ईश्वर के अर्चन रहित जन्म, शिव आश्रयहीन विद्या को धिक्कार है—

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्।
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम्॥ ४५॥

जो तीनों जगत् के आधार भूत हर अर्थात् शिव की निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले की निन्दा करते हैं, उनके दर्शन में पाप है वे निश्चय वर्णसङ्कर, शूकर, असुर, खर, श्वान, गीदड़ के समान पापरूप उत्पन्न हो केवल नरक ही के जाने को जन्मे हैं—

ये निन्दन्ति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरम्।
ये निन्दन्ति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने।
ते वै सङ्करशूकरासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमाः।
जाता एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम्॥ ४६॥

धर्मसंहिता अध्याय १८ में लिखा है कि शिव की निंदा करने वाले को ब्रह्महत्या, सुरापान और गुरुस्त्रीगमन के समान पाप लगता है।

सुमहत्पातकान्याहुः शिवनिन्दासमानि च।
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥ ६॥

पद्मपुराण पातालखण्ड उत्तरार्द्ध अध्याय ६ में लिखा है कि बिना शिव की पूजा किये जो अधम मनुष्य भोजन करता है, उसका भोजन अन्नरूप पापों का भोजन कहाता है—

अपूजयित्वा चेशानं यो हि भुङ्क्ते नराधमः।
पापमन्नरूपाणां तस्य भोजनमुच्यते॥ ७८॥

सन्मतनिरूपण और **पुराण आदर्श** और—**श्रीमान् पण्डित सूर्यप्रसाद जी** ने अपनी किताब में **पद्मपुराण** से लिखा है कि विष्णु के

भक्त पर शिव जी क्रोध करते हैं और शिव जी के क्रोध से मनुष्य नरक को पाते हैं इसलिए विष्णु का नाम कभी न लेना चाहिए—

विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम्॥
तस्माद्वै विष्णुनामानि न वक्तव्यं कदाचन॥

इन सब बातों के अतिरिक्त शङ्कर की पूजा में कुछ नियम नहीं। उलटी-सीधी जैसी हो सब ही प्रकार की पूजा शङ्कर की शीघ्र फल देने वाली है। जैसा कि **पद्मपुराण** पञ्चम पातालखण्ड उत्तरार्द्ध अध्याय १०८ में कहा है—

यादृशं तादृशं वापि नियमेनार्चनं विभोः॥ ७७॥
शङ्करस्याशुफलदं यादृशस्यापि देहिनः॥ ७८॥

विष्णु जी की बड़ाई

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७१ में महादेव जी ने कहा है कि विष्णु जी के बराबर श्रेष्ठ धाम, श्रेष्ठ तपस्या, श्रेष्ठ धर्म नहीं है और वैष्णव के समान मन्त्र नहीं—

नास्ति विष्णोः परं धाम नास्ति विष्णोः परं तपः।
नास्ति विष्णोः परो धर्मो नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः॥ ३०९॥

विष्णु जी के तुल्य श्रेष्ठ सत्य, श्रेष्ठ यज्ञ, श्रेष्ठ ध्यान और श्रेष्ठ गति नहीं है—

नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो मखः।
नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परा गतिः॥ ३१०॥

विष्णु ही सर्वतीर्थमय, सर्वशास्त्रमय और सर्वयज्ञमय हैं—

सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः॥ ३१२॥

महाभारत वन पर्व अध्याय ८५ में ब्रह्मा जी ने कहा है कि गङ्गा के सामन कोई तीर्थ, विष्णु के समान कोई देवता और ब्राह्मणों के समान कोई पूज्य नहीं।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २५५ में भृगु जी ने ऋषियों की

सभा में कहा कि ब्रह्मा और शिव जो देवों में श्रेष्ठ हैं उनमें रजोगुण और तमोगुण अधिक है। मैंने हे श्रेष्ठ ऋषियो! उनको शाप दे दिया है कि ब्राह्मणों से पूजा पाने के योग्य नहीं हैं परन्तु विष्णु शुद्ध और सत्त्वगुणी और मङ्गल का समुद्र है, वह नारायण परब्रह्मरूप है, इस कारण हरि (विष्णु) ही ब्राह्मणों का देवता है—

रजस्तमोगुणोद्रिक्तौ विधीशानौ सुरोत्तमौ ॥ ८९ ॥
शप्तौ मया न पूज्यौ तौ विप्राणामृषिसत्तमाः ॥ ९० ॥
शुद्धसत्त्वमयो विष्णुः कल्याणगुणसागरः ॥ ९१ ॥
नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः ॥ ९२ ॥

विष्णुपुराण अंश ३ अध्याय ८ में लिखा है कि विष्णु की आराधना करने से प्राणी पृथ्वी स्वर्गादि के सुख व मोक्ष व सब कुछ पाता है, कहाँ तक गिनावें जो-जो व जितना-जितना फल विष्णु के आराधन से होता व जितना वह चाहता है, सब फल पाता है।

पद्मपुराण पातालखण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय ९७ में लिखा है कि यह सब पुराण शास्त्र जगत् के व्यामोह के लिए हैं वे सब कल्प पर्य्यन्त शारीरिक विषयों को नाना प्रकार से कहते हैं परन्तु उन सबोंका सिद्धान्त एक विष्णु सब शास्त्रों में गाये गये हैं, इससे यही सब व्यापारयुक्त शास्त्रों में विष्णु की प्रधानता है—

स्युर्मोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमाः।
तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पे विधौ।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान् विष्णुः समस्तागम-
व्यापारेषु विवेकिनां व्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥ २७ ॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ८४ में लिखा है कि हरि के आराधन को छोड़कर पाप-समूहनिवारण करने वाला प्रायश्चित्त प्राणियों के लिए अन्य कोई नहीं है—

हरेराराधनं हित्वा दुरितौघनिवारणम् ॥ १७ ॥
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां प्रायश्चित्तं परं मुने ॥ १८ ॥

वामनपुराण अध्याय ९३ में लिखा है कि जो भक्ति से विष्णु के

चरण कमलों को नहीं पूजते वह जीते हुए मरे के समान हैं—

ये नराः वासुदेवस्य सततं पूजने रताः।

मृता अपि न शोच्यास्ते सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ३६॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के **ब्रह्मखण्ड** अध्याय ११ में सूर्य्य ने कहा है कि गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं, कृष्ण से परे कोई देवता और शङ्कर से परे कोई वैष्णव नहीं—

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः।

न शङ्कराद् वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरापरा॥ १६॥

शिव स्वयं कहते हैं कि विष्णु जी की भक्ति से मैं वैष्णव हुआ हूँ। जैसा कि **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २९ में लिखा है—

संसारे तुच्छसारेऽस्मिन् कुतो वै वैष्णवा जनाः।

अहं हि वैष्णवो जातो विष्णोर्भक्तिप्रसादतः॥ २५॥

काश्यां निवसतां ह्यत्र रामरामेति संजपन्।

तेन पुण्यादियोगेन शिवो वै नात्र संशयः॥ २६॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय ६ में महादेव जी ने श्रीकृष्ण जी से यह वर मांगा कि आप में मेरी भक्ति हो और नौ प्रकार की जो भक्ति तथा छह प्रकार की मुक्ति और १८ प्रकार की सिद्धि योग, तप और वृद्धि को दीजिए—

त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने।

सदोल्लसितमेषां च विरतौ विरतिं लभेत्॥ १४॥

अमरत्वं च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः।

योगास्तपांसि सर्वाणि दानानि च व्रतानि च॥ २०॥

इस पर श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि शतकोटि कल्प तक मेरी सेवा करो तो तुम तपस्वियों, श्रेष्ठ योगियों, सिद्धों, ज्ञानियों, वैष्णवों, देवताओं के ईश्वर-अमरत्व तुम और अमर-वेदों के ज्ञाता और मेरे समान पराक्रमी, यशस्वी होगे—

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदां वर।

कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वद् अहर्निशम्॥ २६ ॥
वरस्तपस्विनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनां तथा।
ज्ञानिनां वैष्णवानां च सुराणाञ्च सुरेश्वर॥ २७॥
अमरत्वं लभ भव! भव मृत्युञ्जयो महान्।
सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्वरात्॥ २८ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २५५ में कहा है कि हे पुरुषोत्तम जी! जो आपके बिना अन्य देवताओं को पूजते हैं, वे पाखण्डभाव को प्राप्त होकर सब संसार में निन्दित होते हैं—

येऽर्चयन्ति सुरानन्यांस्त्वां विना पुरुषोत्तम।
ते पाखण्डत्वम् आपन्नाः सर्वलोकविगर्हिताः॥ ५८॥

रजोगुण से युक्त ब्रह्मा और तमोगुण से युक्त महादेव आदिक देवता पूजने योग्य नहीं है, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त आप ही ब्राह्मणों के सेवने योग्य हैं—

अनर्च्या ब्रह्मरुद्राद्या रजस्तमोविमिश्रिताः।
त्वं शुद्धसत्त्वगुणवान् पूजनीयोऽग्रजन्मनाम्॥ ६० ॥

आपके चरण का जल पितृ, देवता और सब ब्राह्मणों के सेवने योग्य, मुक्ति देने वाला और पाप नाश करने वाला है—

त्वत्पादसलिलं सेव्यं पितॄणां च दिवौकसाम्।
सर्वेषां भूसुराणां च मुक्तिदं कल्मषापहम्॥ ६१ ॥

आपके भोजन की जूठन बची हुई पितृ, देवता और ब्राह्मणों के सेवन योग्य है और किसी को योग्य नहीं है—

त्वद्भुक्तोच्छिष्टशेषं वै पितॄणां च दिवौकसाम्।
भूसुराणां च सेव्यं स्याद् नान्येषां तु कदाचन॥ ६२ ॥

अन्य देवताओं का अन्न, फूल, जल सब निर्माल्य छूने योग्य नहीं होता है, किन्तु मदिरा के समान होता है—

इतरेषां तु देवानामन्नं पुष्पं जलं तथा।
अस्पृश्यन्तु भवेत् सर्वं निर्माल्यं सुरया समम्॥ ६३ ॥

जो ज्ञान से दुर्बल ब्राह्मण एक बार भी महादेव आदिकों के निर्माल्य को भोजन कराता है, वह निश्चय चाण्डाल होता है और करोड़ हज़ार कल्प नरक की अग्नि से पचता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणों महादेव आदिक देवताओं का निर्माल्य राक्षस, यक्ष और पिशाचों का अन्न ये सब मदिरा मांस के समान हैं, तिससे ब्राह्मणों को भोजन न करने चाहिएं—

सकृदेव हि योऽश्नाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
निर्माल्यं शङ्करादीनां स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्॥ ९९॥
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकाग्निना।
निर्माल्यं भो द्विजश्रेष्ठा रुद्रादीनां दिवौकसाम्॥ १००॥
रक्षोयक्षपिशाचानां मद्यमांससमं स्मृतम्।
तद् ब्राह्मणैर्न भोक्तव्यं देवानां भुञ्जितं हविः॥ १०१॥

मोह के कारण जो विष्णु के उपरान्त अन्य किसी देव को पूजता है, वह पाखण्डी होता है, कृष्ण के स्मरण से पापियों की भी मुक्ति होती है—

तस्मात् त्वमेव विप्राणां पूज्यो नान्योऽस्ति कश्चन॥
मोहाद् यः पूजयेद् अन्यान् स पाखण्डी भविष्यति॥ ६९॥

सब देवताओं में पवित्र पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी हैं तिनके छूने और देखने से महादेव आदिक निर्मल हो गये और सबके माता-पिता जनार्दन जी हैं—

राघवः सर्वदेवानां पावनः पुरुषोत्तमः॥ ११५॥
स्पृष्टा दृष्टाश्च तेनैव विमलाः शङ्करादयः।
सर्वेषामपि देवानां पिता माता जनार्दनः॥ ११६॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ४ अध्याय २ में लिखा है—

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥ २८॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ।
नारायणकलाः शान्ताः भजन्ति ह्यनसूयवः॥

जो शिव की सेवा करे और जो उनके मत पर चले वे पाखण्डी और

सत्यशास्त्र के शत्रु हैं जो मुक्ति के अभिलाषी हैं वे भयानक रूप वाले भूतपति को छोड़ शान्त और निर्दोष नारायण की कला को भजते हैं। **पुराण परीक्षा** में **पद्मपुराण** से लिखा है—

सौरस्य गाणपत्यस्य शैवादेर्भूरिमानिनः।
शाक्तस्य वैष्णवो वारि हस्ते ह्यन्नम् परित्यजेत्॥
सङ्गं विवर्जयेच्छैवशाक्तादीनां तु वैष्णवः।
न कार्य्या प्रार्थना तेभ्यः तेषां द्रव्यममेध्यवत्॥

सूर्य्य, गणेश, शिव और देवी के भक्तों का छुआ अन्न और जल वैष्णव ग्रहण न करे और न उनके सङ्ग में रहे, न उन से कुछ माँगे क्योंकि उनका धन अमेध्यवत् है।

पद्म पुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७१ में लिखा है कि सब धर्मों से त्यागे हुए केवल विष्णु जी का नाम मात्र ही कहने वाले जिस गति को सुख से प्राप्त होते हैं, उसको सब धर्म करने वाले नहीं प्राप्त होते हैं—

सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पिनः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः॥ ९९॥

ब्रह्मा जी का महत्त्व

इनके विषय में बहुधा पुराणों में यह लिखा है कि पुत्री के साथ अनुचित व्यवहार करने, श्री कृष्ण महाराज की गायें चुराने आदि के कारण इन की पृथक् पूजा बन्द हो गई तो भी **भविष्य पुराण** पूर्व अध्याय १७ के श्लोक ४ से १७ तक में लिखा है कि ब्रह्मा की सदा पूजा करनी चाहिए यही जगत् को उत्पन्न करते हैं, संहार करने वाले भी यही हैं, रुद्र इनके मन से उत्पन्न हुए हैं, विष्णु वक्षस्थल से और वेद इनके चारों मुखों से निकले हैं। सब देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नागादि इनकी पूजा करते हैं। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय और ब्रह्मा में स्थित है इसलिए ब्रह्मा जी सबके पूज्य हैं, जो ब्रह्मा जी को नहीं पूजता वह राज्य, स्वर्ग और मोक्ष कभी नहीं पाता इनके सेवन से तीनों पदार्थ मिलते हैं।

इस कारण प्रसन्नचित्त होकर सदा पूजा करनी चाहिए। उनका बिना पूजन किये भोजन करने से प्राण त्याग देना अथवा नरक में गिरना अच्छा

है। जो भक्ति से सदा ब्रह्मा जी का पूजन करे वह मनुष्य रूप में साक्षात् ब्रह्मा ही है। ब्रह्मा के पूजन से अधिक कोई पुण्य नहीं यह समझ, सदा ब्रह्मा जी का अर्चन करता रहे। ऐसे पुरुष के दर्शन और स्पर्श से २१ कुलों का उद्धार हो जाता है। इनकी पूजा करने वाला मनुष्य बहुत काल ब्रह्मलोक में निवास कर मर्त्यलोक में जन्म लेवे तब चक्रवर्त्ती राजा सर्ववेद वेदाङ्ग का पारगामी तपों से और न यज्ञों से कुछ प्रयोजन है केवल ब्रह्मा जी की पूजा से सब पदार्थ मिल सकते—

ब्रह्मणोऽर्चां प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः।
यत्पुण्यं फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु॥ १६॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधःप्रतिष्ठया॥ १७॥

देवी जी के गुण

देवीभागवत स्कन्ध ५ अध्याय १ में लिखा है कि अकार ब्रह्मा का, उकार हरि का, मकार रुद्र का, अर्द्धमात्रा भगवती का स्वरूप है। इसी से एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर उत्तम है अर्थात् ब्रह्मा से विष्णु, विष्णु से शिव, शिव से देवी उत्तम है, इसी से सर्वशास्त्र में देवी सबसे उत्तम गिनी जाती है—

अकारो भगवान् ब्रह्माप्युकारः स्याद् हरिः स्वयम्॥ २२॥
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्द्धमात्रा महेश्वरी।
उत्तरोत्तरभावेनाऽप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः॥ २३॥

इसके अतिरिक्त जब पाण्डव लोग विराट् नगर में प्रवेश करने लगे, तब युधिष्ठिर महाराज ने जो देवी की स्तुति की उसके पाठ से विदित होता है कि वही जगत् की स्वामिनी और सबकी रचने वाली है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृति खण्ड अध्याय ३४ में कहा है कि दुर्गा और विष्णु की माया में सब शक्तियाँ लीन हो जाती हैं—

दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः॥ ६१॥

देवीभागवत स्कन्ध १ के अध्याय ४ में लिखा है कि विष्णु जी ने कहा कि यद्यपि सब जानते हैं ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता और हम पालनकर्त्ता हैं और

शिव संहारकर्त्ता हैं तो भी वेदपारगामी लोग कहते हैं कि यह तीनों शक्ति के आश्रय हैं। सच है कि राजसी शक्ति उस भगवती की तुम में, सात्त्विकी हममें और तामसी रुद्र में, जिसके बिना हम, तुम और शङ्कर अपना-अपना कार्य कर नहीं सकते—

जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी।

सात्त्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्त्तिता॥ ४७॥

तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः।

नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शङ्करः॥ ४८॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय २२ में लिखा है कि तुम्हारा जन्म कभी नहीं होता और न हे जगत्पते! न कभी तुम्हारा अन्त ही होता है न हे विभो! वृद्धि क्षय व बन्धन तुम में है—

तव जन्म तु नास्त्येव नान्तस्तव जगत्पते।

वृद्धिक्षयपरीणामास्त्वयि सत्येव नो विभो॥ ३१॥

मार्कण्डेयपुराण अध्याय ८१ में लिखा है कि—

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।

संसारबन्धुहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ ४४॥

वह भगवती परम विद्या का स्वरूप और मुक्ति का कारण और सनातनी है, वही भगवती संसार के बन्धन का कारण और सम्पूर्ण ईश्वरों की ईश्वरी है।

देवीभागवत स्कन्ध ४ अध्याय १८ में विष्णु महाराज ने कहा है कि न मैं स्वतन्त्र हूँ, न ब्रह्मा और न शिव इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण भी स्वतन्त्र नहीं यह सब स्थावर, जङ्गम जगत् योगमाया के वश है—

नाहं स्वतन्त्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा।

नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा॥ ३३॥

योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्॥ ३४॥

देवीभागवत स्कन्ध १२ अध्याय ८ में लिखा है कि विष्णु की

उपासना नित्य नहीं, न वेद में कहीं विधान किया है न विष्णु की दीक्षा नित्य है और शिव की उपासना भी इसी प्रकार नित्य नहीं है। गायत्री की उपासना नित्य है और सब वेदों ने इसकी आज्ञा दी है। इस गायत्री को छोड़ कर जो विप्र विष्णु अथवा शिव की उपासना में प्रीति करते हैं वह सर्वथा नरक को जाते हैं—

न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कर्हिचित्।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च॥ ८८॥
गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ ८९॥

और स्कन्ध १२ अध्याय ९ में लिखा है कि गौतम जी ने ब्राह्मणों को शाप दिया और कहा था कलियुग में तुम कुम्भीपाक नरक से छूट कर जन्म लोगे और वेदविमुख होगे इस कारण हे राजन्! कृष्ण जी के परमधाम जाने और कलियुग के आरम्भ होने पर कुम्भीपाक नरक से छूटकर वह लोग जो पहिले गौतम के शाप से दग्ध थे, संसार में ब्राह्मण उत्पन्न हुए। जो कभी सन्ध्या नहीं करते थे गायत्री की भक्ति नहीं, वेद से हीन और पाखण्ड मत के अनुयायी अग्निहोत्रादि जो सच्चे कर्म हैं उनको नहीं जानते। कोई-कोई अपने शरीरों को गरम मुद्राओं से अङ्कित कराते हैं, कोई कपाली, कोई वाममार्गी, कोई बौद्ध, कोई जैन होते हैं, पण्डित होकर भी सारे दुराचारों को फैलाते हैं, पराई स्त्रियों पर जी चलाते हैं और दुराचार में लगे हुए हैं ऐसे सब लोग अपने कर्मों से कुम्भीपाक में जायेंगे इसलिए पूरे जी से देवी की सेवा करनी योग्य है, न विष्णु की उपासना नित्य है न शिव जी की, शक्ति की उपासना नित्य है जिसके बिना मनुष्य की अधोगति होती है—

न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा॥ ९८॥
नित्या चोपासना शक्तेर्या विना तु पतत्यधः॥ ९९॥

इसके उपरान्त ब्रह्मादि सर्वदेव उस सनातनी भगवती का ध्यान करते हैं, इससे सबको उचित है सब उसको ध्यावें अर्थात् पूजा करें।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति

अब श्रीमान् पण्डित जी ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति के विषय में संक्षेप से सुन लीजिए।

देखिए, **शिवपुराण वायुसंहिता** उत्तरार्द्ध अध्याय ५ में लिखा है—

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यो गणेशाख्यास्त्रिमूर्त्तयः ॥ २४ ॥

सत, रज, तम जिनसे यह सब जगत् व्याप्त है, गुणों के क्षुभित होने से गणेश की तीन मूर्त्तियां हैं। **मत्स्यपुराण** अध्याय ३ में लिखा है कि—

गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।
एका मूर्त्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १६ ॥

अर्थात् सत, रज और तम इन तीनों गुणों के हिलने से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों देव उत्पन्न हुए परन्तु वास्तव में इनकी एक ही मूर्त्ति है।

शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अध्याय २ में लिखा है कि ब्रह्मा और विष्णु यह दोनों शङ्कर से उत्पन्न हो कल्प-कल्प में मोहित हो जगत् की रचना करते हैं—

ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतौ शङ्करात्तु तौ।
कल्पे कल्पे तु तत्सर्वं सृजतो मोहयन् जगत्॥ ३५ ॥

और अध्याय ८ के श्लोक ४७ में लिखा है कि शिव जी ने प्रथम सृष्टि करने की इच्छा से प्रथम प्रकृति को उत्पन्न कर फिर उससे विष्णुसहित ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए—

सृष्टिं तु प्रथमं कुर्वन् प्रकृतिर्नाम नामतः।
तस्माद् ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना॥ ५७ ॥

ज्ञानसंहिता अध्याय ४ में लिखा है कि जिस कारण मैं सम्पूर्ण प्राणियों में तुल्यरूप हूं इसी कारण हे पिता! यह तुममें इस रुद्र का सम्मान करो। इस प्रकृति से ही लक्ष्मी जगत् के पालन और शोभा के निमित्त अंश से प्रकट होगी, उसी के अंश से ब्रह्माणी और उसी अंश से काली होगी और कार्य के निमित्त यह अनेकरूपता को प्राप्त होगी। हे विष्णु! तुम लक्ष्मी का आश्रय कर, जगत् पालन, हे ब्रह्मन्! तुम सरस्वती देवी के आश्रय से सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य करो, मैं काली शक्ति के आश्रित हो

जगत् का संहार करूंगा—

अहं कालीं समाश्रित्य करिष्ये कार्यमुत्तमम्॥ ६१ ॥

ज्ञानसंहिता अध्याय १७ में लिखा है कि मैं ब्रह्म और हर सम्पूर्ण पुरातन देवता सूर्य, चन्द्रमा और सम्पूर्ण शुभदायक ग्रह, पर्वत, नदी, वृक्ष, कुबेर, ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ दीखता, यह सब शङ्कर से उत्पन्न हुआ है—

अहं ब्रह्मा हरश्चैव देवाः सर्वे पुरातनाः।

सूर्यश्च चन्द्रमाश्चैव ग्रहाः सर्वे शुभावहाः ॥ ६५ ॥

तत् सर्वं शिवतो जातं नाऽत्र कार्या विचारणा॥ ६७॥

लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ६ में लिखा है कि जो सब जीवों के स्वामी हैं, तमोगुण करके कालरुद्र को, रजोगुण से ब्रह्मा को, सत्त्वगुण करके विष्णु को उत्पन्न करते हैं और निर्गुण रहने से साक्षात् महेश्वर हैं—

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।

सत्त्वेन सर्व्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ ३० ॥

और अध्याय ७० में लिखा है कि शिव ब्रह्माण्ड से निकले उसने रुधिर के अपने बायें अङ्ग से लक्ष्मी और विष्णु और दक्षिण अङ्ग से सरस्वतीयुक्त ब्रह्मा को उत्पन्न किया—

तस्य वामाङ्गजो विष्णुः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ६३ ॥

लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद् देव इच्छया परमेष्ठिनः।

दक्षिणाङ्गभवो ब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरुः ॥ ६४॥

तस्मिन् अण्डे इमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगद्। ६५।

महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय १४७ में शिव जी महाराज ने कहा है कि श्रीवत्सचिह्नधारी हृषीकेश सब देवताओं के पूज्य हैं, ब्रह्मा उनके उदर और मैं, उनके शिर से प्रकट हुआ हूँ, उनके केशों से अग्नि और रोमावली से समस्त सुरासुर उत्पन्न हुए। ऋषिगण तथा समस्त शाश्वत लोकों की उनके देह से उत्पत्ति हुई है—

श्रीवत्साङ्गो हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥

ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः ॥ ४॥

और अध्याय १४ में लिखा है कि महादेव ही सर्व्वतत्त्व-विधानज्ञ प्रधान परमपुरुष हैं जिसने दक्षिण अङ्ग से लोकविधाता पितामह और वाम अङ्ग से लोकरक्षा के निमित्त विष्णु को उत्पन्न किया है—

योऽसृजद् दक्षिणाद् अङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम्।
वामपार्श्वात् तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः॥ ३४७॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड उत्तरार्द्ध अध्याय १०८ में लिखा है कि गुणों से पृथक् अक्षर नाशरहित जो सदाशिव हैं उनकी सृष्टि करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने तीनों गुणों को पृथक् कर सबों में समान शक्ति बांट अपने दक्षिण अङ्ग से ब्रह्मा नाम पुत्र को उत्पन्न किया व वाम अङ्ग से हरिनाम को व पीठ से महेशनाम पुत्र को। इस प्रकार से उन्होंने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। आप कौन हैं? तब सदाशिव ने कहा कि तुम पुत्र हो, मैं पिता हूँ—

य एकः शाश्वतो देवो ब्रह्मवद् यः सदाशिवः।
त्रिलोचनो गुणाधारो गुणातीतोऽक्षरोऽव्ययः॥ ३॥
सिसृक्षा तस्य जाताथ वीक्ष्यात्मस्थं गुणत्रयम्।
वेदत्रयमिदं ज्ञेयं गुणत्रयमिदं हि यत्॥ ४॥
पृथक् कृत्वात्मनस्तात तत्र स्थानं विभज्य च।
दक्षिणाङ्गेऽसृजत् पुत्रं ब्रह्माणं वामतो हरिम्॥ ५॥
पृष्ठदेशे महेशानं त्रीन् पुत्रान् असृजद् विभुः।
जातमात्रास्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ६॥

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

ब्रह्मविष्ण्वग्निशुक्रार्कजलभूमिपुरोगमाः।
सुरासुराः संप्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वरी॥

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, शुक्र, सूर्य, जल, भूमि आदि सब उन्हीं शिव से उत्पन्न हुए हैं। **ब्रह्मवैवर्त्त ब्रह्मखण्ड** अध्याय ३ में लिखा है कि-

आविर्बभूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः।
श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः॥ ६॥

श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः ॥ ९ ॥

जब श्री कृष्ण से त्रिगुण महत्तत्त्व, अहंकार पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द उत्पन्न हो चुके तो उसके पीछे आप नारायण जो प्रभु हैं, प्रकट हुए। वह कैसे हैं? श्यामवर्ण, जवान और पीले कपड़े वाले, वनमाली और चार भुजों वाले ऐसे विष्णु ने हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण के आगे खड़े होकर १० से १३ श्लोक तक स्तुति की और ११ श्लोक में लिखा है कि विष्णु जी के पीछे श्रीकृष्ण जी की बाईं पाँसू से शुद्धस्फटिक जैसे प्रकाश वाले नङ्गे वदन पञ्चमुख (महादेव) प्रकट हुए—

आविर्बभूव तत्पश्चाद् आत्मनो वामपार्श्वतः।

शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः ॥ १८ ॥

फिर महादेव ने पुलकाङ्ग ही और आंखों में पानी भर गदगदवाणी से श्रीकृष्ण के आगे खड़े होकर स्तुति की। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के नाभि कमल से महातपस्वी वृद्ध कमण्डलुधारी (ब्रह्मा) प्रकट हुआ—

श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्‌गदः ॥ २३ ॥

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात्।

महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः ॥ ३० ॥

क्रियायोगसार अध्याय २ में लिखा है कि श्रेष्ठ पुरुष महाविष्णु जी आत्मा से दहिने आत्मा को प्राप्त होकर इस संसार की सृष्टि के लिए ब्रह्मा रूप रचते हुए—

सृष्ट्यर्थमस्य जगतः ससर्ज ब्रह्मसंज्ञकम्।

दक्षिणाङ्गत आत्मानमात्मा श्रेष्ठपूरुषः ॥ २ ॥

उसके पीछे पृथ्वी के स्वामी महाविष्णु जी संसार के पालन के लिए बायें अंश से अपना अंश केशव विष्णु जी को रचते हुए—

ततस्तु पालनार्थाय जगतो जगतीपतिः।

विष्णुं ससर्ज वामांशाद् निजांशं केशवं मुने ॥ ३ ॥

तदनन्तर संसार के संहार के लिए लक्ष्मी के स्थान प्रभु जी मध्य अङ्ग से नाशरहित महादेव जी को रचते भये—

अथ संहरणार्थाय जगतो रुद्रमव्ययम्।
मुने ससर्ज मध्याङ्गात् कृतपद्मालयः प्रभुः ॥ ४ ॥

भविष्य पुराण अध्याय ६२ में लिखा है कि सूर्यनारायण के दोनों हाथों से ब्रह्मा, विष्णु और उनके ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुई—

कराभ्यां यस्य देवेशौ विष्णूलोकपूजितौ।
उत्पन्नौ द्विजशार्दूलललाटात् त्रिपुरान्तकः ॥

पद्मपुराण सप्तम क्रियायोगसार अध्याय १५ में लिखा है कि ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादिक सब देवता विष्णु जी के अंश से हैं—

ब्रह्मशङ्कररुद्राद्या विष्ण्वंशाः सकलाः सुराः ॥ ३ ॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय ६९ में शङ्कर ने पार्वती जी के प्रश्न करने पर कहा है कि श्रीकृष्ण जी के अंश से कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उत्पन्न होते हैं—

तत्कला कोटिकोट्यंशा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १११ ॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड के अध्याय ४-७ में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज से ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए।

और **मत्स्यपुराण** अध्याय ४ में लिखा है कि त्रिशूलधारी महादेव को ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किया। जैसा कि—

ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्॥ २७ ॥

महाभारत वनपर्व अध्याय २०३ में लिखा है कि सोते हुए विष्णु की नाभि से सूर्य के समान प्रकाश वाला कमल उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २७ में भगवान् की नाभि से सूर्य के समान एक दिव्य पद्म उत्पन्न हुआ। हे तात! सब लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उसी कमल से उत्पन्न हुए।

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय २ में लिखा है कि ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और वह ब्रह्मा विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न होते हैं। ऐसा ही **महाभारत शान्तिपर्व** अध्याय २०७ श्लोक १२ में लिखा है। इन सब के

अतिरिक्त ब्रह्मा को गौरवर्ण और चार मुंह वाला, विष्णु श्यामवर्ण और चतुर्भुज, शिव जी गौरवर्ण, त्रिनेत्र फिर बतलाइए तीनों देवों में एक की सेवा कैसी—

पण्डित जी—बस लाला जी समाप्त कीजिए।

सेठ—ओ३म् शम्।

पण्डित जी और अन्य महाशय सब चल दिए।

सेठ जी—हाथ जोड़ नमस्ते की अन्य महाशयों को यथायोग्य।

पण्डित जी—आयुष्मान् कहा।

अन्य सभ्य पुरुषों ने लाला जी को यथायोग्य कहा।

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद ॥

हम अविद्या के अथाह समुद्र में डूब कर नष्ट हो जाते, परन्तु परमात्मा के अनुग्रह और प्राचीन ऋषियों के तपोबल के पुण्य प्रताप से इस भूमि में महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म हो गया जिन्होंने ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन कर, पूर्ण विद्या पढ़, योग्य विद्वान् और योगीराजों से विचार कर बहुत से प्रमाणों और युक्तियों से संसारी पुरुषों पर प्रकट कर दिया कि यह अठारह पुराण महर्षि व्यास प्रणीत नहीं है।

(पृ० १६)

पञ्चम परिच्छेद

श्रीमान् पण्डित जी अन्य सभ्यों सहित आ पधारे।

आर्य सेठ—किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर गये थे, आते ही श्रीमान् और अन्य सज्जनों को नमस्ते की।

पण्डित जी ने आयुष्मान् और अन्य महाशयों ने यथायोग्य की।

आर्य सेठ—मैं बीस मिनट की आज्ञा चाहता हूँ।

पण्डित जी—बहुत अच्छा।

आर्य सेठ—अपने कार्य से निवृत्त होकर आये और निवेदन किया—आज मैं आपको ऐसी कथायें सुनाता हूं जिससे शिव, विष्णु आदि का बड़प्पन एक दूसरे से स्पष्ट प्रकट होता है। कृपा कर सुनिए।

महादेव जी की अपेक्षा विष्णु महाराज का बड़प्पन

(महादेव का विष्णु की तपस्या करना और वर मांगना)

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २ में महादेव जी नारद जी से कहते हैं कि एक समय मैंने बदरिकाश्रम पर बड़ी तपस्या की तब भक्तों पर दया करने वाले नारायण हमसे कहने लगे कि हम तुमसे बड़े प्रसन्न हैं, वर मांगो, जो-जो इच्छा हो सो हम देंगे, तुम कैलास के स्वामी साक्षात् रुद्र हो। तब महादेव जी ने कहा कि यदि आप हमसे प्रसन्न हैं और वर देने की इच्छा है तो दो वर दीजिए। प्रथम आपकी भक्ति सदा हो और मुक्तिराज में होऊं। सम्पूर्ण लोग यह कहें कि यह सदैव भक्त है और तुम्हारे प्रसाद से हे देवों के स्वामी! मैं उन मनुष्यों को जो मुझको भजेंगे तिनको निस्सन्देह मुक्ति देने वाला होऊं और विष्णु का भक्त संसार में प्रसिद्ध होऊं, जिसको हम वर देवें उसकी मुक्ति हो जावे मैं जटा धारण किये भस्म अङ्गों में लगाये हुए आपके समीप रहूँ और आप के चरणों के प्रसाद से संसार में प्रसिद्ध होऊं—

जटिलो भस्मलिप्ताङ्गो ह्यहं वै तव सन्निधौ।
तव चरणप्रसादेन लोके ख्यातो भवाम्यहम्॥ १८॥

महादेव जी का कपाली होकर विष्णु जी के पास जा यत्न पूछ वैसा ही कर पवित्र होना।

वामनपुराण अध्याय ३ में पुलस्त्य ने नारद से कहा कि जब महादेव के हाथ में कपाल आगया तब वह चिन्ता से व्याकुल हुए और भयानक रूप वाली ब्रह्महत्या उनके शरीर में प्रवेश कर गई। जैसा कि—

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं संप्रतापितविग्रहम्॥ ५॥

तब वह बदरिकाश्रम में गये जहाँ नारायण को न देखकर यमुना में स्नान करने गये तो उसका जल सूख गया, फिर सरस्वती पर गये वह भी अन्तर्द्धान हो गई, फिर महादेव पुष्करादि तीर्थों और नदियों और आश्रमों पर गये परन्तु ब्रह्महत्या के पाप से न छूटे। फिर कुरु जङ्गल में गरुड़ पर सवार विष्णु को देख अनेकानेक प्रकार से स्तुति कर कहा है कि हे केशव! आप पापरूपी बन्धन से मुक्त करो। ब्रह्महत्या का पाप जो मेरे शरीर में घुसा है उसे नष्ट करो, मैं बिना विचारे कर्म करने वाला हूं, मुझको आप पवित्र करें। तब भगवान् ने कहा कि हे महादेव! तुम ब्रह्महत्या को नाश करने वाली, पुण्य को बढ़ाने वाली वाणी को सुनो—प्रयाग में जो प्रदेश असी के नाम से प्रसिद्ध है जो दोनों नदियों के बीच योगशायी के नाम से प्रसिद्ध है, वह त्रिलोकी में श्रेष्ठ है सब पापों का नाश करने वाला लोल नाम से प्रसिद्ध है जो दशाश्वमेध तीर्थ कहाता है जहाँ मेरे अंश वाले केशव भगवान् बसते हैं, वहाँ जाकर पापों से रहित हूजिए, यह सुन और नमस्कार कर महादेव जी काशी में दशाश्वमेध तीर्थ पर पहुंच लोल नाम सूर्य के दर्शन कर तीर्थ में स्नान कर पाप रहित हो केशव के समीप जा नमस्कार कर महादेव ने कहा कि आप के प्रताप से ब्रह्महत्या का नाश हुआ—

केशवं शङ्करो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
त्वत्प्रसादाद् ऋषीकेश ब्रह्महत्या क्षयङ्गता॥ ४४॥

फिर महादेव जी ने कहा कि मेरे हाथ से खोपड़ी नहीं गिरी तब केशव ने कहा मेरे आगे यह दिव्य और कमलों करके युक्त दिव्य तालाब

है इसमें स्नान करो, कपाल छूट जायगा फिर यह कपाल नाम से प्रसिद्ध होगा। महादेव जी ने ऐसा किया अर्थात् स्नान करते ही कपाल छुट गया और वह स्थान कपालमोचन तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ—

योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो ह्रदः पद्मोत्पलैर्वृतः।
एष तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः॥ ४७॥
एतस्मिन् प्रवरे पुण्ये स्नानं शोभनमाचर।
स्नानमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति॥ ४८॥
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य परिच्युतं हस्ततलात् कपालम्।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं तत् तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात्॥ ५१॥

और्व नामक ऋषि का महादेव जी को शाप देना और फिर उनके बतलाये हुए उपाय से शापमोचन होना।

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १४७ में लिखा है कि गोनिष्क्रमण नाम स्थान पर और्वनाम महान् ऋषि ने सत्तर कल्प विष्णु का तप किया। एक दिन कमल के पुष्पों को लेने के लिए हरिद्वार गया। उसी समय महादेव जी उस स्थान पर पहुंचे, उनके तेज से वह स्थान भस्म हो गया और शिव जी हिमालय को चले गये।

इधर और्व ऋषि गङ्गा स्नानादि से निवृत्त हो पुष्प ले अपने स्थान पर गये तो निज स्थान को कुटी समेत भस्म होता देख क्रोधयुक्त हो कहने लगे कि जिसने हमारे आश्रम को दग्ध किया है वह भी अनेक दुःखों से संतप्त संसार में भ्रमण करता हुआ क्षणमात्र भी सुख न पावेगा इस भांति शाप देकर और्व ऋषि तप में लग गये—

येनैष चाश्रमो दग्धो बहुपुष्पफलोदकः।
सोऽपि दुःखेन सन्तप्तः सर्व्वलोकान् भ्रमिष्यति॥ १६॥

महात्मा के शाप से महादेव जी भ्रमण करने लगे। तब देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई और विष्णु भी दुःखी हुए क्योंकि यह दोनों एक ही रूप हैं तब पार्वती जी ने विष्णु जी से कहा कि आप दोनों के दुःख दूर होने के लिए आप और्व ऋषि के पास जाकर अपराध क्षमा कराओ क्योंकि बिना उनकी कृपा के यह दुःख दूर नहीं होगा। विष्णु जी पार्वती जी की बातें

सुन महात्मा जी के समीप गये और उनको शान्त कर के क्लेश दूर होने की प्रार्थना की। जैसा कि—

ततो नारायणं गत्वा सह तेन तमौर्वकम्।
विज्ञापयामो रुद्रस्य शापोऽयं विनिवर्तताम्॥
सन्तप्ताः स्म वयं सर्वे तस्माच्छापं निवर्त्तय॥ २४॥

तब प्रसन्न हो मुनिने कहा कि क्लेश तब ही शान्त होगा जब सुरभी नाम गौ के दुग्धों से स्नान करोगे—

सुरभीगणमानीय गत्वैतं स्नापयन्तु वै॥ २५॥

इसके पश्चात् विष्णु ने सात सौ गौओं को उत्पन्न किया। उनके दूध से शिव और विष्णु स्नान कर क्लेश से छूट सुखी हुए—

एतस्मिन् अन्तरे देवि! मया गावोऽवतारिताः।
सप्तसप्ततिः कल्याणि सौरभेया महौजसः॥ २६॥
तेनाप्लावितदेहाश्च परां निर्वृत्तिमागताः॥ २७॥

महादेव जी को युद्ध में श्री कृष्ण महाराज का जीतना और पार्वती जी की प्रार्थना करने पर अस्त्र से मुक्ति कर शिव जी की प्रार्थना करने पर बाणासुर को छोड़ना।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २५० में लिखा है कि जब श्री कृष्ण महाराज के पुत्र अनिरुद्ध जी को पकड़ ले गये और बाणासुर से संग्राम हुआ तब उसने नागपाश से उनको फंसा लिया जिसका सब वृत्तान्त नारद ने कृष्ण महाराज से जाकर कहा, तब वह सेना समेत युद्ध स्थान पर गये, वहाँ महादेव जी उसकी सहायता पर थे जिनको देख सेना को पीछे छोड़ कृष्ण बलभद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर गये और महादेव जी से युद्ध आरम्भ करते हुए। जब महादेव ने शीतज्वर को छोड़ा तब कृष्ण ने तापज्वर से निर्वाण किया, फिर कृष्ण ने दुस्सह मोहन अस्त्र को महादेव जी पर छोड़ा उस समय महादेव उस अस्त्र से मोहित हो बारंबार जंभाई लेकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। ऐसा देख स्वामी कार्तिक जी शक्ति लेकर श्रीकृष्ण के सम्मुख गये जिनको हुंकार ही से भगा दिया। इस

प्रकार श्री कृष्ण जी ने शूलपाणि त्रिलोचन श्री महादेव जी को जीतकर प्रताप युक्त होकर बड़े शब्द से पाञ्चजन्य शंख को बजाया—

एवं जित्वा यदुश्रेष्ठः शूलपाणिं त्रिलोचनम्।
महास्वनं पाञ्चजन्यं शंखं दध्मौ प्रतापवान्॥ ३९॥

जब बाणासुर ने यह सुना तब उसने उनके समीप जाकर अनेक अस्त्र-शस्त्र छोड़े जिनको भगवान् ने काट अपने शस्त्रों से उसकी भुजाओं को काट डाला। तब उनके समीप पार्वती जी ने जाकर उनसे कहा कि आपने मुझको कैलास पर्वत पर निरन्तर प्रसन्न होकर सदा सौभाग्य होने के लिए वर दिया था और आपका नाम भी गौरी सौभाग्य है आप अपने नाम को सत्य कीजिए और हमारे पति को जिलाइए—

तत्सत्यं कुरु गोविन्द गरुडारूढ शाश्वत।
तस्माद् मम पतिं देव त्वं जीवयितुमर्हसि॥ ४९॥

तब श्री कृष्ण जी उस अपने अस्त्र को संहार कर देते हुए। तब श्रीकृष्ण के अस्त्र से छूट कर सब भूतों के पति शिव जी ने उठकर भगवान् के हाथ जोड़ कर ५१ श्लोक से ८३ श्लोक तक स्तुति कर कहा कि बलि के पुत्र ने पूर्व समय में हमारी तपस्या की थी उस समय मैंने अमर होने का वर दिया था अब आप इसकी रक्षा कीजिए। तब गोविन्द ने चक्र को संहार कर बाणासुर को छोड़ दिया तत्पश्चात् महादेव जी पार्वती समेत श्रेष्ठ बैल पर चढ़ अपने रहने के स्थान कैलास पर चले गये—

वृषभेन्द्रं समारुह्य पार्वत्या सहितः प्रभुः।
ययौ च वसतिस्थानं कैलासं धरणीधरम्॥ ८५॥

विष्णु महाराज की आज्ञा से शिव का भस्म, हाड़, चर्म इत्यादि का धारण कर तामस पुराणों को रचना, फिर, पाप से छूटने के लिए विष्णु के दिये मन्त्र का जप कर आनन्द में रहना।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २३५ में लिखा है कि एक बार पार्वती जी ने शिव जी महाराज से पूछा कि आप मुण्ड, भस्म, चमड़ा और हाडों को कि जिसका धारण करना वेद से निन्दित है, इनको किसलिए

धारण करते हैं और वह किस हेतु से निन्दित हैं, महाबुद्धिमान् यह सब हम से कहिए। शिव जी ने कहा कि पूर्व समय में स्वायम्भुव मनु के अन्तर में नमुचि आदिक महादैत्य महाबली, महावीर्यवान् थे जो सब विष्णु जी में रत शुद्ध सब पापों से वर्जित और त्रयधर्म से युक्त थे, उन्होंने इन्द्रादि को भस्म कर दिया। तब सब देवता विष्णु जी के समीप जाकर कहने लगे कि इन महाबली दैत्यों को आप ही मारिये, अन्य देवताओं के मारने योग्य नहीं है। तब विष्णु जी ने हम से कहा कि है रुद्र जी दैत्यों के मोहन के लिए आप तामस पुराणों को कहिए और मुण्ड, चर्म, भस्म और हाड के चिह्नों को धारण कर तीनों लोकों को मोहित कीजिए और मैं भी अवतारों में तामसों के मोहन के लिए तुम्हारी पूजा करूंगा, इस सूरत से दैत्य गिर जायेंगे, तब मैंने कहा कि इससे मेरा भी तो नाश होगा, तब उन्होंने कहा कि आप हमारे सहस्रनाम को जपिये, वह मन्त्र सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है और भस्म और हाडों के धारण करने का भी पाप सब नाश हो जायगा। हे पार्वती! देवताओं के हित के लिए मुण्ड, चर्म्म, भस्म और हाडों की माला मैंने धारण की और उनकी आज्ञा से तामस पुराणों को मैंने किया जिससे सब राक्षस भगवान् से विमुख हो गये। तब उनकों देव समूह ने जीत लिया जो हमारे मत को धारण कर पृथ्वी तल में घूमते हैं, वे सब धर्मों से रहित होकर सदैव नरक को देखते हैं—

ये मे मतमवष्टभ्य चरन्ति पृथिवीतले।
सर्वधर्मैश्च रहिताः पश्यन्ति निरयं सदा॥ ५९ ॥

हे देवी! इस प्रकार देवताओं के हित के लिए हमारी वृत्ति निन्दित है, विष्णु की आज्ञा पाकर मैंने भस्म और हाडों को धारण किया है—

एवं देवहितार्थाय वृत्तिर्मे देवि गर्हिता।
विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य कृतं भस्मास्थिधारणम्॥ ६० ॥

यह मेरे बाह्य चिह्न वैरियों के मोहन के लिए हैं परन्तु हृदय में नित्य जनार्दनदेव का ध्यान कर तारकमन्त्र जो विष्णु के सहस्रनाम के समान है और रघुवंशियों के कुल का बढ़ाने वाले षडक्षर महामन्त्र को सदा जपकर सदैव आनन्द के अमृत से युक्त हो निरन्तर महासुख को भोगता हूँ।

महादेव जी का राम जी की स्तुति करना

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २४३ में लिखा है कि जब श्री रामचन्द्र जी महाराज वन से आकर राजगद्दी पर विराजमान हुए उस समय देवताओं के सम्मुख महादेव जी ने रामचन्द्र जी की स्तुति की। हम और पार्वती संसार में आपको ही पूजते हैं, आपका नाम जपने वाली पार्वती मैं हूँ—

आवां राम जगत्पूज्यौ मम पूज्यौ सदा युवाम्।
त्वन्नामजापिनी गौरी त्वन्मन्त्रजपवानहम्॥ ३९॥

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १४ में लिखा है कि एक समय ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचने का विचार किया तो उनके पसीने से एक अति विकराल पुरुष धनुर्बाण हाथ में लिए उत्पन्न हुआ। जो ब्रह्मा जी ही को मारने को दौड़ा, तब उन्होंने कहा कि तुम हमसे उत्पन्न हुए हो हम ही को मारते हो, तब वह महादेव जी के निकट गया जिसको देखकर विष्णु के आश्रम पर जा कहा कि महाराज हमारी रक्षा करो। विष्णु ने हुंकार की ध्वनि से उसको ऐसा मोहित किया वह सब प्राणियों से अदृश्य हो गया। उस समय महादेव जी ने भूमि पर गिर कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

आर्यसेठ—श्रीमान् इन कथाओं के पाठ से विष्णु महाराज का बड़प्पन प्रतीत होता है अब आगे शिव जी का बड़प्पन सुनाता हूँ।

शिव-महत्त्व

अर्थात्

विष्णु और ब्रह्मा जी से शिव जी का अधिक बड़प्पन।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय २ वा ३ में लिखा है कि जब नारायण जल में शयन कर रहे थे तब उनकी नाभि से कमल हुआ और उस कमल से हिरणयगर्भ नाम मैं उत्पन्न हुआ और परमात्मा की माया से मोहित हो मैंने कमल के बिना कुछ न जाना कि मैं कौन हूं, कहाँ से आया हूँ, मैं किसका पुत्र हूं? इस प्रकार चिन्ता करके विचार किया कि मैं क्यों मोह में ग्रसित हूँ? जहाँ इस कमल का स्थल होगा, वही मेरा कर्त्ता होगा तो फिर मैं कमल की डण्डी पकड़ १०० वर्ष तक नीचे चला गया परन्तु

कमलोत्पत्ति का स्थान न मिला तो मैंने फिर कमल पर आने की इच्छा कर कमल को पकड़ ऊपर आया परन्तु कमल का आगमन न मिला इस प्रकार १०० वर्ष होगये तो क्षणमात्र थक कर स्थिर हुआ तब आकाशवाणी हुई कि तप करो। तब द्वादश वर्ष तप करने से विष्णु चार भुजा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारे हुए आगे देखे, तब मैंने कहा तुम कौन हो? तब कहा, भगवान् हरि, हे वत्स! तुम सत्य जानो तुम्हारे बनाने वाले विष्णु हैं। तब मैंने माया से मोहित हो घुड़क कर कहा तुम मुझे वत्स कैसे कहते हो? पापरहित मैं ही संसार की उत्पत्ति पालन करता हूं, तुम गुरु के समान बन शिष्य के समान मुझे हास्यपूर्वक बोलते हो? मैं साक्षात् जगत् का रचने वाला, प्रकृति का भी प्रवर्त्तक, सनातन अज विष्णु हूं। हे ब्रह्मन्! जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है और तुम मेरे अविनाशी शरीर से उत्पन्न हुए हो और मैंने ही पूर्वकाल में २४ तत्त्व की रचना की है। यह उनके वचन सुनकर ब्रह्मा जी को क्रोध हुआ और घुड़ककर बोले तुम कौन हो, कोई तुम्हारा भी कर्त्ता होगा? और माया से मोहित हो कठिन युद्ध होने लगा, उसके शान्त करने और दोनों को समझाने के निमित्त हम दोनों के बीच में एक अद्भुत रूप लिङ्ग प्रकट हुआ जो सहस्रों ज्वाला करके भुक्त प्रलय काल की अग्नि के समान था, क्षय और वृद्धि से रहित, आदि-मध्य-अन्त से वर्जित, उपमारहित, अनिर्वाच्य, व्यक्त से परे, संसार का उत्पत्ति कारण, उसकी सहस्रों ज्वाला से भगवान् हरि मोहित हो बाले अब क्यों वृथा ईर्ष्या करते हो? यहाँ यह तीसरा हमारे तुम्हारे बीच में प्रादुर्भूत हुआ। इसकी परीक्षा के लिए हंसरूप धारण करके ब्रह्मा ऊपर को और विष्णु वाराह रूप धारण कर शीघ्रता से पाताल को गये। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष विष्णु नीचे-नीचे फिरते रहे। उसी समय से संसार में श्वेतवाराह कल्प प्रसिद्ध हुआ और जब उन वाराहरूप विष्णु ने और हंसरूप ब्रह्मा ने आदि न पाया तो ब्रह्मा नीचे को और विष्णु ऊपर को चले अन्त में वे दोनों मिलकर महादेव की स्तुति करने लगे। तब १०० वर्ष के पश्चात् **ओमिति** यह शब्द त्रिमात्र युक्त प्रकट सुनाई दिया फिर विचार कर कहा जहाँ से यह शब्द उत्पन्न हुआ उसके निमित्त नमस्कार है, ऐसा कह लिङ्ग के दक्षिण भाग में उस सनातन ओंकार को देखा प्रथम अक्षर अकार और उसके उत्तर में उकार और मध्य में मकार और अन्त में नारद इस प्रकार ओंकार का दर्शन

किया। इस ओंकार में अकार सृष्टि का कर्त्ता, उकार पालनकर्त्ता और मकार नित्यप्रति अनुग्रह करने वाला है और उसी समय उनके पांच मुख, दश भुजा, कपूर के समान गोरा शरीर देख कर हम ब्रह्मा, विष्णु स्तुति करने लगे। तब वे हंसते हुए लिङ्ग में स्थित हुए और उनके सम्पूर्ण अङ्गों को देख विष्णु जी ने फिर प्रार्थना की तब उन्होंने कहा कि सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा और पालनकर्त्ता हरि और मेरा एक अंश सृष्टि का संहार करने वाला होगा और तीनों देवताओं के अंश को एक-एक शक्ति प्राप्त होगी और वह सम्पूर्ण गण मेरी आज्ञा से सृष्टि का कार्य करें और ओंकारात्मक परतत्त्व प्राप्त करके विष्णु भगवान् ने उन परमात्मा का परतत्त्व जानकर उस रूप का दर्शन किया और पाँच मन्त्रों से हरि जप करने लगे—

पञ्चमन्त्रं तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः।

विद्येश्वरी संहिता अध्याय ६ में लिखा है कि विष्णु महाराज ईश्वरत्व की इच्छा करके भी सत्यवक्ता रहे, इस कारण महादेव जी ने प्रसन्न होकर देवसमूह के देखते अपनी समानता विष्णु जी को दे दी—

इति देवः पुरा प्रीतः सत्येन हरये परम्।
ददौ स्वसाम्यमत्यर्थं देवसंघे च पश्यति॥ ३३॥

ज्ञानसंहिता अध्याय ४ में लिखा है कि विष्णु ने शङ्कर से पूछा कि तुम किस प्रकार संतुष्ट होते हो और आपका ध्यान किस प्रकार करना चाहिए? तब शिव जी ने कहा कि इस लिङ्ग का सदैव पूजन करना योग्य है और जैसा मेरा रूप इस समय तुमको दीखता है वैसा ही सदैव तुमको ध्यान करना उचित है फिर उन्होंने कहा—ब्रह्मा तुम सृष्टि उत्पन्न करो और विष्णु पालन करते हुए मेरी परमभक्ति को करो। फिर विष्णु ने अनेक प्रकार उनकी महिमा वर्णन की और इसी समय से लिङ्ग की पूजा चली और जो कोई लिङ्ग के समीप इस आख्यान अर्थात् शिवपुराण के अध्याय ४ का पाठ करता है वह छह मास में शिव स्वरूप हो जाता है—

यस्तु लिङ्गसमाख्यानं पठते शिवसन्निधौ।
षण्मासाच्छिवरूपो वै नात्र कार्या विचारणा॥ ६९॥

और विष्णु ने कहा कि हे शङ्कर, हे कृपासिन्धो, हे जगत्पते! आप सुनिये जो कुछ आपने कहा है यह सब कुछ आपकी आज्ञा से मैं करूंगा—

शङ्कर श्रूयतामत्र कृपासिन्धो जगत्पते।
सर्वं चैतत् करिष्यामि भवदाज्ञापरायणः॥ ३०॥

आपका मैं सदा ध्यान करूंगा इसमें संदेह नहीं और पूर्वकाल में मैंने ही आपसे सामर्थ्य की प्राप्ति की थी—

मम ध्येयः सदा त्वं च भविष्यसि न चाऽन्यथा।
भवतः सर्वसामर्थ्यं लब्धं चैव पुरा मया॥ ३१॥

आप परमात्मा का ध्यान मेरे चित्त से कभी भी क्षण मात्र को दूर न हो—

क्षणमात्रमपि च ते ध्यानं वै परमात्मनः।
चेतसो दूरतश्चैव मा गच्छतु कदाचन॥ ३२॥

श्रीकृष्ण महाराज का शिव के परमभक्त उपमन्यु से अपनी जय के लिये उपाय पूछ शिव का पूजन कर मङ्गल की प्राप्ति करना।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय १९ में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज ने उपमन्यु से शिव जी की आराधना का मन्त्र पाकर सात महीने तक निरन्तर कमल, बेलपत्र, सौपत्र, कुश, कन्नेर, दूब, आक के फूल, कमलपुष्प और शंखपुष्प इत्यादि चढ़ाकर शिव जी को सन्तुष्ट किया। तब मन से प्रसन्न हो वासुदेव बोले कि हे शङ्कर! इस समय आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ विद्यमान है परन्तु दैत्यों से पीड़ित होकर आपकी शरण में आया हूं, आपको ब्रह्मादि पूर्वजों ने भी सेवन किया है। जब इस प्रकार से प्रार्थना की तब शिव जी प्रसन्न होकर बोले कि धन, धान्य, पुत्र, स्त्री अनेकविध सुख और महा पराक्रम तुममें हो जायगा, उस समय पार्वती ने भी अनेक वर दिए—

दैत्यैश्च पीडितश्चाहं त्वामहं शरणं गतः।
पूर्वैश्च सेवितः शम्भुर्ब्रह्मणा सेव्यतेऽधुना॥ १९॥
एवं च प्रार्थितस्तेन पुनः प्रोवाच वै शिवः।
धनं धान्यं तथा पुत्राः स्त्रियश्च विविधास्तथा॥ २०॥

यह शिव जी के वचन सुन कृष्ण बहुत प्रसन्न हो बोले—हे देवश्रेष्ठ!

पहिले भी आपने हमारी प्रार्थना पर पालना की थी। हे प्रभो! आपने ही सुदर्शन चक्र दिया था, उसी से मैं सम्पूर्ण देवादिकों का भी जय कर सकता हूं, इस समय भी आपने मनोवाञ्छित फल प्रदान किया है, ऐसा कहकर शिव जी की पूजा की। तब परमेश्वर प्रसन्न होकर बोले हे कृष्ण! जाओ आज से नित्य तुम्हारे मङ्गल की वृद्धि होगी। यह आज्ञा पाय कृष्ण द्वारिका को चले गये और सन्तुष्ट हो सबका पालन करने लगे। वहाँ शिव जी बिल्वेश्वरनाम से विख्यात हुए। वे लोक समुदाय के शङ्कर आज तक यहीं विराजे। ७ महीने तक कृष्णमहाराज ने नित्य ही बेलपत्र देवेश को चढ़ाये। इससे वह बिल्वेश्वर विख्यात हुए। उनके ऊपर से बेलपत्री उतार के एक स्थान पर रख दी। कृष्ण जी की प्रार्थना पर लोक के मङ्गल के हेतु वहाँ स्थित हुए। उसी दिन से भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति, मुक्ति के फल देने और श्री शङ्कर का सेवन करने लगे।

श्रीकृष्ण महाराज का शिव जी की तपस्या कर पुत्र लाभ करना।

शिवपुराण वायु संहिता अध्याय १ में वायु ने कहा कि श्रीकृष्ण ने स्वेच्छा से अवतार धारण किया था कारण कि वे वासुदेव हैं उन्होंने क्लेश-कारक मनुष्य-शरीर की निन्दा करते मुनिश्रेष्ठ को देखा। रुद्राक्ष की माला के गहने पहने, जटामण्डल से मण्डित, अपने शिष्य हुए मुनियों से वेदशास्त्र के समान आवृत हुए शिव के ध्यान में रत शान्तस्वभाव महाद्युतिमान् उपमन्यु को देखकर सब शरीर प्रसन्न हो गया और बड़े मान से श्रीकृष्ण ने उनकी तीन प्रदक्षिणा करके उनका सत्कार किया। उनके दर्शन मात्र से ही श्रीकृष्ण के सब अमङ्गल दूर हो गये। जो मायामय कर्म थे, सब मिट गये। तब निर्मल होकर श्रीकृष्ण उपमन्यु को भस्मादि लगाने के मन्त्र जैसे **अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म** इत्यादि विधि पूर्वक सत्कार करके फिर बारह महीने में होने वाला साक्षात्, पाशुपत व्रत मुनि ने श्रीकृष्ण से कराकर उनको उत्तम ज्ञान दिया। उस दिन से व्रत धारण करने वाले वे मुनि श्रीकृष्ण के दिव्य पाशुपतव्रत से युक्त हुए समीप में रहने लगे। तब गुरु की आज्ञा से परम शान्तिमान् श्रीकृष्ण ने पुत्र होने की इच्छा से साम्ब के उद्देश्य से शङ्कर का तप किया। एक वर्ष के उपरान्त तप करके महेश्वर का दर्शन किया और व्यग्रतारहित हो सगण साम्ब पुत्र को पाया जिस

कारण कि अम्बा पार्वती सहित महादेव ने यह अपना पुत्र दिया—

यस्मात् साम्बो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः ॥ २१ ॥

विष्णु महाराज का स्तुति कर महादेव जी से वरप्राप्ति करना।

लिङ्गपुराण अध्याय १९ में लिखा है कि जब विष्णु महाराज ने महादेव जी की स्तुति की उस समय शिव जी ने प्रसन्न होकर कहा कि हम तुमसे प्रसन्न हैं, भय को त्याग कर दर्शन कीजिए। तुम दोनों मेरे ही शरीर से उत्पन्न हुए हो, वर मांगों। उस समय विष्णु जी ने कहा कि यदि आप हमसे प्रसन्न हो तो यही वर दीजिए कि आपके चरणों में हम दोनों की दृढ़ भक्ति हो, यह सुन महादेव जी ने कहा कि ऐसा ही होगा[१] तब विष्णु जी ने दण्डवत् कर कहा कि आप हमारे भ्रम को दूर करने के अर्थ प्रकट हुए यह आपकी बड़ी कृपा है। उस समय शिव जी ने कहा कि मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप होकर सृष्टि-स्थिति-संहार करता हूँ, इस हेतु तुम तीनों मेरे ही रूप हो, तुम इस मोह को छोड़ कर जगत् का पालन करो। पाद्म कल्प में ब्रह्मा जी तुम्हारे पुत्र होंगे, तब भी तुम दोनों को मेरा दर्शन होगा। इतना कह महादेव अन्तर्द्धान हो गये। उसी दिन से जगत् में शिवलिङ्ग की पूजा का प्रचार हुआ। लिङ्ग की वेदी अर्थात् जलहरी पार्वती लिङ्ग साक्षात् शिव का रूप है। सब जगत् का उसी में लय होता है इसलिए उसका नाम लिङ्ग है।

विष्णु और ब्रह्मा के संवाद में विष्णु के कथनानुसार शिव का आदि पुरुष होना।

लिङ्गपुराण अध्याय २० में लिखा है कि सब ऋषि सूत जी से पूछते हैं कि ब्रह्मा जी पद्म से किस भांति उपजे और ब्रह्मा और विष्णु को किस

---

१. देखिए कि **पद्मपुराण** में तो महादेव ने विष्णु की स्तुति की, तब विष्णु ने प्रसन्न हो वर दिया तो महादेव ने यह मांगा कि आपके चरणों में हमारी दृढ़ भक्ति रहे। और लिङ्गपुराण में विष्णु ने भक्ति का वर महादेव से प्राप्त किया कि आपके चरणों में हमारी निश्चय भक्ति रहे और देवी भागवत में इन तीनों देवों ने देवी की स्तुति और उसकी भक्ति की है। विद्वान् लोग स्वयं विचार कर स्थित कर सकते हैं कि पुराणों की रचना किस प्रकार की है॥

भांति शिव जी का दर्शन हुआ। सूत जी ने कहा कि प्रलय समय समुद्र में पद्म धारण किये शेषनाग रूपी शय्या पर लक्ष्मी सहित अचिन्त्य योग में स्थित होकर श्री विष्णु जी शयन करते भये। उस समय क्रीड़ा के निमित्त शतयोजन, विस्तार वाला एक कमल अपनी नाभि से उत्पन्न किया, इसी बीच चतुर्मुखी आए। विष्णु को देख आश्चर्य से कहने लगे कि तुम कौन हो, और यहाँ क्यों सोते हो ? तब विष्णु उठ कर कहने लगे कि प्रति कल्प में हम यहाँ ही शयन करते हैं और आकाशवाणी स्वर्ग आदि के हम ही प्रभु हैं। फिर उनसे पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो, कहाँ को जाओगे, कहाँ रहते हो, हम तुम्हारा क्या सत्कार करें ? यह विष्णु जी का वचन सुन शम्भु की माया से मोहित हुए-हुए विष्णु जी को बिना जाने ब्रह्मा जी कहने लगे कि जैसा तुम जगत् के प्रभु अपने को कहते हो, इसी भांति हम भी जगत् के स्वामी और सिरजने हारे हैं। इस प्रकार ब्रह्मा जी का वचन सुन विष्णु जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनकी आज्ञा पाकर विष्णु जी मुख में प्रवेश करते हुए वहाँ ब्रह्मा ज़ी के उदर में अठारह द्वीप, सात समुद्र, बड़े-बड़े पर्वत, सात लोक, ब्राह्मणादि चार वर्ण, अनेक भांति स्थावर, जङ्गम विष्णु जी देख विस्मित हो विचार करने लगे कि बड़ा भारी तप ब्रह्मा जी का है, इधर-उधर विचरने लगे। परन्तु हजारों वर्ष तक कभी अन्त न पाया। फिर मुख के मार्ग निकल आये और ब्रह्मा जी से कहा कि आप के पेट का कुछ अन्त नहीं, परन्तु आप मेरे उदर में प्रवेश करें, यह सुन ब्रह्मा जी उनके पेट में गये तो सब लोकों को देखा परन्तु अन्त न पाया और विष्णु जी सब द्वार, बन्द कर शयन करने लगे। जब उनके निकलने की इच्छा हुई और मार्ग न मिला तो सूक्ष्मरूप धारण कर विष्णु जी की नाभि के मार्ग कमलनाल के सहारे बाहर निकल आये और उसी पर विराजमान हो गये। इतने में त्रिशूल हाथ में लिए शुक्ल वस्त्र धारण किये हुए महादेव वहाँ आये, उनके चरणों से पीड़ित हुए समुद्रजल के बिन्दु आकाश तक पहुंचे और अति शीतल, कभी अति उष्ण वायु चलने लगी। यह बड़ा आश्चर्य देख ब्रह्मा जी विष्णु जी से कहने लगे कि यह जल के बिन्दु और यह प्रचण्ड पवन इस कमल को कम्पायमान कर रहा है, यह क्या उपद्रव है ? यह आप कहें। यह ब्रह्मा जी का वचन सुन मन में विचार कर विष्णु जी बोले कि तुम कौन हो, क्या भय तुमको हुआ ? तब ब्रह्मा जी

बोले कि जिस प्रकार आपने हमारे उदर में प्रवेश कर सब लोक देखे, उसी भांति हमने भी आपके उदर में देखे, परन्तु जब हमने बाहर निकलना चाहा तब आपने ईर्ष्या से द्वार रोक लिये, तब मैं सूक्ष्मरूप धारण कर कमल नाल के मार्ग से बाहर निकल आया, इसमें आप बुरा न मानें, जो कुछ आपको करना हो करें, हम आपके अधीन हैं। ब्रह्मा की यह मधुरवाणी सुन विष्णु ने कहा कि हमने आपको बोध कराने के लिए सब द्वार रोके थे, इसका आप कुछ क्षोभ न करें। आप हमारे मान्य और पूज्य हैं इसलिए हमसे जो कुछ अपराध बना हो क्षमा कर दीजिए और इस कमल से नीचे उतर जाइए क्योंकि हम आपका बोझ नहीं सह सकते आप जगत् गुरु हैं।

तब ब्रह्मा ने कहा कि आप हमसे वर मांगो। तब विष्णु ने कहा कि यही वर है कि आप इस कमल से नीचे उतर आवें और हमारे पुत्र बनें तो आप भी परम हर्ष को पावेंगे—

स होवाच वरं ब्रूहि पद्माद् अवतर प्रभो।
पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम्॥ २०.५४॥

आज से आप सबके स्वामी पगड़ी धारे रहो, पद्मयोनि तुम्हारा नाम हमारे पुत्र होकर सात लोक के स्वामी होंगे। यह तो विष्णु जी ने कहा और ब्रह्मा जी ने मांगे थे उनको देख सब मन के विकल्प दूर करते हुए इसी अवसर में सूर्य के समान प्रकाशमान बड़ा मुख, दश भुजा, त्रिशूल हाथ में लिये भयङ्कर रूप धारे आदि भयानक शब्द करते हुए शिव जी चले आते हैं, यह देख ब्रह्मा जी ने विष्णु जी से पूछा कि यह कौन है? तब विष्णु बोले ठीक है इनके चरणों से समुद्र व्याकुल हो रहा है और यह जल के बिन्दुओं से तुम भीग भी गये हो, इनकी नासिका के पवन से यह हमारा नाभिकमल तुम्हारे सहित कांपता है, वह साक्षात् महादेव हैं—

दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम्।
समागतो भवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृत् प्रभुः॥ २०.६५॥

अब हम दोनों इनकी स्तुति करें। यह सुन ब्रह्मा क्रोध कर बोले कि आप अपने स्वरूप को और हमारे स्वरूप को नहीं जानते, यह हमसे अधिक महादेव नाम कौन है? यह सुन विष्णु जी बोले कि ब्रह्मा जी! ऐसा आप न कहें, यह जगत् के हेतु हैं और सब इनके बीज हैं, ये

बीजवान् हैं। पुराण परमेश्वर इन्हीं को कहते हैं। यह जगत् इनका खिलौना है। बीजवान् ये हैं, आप बीज हैं और हम योनि हैं[1]—

बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम्।
प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ॥ २०.७१ ॥

ब्रह्मा और विष्णु की स्तुति सुन महादेव जी का दोनों को वर देना।

लिङ्गपुराण अध्याय २२ में लिखा है कि जब ब्रह्मा और विष्णु ने स्तुति की तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों को जानते भी थे परन्तु क्रीड़ा के निमित्त पूछते हुए कि तुम दोनों कौन हो? जो आपस में बड़ी प्रीति रखकर इस घोर समुद्र में स्थित हो रहे हो? यह महादेव जी का वचन सुन ब्रह्मा, विष्णु आश्चर्य से देखने लगे कि हे भगवन्! क्या आप हमको नहीं जानते? आपने ही तो अपनी इच्छा से हमको उत्पन्न किया है![2] उनका यह वचन सुन श्री महादेव ने प्रसन्न हो कहा कि हे ब्रह्मा जी! हे विष्णु जी! हम तुम्हारी इस दृढ़ भक्ति और उत्तम स्तुति से बहुत प्रसन्न भये हैं, जो कुछ वर आपको चाहिए, मांगो। यह शिव जी का वचन सुन विष्णु जी ने कहा कि महाराज आपके दर्शन पाये इससे अधिक और क्या

१. देखिए, पण्डित महाराज! इस कथा के पढ़ने से भलीभांति इन ब्रह्मा, विष्णु की सर्वज्ञता, शक्तिमत्ता को समझ गये होंगे कि दोनों एक दूसरे के पेट में हजारों वर्ष रहे और घूमा करे परन्तु एक दूसरे ने किसी का पार न पाया परन्तु महादेव के देखते ही आप योनि बन गये और ब्रह्मा को बीज और महादेव को बीजवान् सबका पिता बना दिया।

२. क्यों महाराज सुना आपने कि ब्रह्मा और विष्णु स्वयं अपने मुख से महादेव से कह रहे हैं कि आप ही ने तो हमें अपनी इच्छा से उत्पन्न किया है! क्यों ब्रह्मा में जिनको कि अंशावतार कहते हैं, महादेव के वरदान के पूर्व सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति न थी, तब यह कथन कि ब्रह्मा ने सृष्टि रची, कैसे सार्थक होगा? ब्रह्मा के रोने से जो अश्रु गिरे उनसे सर्प उत्पन्न हो गये, ब्रह्मा के आंसू थे कि सांपों के अंडे? जब ब्रह्मा और विष्णु दोनों शरीरधारी समुद्र पर थे तो उनके शरीर कहाँ से आये और समुद्र क्यों सृष्टि से पृथक् है? यदि आप कहें कि उनके शरीरों को निराकार ने रचा तो जिसने कि ब्रह्मा और विष्णु को रचा (उत्पन्न किया) क्या उसमें इस सृष्टि के रचने की सामर्थ्य न थी, कि ब्रह्मा, विष्णु महादेवादि को रच इनसे सहायता लेता?

वर होगा, जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आपके चरणारविन्द में दृढ़भक्ति देवो। यह विष्णु जी से सुन उनको अपनी दृढ़ भक्ति दी। ब्रह्मा जी से भी महादेव कहते भये कि तुम इस लोक के कर्त्ता होगे, सब जगत् के स्वामी रहोगे। इतना कह प्रीति से दोनों की पीठ पर हाथ फेर कर कहा कि तुम दोनों मेरे को अति प्रिय हो और मेरे तुल्य हो। अब हम जाते हैं। तुम भी प्रसन्न रहो और अपना-अपना व्यवहार करो, इतना कह वह अन्तर्द्धान हो गये।

ब्रह्मा जी भी विष्णु जी से ज्ञान पाय प्रजा सिरजने की इच्छा से उग्र तप करने लगे। बहुत काल तप किया परन्तु कुछ भी सिद्धि न हुई, तब तो ब्रह्मा जी को क्रोध भया। नेत्रों से अश्रु के बिंदु गिरे, उन वात, पित्त, कफ रूपी बिन्दुओं से महाविष करके युक्त बड़े भयानक सर्प उत्पन्न भये, जिनको देख वह बड़े दुःखी हुए और कहने लगे कि हमारे तप को धिक्कार है जो पहिले ही संहार करने वाली प्रजा उत्पन्न भई, अब क्या करें? इतना कहते ही ब्रह्मा जी दुःख से मूर्च्छित हो गिर पड़े और प्राण त्याग दिए—

तस्य तीव्राभवद् मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा।
मूर्च्छाभिः परिपातेन जहौ प्राणान् प्रजापतिः॥ २२॥

उस समय उनकी देह से बड़ी दीनता के कारण रोते हुए रुद्र निकले और रोने से ही उनका नाम रुद्र हुआ शिव जी ने ब्रह्मा जी की यह दशा देख दया से फिर उनको प्राण दिये और चैतन्य किया और ब्रह्मा जी ने शिव को प्रणाम कर स्तुति की।

विष्णु जी का हिमालय पर शिवलिङ्ग स्थापन कर शिव की आराधना कर अपने नेत्र उखाड़ कर चढ़ाना फिर प्रसन्न हो शिव का नेत्र और सुदर्शनचक्र का देना।

लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ९८ और **शिवपुराण** ज्ञानसंहिता अध्याय ७० में लिखा है कि पूर्वकाल में देवताओं और दैत्यों का बड़ा घोर संग्राम हुआ उसमें दैत्यों ने नाना शस्त्रों से देवताओं को पीड़ित कर पराजित किया। तब देवता विष्णु भगवान् की शरण में गये, उन्होंने आने का कारण पूछा, तब उन्होंने अपने उपर्युक्त दुःख को वर्णन किया और कहा कि यदि आपको महादेव से सुदर्शनचक्र नाम शस्त्र मिल जावे तो दैत्यों का वध हो

सकता है, अन्यथा नहीं तब विष्णु भगवान् ने कहा कि हे देवताओ! शिव जी का आराधन करो, शीघ्र तुम्हारा दु:ख दूर करेंगे, चिन्ता मत करो। इतना कह वह हिमालय पर्वत पर जाय मेरुपर्वत के समान अति मनोहर विश्वकर्मा का बनाया हुआ शिवलिङ्ग स्थापन कर त्वरित सूक्त और रुद्राध्याय से गङ्गाजल करके स्नान कराय, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारों से पूजाकर, भक्ति से हवन कर, हाथ जोड़, स्तुतिकर, सहस्र नामों के आदि में प्रणव और अन्त में नमः लगा, प्रति नाम से एक-एक कमल का पुष्प शिवलिङ्ग के ऊपर चढ़ाने और इसी भांति नित्य हवन करने लगे। इस बीच में शिव जी ने उनकी भक्ति की परीक्षा के लिए गिने हुए सहस्र कमलों में से एक कमल गुप्तकर दिया। विष्णु जी ने भी सब कमल चढ़ाय देखा तो एक घट रहा। तब भगवान् ने कमल-पुष्प न मिलने से अपना नेत्र कमल उत्पाटन कर शिव जी के अर्पण किया—

हृतपुष्पो हरिस्तत्र किमिदं त्वभ्यचिन्तयत्।
ज्ञात्वा स्वनेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्वावलम्बनम्॥ १६१॥

इस भान्ति विष्णु भगवान् का दृढ़भाव देख कोटि सूर्य्य के समान देदीप्यमान जटा और मुकुट से मण्डित ज्वाला, माला करके व्याप्त सब शरीर पर भस्म लगाये अग्निकुण्ड में शिव जी प्रकट हो अति भयानक रूप देख सब देवता भयभीत हो भागे और ब्रह्माण्ड कांप उठा, विष्णु भगवान् भक्ति से प्रणामकर हाथ जोड़ आगे खड़े हुए, शिव जी ने कहा कि हे विष्णु जी! हम देवताओं का कार्य जानते हैं। आपने भी हमारी बहुत सेवा की है, तुम हमारे भयङ्कर रूप का ध्यान करते हुए युद्ध करो। तुम विना आयुध के भी जय पाओगे। इतना कह हजारों सूर्यों के तुल्य प्रकाशक सुदर्शन चक्र शिव जी ने विष्णु भगवान् को दिया और कमल के समान अति सुन्दर नेत्र भी दिया। उसी दिन से भगवान् का नाम पुण्डरीक हुआ[१]—

---

१. देखिए, पण्डित जी! कैसे आश्चर्य की बात है और विशेष कर इसको वैष्णव भाई ध्यान पूर्वक सुनें कि उनके उपास्यदेव ने शिव जी की पूजा की और जब महादेव ने एक फूल चुरा लिया तो विष्णु ने अपनी आंख निकाल कर शिवलिङ्ग पर चढ़ा दी। क्या इन्हीं विष्णु को ईश्वरावतार और सर्वज्ञ मानते हैं? फिर न विष्णु शिव के भक्त ही रहे।

नेत्रञ्च नेता जगतां प्रभुर्वै पद्मसन्निभम्।
तदा प्रभृति तं प्राहुः पद्माक्षमिति सुव्रतम्॥ १७७॥

फिर भगवान् के ऊपर प्रेम से हाथ फेर शिव जी ने कहा कि तुमने अपनी दृढ़ भक्ति से हमको वश कर लिया। जो कुछ वर चाहो, मांगों। तब विष्णु महाराज ने कहा कि आपमें दृढ़ भक्ति हो यही वर चाहता हूँ। तब शिव जी ने कहा कि तुम सदा देवता और दैत्यों के पूज्य होगे और जब दक्ष की पुत्री सती अपने माता-पिता से क्रोध कर शरीर त्याग, हिमालय के घर उत्पन्न होगी। उस अपनी भगिनी को ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार हमको विवाह दोगे। उस दिन से हमारे सम्बन्धी और जगत्पूज्य हो जाओगे और हमको अपना मित्र समझोगे—

भगिनीं तव कल्याणीं देवीं हैमवतीमुमाम्।
नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं प्रदास्यसि ममैव ताम्॥ १८५॥
मत्सम्बन्धी च लोकानां मध्ये पूज्यो भविष्यसि॥ १८६॥

इसी **लिङ्गपुराण** में कई जगह यह लिखा है कि शिव पिता और विष्णु, ब्रह्मा पुत्र हैं। फिर क्या महादेव के वरदान से पूर्व विष्णु जगत् के रचयिता और पूज्य न थे?

ब्रह्मा जी का देवताओं के सहित क्षीरसागर पर जा विष्णु जी की स्तुति कर उनसे पूछ कार्य करना।

ज्ञानसंहिता अध्याय २५ में लिखा है कि एक बार ब्रह्मा सब देवताओं सहित क्षीरसागर पर जाकर स्तुति करने लगे। उस समय विष्णु ने पूछा कि आप किस प्रयोजन से आये हैं? ब्रह्मा ने कहा कि हमको किसकी पूजा करनी योग्य है? तब उन्होंने कहा कि हे देवाधिदेव! सब दुःखों के दूर करने हारे शङ्कर की पूजा करनी योग्य है—

यदि सेव्यः सदा देवः शङ्करः सर्वदुःखहा।
ममापि कथितं तेन ब्रह्मणोऽपि विशेषतः॥ २१॥

प्रत्यक्ष तुमने देखा कि तारकासुर के पुत्र शिव को पूजा न करने से ही नष्ट हो गये इसलिए शिवलिङ्ग का पूजन करना उचित है। इसकी पूजा में सब देवता-दानव आ जाते हैं और उन्हीं की पूजा करने से सांसारिक और

पारमार्थिक सुखों की प्राप्ति होती है। इसलिए उसी समय से पद्मणा मणि के लिङ्ग को, इन्द्र सुवर्ण के लिङ्ग को, कुबेर पीले मणिमय लिङ्ग को, धर्मराज श्याम लिङ्ग को, वरुण इन्द्रमणि के लिङ्ग को, विष्णु सुवर्णमय लिङ्ग को, ब्रह्मा, विश्वेदेवा और वसुओं को चांदी का, वायु को आरकट् (पीतल) अश्विनी कुमार को मृत्तिका का; लक्ष्मी देवी को स्फटिकमणि का, आदित्य को ताम्र का, सोमराज को मौक्तिक का, अग्नि को हीरे का, ब्राह्मणों को मृत्तिका का और चन्दन के शिवलिङ्ग में इष्ट हुआ एवं अनन्तादि नाम मूगों का दैत्य गोमय का और इसी प्रकार का महाबली राक्षस भी पूजने लगे तथा पिशाच लोहमय लिङ्ग का शिवा देवी मक्खन के निमित्त योगी भस्म सूर्य्यपत्नी छायापिष्ट ब्राह्मणी रत्न का यज्ञ दही के इत्यादि सब देवता और ऋषि, ब्रह्मा, विष्णु सिद्धि की इच्छा से शङ्कर का पूजन करते हैं—

ते पूजयन्ति सर्वे वै देवा ऋषिगणास्तथा।
ब्रह्मा चैव तथा विष्णुरथ देवाश्च ये पुनः॥ ४८॥
पूजयन्ति तदा देवं नित्यं सिद्धिमीहया॥ ४९॥

शिव जी का ब्रह्मा विष्णु से कहना कि मैं ही ईश्वर हूं।

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय ६-९। एक बार ब्रह्मा विष्णु के यहाँ गये और उनसे कहने लगे कि तुम कौन हो, क्यों अभिमान करते हो? मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। विष्णु ने कहा कि यह जगत् मुझमें स्थित है, तुम चोर के समान किस प्रकार कहते हो, तुम मेरी नाभि से उत्पन्न हुए, इस लिए मेरे पुत्र हो, फिर मुझे पुत्र क्यों कहते हो? दोनों में संग्राम होने लगा, देवता व्याकुल होकर शिव के पास गये और सब वृत्तान्त जान गणों को समर में जाने की आज्ञा दी और आप भी गये। जहाँ ब्रह्मा और विष्णु थे वहाँ दोनों के बीच में निर्गुण ब्रह्म स्थित हुए। इस महा अग्नि के प्रकट होते ही दोनों आपस में कहने लगे कि यह इन्द्रियगोचर क्या है? इसका पता लगाना चाहिए। ऐसा कह विष्णु शूकर का रूप धारण कर नीचे को, ब्रह्मा हंस का रूप हो ऊपर को गये। फिर विष्णु ने सत्य कहा, ब्रह्मा ने मिथ्या भाषण किया। जिस पर शिव जी ब्रह्मा से अप्रसन्न और विष्णु से

प्रसन्न हुए। फिर ब्रह्मा का मद दूर करने के लिए महादेव ने अपनी भृकुटी से भैरव को उत्पन्न किया उसने कहा कि मैं क्या करूं? शिव ने कहा कि यह जगत् के आदि देवता ब्रह्मा हैं इनका तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से प्रहार करो। सुनते ही भैरव ने एक हाथ से केश पकड़ ब्रह्मा का पाँचवाँ असत्यभाषी शिर काट कर और भी शिर काटने की इच्छा की—

स वै गृहीत्वैककरेण केशं तत् पञ्चमं दृप्तमसत्यभाषणम्।
छित्त्वा शिरांस्यस्य निहन्तुमुद्यतः प्रकम्पयन् खड्गमतिस्फुटं करैः ॥

अध्याय ८ श्लोक ४।

तब ब्रह्मा भैरव के चरणों पर गिर पड़े, तब विष्णु ने कहा कि पहिले आपने कृपा करके पांच शिर दिये एक जाता रहा, अब जाने दीजिए। तुमने अपनी पूजा होने के लिए छल किया इस लिए लोक में तुम्हारा सत्कार और उत्सव न होगा। अन्त को जब दोनों ने शिवलिङ्ग की पूजा की तब शिव ब्रह्मा, विष्णु से प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मैं ही परब्रह्म हूँ, मैं ही ईश्वर हूं। जैसा कि अध्याय ९ में कहा है—

अहमेव परं ब्रह्म मत्स्वरूपं कलाकलम्।
ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाहं कृत्यं मेऽनुग्रहादिकम्॥ ३६ ॥

यही कथा **लिङ्गपुराण** अध्याय १६ में भी आई है।

रामचन्द्र आदि का ब्रह्महत्या दूर करने के लिए शिव की उपासना करना।

लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मा आदि देवता बड़े-बड़े राजा मुनि आदि शिवलिङ्ग की पूजा करते हैं, विष्णु के अवतार रामचन्द्र जी ने ब्रह्मा के पुत्र को मार तदुपरान्त ब्रह्महत्या रूपी निवृत्ति के लिए समुद्र के तट पर शिवलिङ्ग स्थापन किया। हज़ारों पाप करके, सैंकड़ों ब्राह्मण मारकर जो शुद्ध भाव से शिव जी की शरण में जाय वह निस्संदेह मुक्ति ही पावे। सब लोक लिङ्गमय हैं और लिङ्ग में स्थित हैं, इस कारण मुक्तिपद की इच्छा वाला पुरुष सदा शिवलिङ्ग की पूजा करे।[१]

१. देखिए महाराज पद्मपुराण में जो शिव के भक्त बन गये और लिङ्ग पुराण में शिव के भक्त विष्णु बने। क्या एक-दूसरे के विरुद्ध यह नहीं है? अब इन दोनों श्लोकों

जैसा **लिङ्गपुराण** उत्तरार्द्ध अध्याय ११ में लिखा है—

सर्वे लिङ्गमया लोकाः सर्व्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिताः।
तस्मादभ्यर्च्चयेद् लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम्॥ ४०॥

सरयू तीर श्रीराम के भोजन कराने के समय शिव का अतिथि रूप में जा चमत्कार दिखलाना।

पद्मपुराण पञ्चम पाताल खण्ड अध्याय ११७ में लिखा है कि श्री रामचन्द्र जी सरयूतीर नारदादि महात्माओं को भोजन करा रहे थे, उसी समय में एक वृद्ध ब्राह्मण ने जिसके मुंह से लार निकलती थी, शरीर काँपता था, खाल सब झूली पड़ी थी, श्रीराम से कहा कि हमको भी भोजन दो। तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि इनके पैर तुम धोओ, हम अन्यों के धोवें। उस अभ्यागत ने कहा कि जब आप ही हमारे पैर धोवेंगे तब ही हम भोजन करेंगे। क्या हमसे श्रेष्ठ इनमें कोई और ब्राह्मण है जो हमारा अनादर करते हो? इससे तुम नरक को जाओगे। तब श्रीराम जी ने पैर धोये, फिर श्राद्ध की सब क्रिया कर ब्राह्मण भोजन कराने लगे। तब वह वृद्ध ब्राह्मण सब परोसा हुआ भोजन एक ही ग्रास में खा गया। फिर भोजन माँगा, तब राम जी ने शम्भु मुनि से कहा कि आप इनको भोजन कराइए क्योंकि आप साक्षात् शिव हो और स्त्री आपकी पार्वती हैं। तब पार्वती ने कहा कि मैं अभी अधवाये देती हूँ। इतना कह सुवर्ण के पात्र में भात ले सुवर्ण की करछी से यह कहा कि यह भोजन विप्र को अक्षय हो, ऐसा कह उसके दाहिने हाथ में दिया, उसने फिर बायाँ हाथ निकालकर पायस माँगा, वह दोनों से खाने लगा, जब वह न चुका तो एक हाथ और निकाला, पार्वती ने उसमें दिया। इस भांति सहस्र हाथ तक निकाले और देवी जी ने सहस्र हाथ तक सब पूर्ण कर दिये तब उस विप्र ने कहा कि अब हम पूर्ण हो गये। जल से आचमन किया और उस वृद्ध को बुलाया,

---

का आश्रय विष्णु इत्यादि का पूजन छोड़ शिव बन वरन् रौरव नरक के भागी एवं जार इत्यादि को दोष लिङ्गपुराण लगावेगा। हम यह दर्शा चुके हैं कि देवी भागवत में रामचन्द्र ने देवी का पूजन किया और पद्मपुराण में एकादशी व्रत से और लिङ्गपुराण में शिवलिङ्ग के पूजन से समुद्र पार हुए। कहिए, पण्डित जी! इनमें से किस की ठीक मानें।

वह न गया। तब राम जी ने कहा कि चलो, तब उसने कहा कि उठा नहीं जाता। तब राम जी ने कहा कि हमारे हाथ के सहारे से उठो, पर न उठा। तब हनुमान ने एक हाथ अपना पकड़वाकर दूसरे से ईंचा पर न खिंचा और रोदन किया कि हमारे हाथ को खेद होता है, अब तुम कोई और भाग पकड़ कर खींचो, तब हनुमान अपनी पूछ से उसका शिर लपेटकर दौड़े, पर वह न हिला। हनुमान ने दोनों पैर जमाकर हाथों से उठाकर घर ऊपर उठाय फेंक दिया। वह गृह फूट गया, ब्राह्मण बाहर आ गये। फिर उसने जल मांगा तब लक्ष्मण लेकर गये, उसने कहा कि सीता को भेजो वह मेरे सब अङ्गों को धोवे। सीता गई, उसने जल दिया। उसने कुल्ला मुख पर कर दिया। सीता ने कुछ नहीं कहा, वही उनको भूषण हो गया। फिर सीता जी ने खकार आदि सब धोकर सब नाक का मैल निकाल बाहर किया। फिर लक्ष्मण ने आचमन कराकर कहा कि उठो। तब उन्होंने कहा कि हम पर उठा नहीं जाता। तब जाम्बवन्त ने उठाकर जहाँ सब ब्राह्मण बैठे थे, बिठा दिया। तब राम आदि ने प्रदक्षिणा की राम ने सीता से कहा कि इनका मल स्वच्छ नहीं किया? सीता ने कहा कि अभी सब क्रिया की तो भी मैला होगा। तब विप्र ने कहा कि हमारी दोनों ऊरू को सीता पकड़े रहे और आप दोनों हाथ। भरत पंखा करें, लक्ष्मण हमारे शिर के केश सवारते रहें, शत्रुघ्न हमारी खकार धोते रहें। तब सबों ने ऐसा ही किया। तब सीता ने तिरछी भौंहें कीं। यह सुन शंख, चक्र, गदा धारण किये अतिथि जी प्रसन्न हुए, पीताम्बर ओढ़ प्रकाशित हो बोले कि जिस शम्भु की तुमने पूर्वकाल में आराधना की, वे अब प्रसन्न हुये। इतना कह रामचन्द्र जी का हाथ पकड़ कर शिव जी खड़े हो गये। तब सबने बहुत सत्कार से नमस्कार किया। छाती से लगा मस्तक सूंघा। कहा कि वर मांगो।

तब राम जी ने कहा कि हमको कुछ भी मांगना नहीं है क्योंकि पृथिवी मण्डल का राज्य प्राप्त ही है, स्वर्ग कर्मों से मिल रहा है, नाना प्रकार के भोगविलास आपके चरणों के दर्शन से मिल रहे हैं, शरीर की आरोग्यता और यश आदि सब हैं, स्त्री सीता सब स्त्रियों में श्रेष्ठ है, इसलिए यह वर मांगते हैं कि तुममें हमारी स्थिर भक्ति हो—

तथापि वरय किञ्चिद्भक्तिरस्तु स्थिरा त्वयि।

दूसरा वर यह है कि हे देव! तीन वर्ष तक तुम हमारे घर में इसी रूप

से बस कर सब धर्म कहते रहो—

तथा मम गृहे देव त्रिवर्षं तिष्ठ हे प्रभो॥ १८६॥

ब्रुवन् समस्तधर्मांश्च रूपेणानेन शङ्कर॥ १८७॥

तब शम्भु ने कहा कि राम ऐसा ही होगा। तब विष्णु भगवान् जो लोकालोक के पार से श्रीराम के साथ आये थे, बोले कि हम भी तुमसे प्रसन्न हैं, वर मांगो। श्रीराम जी ने कहा कि हमको तुमसे कुछ नहीं मांगना है क्योंकि जो कुछ मिलना था वह सब शम्भु से मिल चुका है सो अभी आपके सामने भी कह चुके हैं। हाँ, विष्णु सर्वदा प्रसन्न बने रहो। तब उन्होंने सीता से कहा कि हम तुमसे प्रसन्न हैं। तुम वर मांगो। सीता ने कहा कि हमने तो पूर्व समय में भर्त्ता का वर मांगा था अब अन्य वर नहीं मांग सकती जो वर दिया चाहो तो यही वर दो कि पर पुरुष से वर मांगने की इच्छा न हो। तब शिव ने कहा कि हम पार्वती सहित तुम्हारे मन्दिर में वसेंगे—

एकान्तमन्दिरे रम्ये देव्या सह वसामि ते॥ १९४॥

विष्णुभक्त राजा क्षुप और शिव भक्त दधीचि से युद्ध होना, क्षुप की मदद पर विष्णु का जाकर लड़ना और उससे हारना।

लिङ्गपुराण अध्याय ३५ व ३६ में लिखा है कि सनत्कुमार जी! ब्रह्मा जी का पुत्र क्षुप नाम एक राजा दधीचि मुनि का परम मित्र था। एक दिन दोनों का विवाद हुआ, दधीचि ने कहा कि ब्राह्मण से श्रेष्ठ राजा क्षत्रिय उत्तम होते हैं। दधीचि को क्रोध आया और राजा के शिर में मूका मारा, तब क्षुप ने वज्र से गिराया। तब दधीचि ने शुक्र जी महाराज का स्मरण किया, जिन्होंने बहुत शीघ्र आकर अमृत संजीवनी विद्या से राजा को चङ्गा कर दिया और कहा कि तुम महादेव की आराधना करो जिससे अवध्य हो जाओगे। हमने भी यह विद्या महादेव जी से प्राप्त की है। फिर उसके जय की विधि बतलाई जिसको सुन दधीचि मुनि ने बड़े तप से शिव को प्रसन्न किया और उनके वर से अवध्य हो गया और वज्र के तुल्य अस्थि हो गये और सब दीनता जाती रही। तब फिर आकर राजा को ताड़न किया और क्षुप राजा ने भी दधीचि की छाती में वज्र मारा परन्तु उसके न लगा,

क्योंकि शरीर अवध्य हो गया था तब राजा भी विष्णु जी का आराधन करने लगा जब विष्णु प्रसन्न हुए तब राजा ने अपना सब वृत्तान्त कहा तो विष्णु बोले कि जो ब्राह्मण शिव की शरण रहते हैं उनको किसी प्रकार का भय नहीं होता, शिव भक्त चाहे नीच भी हो। इसलिए तुम्हारा विजय न होगा अब हम दधीचि मुनि को क्रोध कराते हैं जिससे देवताओं सहित हमको शाप दे जिससे दक्ष के यज्ञ में देवताओं सहित हमारा नाश हो केवल तुम्हारे जप होने के कारण हम यत्न करते हैं।

यह सुन राजा ने कहा कि जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिए। तब विष्णु जी ब्राह्मण का रूप धारण कर दधीचि आश्रम में गये और कहा कि हे ब्रह्म दधीचि! तुम से एक वर मांगते हैं, आप हमको दें। तब उन्होंने कहा कि तुम्हारा अभिप्राय मैं जानता हूँ, मैं आप से भी नहीं डरता, आप विष्णु हैं और ब्राह्मण का रूप धारण कर आये, इसको छोड़ दीजिए। यह सुन उन्होंने ब्राह्मण का रूप छोड़ दिया और अपना रूप धारण किया, तब दधीचि ने कहा कि तुम परम शिव भक्त हो इस लिए सर्वज्ञ हो, तुमको किसी का भी भय नहीं, परन्तु हमारे कहने से राजा क्षुप से सभा में कह दो कि हम तुमसे डरते हैं। जब दधीचि ने न माना और कहा कि मैं शिव की कृपा से किसी से भी नहीं डरता तब तो भगवान् को बड़ा क्रोध आया और दधीचि के दग्ध करने के लिए चक्र उठाया परन्तु कुण्ठित हो गये। उस समय राजा क्षुप भी वहीं था तब दधीचि ने कहा कि आपको चक्र शिव जी से मिला है इसलिए शिव भक्तों पर नहीं चला। अब आप किसी दूसरे अस्त्र से मारने का यत्न करें। यह सुन सब अस्त्र एक साथ चलाये और देवता भी उनकी सहायता के लिए आये। दधीचि ने उस समय शिव जी का स्मरण किया और एक कुशा की मुष्टि सब देवताओं पर फेंक दी जो कालाग्नि के तुल्य त्रिशूल हो गया। उसने भी यही सोचा कि सब देवताओं को दग्ध कर दूं। इन्द्र, विष्णु आदि ने जो अस्त्र छोड़े थे वह सब त्रिशूल को प्रणाम करने लगे और देवता व्याकुल होकर भाग गये। विष्णु ने करोड़ों गण अपने समान उत्पन्न किये परन्तु दधीचि ने सब को एक ही वार में भस्म कर दिया। तब तो दधीचि को विस्मय करने को विश्व रूप धारा। दधीचि ने उनके शरीर में करोड़ों देवता, रुद्र गण और ब्रह्माण्ड देखे। तब दधीचि ने जल से अभ्युक्षण कर के कहा कि आप इस माया को छोड़

देवें। मैं आपको दिव्यदृष्टि देता हूँ मेरे शरीर ही में आप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि करोड़ों देवता और ब्रह्माण्ड देख लीजिए। इतना कह दधीचि ने अपने शरीर में सम्पूर्ण विश्व दिखा दिया और कहा कि इन मायाज्ञों से कुछ फल नहीं। आप इस माया को त्याग युद्ध कीजिए। मुनि का प्रभाव देख कर विष्णु जी को ब्रह्मा ने आकर युद्ध से हटाया। विष्णु भी दधीचि को प्रणाम कर अपने लोक को जाते भए। राजा क्षुप भी दुःखी होकर दधीचि की पूजा कर बार-बार प्रणाम कर कहने लगा आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। विष्णु अथवा और देवता भी आपका कुछ नहीं कर सके, आप परम शिव भक्त हैं, यह भक्ति मुझ से अधम क्षत्रियों को क्योंकर मिल सकती है?

इसलिए आप अनुग्रह करें और अपराध क्षमा किया जावे। यह राजा का दीन वचन सुन उन्होंने अनुग्रह किया और सब देवताओं को शाप दिया कि दक्ष प्रजापति यज्ञ में विष्णु सहित सब देवता रुद्र के क्रोध रूप अग्नि में दग्ध होंगे—

रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः।
ध्वस्ता भवन्तु देवेन विष्णुना च समन्विताः॥ ३६.७३॥

इस प्रकार युद्ध कर मुनि ने कहा कि सबसे बलवान् और पूज्य सदा ब्राह्मण हुआ करते हैं, मुनि कुटी में पधारे। जहाँ युद्ध हुआ उस स्थान का नाम स्थानेश्वर भया, वहाँ जो शरीर को त्याग करे वह शिवलोक को पाते हैं और जो इस वृत्तान्त को पढ़ता है, वह अल्पमृत्यु को जीतता है और ब्रह्मलोक को जाता है[१]—

तदेव तीर्थमभवत् स्थानेश्वरमिति स्मृतम्।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ७७॥
य इदं कीर्त्तयेद् दिव्यं विवादं क्षुब्दधीचयोः।
जित्वाल्पमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः॥ ७९॥

---

१. यह कथा स्पष्ट रूप से शिव को उच्च और विष्णु को न केवल शिव से ही किन्तु उनके भक्त दधीचि से भी निम्न बता रही है।

श्वेतमुनि का शिवलिङ्ग की पूजा कर मृत्यु को जीतना।

लिङ्गपुराण अध्याय ३० श्वेतमुनि एक पर्वत की गुहा में रहते और तप करते थे। जब उनकी मृत्यु समीप आई, तब वह **नमस्ते रुद्र मन्यवे०** इत्यादि रुद्राध्याय से श्री महादेव जी की स्तुति करने लगे। इस अवसर में काल भगवान् भी श्वेतमुनि का आयुष समाप्त हुआ जान उनको ले जाने के अर्थ उनके आश्रम में आए। श्वेतमुनि भी काल को देख त्र्यम्बक भगवान् का स्मरण करते हुए पूजन करने लगे और कहने लगे कि हमारा मृत्यु क्या कर सकती है? श्री महादेव जी के अनुग्रह से हम ही मृत्यु के भी मृत्यु हो गये। उनको देख काल भगवान् ने हंस कर कहा कि हे श्वेतमुनि! अब हमारे पास चले आओ, इस पूजा पाठ से क्या फल है? शिव, ब्रह्मा, विष्णु, आदि कोई भी हमारे ग्रास किये जीव के छुड़ाने में समर्थ नहीं, यहां तुम्हारी आयुष समाप्त हो गई है, अब हम क्षणमात्र में तुम को यमलोक में ले चलते हैं। यह काल का वचन सुन हा रुद्र! हा रुद्र! इस भांति ऊंचे स्वर से श्वेतमुनि विलाप करने लगे और शिव जी के लिङ्ग को दीन दृष्टि से देखते हुए व्याकुल हो काल के प्रति कहने लगे कि हे काल! इस लिङ्ग में हमारे प्रभुभक्तों का भय हरने हारे श्री महादेव जी विराजमान हैं, इसलिए तुम अपने स्थान को जाओ, हमारा कुछ नहीं कर सकते। यह श्वेत का वाक्य सुनते ही बड़े क्रोध से गर्ज कर काल भगवान् ने पाश से श्वेतमुनि को बांध लिया और कहा कि हे श्वेत! यमलोक में ले जाने के अर्थ हमने तुमको बांधा है, अब रुद्र ने क्या सहायता की, कहाँ शिव, कहाँ तेरी भक्ति, तेरी पूजा और पूजा का फल इसी लिङ्ग में जो रुद्र स्थित हैं, वह निश्चेष्ट हैं, इसलिए उसकी पूजा करना उचित नहीं। इतना कहते ही नन्दीगण, पार्वती और शिव जी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। तब तो काल भगवान् भयभीत हो भूमि पर गिर पड़ा। तब श्वेतमुनि ने प्रसन्न हो महादेव को सहित पार्वती के प्रणाम किया। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। शिव जी का प्रभाव देख नन्दी ने प्रणाम कर कहा कि महाराज! यह मूर्ख काल अपने अज्ञान से मृत्युवश भया, अब इस के ऊपर कृपा कीजिए।[१]

---

१. क्यों महाराज! काल का वास्तविक अर्थ तो समय है परन्तु लोक में प्राणों के वियोग का नाम काल है। यद्यपि समयवाची काल की नवद्रव्यों में संख्या है परन्तु

देवी का महत्त्व

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी के बड़प्पन को तो आप सुन चुके, अब देवी महारानी के अद्भुत और अपूर्व गुणों के सार का भी श्रवण कर लीजिए।

सुयोग्य पण्डितजी—बहुत अच्छा।

विष्णु की निद्रा दूर करने के लिये ब्रह्मा जी का वम्री को उत्पन्न करना फिर सब देवताओं का भगवती की तपस्या कर घोड़े का सिर जोड़ना।

दैत्यों से दश हज़ार वर्षों तक युद्ध हुआ इसके पश्चात् वह किसी स्थान पर पद्मासन कर कण्ठ में धनुषकोटि लगा करके शयन कर रहे, थके तो थे ही कुछ दैवयोग से बहुत ही निद्रित हुए। कुछ दिनों के पश्चात् ब्रह्मादि देवों की इच्छा यज्ञ करने की हुई, इसलिए सर्वयज्ञों के स्वामी विष्णु जी के समीप सम्मति लेने को गये परन्तु वैकुण्ठ में विष्णु जी को न पाया, तब ज्ञान-दृष्टि से जहाँ विष्णु भगवान् थे वहाँ पहुंचे, देखा कि विष्णु जी सो रहे हैं। तब कुछ दिनों तक आशा देखी कि अब जागे, परन्तु न जागे तो इन्द्र ने कहा कि किसी यत्न से निद्रा भङ्ग करो परन्तु इस में बड़ा दूषण है तुम लोग यज्ञकार्य की और युक्ति विचारो। तब ब्रह्मा जी ने वम्री नामक कृमि उत्पन्न करके विचारा कि जो यह धनुषकोटि का भक्षण करे तो जिससे कि हरि उसी पर कण्ठ धरे हुए शयन करते हैं, जाग उठेंगे। यह उससे भी कहा तब वह वम्री बोली कि मैं निद्रा भङ्ग न करूंगी क्योंकि लिखा है कि निद्राभङ्ग, कथाछेद, स्त्री-पुरुष की प्रीति में भेद डालना, माता पुत्र को छुड़ा देना यह चार कर्म ब्रह्महत्या के समान हैं। फिर जो कोई ऐसा काम करता है वह किसी लालच के कारण करता है सो हमको क्या मिलेगा? तब ब्रह्मा जी ने कहा कि यज्ञ में होमकर्म में कुछ अन्यत्र

जो कि मृत्यु का पर्यायवाची काल माना जाता है वह केवल, मृत प्राणवियोग का अर्थ देता है। विद्वज्जन विचार कर सकते हैं कि काल कोई वस्तु नहीं फिर उससे बातें करना और उसका बांधना, यह बातें असम्भवादि दोषों से परिपूर्ण नहीं तो केवल इतना है कि सब प्रकार से शिव का महत्त्व प्रकट हो और लिङ्ग पूजा का प्रचार बढ़े।

पायसादि पतित होगा वह तुम्हारा भाग होगा, अब जगाने की युक्ति करो। यह सुन उसने धनुष का अग्रभाग भक्षण कर लिया तब तो प्रत्यञ्चा चाप से भिन्न हो गई। उसके अन्यत्र होते ही ऐसा शब्द हुआ कि जिससे चतुर्दश भुवन क्षोभ को प्राप्त हुए, पृथ्वी कम्पित हो उठी, समुद्र खलबला उठे, सर्वजलजन्तु बहने लगे, प्रचण्ड पवन चलने लगी और पर्वत कांपने लगे, अनेक उल्कापात हुए, दिशाओं में अन्धकार छा गया, सूर्य अस्त हो गया, उस समय में यह विदित न हुआ कि उनका शिर कुण्डल सहित कहाँ चला गया? तब सब देवता रुदन करने लगे—हा विष्णु! अछेद्य अभेद्य थे। उनका शिर कृन्तत हो गया। अब हम लोग बिना आपके कैसे जीवेंगे, इस संसार की क्या दशा होगी? **देवी भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ५ में लिखा है—

एवं चिन्तयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुण्डलः।
गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः॥ ३०॥
दृष्ट्वा कबन्धं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः।
चिन्तासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः॥ ३२॥

जब इस प्रकार वहाँ रुदन होने लगा तब बृहस्पति जी ने कहा कि अब रोने पीटने से क्या, कोई उपाय करना चाहिए। यह सुन इन्द्र बोले कि दैव ही जो चाहता है वह होता है। पुरुष को धिक् है जो हम सब के देखते ही देखते शिर कट गया अब क्या करें? जैसा कि शम्भु जी ने हमारा शिर काट डाला और महादेव का पात हो गया वैसा ही विष्णु का शिर लवण समुद्र में कट के जा गिरा। इन्द्र के अङ्ग में सौ भग हो गये। यही इन्द्र कमल में छिपे। इससे यह ही समझना चाहिए कि संसार में आकर किसको दुःख नहीं होता—

एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते।
संसारेऽस्मिन् महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै॥ ४७॥

अब चिन्ता न करो और सर्वजगजननी भगवती का ध्यान करो तो सकल कार्य सिद्ध होंगे। इतना कह वेदों को आज्ञा दी जो कि मूर्त्ति को धारण किये आगे खड़े थे कि तुम महामाया, महाविद्या, जगन्माता की स्तुति करो, वेद यह सुन अति विचित्र बड़ी स्तुति करने लगे—

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वाङ्गसुन्दराः।
तुष्टुवुर्ज्ञानगम्या तां महामायां जगत्स्थिताम्॥ ५२ ॥

अन्त को कहा कि हे देवी! क्या तुम सिन्धुपत्नी से अप्रसन्न हो, इनको पतिहीन क्यों देखना चाहती हो? अब अपने ही अंश से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के अपराध को क्षमा कजिए और विष्णु को उठाके महालक्ष्मी को हर्षित कीजिए—

सिन्धोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये, कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्।
क्षन्तव्यस्ते स्वांशजातापराधो, व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व॥ ६६ ॥

हे अम्बे! यह हम नहीं जानते कि विष्णु का मस्तक कहाँ गया और उनके जीने का अन्य उपाय क्या है जिस भांति अमृत जीवन के कर्म में दक्ष है वैसे ही जगत् को जीवन देने वाली तुम हो—

मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो, नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य॥
यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा तथा जगज्जीवितदासि देवि॥ ६८ ॥

इसके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि देवताओ सोच न करो जो इस वेदों के किये हुए स्तोत्र को पढ़ेगा वह सर्ववाञ्छित फल पावेगा।

अब इसका कारण सुनिये जिससे विष्णु का सिर कटा। एक दिन की बात है कि लक्ष्मी जी का मुख देखकर हरि जी बहुत हंसेय, तब लक्ष्मी जी ने जाना कि हमारे मुख में कुछ दोष विचार कर हास्य करते हैं अथवा हमसे उत्तम कहीं स्त्री देख ली है, इस कारण हंसते हैं, नहीं तो न हंसते। यह विचार तामसी प्रकृति का आश्रय कर लक्ष्मी ज़ी ने धीरे से कहा कि आपका सिर गिर पड़े। जैसा कि **देवी भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ५।

शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः॥ ८० ॥

स्त्रीस्वभाव, भावीवश और कालयोग से ऐसा शाप दिया जिससे अपने ही सुख का नाश किया, सौत के दुःख को विधवा के दुःख से अधिक समझा—

स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात् कालयोगाद् विनिर्गतः।
अविचार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः॥ ८१ ॥

वासुदेव का शिर अभी संयुक्त हो जायगा परन्तु शापयोग से लवण

समुद्र में है। इसमें एक प्रयोजन और भी है। पूर्व समय में हयग्रीव नाम दैत्य सरस्वती के तट पर एकाक्षरी अर्थात् बीजमन्त्र को जपता था, जब निराहार एक हज़ार वर्ष तप करते हो गये तब उसने हमारी बड़ी स्तुति की तब मैंने कहा—क्या अभीष्ट है? उसने कहा कि मैं कभी न मरूं, योगी होऊं, सुरों से मेरी कभी हार न हो। तब हमने कहा कि यह कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका जन्म होता है उसका मरण अवश्य होता है। अब तुम विचार से वर मांगो। तब उसने कहा कि यदि मृत्यु हो तो हयग्रीव से अर्थात् जिसका शिर घोड़े का हो अन्य सर्वाङ्ग चाहे जैसा हो। यह सुन हमने कहा कि तू अपने घर को जा, ऐसा ही होगा। यह सुन वह निज गृह को गया। हमारी मूर्त्ति अन्तर्द्धान हो गई। इससे अश्व का मस्तक काट के त्वष्टा से कहो कि विष्णु के लगा दे—

तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम्।
देहेऽत्र विशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति॥ १०४॥

फिर यह किसी यत्न से मर नहीं सकते। यह सुन सब देवताओं ने भगवती की स्तुति की और त्वष्टा से कहा कि ऐसा ही करो, तब उन्होंने घोड़े का शिर काट के विष्णु के कन्धे पर जोड़ दिया—

इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः।
वाजिशीर्षं चकर्त्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ॥ १०८॥
विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम्।
हयग्रीवो हरिर्जातो महामायाप्रसादतः॥ १०९॥

बहुत दिनों के पश्चात् जब वह दैत्य अति मद में मस्त हुआ तब भगवान् हयग्रीव जी ने उसका वध किया।[1]

---

१. क्या विष्णु महाराज सदा सोया ही करते थे? यदि किसी की निद्राभङ्ग करना पाप है तो उसके भागी ब्रह्मा भी हुए परन्तु ब्रह्मा की बुद्धि तो देखिए कि विष्णु के जगाने का उपाय क्या अच्छा सोचा? कैसी असंभव बातों से इसकी रचना की गई कि वम्री नाम कीड़े का उत्पन्न करना और उससे बात होना फिर यह न जाने वह कैसी कल्पित प्रत्यञ्चा थी कि जिसके कटने से न केवल भुविडोल ही हुआ किन्तु सूर्य तक अस्त हो गया परन्तु आश्चर्य्य यह है कि ऐसी तो प्रत्यञ्चा और उसका काटने वाला एक कीड़ा!

ब्रह्मा, विष्णु, शिव का स्त्री होना फिर देवी जी की स्तुति कर यथार्थज्ञान प्राप्त करना।

देवी भागवत स्कन्ध ३ के अध्याय ३ में लिखा है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का प्रश्न है वहाँ नारद जी स्कन्ध २ में कहते हैं कि यही प्रश्न हमने अपने पिता ब्रह्मा जी से पूछा था तो उन्होंने कहा कि तुमने विष्णु जी में भी शङ्का की। ये वृत्तरागी कोई नहीं जानते किन्तु मत्सर रहित विरक्त ही जानते हैं।

एक समय हमने जल ही जल देखा तो भयभीत हुए कि हम कहाँ से आये और हमारा रचने वाला कौन है? तब हम कमल के देखने को गये। १००० वर्ष तक हमको धरती न मिली तब फिर हम कमल पर आ बैठे, तब आकाशवाणी हुई कि तप करो? फिर ४००० वर्ष तक तप किया। फिर शब्द सुनाई दिया कि सृष्टि करो। तब हमने सोचा कि कैसे करें? इतने में मधु-कैटभ दो दैत्यों ने हमको भयभीत किया। तब हम कमल के सहारे वहाँ पहुंचे जहाँ महा विष्णु योग निन्द्रा में तपस्या कर रहे थे। तब बड़ी चिन्ता की और भगवती की स्तुति की कि विष्णु महाराज से भगवती निकल कर आकाश में स्थित हुई और विष्णु जी उठे। ५००० वर्ष युद्ध

---

२. जगाया क्या विचारे विष्णु को मारने ही के पूरे ढंग कर दिए। क्या ब्रह्मा को पहिले से इतना भी ज्ञान न था कि ऐसा करने से विष्णु का शिर भी कट जायगा जो पीछे से रोना पड़ा।

३. क्या इन्हीं विष्णु को अच्छेद्य और अभेद्य कहते हैं और इन्हीं का नाम सर्वशक्तिमान् है?

४. इससे स्पष्ट प्रकट है कि परमात्मा इन सबसे पृथक् है वरन् बृहस्पति जी यह न कहते कि दैव जो चाहता है वह होता है।

५. ब्रह्मा जी ने वेदों को आज्ञा दी जिन्होंने स्तुति की। पाठकगण, क्या वेद भी शरीरधारी थे जो मूर्त्ति धारण किये स्तुति की?

६. पतिव्रता स्त्री कभी अपने पति को शाप नहीं देती जिस पर लक्ष्मी सी पतिव्रता स्त्री और विष्णु महाराज से पति जिस पर लक्ष्मी का ऐसा शाप कि तुम्हारा शिर गिर पड़े!

७. क्या कोई आयुर्वेद का जानने वाला ऐसी असम्भव बात लिख सकता है कि घोड़े का शिर विष्णु के धड़ पर जोड़ दिया?

करके अपने क्रोड (गोदी) में उनके मुण्ड धर के काट डाले। उसी समय महादेव जी भी आये। तब हम तीनों ने कहा कि अपनी सृष्टि, पालन, नाश युक्त हो कार्य करो। तब हमने कहा कि सृष्टि कहाँ होगी, न पृथिवी, न भूतादि? तब देवी आकाश से आह्वान करके उसमें बिठा कर अद्भुत-अद्‌भुत पदार्थ दिखाने लगी। हमारा विमान ऐसे स्थान पर पहुंचा जहाँ से जल दृष्टि नहीं आता था। वहाँ नाना भांति के फल वृक्षों में लगे हुए, पक्षी बोल रहे थे, जहाँ पृथ्वी, पर्वत, नदी, स्त्री-पुरुष आदि सब विद्यमान थे। आगे चल कर ब्रह्मलोक में पहुंचे। तब हम तीनों से पूछा कि यह कौन ब्रह्मा है? हमने कहा कि हम नहीं जानते। वहाँ भी सकल मूर्त्तिमान् नदी आदि थीं। फिर विमान कैलास पर पहुंचा जहाँ शिव जी के पाँच मुख, दश भुजा विद्यमान वहाँ सनातन विष्णु को बैठे देखकर बड़े आश्चर्य में हुए। फिर विमान आगे को चला तो अमृत का समुद्र देख पड़ा जहाँ जलजन्तु और अनेक प्रकार के वृक्ष जिन पर पक्षी बोल रहे हैं, उसके निकट समुद्र में एक शय्या पर एक अत्युत्तम वनिता बैठी है जो रक्तमाल अरुणवस्त्र लालचन्दन के अतिरिक्त कोटि विद्युद्दीप्त संयुक्त और अनेक लक्ष्मी की शोभा सहित विराजमान है और ह्रीं इस मन्त्र से पक्षीगण उसका जप करते हुए सेवा कर रहे हैं, जिसके १००० नेत्रादि हैं। जिसको देख अति विस्मित हुए तब विष्णु जी ने कहा कि यह आदि माया, आदि शक्ति भगवती है, यही सब वस्तुओं के बीज अपने शरीर में रख कर महाप्रलय में क्रीडा करती है, प्रलयान्त में हमको वट पत्र पर इसी के दर्शन हुए थे, हमारे चरण का अंगूठा इसी ने मुख में डाला था।

फिर विष्णु ने कहा चलो स्तुति कर वर मांगो। यह विचार, वहाँ पहुंचे। देखते-देखते स्त्री हो गये तब बड़े विस्मय को प्राप्त हो भगवती के चरणों के निकट जा पहुंचे जिनकी कोटि सहचरी सेवा कर रही हैं, वह हमारे जन्म का कमल भी था। इसी भांति १०० वर्ष तक देखते-देखते उन सब स्त्रियों के मध्य में हम भी स्थित रहे। फिर एक दिन विष्णु स्तुति करने लगे और अनेक प्रकार से स्तुति की। उसी में यह भी कहा कि हे देवी महाविद्ये! तुम्हारे चरणों को हम प्रणाम करते हैं सब अर्थ देने वाली और कल्याणरूपिणी जो तुम हो, सो हमें सदा के लिए ज्ञान का प्रकाश देवो। फिर शिव जी ने बड़ी प्रार्थना की और कहा कि अपना नवाक्षर मन्त्र

हमें बतलाइए, जिसको जप भवसागर से तरें। तब भगवती ने नवाक्षर मन्त्र का उच्चारण किया जिसको ग्रहण कर महादेव जी जपने में लग गये कि महामाये आपको वेद नहीं जानते इसलिए हम अपने को जगत् का कर्त्ता समझते हैं और इसी अहंकार में हम मान रखते थे सो आज यथार्थवादी होकर यह कहते हैं कि तुम्हारी ही कृपा से सब होता है अब तुमसे यही मांगते हैं कि इस वासना को मिटा कर अपनी भक्ति दो जो मनुष्य तुम्हारी प्रभुता को नहीं जानते हैं वे हमको ही प्रभु कहते हैं और जो यज्ञादि करके इन्द्रादि लोक को जाते हैं वह भी तुमको नहीं जानते, इस अपराध को क्षमा कीजिए, तुम्हारी शक्ति से युक्त हो हम संसार को बनाते हैं, विष्णु पालन करते हैं, हरि नाश करते हैं। इस भांति ब्रह्मा ने स्तुति कर कहा कि ब्रह्म अद्वितीय जो लिखा है सो तुम ही हो, इसका उत्तर अपने ही मुख से दो और यह भी बताओ कि स्त्री हो या पुरुष, जिससे हम भवसागर से तरें।

विष्णु ने देवी का यज्ञ कर सामर्थ्य प्राप्त किया।

एक समय की बात है कि श्रीहरि ने वैकुण्ठ में बैठे स्थितभोग हो सुधा-सागर के मध्यवर्ती मणिद्वीप का स्मरण किया जहाँ उस महामाया शक्ति भगवती को देखा और अम्बायज्ञ करने का विचार किया, वैकुण्ठ से उतर कर महादेव ब्रह्मा, रुद्र, कुवेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव, बृहस्पति आदि को बुलाकर बड़ी पुष्कल सामग्री और वेदी से विधि पूर्वक यज्ञ किया। अन्त में आकाशवाणी हुई कि हे विष्णु! तुम सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ हो और सब में मान्य, पूजनीय और सामर्थ्यवान् होगे, ब्रह्मा, रुद्र आदि सकल देवता तुम्हारी पूजा करेंगे। मनुष्यों को तुम ही वर दोगे, सब यज्ञों में मुख्य पूजा तुम्हारी होगी, दानव लोग तुम्हारी शरण आवेंगे, जब-जब धर्म की ग्लानि होगी, तब-तब तुम अपने अंश से अवतार ले धर्म की रक्षा करो और सम्पूर्ण भुवनों में विख्यात होगे और प्रत्येक अवतार में वाराही, नृसिंही आदि एक शक्ति भी आपके सङ्ग रहेगी, आप उसका खण्डन अपमान न करना वरन् पूजन करना जिससे भरत खण्ड के लोग पूजन करें और वे उन्हें सकल मनोरथ देवे और मनुष्यों के पूजा करने से आपका यश होगा। यह कह आकाशवाणी समाप्त हो गई। भगवान् ने यज्ञ समाप्त किया और देवताओं को विसर्जन कर आप

वैकुण्ठ को चले गये। आकाशवाणी को सुन सब के हृदय में भगवती का स्मरण स्थित हुआ।[१]

श्रीरामचन्द्र ने नवरात्रि व्रत कर रावण को मारा

देखो **देवीभागवत** स्कन्ध ३ अध्याय ३ में लिखा है कि रामचन्द्र उदास बैठे थे, वहाँ नारद आये कहा कि आप सोच क्यों करते हैं, रावण के नाश का उपाय यह है कि क्वार मास में विधिपूर्वक नवरात्रि व्रत कीजिए, हम करा देंगे सब कार्य सिद्ध होंगे। इस व्रत को पूर्वकाल में विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र, विश्वामित्र और परशुरामादि ने किया था। फिर श्रीराम ने विधि पूछी, उसको उन्होंने कहा, तब विधिपूर्वक श्रीराम जी और लक्ष्मण जी ने नवरात्रि व्रत किया। उस समय भगवती सिंह पर चढ़ गई और दर्शन दे राम से कहा कि मैं आपके व्रत से प्रसन्न हूँ, वर मांगिये, तुम नारायण अविनाशी हो दशमुख को मारने के लिए तुम्हारा अवतार हुआ है वानरों की सहायता लेकर लंका पर चढ़, रावण को मारो। यह कह करके देवी चली गई। रामचन्द्र जी ने ऐसा ही किया।

श्री विष्णु के कान के मैल से मधु-कैटभ का उत्पन्न होना और भगवती की तपस्या कर वर प्राप्त कर विष्णु से लड़ना, विष्णु जी का भगवती की स्तुति कर उसको मारना।

देवी भागवत स्कन्ध ७, ८ व ९ में लिखा है कि जब तीनों लोक

---

१. क्या यज्ञ करने से पूर्व विष्णु में यह सामर्थ्य न था कि जो देवी ने प्रसन्न हो उन को प्रदान किया? उधर शिवपुराण कह रहा है कि विष्णु भगवान् ने शिव की उपासनादि करके सर्व प्रकार का सामर्थ्य प्राप्त किया। कहिए दोनों में क्या सत्य है?

(१) पद्मपुराण में लिखा है कि "एकादशी व्रत के प्रभाव से" रामचन्द्र ने सेतु बांधा और विजय हुई?

(२) पौराणिकों का यह आग्रह है कि "अत्र पूर्वं महादेव" इस वाल्मीकीय श्लोकानुसार रामचन्द्र ने महादेव का पूजन किया परन्तु इसमें लिखा है कि रामचन्द्र ने नवरात्रि में दुर्गापूजन किया जिसके प्रभाव से सेतु बांध विजयी हुए। अब बताइए कि इसमें कौन की कथा सत्य है?

एक आवरण में लीन हो गये और जनार्दन भगवान् शेषशय्या पर शयन कर रहे थे कि विष्णु के कर्ण के मैल से मधु-कैटभ दो दैत्य उत्पन्न हुए और बहुत दिनों तक जल में विचरते रहे। एक दिन उन्होंने सोचा कि यह जल कहाँ से आया और किस पर स्थित है, हम कौन हैं, हमारे माता-पिता कौन हैं?

तब कैटभ, मधु से कहने लगा कि यह सर्वशक्ति के आश्रय हैं, उसी पर जल स्थित है, यह विचार चिन्ता करने लगे। तब आकाशवाणी हुई, उसे उन्होंने ग्रहण करके अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। तब आकाश में बिजली चमकी, उससे उन्होंने मन्त्र विचार किया। फिर उन्हें आकाश में सरस्वती की मूर्त्ति दिखलाई दी। तब निराहार होकर उसी में चित्त लगाया। १००० वर्ष तपस्या की। तब फिर आकाशवाणी हुई कि हम तुम से प्रसन्न हैं, वर माँगो। तब उन्होंने कहा कि जब हम कहें, तभी हमारा मरण हो। आकाशवाणी हुई कि ऐसा ही होगा। देवता और दैत्य तुम्हें न जीत सकेंगे। वह बहुत दिनों तक जलजन्तुओं के साथ फिरते-फिरते एक दिन उन्होंने पद्म पर स्थित ब्रह्मा जी को देख कर उनसे कहा कि या तो लड़िये वरना निर्बल हो तो आसन को छोड़ चले जाइए क्योंकि यह वीरों के योग्य है तुम डरपोक दीख पड़ते हो, ब्रह्मा जी ने सोचा कि यह बलवान् और मैं तपस्वी हूँ। इस लिए उन्होंने जीतने के अर्थ विष्णु जी की स्तुति करना आरम्भ कर दिया, बड़ी स्तुति करने पर न जगे। तब उन्होंने योगनिद्रा भगवती की बड़ी स्तुति की। हे भगवती! इन दैत्यों का वध कीजिए अथवा विष्णु जी को जगाइए, नहीं तो यह हमें मार डालेंगे। यह सुन परमकारुणिक योगनिद्रा विष्णु जी के सकल अङ्गों से विस्तृत होकर ब्रह्मा जी के निकट गई और भगवान् जागे, वह दर्शन करके आनन्दित हुए और बोले कि तुम यहाँ कैसे आये? तब उन्होंने कहा कि जो आपके कानों के मैल से मधु, कैटभ दो दैत्य उत्पन्न भये हैं, वह हमें मारने पर उद्यत हैं। उन्होंने कहा चिन्ता मत करो, हम उनको मारेंगे। दैत्य वहाँ पहुंचे और ब्रह्मा से कहा कि ऐसे छिप कर तुम न बचोगे। पहिले तुम्हें मार कर फिर इनको भी मारेंगे। तब हरि ने कहा कि यदि तुम्हारी लड़ने की इच्छा हो तो हमसे लड़ो, युद्ध होने लगा, पहिले मधु और उसके थकने पर कैटभ भिड़ा। ब्रह्मा और भगवती अन्तरिक्ष में देख रहे थे। लड़ते हुए जब ५००० वर्ष

बीत गये तब भगवान् ने विचारा कि यह थकते नहीं और हम थकित से हो गये हैं। तब वे दोनों दैत्य बोले कि यदि बल न रहा हो तो कह दो कि अब हम तुम्हारे दास हैं। नहीं तो युद्ध करो, तुम्हें मार कर इन चार मुख वाले को मारेंगे, जो यह खड़े हैं। तब भगवान् ने कहा कि हमको लड़ते-लड़ते अकेले ५००० वर्ष हो गये हैं और तुम बारी-बारी से लड़ते हो इसलिए हम भी सस्ता लें। तब वह दूर खड़े हो गये। तब विष्णु ने सोचा तो मालूम हुआ कि इनको देवी का वरदान है। तब उन्होंने भगवती की बड़ी स्तुति की। तब भगवती ने कहा कि आप युद्ध करिये हम उन्हें मोहित करती हैं। वे आप मृत्यु मांगेंगे, अब देर न कीजिए। भगवान् युद्ध करने लगे। भगवती ने अपना उत्तम रूप धारण कर काम बाण से उनको ऐसा मोहित किया कि वे व्याकुल हो गये। जब हरि ने यह दशा देखी तब दैत्यों से कहा कि हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर मांगो, वही देंगे, क्योंकि ऐसा युद्ध आज तक किसी दैत्य ने नहीं किया। तब वह महाअभिमानी भगवती करके मोहित बोले कि हम याचक नहीं, हाँ, हम भी आपके युद्ध से प्रसन्न हैं, आप वर मांगिये। तब हरि ने कहा कि यदि तुम हमसे प्रसन्न हो तो यही वर दो कि तुम हमारे हाथों से मरो। यह सुन दानवों ने शोक कर कहा कि हम छले गये और सब तरफ जल को देखकर बोले कि जहाँ निर्जल देश हो वहाँ मारिये। यही वर देते हैं कि आपके हाथों से मरें। यह सुन विष्णु ने सुदर्शनचक्र का स्मरण किया और वह आये तो अपनी जंघा को फैला कर कहा कि देख लो यहाँ जल नहीं है, हमने अपना वचन सत्य किया, तुम भी अपना वचन पालो। इस पर अपना शिर धरो, हम काट डालें। यह सुन उन्होंने अपनी देही हज़ार योजन की करली, तब विष्णु ने दो हज़ार योजन में अपनी जंघा फैला दी तब उन्होंने जाना कि इस प्रकार से न बचेंगे अपना-अपना शिर धर दिया, उन्होंने चक्र से काट डाला। उनके मेदस से सकल संसार व्याप्त हो गया और उसी से पृथिवी बन गई। इसी हेतु से इसका नाम मेदिनी हुआ। इसी कारण मृत्तिका को कभी खाना न चाहिए और इसी हेतु भगवती सब जगत् में वन्दना की हेतु है।[१] यही कथा मत्स्यपुराण अध्याय १६९ में भी लिखी है।

---

१. विष्णु के कान थे वा क्या? वैद्यक शास्त्र में तो स्त्री के वामकुक्षि में गर्भाशय की स्थिति लिखी हैं परन्तु यहाँ की व्यवस्था ही निराली है कि पुरुष रूपी विष्णु के

दक्षिण और वाम दोनों कानों में से पुत्रोत्पत्ति हुई, यदि हम थोड़ी देर के लिए इस कथा को मान लें कि विष्णु से पुत्रोत्पत्ति हुई तब यह शंका उत्पन्न होती कि जैसा जिसका कारण होता है वैसा ही उसका कार्य होता है तो विष्णु जैसे सात्त्विकी पुरुष से उन राक्षसों की उत्पत्ति का होना भी आश्चर्यजनक है!

२. इसके उपरान्त मैल में उत्पादन शक्ति नहीं वह एक प्रकार का शारीरिक विष है जिसमें से दोनों कानों के द्वारा दो दैत्य उत्पन्न हो गये और बड़े होकर जल पर क्रीड़ा भी करने लगे परन्तु विष्णु को ख़बर तक नहीं कि क्यों हो रहा है जो उनका सर्वज्ञता का बाधक है।

(३) अब सुनिये कि बिजुली से मन्त्र सीख और आकाश में सरस्वती की मूर्त्ति को देख तपस्या कर देवी से वर पाकर सबसे पहिले ब्रह्मा ही को सताया और ब्रह्मा ने अपने आपको बलहीन समझ विष्णु की स्तुति की। क्या इन्हीं ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पत्ति की और यही अंशावतार हैं?

(४) फिर न केवल ब्रह्मा ही की ख़बर ली किन्तु उन्होंने विष्णु तक को परास्त किया। तब विष्णु ने देवी की स्तुति की। कृपया इस क्रम को और ईश्वरावतार को विचारपूर्वक मिलाइए तो सार यही निकलता है कि यह सब देवी की महिमा बढ़ाने को कपोलकल्पना रची गई।

(५) इधर तो देवी जी ने उनको वरदान दिया फिर उनको काम बाण से पीड़ित किया, क्या यही न्याय है?

(६) जब दैत्य देवी पर आसक्त हो गये तब विष्णु ने कहा कि हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर मांगो। कहिए, सनातनी भाइयो! यहाँ दैत्यों ने कौन सा काम वर पाने का किया जिससे विष्णु वर देने लगे? यदि वे देवी पर आसक्त हो गये, इस कारण से विष्णु प्रसन्न होकर वर देने लगे तो बताइए कि यह कौन से मनुष्यों का काम है?

(७) परन्तु हमारी सम्मति में दैत्य विष्णु से बुद्धिमान् थे और कहा भी सच कि वर मांगे जो याचक हो क्योंकि मांगना छोटे का काम है, तुम ही हमसे वर मांगो। जब विष्णु ने अपने आप में उसके मारने की शक्ति न देखी तो उनको छल से मारने का यत्न किया। क्या ऐसे ही विष्णु पृथ्वी का भार उतारने को जन्म लेते हैं?

(८) कहिए, इस बात का कहीं अन्त है कि ८००० कोस में जांघ फैला दी धन्य है...।

(९) हमारे सनातनी भाई इस पर ध्यान दें कि दैत्यों के मेद से यह मेदिनी नाम वाली पृथ्वी रची गई है जिसके लिए लिखा है कि मृत्तिका को खाना न चाहिए अब भी आप पार्थिव पूजा करेंगे और हमारे पौराणिक भाइयों को पृथिवी से उत्पन्न हुई वस्तु भी न खानी चाहिए। क्या इससे पूर्व पृथिवी न थी यदि नहीं तो विष्णु इत्यादि कहाँ रहते थे और जल किस पर स्थित था? यदि विचारपूर्वक देखिए तो पुस्तकनिर्माता असम्भवादि दोषों के कारण षट्शास्त्रों से नितान्त विरुद्ध है क्योंकि शास्त्रकार तीन पदार्थों को अनादि मानते हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति। परन्तु इनकी विद्या ही निराली है कि पृथ्वी दैत्यमेद से बन गई।

श्रीमान् पण्डित जी—अब सेठ जी समाप्त कीजिए, क्या ऐसी-ऐसी और भी कथायें हैं?

आर्य सेठ—महाराज अनेकानेक भरी हैं। मैंने तो आपको बहुत ही कम सुनाई हैं। इसके उपरान्त "भविष्यपुराण" में सूर्यनारायण और "गणेशपुराण" में गणेश जी महाराज का बड़प्पन दिखलाया है। कहिए, श्रीमान्! क्या इन कथाओं से तीनों देवो का एक ही सेवा से प्रसन्न होना प्रकट होता है?

पण्डित जी—कदापि नहीं। सत्य तो यह है कि यह सब कथायें व्यासप्रणीत मालूम नहीं होतीं।

आर्य सेठ—जो कुछ आपके विचार में आवे। अब मैं समाप्त करता हूँ। ओ३म् शम्।

श्रीमान् पण्डित जी व अन्य सभ्यगणों ने चलने की तय्यारी की।

आर्य सेठ—श्रीमान् नमस्ते।

पण्डितजी—आयुष्मान्।

अन्य सभ्यपुरुषों ने श्रीमान् को यथायोग्य कहा और चल लिए

आर्य सेठ—भोजनादि कार्य में लग गये।

॥ इति पञ्चम परिच्छेद ॥

दश इन्द्रियाँ प्रत्येक स्त्री-पुरुष को दी हैं तो क्या स्त्री और शूद्र उनसे देखने का कार्य लें, न लें? यदि कोई किसी की आँखों को फोड़ डाले तो वह दण्डभागी होता है। उसी भांति परमात्मा ने बुद्धि, विद्या ग्रहण करके सत्, असत् के विचार करने के लिए दी है। यह विद्या मनुष्य के हृदय के नेत्र हैं तो फिर जो मनुष्य चर्मचक्षु फोड़ने से दण्डभागी होते हैं तो क्या हृदयरूपी आंखें फोड़ने वाले पुरुषों को दण्ड न होना चाहिए? —पृष्ठ ९७

षष्ठ परिच्छेद

आर्य सेठ श्रीमान् को आते देख उठ दोनों हाथ जोड़ नमस्ते कर कहा कि आइए, पधारिए।

पण्डितजी आयुष्मान् कह विराजमान हुए। इतने में अन्य महाशयगण भी आते गये।

आर्य सेठ ने सबको नमस्ते किया। सज्जन महाशयगण यथायोग्य के पश्चात् विराजमान होते गये।

ईश्वर का अकर्मकर्तृत्व

आर्य सेठ—पण्डित जी महाराज! आप आर्यों से इस कारण से अप्रसन्न हैं कि वह अजन्मा ईश्वर को जन्म वाला नहीं मानते और न वह ईश्वरावतारों की प्रकृति की बनी हुई प्रतिमाओं का पूजन करते हैं। श्रीमान् को सबसे प्रथम यह जानना चाहिए कि जन्म, मरण कर्म से होता है और परमात्मा कर्म करता है या नहीं, यदि कर्म करता है तो उसका जन्म होना सम्भव है वरन् नहीं, देखिए—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

ऋ० १.१६४.२०॥

(**द्वा**) दो—जीव और ब्रह्म (**सुपर्णा**) पक्षी हैं (**सयुजा**) इकट्ठे मिले हुए व्याप्य, व्यापक भाव से संयुक्त (**सखाया**) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन और अनादि हैं (**समानम्**) एक (**वृक्षम्**) शरीररूपी वृक्ष पर (**परिष-स्वजाते**) मिले हुए रहते हैं (**तयोः**) इन दोनों में (**अन्यः**) एक (**पिप्पलम्**) अपने किये हुए कर्मरूपी फलों को (**स्वादु**) स्वादपूर्वक (**अत्ति**) खाता है (**अन्यः**) दूसरा ब्रह्म (**अनश्नन्**) विना खाये (**अभिचाकशीति**) केवल देखता है।

शिवपुराण वायु संहिता अध्याय ४ में लिखा है कि दो सुपर्ण अर्थात् परमात्मा और जीव समान अवस्था में सखा हैं, देहरूपी वृक्ष में

समानता से स्थित, एक जीव इसमें कर्मफल को भोगता है अर्थात् वृक्ष के फल खाता है और दूसरा देखता है। जैसा कि—

द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।

एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति॥ ९४॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय ११ में श्रीकृष्ण महाराज ने उद्धव जी से कहा है कि आत्मा और परमात्मा यह दोनों पक्षी चैतन्यरूप, शरीररूपी वृक्ष पर बैठे हुए हैं, जिनमें एक इस शरीर के फल को भोगता है, दूसरा साक्षी होकर देखता है परन्तु भोगता नहीं तो भी ज्ञानशक्तिकर अतिबलिष्ठ है।

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ वृक्षे।

एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्॥ ६॥

अर्थात् परमात्मा कर्म नहीं करता, इस कारण फल भी नहीं भोगता, फिर अवतार कैसा? हाँ जीव कर्म करता है, वही भोगता है। देखिए, **यजुर्वेद** अध्याय ४० मन्त्र ४ में लिखा है कि जो ब्रह्म अद्वितीय, अचल मन के वेग से भी अति वेगवान्, सबसे आगे चलता हुआ अर्थात् जहाँ कोई चलकर जावे वहाँ प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुंचता हुआ ब्रह्म है, इस पूर्वोक्त ईश्वर को चक्षु आदि इन्द्रिय नहीं प्राप्त होते।

वह ब्रह्म अपने आप स्थिर हुआ, अनन्त व्याप्ति से विषयों की ओर गिरते हुए आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन, वाणी आदि इन्द्रियों का उल्लङ्घन कर जाता है। उस सर्वत्र व्यापक ईश्वर की स्थिरता में अन्तरिक्ष में प्राणों का धारण करनेहारा वायु के समान जीव कर्म वा क्रिया को धारण करता है। जैसा कि—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

ऐसा ही पुराण भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। **देवीभागवत** स्कन्ध ४ अध्याय २ में लिखा है कि इस त्रिगुणयुक्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कर्म ही से होती है। जीव का आदि, अन्त, मध्य कुछ नहीं। कर्मरूपी बीज से योनियों में उत्पन्न होता है और मरता है। कर्म विना देहसंयोग के

कभी नहीं हो सकता। शुभ, अशुभ, मिश्रित इन्हीं कर्मों करके जीव बंधा हुआ है, कर्म तीन प्रकार के होते हैं—१ संचित, २ भविष्य, ३ प्रारब्धिक। जो देह में विद्यमान रहते हैं। ब्रह्मादि देव सब कर्म के वश में हैं और सुख, दु:ख, कीर्त्ति, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ यह सब देह के गुण हैं, दैवाधीन हैं और रागद्वेषादि भाव स्वर्ग में भी देवता, मनुष्य और तिर्यग्योनि के होते हैं चाहे पूर्व के वैरयोग से और चाहे स्नेह के योग से ये विकार देह के साथ ही उत्पन्न होते हैं। सब जन्तुओं की उत्पत्ति विना कर्म नहीं होती, कर्म से ही सूर्य चलता है, चन्द्रमा क्षयीरोग से पीड़ित होता है, महादेव खुपड़ियों की माला पहिनते हैं। इस अनादि-निधन संसार का कारण कर्म ही है। जिससे यह स्थावर जङ्गम संसार नित्य ही है। इससे इसका बीज कर्म ही है वह जगत् कर्म करके बंधा हुआ भ्रमण कर रहा है और नाना योनियों में विष्णु जी के जन्म होते हैं। यदि इच्छा से हों तो नीच योनियों में क्यों होते? कर्म ही के वश जीवात्मा गर्भवास में आता है, जिसके समान कोई दु:ख नहीं। विष्ठा, मूत्र का घर, जिसमें आंतों से बंधा हुआ जीव रहता है। यदि कर्माधीन न होता तो क्यों ऐसे-ऐसे दु:ख सहता, गर्भवास से परे संसार में अन्य दु:ख नहीं। इसी कारण मुनिजन संसारी भोगों को छोड़ योग करते हैं। गर्भ में कृमि काटते हैं, नीचे उदर की अग्नि प्रज्वलित होती है, उससे जलता रहता है। इस हेतु से गर्भवास से बन्दीगृह में बेड़ी पहिनकर रहना अच्छा है क्योंकि गर्भवास में क्षण-क्षण कल्प के समान बीतता है। प्रथम दश मास तक गर्भवास के दु:ख। फिर अतिसङ्कीर्ण योनिमार्ग से निकलना, फिर बालभाव के अनेक कष्ट, कि न बोल सकते, न अपने कुछ कार्य कर सकते हैं, भूख, प्यास कुछ भी नहीं बता सकते, तिस पर माता औषधि पिलाती है, कहाँ तक वर्णन करें! नाना प्रकार के कष्ट जीव को बाल्यावस्था में होते हैं। इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि गर्भ में सुखपूर्वक कोई नहीं आता किन्तु कर्म करके प्रेरित हुए सब आते हैं।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १३२ में लिखा है कि देवता और ऋषि भी कर्मों से बंधे हुए हैं। कैलास पर्वत में महादेव जी की देह में स्थित सांप विष का भोजन करते हैं, अमृत भोजन करने को असमर्थ हैं क्योंकि कर्म की योनि बड़ी बलवान् है। महादेव ब्रह्मादि देवता मनुष्य और असुर यह सब कर्मों से बंधे हुए पृथ्वी पर घूमते हैं—

रुद्रब्रह्मादयो देवा मानवाश्चासुराश्च ये॥ १२३॥

ते सर्वे कर्मबद्धाश्च विचरन्ति महीतले।

कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मितं पुरा॥ १२४॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३९ में लिखा है कि यह सारा जगत् कर्म से स्थित है, सब कर्म के बन्धन में पड़े हुए हैं, कर्म से सुख-दुःख होते हैं—

सुखं च जायते तेन दुःखं तेनापि संभवेत्॥ ३२॥

तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं च कर्मणि स्थितम्॥ ३३॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ४९ में लिखा है कि श्रीरामचन्द्र महाराज ने कहा है कि कर्म से स्वर्ग मिलता है व कर्म से प्राणी नरक को जाता है। कर्म ही से पुत्रपौत्रादिक सब होते हैं। इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके परमपद इन्द्रासन को प्राप्त हुए। ब्रह्मा भी कर्म ही से अद्भुत सत्यलोक को प्राप्त हुए—

कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः कर्मणा नरकं व्रजेत्।

कर्मणैव भवेत्सर्वं पुत्रपौत्रादिकं बहु॥ ४५॥

शक्रः शतं क्रतूनां तु कृत्वाऽगात् परमं पदम्।

ब्रह्मापि कर्मणा लोकं प्राप्य सत्याख्यमद्भुतम्॥ ४६॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के गणपति खण्ड अध्याय ११ में शनिश्चर ने पार्वती से कहा है कि कर्म से ही जीवजन्तु होते हैं तथा नरक और स्वर्ग के दुःख-सुख को पाते हैं अर्थात् कर्मों के द्वारा ही समस्त कार्य सिद्ध होते हैं—

कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रसूर्यमन्दिरे॥ २०॥

कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा॥ २१॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध के अध्याय २४ में कृष्ण महाराज ने कहा है कि कर्म के प्रभाव से जीव जन्म धारण करते हैं, कर्म से ही देह का त्याग होता है। सुख, दुःख, कल्याण, भय, क्षेम कर्म से ही प्राप्त होता है। ईश्वर कर्मानुकूल पुरुषों को फल देते हैं—

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्त्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः॥ १४॥

यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र २८ में लिखा है कि जो जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है, विपरीत कभी नहीं। इसलिए धर्मयुक्त ही कार्य करना चाहिए—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि॥ २८॥

वह परमेश्वर कभी माता-पिता के संयोग से उत्पन्न नहीं हुआ, न होता है, न होगा और न वह शरीर धारण करके बालक, तरुण और वृद्ध होता है। उसकी प्रतिमा किसी प्रकार की नहीं क्योंकि वह मूर्त्ति अनन्त सीमा रहित सब में व्यापक है। जो तेज वाले सूर्यादि के उत्पत्ति का कारण है। जैसा **यजुर्वेद** अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है।

ब्रह्म का निर्गुणत्व

और अध्याय ४० मन्त्र ८ में कहा है कि वह परमेश्वर जो सबका जानने वाला और सबके मन का स्वामी, सबके ऊपर विराजमान और अनादिस्वरूप से जो अपनी प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप प्रजा को अन्तर्यामिरूप से और वेद के द्वारा सब व्यवहारों का उपदेश किया करता है, जो सब में आकाश के तुल्य व्यापक, अत्यन्त पराक्रमी "स्थूल, सूक्ष्म, लिङ्ग शरीर से रहित" एवं फोड़ा-फुंसी आदि विकारों से तथा नाड़ी, नसों के बन्धन से पृथक् सब दोषों से अलग शुद्ध और सब पापों से रहित है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजुर्वेद ४०.८॥

ऐसा ही पुराणों में भी लिखा है।

देवी भागवत स्कन्ध ३ अध्याय ६ में लिखा है कि जितने पदार्थ संसार में दृष्टि आते हैं वे सब त्रिगुण युक्त होते हैं। निर्गुण तो संसार में न हुआ, न होगा निर्गुण एक परमात्मा है जो कभी दृष्टि नहीं आता। जैसा कि—

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं न भविष्यति।
निर्गुणः परमात्मासौ न तु दृश्यः कदाचन॥ ७०॥

अध्याय ७ में ब्रह्मा जी ने कहा है कि निर्गुण का रूप नहीं होता जो दृष्टिगोचर हो सके, जो पदार्थ दीख पड़ता है उसका नाश अवश्य होता है और अरूप दृष्टि में नहीं आता—

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद् दृष्टिगोचरम्।
दृश्यं च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम्॥ ९॥

विष्णुपुराण अंश २ अध्याय १४ में लिखा है कि वह एक सर्वव्यापक, समानरूप, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे जन्म-वृद्ध-मरणादि से रहित सब में गत अव्यय आत्मा है—

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः॥ २९॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२, अध्याय ५ में लिखा है कि शरीर सत्, रज, तम के कारण उत्पन्न होता है। परमात्मा न जन्मता, न मरता है, वह स्थूल, सूक्ष्म, शरीर से परे स्वयं प्रकाशवान्, निर्विकार, अनन्त और निरुपम है—

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः॥ ८॥

कूर्मपुराण उपरिभाग अध्याय २ में लिखा है कि परमेश्वर रूप, रस, गन्ध, हाथ, पैर आदि से रहित अन्तर्यामी है, जो बहुत शीघ्र चलता है, जो बिना नेत्रों के देखता है और बिना श्रवण के सुनता है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाकर्णः शृणोम्यहम्॥ ४८॥

लिङ्गपुराण अध्याय १ में लिखा है कि वह जन्म-मरण आदि से रहित है और सर्वव्यापक है—

प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥ २१॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय २ में लिखा है कि वह ईश्वर रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, भय से रहित है—

आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम्॥ ८ ॥

पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय २ में पुलस्त्य जी ने कहा है—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः।

रूपवर्णादिरहितो विशेषणविवर्जितः॥ ८४॥

सब परों से परे है इससे परमात्मा कहाता है। वे रूप, वर्णादिकों से रहित हैं, वे महत्त्वादि से विवर्जित हैं।

अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः।

गुणैर्विवर्जितः सर्वैः समातीति हि केवलम्॥ ८५॥

वृद्धि, विनाश से भी रहित हैं इससे उनका अन्त कभी नहीं होता व सत्, रज, तम गुणों से भी रहित हैं जो सदा प्रकाशित रहते हैं॥

सर्वत्राऽसौ समश्चापि वसन्ननुपमो मतः।

भावयन् ब्रह्मरूपेण विद्वद्भिः परिपठ्यते॥ ८६॥

सब कहीं सब जड़ों व चैतन्यों में उनकी समान मूर्त्ति रहती है इससे उनकी उपमा किसी के साथ नहीं दे सकते।

तं गुह्यं परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम्।

तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण संस्थितम्॥ ८७॥

इसी से इनको ब्रह्मरूप से सब जगत् को भावित करने वाला मुनि लोग कहते हैं, वह परम गुह्यरूप सदा विद्यमान, अज, नाशरहित अव्यय व पुरुषरूप, कालरूप से स्थित हैं।

द्वितीय भूमि खण्ड अध्याय ६२ में सुकर्म्मा जी ने कहा है कि गतिहीन, पर सब कहीं चला जाता है, उसका कुछ रूप नहीं, पर सर्वत्र दिखलाई देता है। हाथ नहीं परन्तु सब पदार्थों को ग्रहण करता है, पाद नहीं परन्तु अति वेग से दौड़ता है—

गतिहीनो व्रजेत्सोऽपि स हि सर्वत्र दृश्यते।

पाणिहीनोऽपि गृह्णाति पादहीनः प्रधावति॥ ३३॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ८४ में लिखा है कि वह हस्तपाद से रहित है तो भी सब कुछ करता है व सब कहीं चला जाता है व सब

स्थावर-जङ्गम विश्व को ग्रहण करता है। हे महीपाल! मुख, नासा से विहीन, पर खाता व सूंघता है। कान नहीं पर सुनता सब कुछ है व वह जगत्पति सबों का साक्षी है—

हस्तपादविहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति।
सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं पुनः॥ ८९॥
नासामुखविहीनस्तु घ्राति भक्षति भूपते।
अकर्णः शृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः॥ ९०॥

वायुपुराण अध्याय ४ में कहा है कि परमात्मा गन्ध, वर्ण, रस रहित है। शब्द, स्पर्श से पृथक् है। कभी उत्पन्न और नाश नहीं होता, वह स्वयं ही स्थित है—

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्॥ १९॥
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ २०॥

शिवपुराण—वायुसंहिता अध्याय ४ में लिखा है कि परमात्मा के सब ओर हस्त, चरण, नेत्र, मुख, शिर हैं और सब ओर इन्हीं के कारण हैं, यह सबको आवरण करके स्थित हैं, बिना नेत्र के देखते, बिना कान के सुनते हैं, जो सबको जानते और जिनका जानने वाला कोई नहीं, उसी को पुराणपुरुष कहते हैं। यह 'सूक्ष्म से सूक्ष्म' महान् से महान् और अविनाशी, वही परमेश्वर इस प्राणी के हृदय में स्थित हैं—

सर्वत्र पाणिपादोऽयं सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्व्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति॥ ८६॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्व्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥ ८७॥

महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि मोक्ष का देने वाला परमात्मा न ठण्डा है, न गर्म, न कोमल है, न कठोर, न खट्टा है, न कषैला, न मीठा है, न तीखा, न वह शब्दयुक्त, न गन्धविशिष्ट है, वह इन्द्रियरहित है। उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर भी नहीं। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म, महत् से महत् है। उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं। वह सदा निश्चल भाव से निवास करता है तो भी वह किसी के दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी प्रकार

इन पुराणों में अनेकानेक लेख हैं, उनको हम विस्तारभय से नहीं लिखते। इसके उपरान्त जिस ईश्वर की आज्ञानुसार सूर्य्य, चांद, पृथ्वी, तारे, पशु और पक्षी, अग्नि, वायु, जल आदि सब अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, जिसकी आज्ञा पहाड़ों की कंदराओं और समुद्र की तहों में यथावत् पालन हो रही है, जिसके ब्रह्माण्ड की रचना को देख पूर्ण तत्त्ववेत्ताओं के छक्के छूट जाते हैं, उसकी अपार महिमा का आज तक मुनिजनों ने भी पार नहीं पाया, जिसके गुणों का कीर्त्तन महात्माजन न कर सके, उसके भेद योगिराजों ने भी अच्छे प्रकार न पाए। जिसने वनों में शेर, हाथी को उत्पन्न किया, जङ्गल में नाना प्रकार के वृक्षों और घासों को उगाया, पृथ्वी पर अद्भुत और अपूर्व पहाड़ और समुद्रों को रचा, जिसके न्याय-प्रताप से बड़े-बड़े राजे, महाराजे, बली, पहलवान, ऋषि, मुनि, महात्मा, डाकू और तस्कर सब ही अपनी-अपनी करनी के फलों को भोगते चले जाते हैं अर्थात् चींटी से लेकर छोटे रेंगने वाले जीव और आकाश में उड़ने और पाताल में रहने वाले पक्षी-पखेरू, जीव-जन्तु इत्यादि सब उसकी आज्ञा शिरमाथे धर पालन कर रहे हैं तो फिर ऐसा कौन है जो इसकी आज्ञा के विरुद्ध कार्य कर दण्ड का भागी न हो? कैसे शोक और महान् शोक की बात है कि ऐसा परमेश्वर रावण और कंस इत्यादि दुष्टों को बिना गर्भ में आये और राम, कृष्ण आदि का स्वरूप धारण किये बिना दण्ड न दे सके तो क्या उपर्युक्त सब पुराणों के लेख जो वेदानुकूल हैं, सब मिथ्या हैं? इसके उपरान्त पण्डित जी जिन विष्णु महाराज को आप परमेश्वर कहते हैं और उन्हीं के अवतार श्रीकृष्ण और रामचन्द्र बतलाते हैं वह स्वयं **देवी भागवत** स्कन्ध ४ अध्याय १८ में कहते हैं कि न मैं स्वतन्त्र हूं, न ब्रह्मा और न शिव इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण भी स्वतन्त्र नहीं हैं। यह सब स्थावर जङ्गम जगत् योगमाया के वश है। ज़रा बुद्धि से विचारो जो मैं स्वतन्त्र होता तो महासमुद्र में मछली, कच्छुआ क्यों होता, तिर्यग्योनि में क्या लाभ, क्या भोग और क्या कीर्त्ति है? क्या सुख नीचयोनि को प्राप्त हुआ जो मैं हूं तो मुझे इसमें क्या पुण्य है, क्या फल है, अर्थात् कुछ नहीं, वाराह व नरसिंह व वामन क्यों होता? अय ब्रह्मा जी! मैं जमदग्नि का बेटा परशुराम क्यों होता? अय देवेन्द्र! राम होकर दण्डक वन में पैदल गुदड़ी वाला जटाजूट और वल्कल धारण कर मैंने प्रवेश

किया इसी प्रकार रामावतार में भी मैंने निरन्तर दुःख पाया क्योंकि मैं निश्चय पराधीन हूं फिर और कौन स्वतन्त्र होगा? ब्रह्मा जी सुनो, मैं निश्चय परतन्त्र हूँ, इसी भांति तुम भी और महादेव और सब देवता हैं। जैसा कि—

नाहं स्वतन्त्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा।

नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा॥ ३३॥

परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय।

तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः॥ ६०॥

देवीभागवत स्कन्ध ३ अध्याय २९ में रामचन्द्र महाराज लक्ष्मण जी से कहते हैं कि बिना जानकी के हमारा जीना दुर्लभ है। देखो, राज गया, वन हुआ, पिता मरे, स्त्री हरी गई, देखिए दुष्ट भाग्य का क्या-क्या करता है? रघुकुल में हमारे समान कोई भी दुःखी नहीं हुआ, क्या करें? इस दुःखसागर से तरने का कोई उपाय नहीं?

न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना।

न गमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनन्दिनीम्॥ २१॥

गतं राज्यं वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया।

पीडयन् मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति॥ २२॥

न कोऽप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः।

अकिञ्चनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति॥ २६॥

किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे।

न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल॥ २७॥

इसके उपरान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ७० से प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण महाराज स्वयं सूर्य्य उदय से दो-तीन घड़ी प्रथम उठकर जल से आचमन कर माया से परे जो स्वरूप है, उसका ध्यान करते थे—

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥ ४॥

इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र महाराज प्रातःसायंकाल सन्ध्या समय परमेश्वर का ध्यान करते थे। देखो—**वाल्मीकि रामायण** बालकाण्ड सर्ग ३५ श्लोक २ तथा अयोध्याकाण्ड सर्ग ४६ श्लोक १३ में लिखा है—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय॥ २॥
उपास्य तु शिवां सन्ध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपागताम्।
रामस्य शयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह॥ १३॥

पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय ११४ में लिखा है कि शङ्करादि सब देव महर्षि लोग सन्ध्यावन्दन करने की इच्छा से बाहर निकले व महेशादि सब लोगों ने तड़ाग पर सन्ध्यावन्दन किया—

सन्ध्यावन्दनकामाश्च सर्व एव विनिर्गताः॥ २४२॥
कृतसन्ध्यास्तडागे तु महेशाद्यास्तु कृत्स्नशः॥ २४३॥

अब श्रीमान् को विचारना योग्य है कि जिन पुराणों के बल पर पौराणिक भाई परमेश्वर का अवतार मानते हैं, उन्हीं पुराणों से मैं आपको वेदानुकूल यह बता चुका हूँ कि परमेश्वर सर्वत्र है जो बिना इन्द्रियों के सब कार्य्य करता है। इसके उपरान्त स्वयं आपके विष्णु और श्रीरामचन्द्र जी अपने को परतन्त्र बतलाते हैं। तदनन्तर सनातनधर्म सभा के माने हुए परमात्मा के अवतार श्रीकृष्ण और रामचन्द्र महाराज भी माया से परे जो परमात्मा है, उसका ध्यान धरते थे। इससे भी स्पष्ट प्रकट होता है कि जिसका उपर्युक्त महाशयगण ध्यान करते थे, वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है। इसलिए हम सबको भी उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिए क्योंकि परमेश्वर **यजुर्वेद** अध्याय १२ में आज्ञा देते हैं कि जो सत्पुरुष हो चुके हैं, उनका ही अनुकरण करना चाहिए अन्य अधर्मियों का नहीं। जैसा कि—

मूर्त्तिपूजा का निषेध

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳसुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णꣳसप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा॥ १११॥

ऐसा ही **गीता, महाभारत** आदि में भी लिखा है फिर हम क्यों ईश्वर अवतारों की पूजा करें जबकि ईश्वर अवतार ही नहीं लेता? फिर

प्रतिमा पूजा कैसी ? इन सब बातों के उपरान्त जिन पुराणों में प्रकृति की मनुष्यरचित मूर्त्तियों की पूजा का विधान किया है उन्हीं में मूर्त्तिपूजकों की निन्दा की है। सुनिये, **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ८४ में लिखा है—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिद् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥ १३॥

अर्थात् जो धातु आदि में आत्मा बुद्धि करते हैं और नदी, पहाड़, आदि स्थानों में तीर्थबुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं, वह मनुष्यों के बीच में गधे वा बैल हैं। **महाभारत** में लिखा है कि—

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण, मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिनका मन है, वह मनुष्य मूर्ख हैं। और भी कहा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते॥

जो मनुष्य सर्वव्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु, पत्थर, लोहा, पीतल, चांदी, सोना आदि किसी भांति की मूर्त्ति बनाते हैं, वह अज्ञानी हैं। **श्रीमद्भगवद्गीता** में लिखा है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥ ७.२४॥
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ ९.११॥

मूर्ख जन मनुष्य की देह धारण करने वाला और उत्पन्न हुए परमेश्वर को जानते हैं, उसके परमभाव को नहीं जानते कि सबका महेश्वर अर्थात् स्वामी है। सर्वव्यापक होने से एक स्थान पर मूर्त्तिमान् नहीं हो सकता। इसके उपरान्त **अध्यात्म रामायण रामगीता** में लिखा है—

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयते नापि विवर्द्धते क्वचित्।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभुः सर्वगतो ह्यद्वयः ॥

हे लक्ष्मण! वह ईश्वर न कभी मरता है, न उत्पन्न होता है, न उसका नाश होता है और न कभी बढ़ता है॥ किन्तु निरन्तर सबसे बड़ा, सुखात्मक, स्वयंप्रभु तथा सबके अन्दर व्याप्त है, उससे दूसरा नहीं।

जन्मापवादं द्रोहं च तथा मिथ्यावभाषणम्।
कामं क्रोधं तथा चौर्यं परदाराभिमर्षणम्॥
बीभत्सं मरणं क्षोभं दुष्क्रिया विविधाः कलौ।
पाषण्डिनो विधास्यन्ति विशुद्धे परमात्मनि॥

कलियुग के पाखण्डी लोग शुद्ध परमात्मा में ऐसे-ऐसे दोष लगावेंगे कि परमात्मा ने जन्मधारण किया, निन्दा की, द्रोह किया, झूठ बोला, काम, क्रोध तथा चोरी की, परदाराओं के साथ प्रीति, भय, मृत्यु इत्यादि-इत्यादि नाना प्रकार की दुष्क्रियाएं कीं।

श्रीमान् जब पुराण वेदानुकूल वर्णन कर रहे हैं, फिर आप अन्य वेद-विरुद्ध पुराणों के लेखों को क्यों मानते हैं? इसके उपरान्त वह स्पष्ट कह रहे हैं कि परमात्मा का पूर्णज्ञान स्वाध्याय और योगाभ्यास रूपी दो नेत्रों से हो सकता है, अन्य नेत्रों से वह दिखलाई नहीं देता। जैसा कि **विष्णु पुराण** अंश ६ अध्याय ६ में लिखा है—

तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथापरम्।
न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते॥ ३॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय २ में लिखा है कि योगी लोग योग से तथा ज्ञानचक्षु से उस परमात्मा का ध्यान करते हैं—

ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानचक्षुषा॥ १४॥

शिवपुराण वायु संहिता अध्याय ४ में लिखा है कि वह परमेश्वर सबमें है और सबको व्याप्त कर स्थित हो रहा है तथापि कोई पुरुष उसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकता—

सर्व्वं तत्र सर्व्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः।
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते॥ ४६॥

नेत्र अथवा दूसरी इन्द्रियों से कोई इसे ग्रहण नहीं कर सकता, केवल उसको योगाभ्यास के द्वारा मन को शोध कर महात्मा जन ही जानते हैं—

नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि।

मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते॥ ४७॥

जिस प्रकार तिलों में तेल, दही में घृत, स्रोत में जल, अग्नि में सुवर्ण रहता है, उसी भांति आत्मा में आत्मा विलक्षण रूप से स्थित है जो सत्य और तपयुक्त होने से दीखता है। जैसा कि—

तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम्।

यथापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः॥ ७४॥

एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मविलक्षणम्।

सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति॥ ७५॥

यजुर्वेद अध्याय ४० में कहा है कि ब्रह्म के अनन्त होने से जहां-जहां मन जाता है, वहां-वहां प्रथम से ही अभिव्याप्त ब्रह्म वर्त्तमान है, उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है, चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है, उसका ज्ञान सूक्ष्म इन्द्रिय गम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है, अन्य को नहीं—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्शत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥

और अध्याय ३४ में कहा है कि जो मनुष्य योगाभ्यासादि सत्कर्मों करके शुद्ध मन और आत्मा वाले धार्मिक पुरुषार्थी हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानते और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं—

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।

विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ४४॥

महाभारत शान्तिपर्व २३८ में कहा है कि मन को निग्रह करने वाले ब्राह्मण मन के द्वारा बुद्धि से आत्मा को देखते हैं—

मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि॥ १५॥

इस आत्मा को नेत्र से नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियों से भी देखने की सामर्थ्य नहीं। महान् आत्मा मानसप्रदीप के द्वारा प्रकाशमान होता है—

नह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः।

मनसा तु प्रदीपेन महानात्मा प्रकाशते॥ १६॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय २८ में और उत्तरार्द्ध में लिखा है कि ईश्वर बाधारहित, ज्ञानस्वरूप, अनन्त है जो देखने में नहीं आता, स्वयं प्रकाश है जिसको पूर्ण योगी ही देखते हैं—

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्।

यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः॥ १५॥

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय ८४ में लिखा है कि मुनीन्द्र लोग ज्ञान से युक्त परमार्थ में परायण उस सर्व्वज्ञ, सर्व्वदर्शक को देखते हैं—

केवलज्ञानरूपेण दृश्यते परचक्षुषा॥ ८७॥

योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः॥

यं न पश्यन्ति मुग्धास्तु सर्वज्ञं सर्वदर्शकम्॥ ८८॥

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २०२ में लिखा है कि जो मनुष्य रसों से जिह्वा, गन्ध से नासिका, शब्द से कान, स्पर्श से त्वचा और रूप से नेत्र को निवृत्त करता है वह परमात्मा के दर्शन करने के योग्य होता है—

निवर्तयित्वा रसनां रसेभ्यो घ्राणञ्च गन्धाच्छ्रवणौ च शब्दात्।
स्पर्शात् त्वचं रूपगुणात् तु चक्षुस्ततः परं पश्यति स्वं स्वभावम्॥ ५॥

और इसी पर्व के अध्याय २४० में कहा है कि जब मन सहित पञ्च इन्द्रियाँ बुद्धि में स्थित होकर संकल्प का त्याग कर देती हैं तब उस निर्मल अन्त:करण में ब्रह्म प्रकाशित होता है—

पञ्चेन्द्रियाणि सन्धाय मनसि स्थापयेद्यतिः।

प्रसीदन्ति च संस्थाय तदा ब्रह्म प्रकाशते॥ १८॥

यजुर्वेद अध्याय २० में कहा है कि जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियाँ और प्राणायाम ब्रह्म में स्थिर होते हैं, तब ही वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है—

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः॥ २७॥

इसलिए विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि सदा सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का हृदयरूपी अवकाश में ध्यान, पूजन करते रहें। जैसा कि **यजुर्वेद** अध्याय ३१ में कहा है—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये॥ ९॥

जब मनुष्य उपर्युक्त रीति से ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं क्योंकि कोई भी मनुष्य ईश्वर के आश्रय के बिना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं होता। जैसा कि **यजुर्वेद** अध्याय १० मन्त्र २५ में कहा है—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि॥ २५॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय ३ में लिखा है कि जिस प्रकार अग्नि में सुवर्ण स्थित होकर अपने मल को दूर करता है उसी भांति विष्णु भगवान् योगिराजों के हृदय में स्थित होकर अशुभ वासनाओं को दूर करते हैं—

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दूषणं हन्ति धातुजम्।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम्॥ ४७॥

शिवपुराण वायुसंहिता अध्याय ४ में कहा है कि जो परमात्मा को हृदय में स्थित जानता है वह प्राणी अमृत हो जाता है—

हृदये सन्निविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते। १०२।

श्रीमान् योग के द्वारा उपासना को पुराण भी स्वीकार करते हैं परन्तु वह इस प्रकार की उपासना को ज्ञानियों के लिए करते हैं और अज्ञानियों के लिए मूर्त्तिपूजा लाभदायक बतलाते हैं। जैसा कि **शिवपुराण** ज्ञानसंहिता अध्याय २६ में लिखा है कि वेदार्थ तत्त्व के जानने वाले कहते हैं कि ईश्वर सबके हृदय में विराजमान है, जिन पुरुषों को ऐसा ज्ञान है उनको

प्रतिमापूजन से क्या? हाँ, जिनको ज्ञान, विज्ञान नहीं है उनका प्रतिमापूजन महापुण्यदायक है—

एवमाहुस्तदा चान्ये सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः।
हृदि संसारिणं साक्षात् सकलः परमेश्वरः॥ २५॥
इति विज्ञानयुक्तस्य किं तस्य प्रतिमादिभिः।
इति विज्ञानहीनस्य प्रतिमाकल्पना शुभा॥ २६॥

मूर्त्तिपूजा का वास्तविक स्वरूप

परन्तु हम प्रथम पुराणों से यह दिखला चुके हैं कि परमेश्वर ज्ञान के नेत्रों से जाना जाता है तो क्या अज्ञानियों को पाषाणपूजन से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है? कदापि नहीं, कदापि नहीं। हाँ, अब इस स्थान पर यह विचार करना अभीष्ट है कि वह कौनसी मूर्त्ति वा प्रतिमा है जिसकी पूजा से अज्ञानियों को ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है? इसके जानने के लिए जब हम परमेश्वर रचित सृष्टि को देखते हैं तो प्रत्यक्ष होता है कि जगत्पिता ने दो प्रकार की मूर्त्तियों को बनाया है। एक जड़, जैसे सूर्य्य, चाँद, पृथिवी, सितारे। दूसरे चैतन्य जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु इत्यादि इन दोनों प्रकार की मूर्त्तियों में मनुष्य को श्रेष्ठ माना है और मनुष्यों में ज्ञानी महात्मा की मूर्त्ति सर्वोपरि है। इसलिए संसार में ज्ञानीपुरुष की प्रतिमा ऐसी है जो अज्ञानियों को ज्ञानी बना सकती है नकि जड़मूर्त्ति जो स्वयं ही ज्ञान से शून्य और इन्द्रियों से रहित है। इसके उपरान्त ज्ञानी पुरुष की मूर्त्ति को परमात्मा ने बनाया है और प्रकृति की प्रतिमा को मनुष्य ने गढ़ा है तिस पर धर्मसभा यह भी करती है कि पण्डित जन मन्त्रों को पढ़ उस प्रकृति की मूर्त्ति में परमेश्वर का आह्वान करते हैं परन्तु ज्ञानियों के हृदय में वह मन्त्र सदा विद्यमान रहते हैं तदनन्तर प्रकृतिमूर्त्ति की रक्षा चैतन्य पुरुष करता है यहाँ तक कि वही उठाता, बिठाता और बनवाता है तिस पर भी वह कुछ नहीं करती, परन्तु परमात्मा रचित मनुष्यरूपी मूर्त्ति स्वयं सब कार्यों को करती है। देखिए, ईश्वररचित गाय कैसी चलती-फिरती और उत्तम दूध देती है, क्या कुम्हार की बनाई हुई गाय वैसा ही कार्य्य करती है? कदापि नहीं। इसलिए माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि की मूर्त्तियाँ जिनके सत्सङ्ग से मनुष्य शरीर का लालन, पालन, सत्यविद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति

होती है जो परमेश्वरप्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं। अतएव ज्ञान की प्राप्ति के लिए परमेश्वर रचित उपर्युक्त मूर्त्तियों की सेवा टहल करना चाहिए जैसा पहिले समय में होता था। स्वार्थी जनों ने अपने स्वार्थसिद्धि के लिए प्रकृतिपूजा की ओर झुका दिया देखिए! इन चैतन्य मूर्त्तियों के विषय में **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ६ अध्याय ७ में लिखा है कि आचार्य ब्रह्म की, पिता प्रजापति की, भ्राता मरुत्पति की, माता साक्षात् पृथ्वी की, दया बहन की, धर्म की अतिथि, अग्नि की अभ्यागत और सब भूतों में आत्मा समझना अपनी मूर्त्ति को माना है। जैसा कि—

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्त्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः॥ २९॥
दयाया भगिनी मूर्त्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम्।
अग्नेरभ्यागतो मूर्त्तिः सर्वभूतानि चात्मनः॥ ३०॥

महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ७ में कहा है कि जिन कर्मों से पिता को प्रसन्न किया जाता है उसी के द्वारा माता को प्रसन्न किया जाता है उस ही के सहारे पृथ्वी पूजित होती है। जिन कर्मों से गुरु प्रतियुक्त किया जाता है उससे ही ब्रह्म पूजित होता है। इस हेतु **वनपर्व** अध्याय ५० में कहा है कि जो मनुष्य माता, पिता, अग्नि, गुरु और अपनी आत्मा की पूजा करते हैं, उनके दोनों लोक सुधर जाते हैं।

शान्तिपर्व अध्याय १०८ में भीष्म जी ने कहा है कि पिता, माता और गुरु ये तीनों त्रिलोक स्वरूप हैं ये ही तीनों आश्रम, तीनों वेद और अग्निस्वरूप हैं—

एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः।
एत एव त्रयो वेदा एतऽएव त्रयोऽग्नयः॥ ६॥

अनुशासनपर्व अध्याय ६ में लिखा है कि पिता, माता और गुरु ये तीनों ही जिससे आदरयुक्त होते हैं, उसके सब धर्म पूर्ण हो जाते हैं और जहाँ इनका निरादर होता है वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती हैं। और अध्याय ७५ में लिखा है कि जो लोग पिता, माता, भ्राता, गुरु और आचार्य की पितृवत् सेवा करते हैं उनको स्वर्ग में सुख मिलता है।

वामनपुरण—अध्याय ४० में लिखा है कि जो आचार्य, माता, पिता

से द्वेष करते हैं और वृद्धों का मान नहीं करते वह सब राक्षस हैं।

पद्मपुराण—द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६३ में लिखा है कि जो माता, पिता, गुरु की सेवा नहीं करते, वह पृथ्वी पर प्रेत हैं। इसलिए वेदादि सर्व शास्त्रों का अटल सिद्धान्त है कि उपर्युक्त मूर्त्तिमान् देवों की पूजा करने से देवों के देव महादेव जाने जाते हैं और विशेषकर गुरु सेवा करने से।

श्रीमद्भागवत—पञ्चम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में लिखा है कि वह गुरु नहीं जो मृत्यु से बचने का उपाय न बतावे। मृत्यु के क्लेश आत्मिक ज्ञान बिना दूर नहीं हो सकते। इसलिए आत्मिकज्ञान के लिए गुरु करना चाहिए। **पद्मपुराण** तृतीय स्वर्ग खण्ड अध्याय ५२ में लिखा है कि ज्ञान का कारण गुरु है इसलिए गुरु से परे कोई विचित्र भूषण नहीं। **लिङ्गपुराण** अध्याय ८६ श्लोक १०१ में कहा है कि गुरु की कृपा से ही निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। **विष्णुपुराण** में कहा है कि गुरु के उपदेश के विना ज्ञान और ज्ञान के विना मोक्ष नहीं होता। **यजुर्वेद** अध्याय ३ मन्त्र ५५ में लिखा है कि विद्वान् माता, पिता, आचार्य की शिक्षा के बिना मनुष्यों का जन्म सुफल नहीं होता—

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳसचेमहि॥

इसी हेतु प्राचीन समय में सन्तानें विद्या और ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरुजनों के निकट जाया करती थीं। देखो, परशुराम ने कश्यप महाराज के निकट, राजा जनक ने पञ्चशिख जी से, रामचन्द्र ने वसिष्ठ और श्रीकृष्ण महाराज ने सन्दीपन नाम पण्डित के निकट रहकर अर्थात् गुरुकुल में वासकर विद्या पढ़ी थी। उसी भांति अब भी ज्ञान की प्राप्ति के लिए माता, पिता, आचार्य इत्यादि ईश्वररचित चैतन्य मूर्त्तियों की पूजा करनी चाहिए। क्योंकि बिना गुरु के विद्या और बिना विद्या और शिक्षा के ज्ञान और बिना ज्ञान के परमेश्वर का बोध नहीं होता। जैसा श्रीकृष्ण महाराज ने उद्धव जी को उपदेश किया है। देखो, **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ११।

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय १७ में कहा है कि गुरु का उपदेश सुनने से ज्ञान बढ़ता है इसलिए चिन्ता की निर्मलता के लिए उनके वाक्यों को मनुष्य सदा विचार करते रहें। फिर हम नहीं जानते कि शिवपुराण का कर्त्ता क्योंकर अज्ञानियों को जड़मूर्त्तियों की पूजा से उनका भला समझते

हैं जबकि **शिव-पुराण वायुसंहिता** उत्तरार्द्ध अध्याय १३ में लिखा है कि गुरु साक्षात् देवता और उसका घर मन्दिर है—

गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम्॥ २५॥

इसके उपरान्त जड़मूर्त्तियों की पूजा जहाँ नाना प्रकार के पुष्पों से लिखी है वहाँ **अग्निपुराण** अध्याय २०२ में लिखा है कि अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, शान्ति, शम, तप, ध्यान और सत्य इन आठ पुष्पों से सन्तुष्ट होते हैं—

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते॥ १७॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम्।
सत्यञ्चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः॥ १८॥
पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम॥ १९॥

ऐसा ही **पद्मपुराण** पातालखण्ड अध्याय ८१ में लिखा है और **शिवपुराण** कैलाससंहिता अध्याय ८ में भी लिखा है कि वर्णाश्रम के आचाररूपी पुष्पों से परमेश्वर का पूजन करना चाहिए।

श्रीमान् इन पुष्पों से जड़मूर्त्तियों की पूजा नहीं होती वरन् संसार में चैतन्य मूर्त्तियों की पूजा होती है। यही पूजा का सार है जो बिना ज्ञान के अत्यन्त कठिन है और ज्ञान का मूल भक्ति और भक्ति का मूल देवताओं अर्थात् विद्वानों का पूजन, उसका मूल सद्गुरु और सद्गुरु की प्राप्ति सत्पुरुषों की सङ्गति और उत्तम सङ्गति से विद्या और उससे ज्ञान-विज्ञान मिलता है। इसलिए गुरु से विद्या और शिक्षा पाने के उपरान्त सदा उत्तम पुरुषों का सत्सङ्ग करना चाहिए जैसा कि **श्रीकृष्ण महाराज** ने **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ११ अध्याय ११ में कहा है—

हे उद्धव! संसार से पार होने के लिए सत्सङ्ग से उत्तम कोई उपाय नहीं है क्योंकि उससे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति से पार हो जाता है इस लिए साधुओं की सङ्गत परम श्रेष्ठ है—

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्॥ ४८॥

इसी विषय में श्रीकृष्ण महाराज ने **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ८४ में कुरुक्षेत्र के बीच में व्यास, नारद, च्यवन, देवल, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, वामदेव इत्यादि मुनियों की सभा में कहा है—

आज हमने अपने जन्म को सफल किया क्योंकि देवताओं को दुर्लभ ऐसे योगीश्वर के दर्शन प्राप्त हुए—

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्र्येन तत्फलम्।
देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम्॥ ९॥

जो जन तीर्थ में स्नान करने का तप जानते हैं और केवल प्रतिमा ही को देवता मानते हैं ऐसे मनुष्यों को योगीश्वरों के दर्शन, स्पर्श व वार्त्ता अर्थात् उनसे प्रश्नों के उत्तर आदि चरणसेवा करना नहीं मिलती—

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम्।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम्॥ १०॥

जलमय तीर्थ नहीं है, मृत्तिका और शिलान के देवता नहीं हैं, यह बहुत काल सेवा करने से पवित्र करते हैं परन्तु साधु महात्मा दर्शन ही से पवित्र करते हैं—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥ ११॥

क्योंकि साधु कुछ चाहना नहीं करते निरपेक्ष और समदृष्टि ममता, अहङ्काररहित, शान्ति, सुख, दुःख, कुछ नहीं इसलिए उनका सङ्ग ही मनुष्यों को तारता है। जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ११ अध्याय २६ में लिखा है—

सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः॥ २७॥

शिवपुराण सनत्कुमारसंहिता अध्याय ५३ में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेदवित् और अग्निहोत्रपरायण है, वह श्रेष्ठ है, वही पूजन करने से तार देते हैं॥ १७॥

क्योंकि ब्राह्मण मिथ्याव्रत नहीं होते, प्राणियों की हिंसा नहीं करते, वह किसी की सेवा नहीं करते और पापकारी नहीं होते॥ २०॥

जो ब्राह्मण तपस्वी तथा वेदविद्या में विशारद हैं वह देवताओं के भी देवता वृत्ति देने हारे हैं॥ २५॥

जिस प्रकार अग्नि की सेवा से शीत और अन्धकार जाता है उसी भांति नेत्रों से संसारी पदार्थों का ज्ञान होता है। जिस भांति अच्छे सिखलाये घोड़ों से युक्त रथ द्वारा मनुष्य आनन्दपूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र पहुंच जाते हैं वैसे ही विद्या और सज्जनों के सङ्ग और योगाभ्यास के द्वारा शीघ्र परमात्मा को प्राप्त होते हैं। जैसा कि **यजुर्वेद** अध्याय २३ में कहा है—

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा॥ ६॥

इस हेतु जो मनुष्य चैतन्य मूर्त्तिमान् देवों के सत्सङ्ग योगाभ्यासादि सत्कर्मों के द्वारा मन को शुद्ध करने वाले धार्मिक और पुरुषार्थी हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानते और उसको प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं। जैसा कि **यजुर्वेद** अध्याय ३४ में कहा है—

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाᳬंसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ४४॥

श्रीमान् प्रकृति की बनी हुई प्रतिमाओं के पूजने से अज्ञानियों को कुछ लाभ नहीं। क्योंकि **यजुर्वेद** अध्याय १७ मन्त्र ३१ में स्पष्ट कहा है कि जो ब्रह्मचर्यादि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान, सत्सङ्ग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञानरूपी अन्धकार में दबे हुए हैं। इसलिए वह ब्रह्म को नहीं जानते। हाँ! जो उपर्युक्त गुणों से अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं, वही उस ब्रह्म को जानते हैं। जैसा कि—

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति॥ ३१॥

इसलिए प्रकृति की बनी हुई मूर्त्तियों की पूजा का त्याग करना अभीष्ट है क्योंकि **यजुर्वेद** अध्याय ४० मन्त्र ९ में लिखा है कि जो

असम्भूत अर्थात् अनुत्पन्न, अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और सम्भूत जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरते हैं। जैसा कि—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳫं रताः॥ ९॥

अतएव सत्सङ्ग और विवेक रूपी निर्मल नेत्रों से मार्ग को जान कार्य कीजिए क्योंकि जिसके यह उपर्युक्त दोनों नेत्र नहीं हैं वही अन्धा और कुमार्ग में जाने वाला है। जैसा कि **गरुड़ पुराण** अध्याय १६ में कहा है—

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥ ५७॥

और जो कुमार्ग में जाते हैं उनको किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता। इसलिए प्रथम सबको गुरुकुल भेज शिक्षा कराइए तत्पश्चात् वह सत्सङ्ग और विवेकरूपी नेत्रों से सन्मार्ग को जान परमेश्वर की उपासना कर सकते हैं। तब ही सर्वप्रकार के सुख उनको मिल सकते हैं, अन्यथा नहीं। इसीलिए **यजुर्वेद** अध्याय ३४ मन्त्र १३ में कहा है कि जो मनुष्य विद्वानों के बताये मार्ग पर चलते हैं वे ही ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को जान परमेश्वर की आज्ञानुसार कार्य करते हैं तब उनकी ईश्वर तथा विद्वान् जन निरन्तर रक्षा करने वाले होते हैं। जिसके कारण वे कभी सन्तानों से रहित न होकर लक्ष्मीवान् और दीर्घायु वाले होते हैं—

त्वं नोऽअग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषᳫं रक्षमाणस्तव व्रते॥ १३॥

पण्डित जी महाराज! जब तक इस देश के मनुष्य ईश्वर की उपर्युक्त आज्ञा के अनुसार परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव को जान उपासना करते रहे तब तक यह देश स्वर्गधाम बना रहा और प्रतिदिन आनन्दरूपी अमृत की वर्षा होती रही। ज्यों ही इस आज्ञा के विरुद्ध कार्य आरम्भ

किया त्यों ही भारत का, भारत होना आरम्भ हो गया जिसको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

जड़मूर्त्तियों की पूजा से परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव नहीं जाने जाते। हाँ, स्वार्थियों के स्वार्थ सफल होते हैं जिसके लिए उन्होंने सबसे प्रथम गुरुकुलों की शिक्षा को उठा दिया और वेदों के पठन, पाठन को एकदम बंद कर दिया। इधर ऋषि, मुनियों के नाम से ग्रन्थ रच वेदों के स्थान पर सुनाने आरम्भ कर दिये जिनमें मन के लुभाने वाली बातें बहुतायत से लिख बड़े-बड़े पापों के मोचन अत्यन्त सुगम बता दिये। जिनको सुन स्त्री, पुरुष यकायक उधर को झुक गये, फिर वही संसार का मार्ग बन गया, फिर क्या फिर तो हम सब प्रकृति की, मनुष्यकृत मूर्त्तियों की पूजा और जल स्नान से मोक्ष, पुरुषों आदि के चढ़ाने से सन्तान, धन और आरोग्य और मन्त्र जप और स्तोत्रों के पाठ से सर्वकार्य की सिद्धि की आशा पर ब्रह्मचर्य, पुरुषार्थ, बल, विद्या इत्यादि को तिलाञ्जलि दे, ऐसे मूर्ख बन गये कि अब विद्या के प्रकाश होने और उत्तमोत्तम उपदेश सुनने पर भी टस से मस नहीं करते और अब भी थोथी बातों में फंसे हुए चले जाते हैं उनमें से कुछ संक्षेप से इस स्थान पर सुनाता हूँ और कुछ फिर सुनाऊंगा क्योंकि इन्हीं बातों से पुराण भरे पड़े हैं।

पण्डित जी—सेठ जी आज यहाँ ही विश्राम दीजिए।

सेठ जी—अच्छा श्रीमान्, ओ३म् शम्।

श्रीमान् पण्डित जी और अन्य सज्जन पुरुषों ने चलने की तैयारी की।

आर्य सेठ ने श्रीमान् को नमस्ते कह अन्य सब महाशयों से यथायोग्य की।

श्रीमान् पण्डित जी—लाला जी आयुष्मान् भव।

अन्य सभ्यगणों ने यथायोग्य कहा, सब चल दिए।

सेठ जी भोजनादि कार्यों में लग गये।

॥ इति षष्ठ परिच्छेद ॥

सप्तम परिच्छेद

फल-प्रकरण

आर्य सेठ—नियत समय पर श्रीमान् पण्डित जी पधारे, जिन को देख उठ, दोनों हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक नमस्ते कह, कहा कि श्रीमान्! आइए, विराजमान हूजिए।

पण्डितजी—आशीर्वाद देकर विराजमान हुए और कहा कि सेठ जी जिन बातों का आज आप वर्णन करना चाहते हैं उनको संक्षेप से किसी एक-दो पुराणों से सुना दीजिये क्योंकि अवतार विषय में हमको सुनना है।

आर्य सेठ—श्रीमान् की जैसी आज्ञा। मैं वैसा ही करूंगा, परन्तु आप अन्य पुराणों में भी अवश्य स्वयं देख लें।

पण्डितजी—मैं अवकाश होने पर अवश्य देखूंगा।

इतने में अन्य श्रोतागण भी आ गये जिनको लाला जी ने यथायोग्य कहा और वह सब उत्तर दे आनन्द से बैठ गये, तब सेठ जी ने कहा कि—

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २७ में लिखा है कि जो मनुष्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है वह राजा होता है। मन्दिर बनवाने से त्रिलोकी का राज्य और पूजादि कार्य करने से ब्रह्मलोक मिलता है और जो उपर्युक्त तीनों कार्यों को करता है, वह सायुज्य मुक्ति को पाता है—

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥ ५२॥

पद्मपुराण सप्तमक्रियायोगसार अध्याय ११ से—

जगन्नाथ के पूजन का फल

जो पुरुष जगन्नाथ का पूजन करता है वह सब व्याधियों से छूट, इस लोक से सब कामनाओं को भोग, अन्त में हज़ार युग तक भगवान् के मन्दिर में स्थित होता है।

शीतनिवारण फल

पुत्र पौत्रों से मुक्त हो, इस लोक में सब कामनाओं को भोग अन्त में देवताओं से भी दुर्लभ विष्णु के पुर को जाता है।

दूधस्नान का फल

वह अपने कर्म से दुस्तर नरकरूपी समुद्र में डूबते हुए करोड़ पुरुषों का उद्धार कर, भगवान् के पद को पाता है।

शंख से स्नान का फल

ब्राह्मण, गऊ, स्त्री और गर्भ की हत्या और मदिरा आदि पीने के पाप से छूट, वैकुण्ठ में जा सब सुखों का भोग करता है—

शङ्खेन स्नापयेद्यस्तु भगवन्तं जनार्दनम्॥ ७१ ॥
विप्रगोस्त्रीभ्रूणहत्यासुरापानादिपातकैः॥ ७२ ॥
विमुक्तो याति वैकुण्ठं भुङ्क्ते हि सकलं सुखम्॥ ७३ ॥

प्रदक्षिणा का फल

जो-जो ब्रह्महत्यादिक बड़े-बड़े पाप हैं, वे सब प्रदक्षिणा के पद-पद में नाश हो जाते हैं। जो भक्ति से विष्णु की प्रदक्षिणा में जितने पग रखता है उनसे हज़ार कल्प विष्णु जी के साथ आनन्द करता है—

ब्रह्महत्यादिपापानि यानि यानि महान्ति च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदेपदे॥ ११५ ॥
यावत्पादं नरो भक्त्या गच्छेद्विष्णुप्रदक्षिणे।
तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुना सह मोदते॥ ११६ ॥

संसार में जितना सब फल प्रदक्षिणा करने से होता है उससे करोड़ गुना फल भगवान् की प्रदक्षिणा, करने से होता है जो तीन दिन में दोबारा विष्णु जी की प्रदक्षिणा करता है वह निस्सन्देह इन्द्र के पद को प्राप्त होता है॥ ११८-१२१ ॥

भगवान् के मन्दिर में झाड़ू देने का फल

(१) विष्णु के मन्दिर से जितनी धूल बाहर चली जाती है, उतने सौ

मन्वन्तर मनुष्य विष्णु जी के मन्दिर में स्थित रहता है॥ श्लोक ४२॥

(२) जो ब्राह्मण का मारने वाला भी भगवान् के घर में झाड़ू देता है तो वह भी परमधाम को जाता है, बहुत कहने से क्या है॥ ४३॥

चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय २ से मन्दिर लीपने का फल

(१) लीपने से जितनी धूल नाश होती है उतने हज़ार कल्प मनुष्य सुख-पूर्वक विष्णु के मन्दिर में स्थित रहता है। श्लोक ५॥

इतिहास।

इस विषय में चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय २ में लिखा है कि पूर्व समय द्वापरयुग में दण्डक नामक चोर हुआ जो ब्राह्मणों का द्रव्य चुरानेवाला, मित्रों का नाश करनेवाला, झूठ बोलनेवाला, क्रूर, पराई स्त्रियों के गमन में रत, गऊ का मांस खानेवाला, मदिरा पीनेवाला, पाखण्डी मनुष्य के सङ्ग रहनेवाला, ब्राह्मणों की जीविका छीननेवाला, शरणागतों के नाशनेवाला, वेश्याओं में लोलुपादि अवगुणों से युक्त था—

पुरासीद् दण्डको नाम्ना चौरो लोकभयप्रदः।
ब्रह्मस्वहारी मित्रघ्नो युगे द्वापरसंज्ञके॥ ६॥
असत्यभाषी क्रूरश्च परस्त्रीगमने रतः।
गोमांसाशी सुरापश्च पाखण्डजनसङ्गभाक्॥ ७॥
वृत्तिच्छेदी द्विजातीनां न्यासापहारकस्तथा।
शरणागतहन्ता च वेश्याविभ्रमलोलुपः॥ ८॥

वह मूढ़बुद्धि एक समय किसी विष्णुमन्दिर में चोरी करने को गया और देवस्थान के द्वार में प्रवेश कर कीचड़ से युक्त अपने पावों को वहाँ की भूमि में पौंछता हुआ॥ श्लोक १०॥

इसी कर्म से पृथ्वी लिप गई फिर आनन्द से लोहे की शलाकाओं से किवाड़ को उखाड़ कर भगवान् के मन्दिर में प्रवेश करता हुआ॥ श्लोक ११॥

वहाँ चोर ने सुन्दर शय्या पर राधा समेत भगवान् को देखा और राधा के स्वामी को प्रणाम किया, उसी समय पापरहित हो गया। फिर कहने लगा कि चोरी करूं या न करूं? मैं सेवा करने में समर्थ नहीं हूं। मैं सदा का चोर हूँ और सब काम द्रव्य से होते हैं। यह कह भगवान् के रेशमी

कपड़े को बिछा कर सब वस्तुओं को बांधा। उसके चलते समय काँपने से बड़ा शब्द हुआ, इसलिए जाग हो गई, सब दौड़े, वह वस्तु छोड़ भागा। कुछ दूर गया वहाँ सर्प ने खा लिया, वह पापी मर गया। फिर यम के दूत आये, बांधकर ले गये, तब यमराज ने चित्रगुप्त से पूछा कि इसने क्या-क्या किया है? सब कहो। तब मन्त्री ने कहा कि पृथ्वी पर जितने पाप बनाये हैं, इसने सब किये हैं मैं सत्य कहता हूँ।

अब इसकी सुकृति भी सुनिये, यह पापियों में श्रेष्ठ भगवान् के द्रव्य चुराने गया था, वहाँ भगवान् के द्वार में अपने पावों की कीचड़ को इसने पौंछ दिया, उससे पृथ्वी लिपी, बिल और छेदों से रहित हो गई, तिसी पुण्य के प्रभाव से उसके बड़े भारी पाप नष्ट हो गये। इसलिए यह आपके दण्ड से निकल कर वैकुण्ठ जाने के योग्य है—

बभूव लिप्ता सा भूमिर्बिलच्छिद्रविवर्जिता।
तेन पुण्यप्रभावेण निर्गतं पातकं महत्॥
वैकुण्ठं प्रति योग्योऽसौ निर्गतस्तव दण्डतः॥ २९॥

यह सुन यमराज ने सोने का पीठ उसके बैठने को दिया, फिर उसकी पूजा की और नम्रतापूर्वक शिर से नमस्कार कर कहा कि तुम्हारे चरण की धूलियों से मेरा मन्दिर पवित्र हो गया—

पवित्रं मन्दिरं मेऽद्य पादयोस्तद्धि रेणुभिः॥ ३१॥

मैं निस्सन्देह कृतार्थ हुआ हूं। हे साधो! इस समय तुम भगवान् के उत्तम मन्दिर को जाओ॥ श्लोक ३२॥

जो अनेक प्रकार के भोगों से युक्त जन्म, मरण का निवारण करनेवाला है॥ ३३॥

इतना कह धर्मराज ने हंसों से युक्त सोने के रथ पर उस पाप रहित को चढ़ा भगवान् के मन्दिर को भेज दिया॥ ३४॥

वह वैकुण्ठ गया, बहुत काल सुख से रहा। जो भक्ति से भगवान् के मन्दिर को लीपते हैं, उनके पुण्य को तो मैं नहीं जानता कि क्या होगा॥ ३५॥

जो एकाग्रचित्त होकर इसको सुनता वा पढ़ता है, उसके करोड़ जन्म के पाप निस्संदेह नाश हो जाते हैं—

य इदं शृणुयाद् भक्त्या पठेद् यो वा समाहितः ॥ ३६ ॥
कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यत्येव न संशयः ॥ ३७ ॥

प्रणाम का फल।

जो भगवान् को सात वार पृथ्वी में दण्डवत् प्रणाम करता है, उसके शरीर के सब पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं। पृथ्वी में सब अङ्गों को गिराकर जो प्रणाम करता है, तब जितनी धूलि से मनुष्य का शरीर भूषित हो गया है, उतने ही हज़ार कल्प वह भगवान् के समीप स्थित होता है।

वामनपुराण अध्याय ९३ में लिखा है कि कोटिसहस्र और करोड़ों, सैंकड़ों तीर्थों का जो स्नान करना है सो नारायण को प्रणाम करने की सोलहवीं कला को भी नहीं पहुंचता है—

तीर्थकोटिसहस्त्राणि तीर्थकोटिशतानि च।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६२ ।

चरणोदक का फल

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय ॥ १७ ॥

(१) सब पापों के नाश करनेवाले शुभ विष्णु जी के चरणोदक को जो कणमात्र भी प्राप्त होता है वह सब तीर्थों के फलों को पाता है ॥ २ ॥

(२) विष्णु जी के चरणजल के स्पर्श करने से पापनाश हो जाते हैं, अकाल मृत्यु नहीं होती और छूनेवाला गङ्गास्नान के फल को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(३) जो पापी विष्णु जी के चरणोदक को पीता है तो उसके किये हुए देह में स्थित पाप निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

(४) जो मनुष्य भक्ति से तुलसी संयुक्त विष्णु के चरणामृत को शिर से धारण करता है, वह अन्त में भगवान् के स्थान को जाता है।

(५) मेरु पर्वत के बराबर सोना देने से जो फल मिलता है, वह फल मनुष्यों को हरि जी के चरणजल के स्पर्श से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

(६) हजार करोड़ गौवों के देने से जो फल मनुष्यों को मिलता है, वह फल हरि जी के चरणजल छूने से निश्चय मिलता है ॥ ६ ॥

(७) हज़ार करोड़ यज्ञ उससे करोड़गुना कन्यादान और करोड़ हाथी

के देने से जो फल मिलता है, वही हरि जी के चरणजल, स्पर्श से मिलता है॥

इतिहास।

पूर्व समय के त्रेतायुग में सुदर्शन नामक एक पापी ब्राह्मण जो एकादशी को नित्य ही भोजन करता था और जो अधम एकादशी में भोजन करता है, वह विष्ठा भोजन करता है और घोर नरक को जाता है।

इसलिए इसको सौ मन्वन्तर पर्यन्त नरक में स्थान दीजिए तदनन्तर गांव के सुअर की योनि में जन्म होगा।

यमराज की आज्ञा से सौ मन्वन्तर तक विष्ठा के नरक में गिराया गया। जब नरक से छूटा तो पृथ्वी में गाँव का सुअर होकर बहुत काल तक एकादशी के भोजन करने से नरक का भोजन करता रहा। फिर काल प्राप्त होने पर मरकर कौवे की योनि में जन्म लेकर सदैव विष्ठा भोजन करता रहा। एक दिन दूर देश में स्थित श्रीहरि जी के चरणजल का पान कर सब पापों से रहित हो गया।

उसी दिन बहेलिया का कौवा गिरा, तब काल में बहेलिये ने कौवे को भी मार डाला, तब दिव्य शुभ राजहंसों से युक्त रथ वैकुण्ठ से आया, तिस पर कौवा चढ़ भगवान् के मन्दिर को जाता हुआ।

जो कोई इस पाप नाश करनेवाले चरणजल के माहात्म्य को सुनता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं—

यः श्रृणोति नरः पापी तस्य पापं विनश्यति॥ २८॥

मन्दिर बनवाने का फल।

शिव-धर्मसंहिता अध्याय १६॥

सौ कुल अगले और पिछले शिवमन्दिर बनवानेवाले के तर जाते हैं और अक्षयलोक की प्राप्ति होती है॥ १७॥

सातजन्म का पाप थोड़ा या बहुत शिवमन्दिर निर्माण करते ही नष्ट हो जाता है॥ १८॥

सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु।
शम्भोरालयविन्यासप्रारम्भादेव नश्यति॥ १८॥

मन्दिर बनवाते हुए को देखकर जो मन में यह विचार करते हैं कि मेरे धन हो, मैं भी बनवाऊंगा तो उसका कुल भी शीघ्र स्वर्ग को चला जाता है ॥ २७ ॥

शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा का फल

अच्छे स्थान में शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा करके पुरुष कृतकृत्य हो जाता है और फिर यमपुर नहीं जाता ॥ २४ ॥

जो लोग लिङ्गस्थापन की मन में इच्छा करते हैं, वे आठ कुल का उद्धार कर शान्त शिवलोक को जाते हैं ॥ २६ ॥

यम उनके पास नहीं जाते जो मनुष्य शङ्कर की उपासना करते हैं, रात दिन शिव-शिव कहते हैं, जो पुष्प, धूप, वस्त्रों से वा अपने प्रिय भूषणों से शिव का भजन करते हैं, जो मन्दिरों को लीपते, बुहारते हैं उनके तीन कुलों और जिन्होंने मन्दिर बनवाया उनके सौ पुरुषों के और जिसने भगवान् का लिङ्ग बनवाया उनके कुल के दश सहस्र मनुष्यों में तुम्हारा अधिकार नहीं—

येन वायतनं शम्भोः कारितं तत्कुलोद्भवम्।
पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा ॥ ३६ ॥
येन लिङ्गं भगवतो महेश्वरस्य कारितम्।
नरायुतं तत्कुलजं भवतां शासनातिगम् ॥ ३७ ॥

घृत और मधु से स्नान का फल

कृष्णचतुर्दशी को जो प्रजापति के लिङ्ग को स्नान कराता है और पूजन करता है, वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ४३ ॥

ज्ञान व अज्ञान से मनुष्य जो पाप करता है, वह सन्ध्या को घृत से शङ्कर को स्नान कराने से नष्ट हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

जो दूध से स्नान कराता है, उसको सात जन्म तक आरोग्य, सुन्दर रूप आदि मिलते हैं ॥ ४८ ॥

घृत, क्षीर के देखते ही शिव जी प्रसन्न हो जाते हैं, शङ्कर के स्नान कराने से सबकी स्निग्धता हो जाती है ॥ ५२ ॥

अग्निपुराण अध्याय ३८ और ३२७ से।

जो कृष्ण वासुदेव के मन्दिर को बनवाता है, वह कुल सहित विष्णुलोक को जाता है और वह इस लोक तथा परलोक में पूजनीय होता है। और मन्दिर के बनवाने का प्रारम्भ करने से ही सात जन्म का किया पाप नष्ट हो जाता है, बनवानेवाला पुरुष स्वर्ग को जाता है, नरक को कभी नहीं जाता। वही सुकृती है और उसी से ही कुल पवित्र है—

सकुलस्तस्य वै कर्त्ता विष्णुलोके महीयते।
स एव पुण्यवान् पूज्य इह लोके परत्र च॥ १९॥
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्।
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम्॥ २०॥
सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति॥ ३३॥
देवालयस्य स्वर्गी स्याद् नरकं न स गच्छति॥ ३४॥

मन्दिर का बनवानेवाला सौ कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को जाता है—"**कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद् नरः**"

प्रतिदिन के यज्ञ करने से जो महाफल होता है, वही फल विष्णु के मन्दिर बनवाने से प्राप्त होता है—

अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यद् महाफलम्।
प्राप्नोति तत् फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम्॥ ४६॥

अध्याय ३२७ से—सम्पूर्ण यज्ञ, तप, दान तथा तीर्थ में स्नान करने और वेदों के पढ़ने से जो फल होता है, उससे करोड़ गुणा अधिक शिवलिङ्ग के स्थापित करने से प्राप्त होता है—

सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत् फलम्।
तत् फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेद् नरः॥ १४॥

शालग्राम की पूजा का फल

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २३॥

(१) शालग्राम जी की मूर्त्ति जहाँ होती है वहाँ भगवान् रहते हैं। वहाँ पर स्नान और दान करना काशी जी से भी सौ गुणा अधिक है॥ ४३॥

(२) कुरुक्षेत्र, प्रयाग औंर नैमिषारण्य से करोड़ गुणा पुण्य शालग्राम की मूर्त्ति के पूजन से होता है॥ ४४॥

(३) मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों को जो करता है, वे सब शालग्राम की मूर्त्ति के पूजन से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं—

ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित् कुरुते नरः।
तत्सर्वं नाशयेदाशु शालग्रामशिलार्चनात्॥ ४६॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय २० में लिखा है कि पुरुष चाहे महापापी हो, चाहे ब्रह्महत्यादि पापों से युक्त भी हो तो भी शालग्रामशिला के स्नान का जल पीकर परमगति को जाता है—

अपि पापसमाचारो ब्रह्महत्यायुतोऽपि वा।
शालग्रामशिलातोयं पीत्वा याति परां गतिम्॥ २८॥

चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १६ से भगवान् को घी समेत लाई और कौड़ी देने का फल।

(१) जो मनुष्य कुआर के महीने में पौर्णमासी के दिन श्रीहरि जी को घी समेत लाई और खेलने के लिए कौड़ी भक्ति से देता है, वह हरि जी के स्थान को जाता है। वहाँ से फिर नहीं आता, जो मनुष्य मोह से नहीं देता तिसके ऊपर भगवान् प्रसन्न नहीं होते॥ १२, १३॥

(२) जो मनुष्य कुआर की पौर्णमासी के दिन जितनी कौड़ी भगवान् को देता है, उतने ही दिन हरि जी के स्थान में बसता है—

वराटिकां यावतीं यो हरये पौर्णिमादिने।
तावद्दिनं हरेः स्थानं चाश्विने संवसेद् ध्रुवम्॥ १४॥

इतिहास।

प्राचीन समय में करवीरपुर में एक दयारहित कालद्विज नाम शूद्र था जो स्वामी के कार्य का बिगाड़ने वाला था। वह एक समय काल के गाल में आ कर मर गया। तब यमदूत यमराज के पास ले गये। उन्होंने उसके विषय में मन्त्री से पूछा। तब चित्रगुप्त ने कहा—यह पापी, दुराचारी और स्वामी के कार्य का नाश करने वाला है, इसका अणुमात्र भी पुण्य नहीं,

इसलिए सौ मन्वन्तर सांप की योनि में पत्थर के घर में जन्म लेकर निरन्तर स्थिर रहे, ऐसा ही हुआ। अर्थात् नरक में गिरा और पत्थर के घर में सांप की योनि में उत्पन्न हुआ। एक समय में कुआर के महीने की पौर्णमासी के दिन यह सांप लाई और कौड़ी बिल से बाहर फेंकता हुआ। वह भगवान् के आगे गिरती हुई। तब हरि जी दयालु, दुःख नाश करनेवाले आप ही शीघ्र उसके पाप को नाश कर देते हुए, काल प्राप्त होने पर वह मर गया। यम के दूत आये और ले जाना चाहते थे कि इतने में विष्णु के दूत भी आ गये और सुन्दर रथ में बिठा ले गये और यम के दूत भाग गये। विष्णुदूतों से वेष्टित होकर साँप विष्णु मन्दिर को जाता भया और वहाँ पर फिर लौटने से रहित होकर भगवान् के आगे स्थित होता हुआ। जो मनुष्य भक्ति से भगवान् को घी समेत लाई और कौड़ी देता है उसके पुण्य को मैं नहीं जानता—

भक्त्या यो हरये दद्याद् लाजांश्च सघृतान् द्विज।
वराटिकां तस्य पुण्यं न जाने किं भवेद् ध्रुवम्॥ २८॥

जो कोई पापनाशन इस अध्याय को सुनता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलसी माहात्म्य।

पद्मपुराण सप्तम क्रियायोगसार अध्याय २४ से—

(१) जहाँ पर तुसली का वृक्ष स्थित होता है वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, और महादेवादिक सब देवता स्थित होते हैं॥ ५॥

(२) तुलसी के पत्ते में केशव भगवान्, पत्र के आगे ब्रह्मा जी और पत्र के मूल में शिव जी सदैव स्थित रहते हैं॥ ६॥

(३) लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री, चण्डिका तथा और सब देवियाँ तुलसी के पत्रों में बसती हैं॥ ७॥

(४) इन्द्र, यमराज, नैर्ऋति, वरुण, पवन और कुबेर तिसकी डाल में बसते हैं॥ ८॥

(५) सूर्यादिक सब ग्रह, विश्वदेवा, वसु, मुनि, सब देवर्षि॥ ९॥

(६) पृथ्वी में करोड़ ब्रह्माण्डों के बीच में जितने तीर्थ हैं वे सब

तुलसी के दल में जागृत होकर सदैव बसते हैं॥ १०॥

(७) जो भक्तिभाव से युक्त होकर तुलसी को सेवता है, उसने तीर्थ और ब्रह्मादि सब देवताओं का सेवन किया॥ ११॥

(८) जो मनुष्य तुलसी की जड़ में उत्पन्न तृणों के समूहों को काट डालते हैं तो उनके शरीर में स्थित ब्रह्महत्या को भी भगवान् उसी क्षण नाश कर देते हैं॥ १२॥

छिन्दन्ति तृणजालानि तुलसीमूलजानि ये।
तद्देहस्थां ब्रह्महत्यां छिनत्ति तत्क्षणाद् हरिः॥ १२॥

(९) जो अंजुली भर पानी से सींचता है, वह सब पापों से रहित होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है॥ १६॥

(१०) जो दूध से सींचता है तो निश्चय उसके घर में लक्ष्मी जी रहती हैं॥ १७॥

(११) जो मनुष्य तुलसी को प्रणाम करता है उसकी उमर, बल, यश, धन और सन्तति बढ़ती है॥ २४॥

तुलसीं प्रणमेद् यस्तु नरो भक्तिसमन्वितः।
आयुर्बलं यशो वित्तं सन्ततिस्तस्य वर्द्धते॥ २४॥

पीपल और आंवले का माहात्म्य

पद्म अध्याय १२॥

पीपल के देखने, छूने और प्रणाम करने से भगवान् देह में स्थित सब पापों का नाश करते हैं॥ ४७॥

पीपल के वृक्ष को देख कर जो प्रणाम करता है, वह श्रेष्ठ स्थान को जाता है और उसकी उमर बढ़ती है॥ ४१॥

अध्याय २४॥

(१) जिस प्रकार विष्णु जी को तुलसी प्यारी है उसी भांति सब पाप का नाश करने वाला आँवला॥ ४७॥

(२) तुलसी में जो-जो देवता स्थित हैं, वही सब आंवले में बसते हैं॥ ४८॥

(३) जहाँ आंवला है वहाँ ही गङ्गादिक तीर्थ हैं॥ ४९॥

(४) जहाँ आंवला और तुलसी नहीं होगा वह स्थान अपवित्र होता है॥

धात्री च तुलसीदेवी न तिष्ठेद् यत्र जैमिने।
स्थानं तदपवित्रं स्याद् न च क्रियाफलं लभेत्॥ ५२॥

और क्रिया का फल नहीं मिलता और सब कर्म किया हुआ निष्फल जाता है॥ ५३॥

न तिष्ठत्याश्रमे यत्र धात्री च तुलसी शुभा।
तेन कर्म कृतं सर्वं नूनं गच्छति निष्फलम्॥ ५३॥

(५) जहाँ तुलसी और आंवला नहीं वहाँ लक्ष्मी जी नहीं रहतीं और उसने सब पापों को किया, वहाँ ही सब पाप रहते हैं॥ ५४॥

धात्र्या तुलस्या हीनं च निलयं यस्य भूसुर।
अलक्ष्मीः पातकं सर्वं कलिश्च तेन तोषितः॥

मन्त्रमहिमा

शिवपुराण वायुसंहिता उत्तरार्ध अध्याय १४ में (ओं नमः शिवः) इस मन्त्र की बड़ी महिमा वर्णन की है और यह भी लिखा है कि इससे सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसके उपरान्त जो और मन्त्रों में दोष हैं वे इसमें नहीं, इसमें जाति आदि की भी अपेक्षा नहीं अर्थात् किसी जाति का क्यों न हो। जैसा कि—

ये दोषाः सर्वमन्त्राणां न तेऽस्मिन् सम्भवन्त्यपि।
अस्य मन्त्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्त्तनात्॥ ७४॥

अध्याय २३ में लिखा है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इससे न मिल सके। यह सम्पूर्ण श्रेय का साधन है, इसी से दुर्भिक्षादि की शान्ति करे—

दुर्भिक्षादिषु चात्यर्थं शान्तिं कुर्यादनेन तु॥ ३९॥

उपर्युक्त मन्त्र सात करोड़ मन्त्रों में महामन्त्र है जिसकी जिह्वा पर यह रहता है मानों उसके सब कार्य सिद्धि को प्राप्त हो गये। उसी का जीवन सफल है। नीच-अधम-मूर्ख वा पण्डित जो कोई पञ्चाक्षरी मन्त्र को जपता

है, वह पापों के पंजर से छूट जाता है।

जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्। ३६।

अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।

पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात्॥ १२.३७॥

जो दूषित, कृतघ्न, निर्दयी, दुष्टात्मा है तथा लोभी और जो कुटिलमन वाले भी मुझमें मन लगाते, भक्ति करते हैं उनको मेरी संसारभयतारिणी पञ्चाक्षरी विद्या है। हे देवी! मैंने पृथ्वीलोक में अनेक वार प्रतिज्ञा की है कि कैसा भी पतित हो, इस विद्या से मुक्त हो जाता है—

मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले।

पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया॥ १३.७॥

इस कारण, तप, यज्ञ, व्रत, नियम, पञ्चाक्षर से अर्चन करने के कोटि अंश के भी समान नहीं—

तस्मात् तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा।

पञ्चाक्षरार्च्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥ १३.१३॥

सदाचारहीन, पतित, अन्त्यज की रक्षा करने को कलियुग में पञ्चाक्षर से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है—

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च। १४.६२॥

चलते, खड़े होते अथवा स्वेच्छा से कर्म करते हुए अशुचि वा शुचि में भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता—

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्व्वतः।

अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयं च न निष्फलः॥ १४.६३॥

जो पुरुष आचार रहित है अविशुद्ध षडध्व वालों को यदि गुरु ने उपदेश न दिया हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता।

इसके विषय में **लिङ्गपुराण** और **स्कन्दपुराण** के ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय एक में बड़ी महिमा वर्णन की है, वहाँ एक इतिहास भी वर्णन किया है। मथुरा नगरी में दाशार्द नाम एक राजा था जिसका कलावती नाम एक कन्या से विवाह हुआ था। एक रात्रि को राजा ने रानी को बुलाया, उसने इनकार किया। राजा काम के वश हो रहा था, रानी को बिना इच्छा

के आलिङ्गन किया, जिसके करते ही रानी का शरीर लोहे के पिण्डे के समान जलने लगा, जिससे राजा का शरीर तप्त हो गया, इस हेतु राजा ने रानी को छोड़ दिया। उस समय रानी ने विनय की कि मुझे बालपन में दुर्वासा मुनि ने उपर्युक्त पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश किया था जिसके कारण मेरा शरीर निष्पाप हो गया, तब से मन्त्रहीन और पापी पुरुष मुझे स्पर्श नहीं कर सकते। आप रजोगुणी हैं, मदिरापान और वेश्याओं का सेवन करते हैं, स्नान, सन्ध्या, मन्त्र का जप, शिव का आराधन आप कभी नहीं करते, फिर हमारे आलिङ्गन की इच्छा क्यों करते हो? तब राजा ने कहा कि शिव के उस मन्त्र का मुझको भी उपदेश कर। रानी ने उत्तर में निवेदन किया कि स्त्री का गुरु पति होता है इसलिए मैं आपको मन्त्र का उपदेश नहीं कर सकती। इसलिए आप अपने कुलगुरु के पास चलो। दोनों गर्ग मुनि के पास गये और सब वृत्तान्त कहा। तब गर्ग मुनि दोनों को यमुना के तट पर ले गये। वहाँ एक उत्तम वृक्ष के नीचे बैठे। फिर यमुना में स्नान करा, शिवपञ्चाक्षरी मन्त्र का जप किया। उस मन्त्र के प्रभाव से गर्गमुनि के हाथ के स्पर्श से राजा के देह से करोड़ों काक जिनके पङ्ख जल रहे थे और बुरी भांति चिल्लाते हुए भूमि पर गिरने लगे और वहाँ ही भस्म होने लगे, यह देख राजा, रानी को संदेह हुआ तब मुनि ने कहा कि शिवपञ्चाक्षरी मन्त्र तेरे हृदय में जाते ही अनेक जन्मों के पाप काकरूप होकर निकले और भस्म हुए, करोड़ों ब्रह्महत्या, अगम्यागमन, सुवर्ण की चोरी, भ्रूणहत्यादि लाखों पाप जो अनेक जन्मों के इकट्ठे हो रहे थे, वे सब शैवपञ्चाक्षरी मन्त्र के धारण करने से दूर हो जाते हैं। हे राजा! ये तेरे करोड़ों जन्मों के पाप दग्ध हो गये।

इस मन्त्र के विषय में **शिवपुराण द्वितीय रुद्र संहिता** पञ्चम युद्ध काण्ड अध्याय ४९ में लिखा है कि जब महादेव जी ने शुक्राचार्य को पेट में धर लिया तब वे (ओं नमः शिवाय) को ही जप कर शिव के उदर से लिङ्गमार्ग द्वारा निकल पड़े थे—

इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शुक्रो जठरपञ्जरात्।
निष्क्रान्तो लिङ्गमार्गेण शम्भोः शुक्रमिवोत्कटम्॥ १ ॥

धर्म संहिता अध्याय ३५ में लिखा है कि यह शिव का परम मन्त्र

सम्पूर्ण अर्थ साधक है, यह परमोक्ष, परशुद्धि, परधर्म और परम विभुरूप है। इससे ब्रह्महत्यादि पाप, अगम्या में गमन करना, मद्यपान, सुवर्ण की चोरी, गर्भहत्या, गुरुभार्या में गमन करना, विश्वासी मित्र को मारना, गुरु और पिता को मारने वाला, माता, स्त्री तथा गुरुवध के जो पाप हैं, यह सब इस मन्त्रराज के स्मरण से ही भस्म हो जाते हैं।

जो सैंकड़ों, हज़ारों अद्भुत पाप हैं, वह इस षडक्षरमन्त्र को सौ वार जप कर शिव के मस्तक पर फूल धरे तो दूर होते हैं।

वह साधक करोड़ मन्त्र के अर्जन के पुण्यफल को पाता है जो तीनों सन्ध्याओं में सौ-सौ वार इस मन्त्र को यत्न से जपता है। वह संपुट अवरोहण को प्राप्त होकर फिर मृत्यु के वशीभूत नहीं होता। ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य में, बाहु, हाथ के पार्श्वभाग में, पीठ, जानु, जांघ में, गुल्फ और चरण में, सृष्टिन्यास में क्रम से देह न्यास कर इस मन्त्र को स्मरण करे वह करोड़ों जन्म के सैंकड़ों पापों से छूट जाता है। वज्र, ओले, महावर्षा, चोर और व्याघ्रादि के भय में तथा दूसरी व्याधियों में ज्वर, कुष्ठ के भय में जिनसे दुःख हो उन सब रोगों से छूट जाता है। जो इसका जप करता है, वह संग्राम में जप और अतुल सौभाग्य को पाता है—

रोगैर्विमुच्यते सर्वैर्येभ्यो दुःखमिहागतम्।
संग्रामे जयमाप्नोति सौभाग्यमतुलं भवेत्॥ ४३॥

साधक दिन रात मानसी जप करे। सब अवस्था में इसका जप करने से सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। तीनों कालों में भार्या के सहित मृत्युञ्जय यन्त्रारूढ़ होकर साधक न उपवास, न मौन, न ब्रह्मचर्य, न आस्तिकता में प्रयत्न करे किन्तु इसी मन्त्र के सहित सब कार्य में आरूढ़ हो तो सिद्ध हो जाता है—

नोपवासं न मौनं च ब्रह्मचर्यं न चास्तिकम्॥ ४५॥
सर्वकर्मप्रवृत्तस्तु सिद्ध्यत्येव न संशयः॥ ४६॥

धन के नाश न होने और नष्ट हुए के प्राप्त होने का सरल उपाय।

मत्स्यपुराण अध्याय ४३ में लिखा है कि कृतवीर्य के पुत्र का नाम

सहस्रबाहु था। जिसने अपने धनुषबाण से ही समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी को विजय कर लिया था। जो मनुष्य प्रातःकाल सहस्रबाहु राजा का नाम लेगा उसके धन का कभी नाश नहीं होगा और नष्ट हुआ धन मिला जाता है और जो कोई पवित्र होकर यथार्थरीति से इसके जन्म की कथा का वर्णन करेगा वह स्वर्गलोक को प्राप्त होगा—

यस्तस्य कीर्तयेद् नाम कल्यमुत्थाय मानवः।
न तस्य वित्तनाशः स्याद् नष्टञ्च लभते पुनः॥
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः।
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते॥ ५२॥

लक्ष्मी के मिलने, कारागार से छूटने और शत्रुओं के मारने आदि का सरल उपाय।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय २९ में लिखा है कि जिसको लक्ष्मी की इच्छा हो वह शङ्कर पर एक लाख शंखपुष्पी के पुष्पों को चढ़ावे। इतनी पूजा से कारागार से छूट जाता है और राज्य की इच्छा वाले पुरुष को पार्थिव पूजा करनी चाहिए। और दस करोड़ पुष्पों से शिव जी संतुष्ट हो जाते हैं। जिसकी प्रधान होने की इच्छा हो, पांच करोड़ से पूजा करे। रोग से मुक्त होने वाला पचास हजार और कन्या की इच्छावाला पच्चीस हज़ार से। विद्या चाहने वाला साढ़े बारह हज़ार से और शत्रु संकट होने पर दस सहस्र से और शत्रुउच्चाटन के लिए भी इतनी ही। मारन में चार लाख और मोहन में दो लाख। अधिपति के जप करने में कोटि पूजा और राजों के वशीकरण में दस सहस्र और यश के निमित्त भी प्रेम से पूजा करनी उचित है। वाहन की प्राप्ति के लिए सहस्र लिङ्ग का पूजन करना और मुक्ति की इच्छा हो तो पाँच करोड़ शिवलिङ्ग का पूजन और ज्ञान की इच्छा वाला एक करोड़ और शिवदर्शन की इच्छा वाला पचास लाख शिव का पूजन करे। आयु की इच्छा वाला दूर्वा से। पुत्र की कामना वाला धतूरे से। अगस्त के फूलों से यश और तुलसी का पूजन करे तो भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। आक के फूल की पूजा शत्रुओं को मृत्यु देने वाली है। कनेर के फूल रोगनाशक। आभूषण की इच्छा होतो दुपहरिया के फूलों से। वाहन के लिए जाई और अलसी के फूलों के पूजन से विष्णु का प्यारा

होता है। शमीपत्र से पूजे तो मुक्त होता है। चमेली के पुष्पों की पूजा करने वालों के घर में धानों का अभाव नहीं होता। कर्णिकार से पूजे तो वस्त्रों की सम्पत्ति और निर्गुण्डी के फूलों से पूजन करने से निर्मल मन होता है। तिल के फूल चढ़ाने से मुक्ति, काली राई के फूल शत्रुओं को मारने वाले हैं।

धर्मसंहिता अध्याय २८ में लिखा है कि जिस प्रकार दही में घृत, पर्वतों में हिमालय इसी भांति यह सब स्तोत्रों का स्तवराज है। जो कोई शिव के एक सहस्र और आठ नाम का पाठ करता है उसको परमसिद्धि मिलती है।

धान्य फल

चावल चढ़ाने से लक्ष्मी। एक लक्ष तिल चढ़ाने से हित होता है। यव पूजा से स्वर्गसुख बढ़ता है। लक्ष गेहूँ चढ़ाने से सन्तान बढ़ती है। मूंग से पूजन करने से सुख, लक्ष उर्द से पूजन करे तो रोग नाश होता है। शत्रु के मारने के निमित्त एक लाख राई और एक लाख सरसों से शत्रु की मृत्यु होती है, मिरच से भी शत्रु का नाश होता है।

धारा फल

जलधारा ज्वरशान्ताय, सन्तान के लिए घृतधारा, इसी से प्रमेह रोग की शान्ति होती है। नपुंसकरोग भी जाता है। बुद्धि की जड़ता के दूर करने के लिए दुग्धधारा। शत्रुओं को दु:ख देने के निमित्त तैलधारा। सुगन्धित तैलधारा से भोग की वृद्धि होती है। सरसों के तैल की धारा से शत्रु का नाश हो जाता है। शहत की धारा राजयक्ष्मा रोग नाश करती है। गन्ने के रस की धारा सब दु:खों के हरने वाली है। गङ्गाजल की धारा से मुक्ति मिलती है।

पद्मपुराण सप्तम क्रियायोगसार अध्याय १२ से विष्णु भगवान् की फूलों से पूजा का फल

जो पुरुष चैत्र में टेसू के फूलों से पूजा करता है, उसका यमराज नाम नहीं लेता। तिल के फूलों से पूजा करने वाले का पृथ्वी में फिर जन्म नहीं होता। अशोक के फूलों से पूजा करने वाला आपदा में नहीं पड़ता। जो

शाण्डिल्या के अखण्ड पत्रों और धतूरा और मदार के फूलों से पूजन करता है, वह संसाररूपी समुद्र से पार हो जाता है। जो विष्णु को उत्तम केले के फल देता है, उसकी इन्द्रादिक सब देवता, दिनरात वन्दना करते हैं। गोपालरूपी विष्णु को जो चैत्र के महीने में गेहूँ का पिष्टक देता है, वह सब पापों से छूट जाता है। जो वैशाख में यव-अन्न को देता है, उसका फल कोई पण्डित नहीं कह सकता क्योंकि इसका फल नाशरहित है। जो कार्त्तिक में कमल के पत्तों से नहीं पूजता, उसके जन्म-जन्म में लक्ष्मी घर में स्थित नहीं रहती। जो कमल के बीज भेंट करता है, वह प्रत्येक जन्म में शुद्ध ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न होता है फिर वह चारों वेदों का मित्र, धनवान्, बहुत पुत्र वाला, कुटुम्बों का पालन करने वाला होता है। जैमिनि कमल के फूल के समान फूल नहीं है जिससे गोविन्द जी का पूजन कर पापी भी मोक्ष पाता है। जो एक ही कमल भगवान् को देता है उसका भयदायक संसार में जन्म नहीं होता।

चम्पा के फूलों का फल।

जितने चम्पा के फूल भगवान् को दिये जाते हैं, उतने हज़ार युग देनेवाला विष्णु जी के मन्दिर में स्थित होता है।

सुमेरु पर्वत के समान सोना देकर जो फल होता है, वह एक ही चम्पा के फूल से भगवान् का पूजन कर होता है।

जिसने चम्पा के फूलों से विष्णु जी का आराधन नहीं किया वह रत्न और सुवर्ण आदि से जन्म-जन्म में हीन होता है।

पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय ३ में लिखा है कि अगस्त के फूलों से जो पूजन करता है, वह देवताओं के दुर्लभ मोक्ष को पाता है। जो घी से युक्त सुन्दर रस को भगवान् को देता है, वह सब पापों से छूट भगवान् के स्थान को जाता है। जो कार्त्तिक में आकाश में दीप देता है, वह ब्रह्महत्यादिक पापों से छूट जाता है।

इतिहास।

एक समय में एक ब्राह्मण हरि जी को घी से पूर्ण दीपक दे घर को गया, वहाँ घी खाने के लिए एक मूसा आया, जब तक वह खाने का आरम्भ करना चाहता था, तब दीपक अधिक जलने लगा। तब अग्नि के

डर के कारण वह भागा भगवान् की कृपा से उसके सब पाप नष्ट हो गये। फिर सांपने खा लिया, वह मर गया। यम के दूत आये और यमपुर ले जाना चाहते थे, इतने में विष्णु के दूत आये उन्होंने कहा कि इसको छोड़ दो, यह विष्णुलोक जाएगा। तब उन दूतों ने पूछा कौन पुण्य है ? यह तो महापापी है तब विष्णु के दूतों ने कहा कि इसने वासुदेव के आगे दीपक को प्रज्वलित किया है, उसी पुण्य से विष्णुलोक को लिए जाते हैं। जो बिना इच्छा के भी विष्णु के दीपक को प्रज्वलित करता है, वह करोड़ जन्मों के इकट्ठे किये पापों को छोड़कर भगवान् के स्थान को जाता है। जो भक्ति से कार्त्तिक के दिनों में भगवान् को दीप देता है, उसके पुण्य को हरि के बिना कोई नहीं कह सकता। यह सुनकर यमराजदूत चले गये।

सर्वहत्यामोक्षप्रायश्चित्त।

लिङ्गपुराण अध्याय १५ में कहा है कि **अघोरेभ्यो घोरेभ्यः** इत्यादि हमारा यह मन्त्र एक लाख जपने से ब्रह्महत्या दूर होती है। उसमें आधा जप करने से वाचिक पाप, उससे आधा मानस और चारगुणा करने से क्रोध करके किये सब पातक, उपपातक दूर होते हैं। जप करने से मातृहत्या दूर होती है। गौ हत्या, कृतघ्नता, स्त्रीघातक और भी अनेक पापों से युक्त मनुष्य दश-हज़ार जप करने से निष्पाप हो जाते हैं—

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च स्त्रीघ्नः पापयुतो नरः। ९।
आयुता घोरमभ्यस्य मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

पैष्टी सुरा पीनेवाला लक्ष जप करने से। वारुणी पीनेवाला पचास हज़ार जप कर और बिना स्नान किये भोजन करने वाला भी एक सहस्र जप करके शुद्ध होता है। ब्राह्मण का धन हरने वाला, सुर्वण चुराने वाला, दस लक्ष जप करके शुद्ध होता है। गुरु की स्त्री से गमन करने वाला, ब्राह्मण का वध करने वाला भी दस लक्ष में और पापी पुरुषों के संसर्ग से जो पाप होते हैं, वह पाप दस हज़ार के जप से जाते हैं—

गुरुतल्परतो वापि मातृघ्नो वै नराधमः ॥ १३ ॥
ब्रह्मघ्नश्च जयेदेवं मानसं वै पितामह।
सम्पर्कात् पापिनां पापं तत्समं परिभाषितम् ॥ १४ ॥

तथाप्ययुतमात्रेण पातकाद् वै प्रमुच्यते।

बड़े पातक की निवृत्ति के लिए लक्ष अथवा चार लक्ष वा आठ लक्ष वाचिक जप। महापातक से आधा जप। उपपातक दूर करने के अर्थ और बिना जाने किये पाप दूर होने को उपपातक के जप से आधा जप करे—

संसर्गात् पातकी लक्षं जपेद् वै मानसं धिया॥ १५॥
उपांशुमच्चतुर्द्धा वै वाचिकञ्चाष्टधा जपेत्।
पातकादर्द्धमेव स्यादुपपातकिनां स्मृतम्॥ १६॥
तदर्द्धं केवले पापे नात्र कार्य्या विचारणा॥ १७॥

राजा को छोड़कर अन्य शत्रुओं पर विजय पाने का उपाय।

लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय पचास में लिखा है कि कोई मनुष्य जब अपने मारने को आवे तो उसके लिए यह विधान करना चाहिए, ब्राह्मण पर यह प्रयोग कभी न करे। जब शत्रु अपने को दबा ले और अधर्म युद्ध होने लगे, तब राजा इस विधान को करावे तो बहुत शीघ्र शत्रुनिग्रह हो जाय। परन्तु इस प्रयोग को कूर-स्वभाव अर्थात् दयाहीन, ब्राह्मण द्वारा करावे। प्रयोग करने वाला ब्राह्मण प्रथम एक लाख जप अघोर मन्त्र का कर तिलों का दशांश हवन करे और अघोर मन्त्र करके एक लक्ष श्वेत पुष्प भी महादेव पर चढ़ावे, तब उसको मन्त्रसिद्धि होती है, उसका किया विधान भी सफल होता है। वाणलिङ्ग अग्नि अथवा दक्षिणमूर्त्ति शिव पर लवपुष्प अर्पण करे इस प्रकार सिद्धमन्त्र और शिवभक्त ब्राह्मण प्रेतस्थान में अथवा मातृका स्थान में बैठे अपने राजा के कल्याण के अर्थ इस विधि को करे। पूर्व से ईशान पर्यन्त आठों दिशाओं में आठ त्रिशूल गाड़कर अति भयङ्कर वेष धार मध्य में बैठे और सबके नाश करनेहारे अघोर परमेश्वर का ध्यान करे और अपने रूप को भी करोड़ प्रलयाग्नि के समान प्रकाशमान ध्यावे और अघोर परमेश्वर की आठों भुजाओं में त्रिशूल, कपाल, पाश, दण्ड, धनुष, बाण, डमरू और खड्ग का ध्यान करे और यह भी ध्यावे कि जिनका कण्ठ नील-वर्ण दृष्टि अतिक्रूर, मुख बड़ी दंष्ट्राओं से अति भयानक, तीन नेत्र, हुँ फटकार के शब्द से दशों दिशाएं भर रही हैं, नाग

पाश करके मुकुट बांध रखता है वृश्चिक और सर्पों के भूषण पहिने हैं, नीलांजन के पर्वत के समान जिनका वर्ण, चिता की भस्म शरीर पर लपेट, सिंह का चर्म ओढ़े, हाथी का चर्म पहिने, भूत, प्रेत, पिशाच और डाकिनियों से चारों ओर वेष्टित है, इस भांति अति भयङ्कर अघोर परमेश्वर का ध्यान कर छत्तीस मात्र करके प्राणायाम करे और महामुद्रा बांध सब कर्म करे। प्रेतस्थान में पूर्वदिशा चारों दिशा और मध्य में पांच कुण्ड बनवाय चिताग्नि का स्थापन करे। मध्य के कुण्ड में सिद्धमन्त्र आचार्य्य और दिशाओं के कुण्डों पर चार साधक हवन करने बैठें और त्रिशूल चारों और गाड़ लेवें। बत्तीस अक्षरों से युक्त अघोर परमेश्वर का ध्यान कर बहेड़े के काष्ठ की द्वादशाङ्गुल प्रमाण राजा के शत्रु की मूर्त्ति बनाय कुण्ड के नीचे उस मूर्त्ति को अति क्रोध से गाड़े उस मूर्त्ति का सिर नीचे और पाद ऊपर करे। तुषों सहित चिता की अग्नि को कुण्डों में स्थापन कर प्रज्वलित करे और सर्प चुम्बक, तुष, कर्पास के बीज एक रक्त और तेल का हवन करे परन्तु तैल अपने हाथ से बना लेवे, कृष्ण-चतुर्दशी से अष्टमी पर्य्यन्त नित्य अष्टोत्तर शत हवन प्रज्वलित अग्नि में करे। इस विधि के करने से राजा के सब शत्रु सकुटुम्ब यमलोक को जाते हैं। इसी मन्त्र से मनुष्यों का कपाल लेकर उसमें मनुष्यों के नख, केश, अङ्गार, सर्पका केचुक, तुष, पुराने वस्तु का टुकड़ा, राजमार्ग की धूल, घर में झाड़ू की धूल, विषयुक्त के दाँत, वृष के दान्त, गौ के दान्त, व्याघ्र के नख और दान्त और विडाल, नकुल और कृष्णमृग के दान्त और शूकर की दंष्ट्रा स्थापन कर एक सौ आठ बार अघोर-मन्त्र से कपाल का अभिमन्त्रण कर मृतक के वस्तु से वेष्टित करे और जब शत्रु को अष्टम सूर्य्य अथवा अष्टम चन्द्र आवे तब उस कपाल को शत्रु के देश, नगर, घर, क्षेत्र अथवा श्मशान में गड़वा देवे तो उस स्थान और परिवार सहित शत्रु का नाश हो जाय। राजा जिस समय युद्ध में जाने लगे उस समय आचार्य्य राजा के शत्रु की मूर्त्ति को अति उत्तम भूमि पर लिख, वितान, तोरण, दर्भमाला आदि से उस स्थान को शोभित करे। पीछे अघोर मन्त्र पढ़ अपने दहिने चरण से शत्रु की प्रतिमा के मस्तक में क्रोध से ताड़न करे। इस विधि के करने से राजा के शत्रु का नाश हो जाता है। परन्तु जो दुर्बुद्धि ब्राह्मण क्रोध से अपने देश के राजा पर यह अभिचार कर्म करे वह अपना और कुटुम्ब का नाश करता है इस कारण मन्त्र

ओषधि आदि से अपने देश के राजा की भली भांति रक्षा करे।

अग्नि पुराण के अध्याय १४२ में युद्ध विजय के अर्थ लिखा है कि निम्नलिखित मन्त्र के जप करने से विजय होती है, शस्त्र चलाने की आवश्यकता नहीं, किन्तु मन्त्र द्वारा ही सिद्धि हो जाती है।

"ओं नमो भगवति! वज्रशृङ्खले! हन हन ओं भक्ष भक्ष ओं खाद खाद ओम् अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि! रक्तपटे! भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे ? वज्रप्राकारनिचिते! पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध ओम् उत्तरां दिशं बन्ध बन्ध, ओं दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध ओं पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध ओं नागान् बन्ध बन्ध नागपत्नीर्बन्ध बन्ध ओम् असुरान् बन्ध बन्ध ओं यक्षराक्षसपिशाचान् बन्ध बन्ध ओं प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष ओम् ऊर्ध्वं रक्ष रक्ष अधो अधो क्षुरिकं बन्ध बन्ध ओं ज्वल महाबले! घटि घटि ओं मोटि मोटि सटावलि वज्राग्नि वज्रप्राकारे! हुं फट् ह्रीं ह्रूं श्री फट् ह्रीं हः फूंफें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीम् अशेषेभ्यो रक्ष रक्ष॥ २०॥"

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८० में लिखा है कि बहुत मन्त्र और बहुत व्रतों से क्या है (**ॐ नमो नारायणाय**) यह मन्त्र सब अर्थों का साधन करने वाला है—

किं तेन मन्त्रैर्बहुभिः किं तेन बहुभिर्व्रतैः।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ १०३॥

पद्मपुराण सप्तम क्रियायोगसार अध्याय १५ में लिखा है कि राम ये दो अक्षर सब मन्त्रों से अधिक हैं, जिनके उच्चारण मात्र ही से पापी श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है—

रामेत्यक्षरयुग्मं हि सर्वमन्त्राधिकं द्विज।
यदुच्चारणमात्रेण पापी याति परां गतिम्॥ ८८॥

चतुर्थ पातालखण्ड अध्याय ८० में लिखा है कि नाना प्रकार के अपराधों से युक्त भी प्राणी हो उसको चाहिए कि राम, कृष्णादि नामों का स्मरण करता रहे क्योंकि कलियुग में तरने के दो उपाय मुख्य हैं—एक

गङ्गा स्नान करना व दूसरा हरि का नाम लेना। क्योंकि हज़ारों हत्यायें, सहस्त्रों उग्र पाप व कोटि गुरु की स्त्रियों के सङ्ग सम्भोग, चोरी करना ऐसे ही और भी बड़े-छोटे पाप भी हरि के प्रियगोविन्द इस नाम से दूर हो जाते हैं—

हत्यायुतं पापसहस्त्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणं च।
स्तेयान्यथान्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना न च सन्ति भद्रे॥ ११॥

अध्याय ८७ में लिखा है कि गोविन्द का नाम व्याज से भी निकले तो निस्संदेह पापों को भस्म कर देता है। दश सहस्त्र हत्या व सहस्त्र बड़े पाप व एक नहीं कोटि गुरु-स्त्रियों के सङ्ग भोग करना, अनेक प्रकार की चोरियाँ गोविन्द के प्रिय नाम के उच्चारण से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं॥ २३॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १३२ में लिखा है कि अजामिल अपने धर्म को छोड़ कर पाप ही करता था परन्तु अन्त समय में नारायण पुत्र को स्मरण कर निश्चय मुक्ति को प्राप्त हो गया॥ ४३॥

स्तोत्र-माहात्म्य।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७१ में लिखा है कि एक समय नारद मुनि ब्रह्मा के दर्शन के लिए मेरु पर्वत पर गये और उनसे कहा कि नाशरहित भगवान् के नाम की महिमा वर्णन कीजिए। तब ब्रह्मा ने कहा कि सब को झूठ जान कर हरि के नाम जपे तो सब पापों से छूट विष्णुपद को प्राप्त हो जाता है—

मिथ्या ज्ञात्वा ततः सर्वं हरेर्नाम पठन् जपन्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥ ११॥

नाम उच्चारण से भारी पाप छूट जाते हैं। जो राम-राम यह वारंवार कहे तो चाण्डाल भी हो तो निस्संदेह पवित्रात्मा हो जावे—

स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नाऽत्र संशयः॥ २१॥

कुरुक्षेत्र, काशी, गया, द्वारिका ये सब तीर्थ नाम के उच्चारण मात्र से ही उसने कर लिए और जो कृष्ण-कृष्ण यह जपे वा पढ़े तो इस लोक को छोड़ कर वह विष्णु जी के समीप आनन्द करे और आनन्द से नृसिंह यह सदैव जपे वा पढ़े तो कलियुग में वह भगवान् का भक्त मनुष्य महापापों से

छूट जावे। कृतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा करने से जो फल मिलता है, वही कलियुग में नाम लेने से। इसी प्रकार मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की दश अवतार इनके नाम मात्र लेने से सदा ब्राह्मण का मारने वाला शुद्ध हो जाता है और सवेरे विष्णु का नाम जपने से निस्संदेह वह नारायण ही हो जाता है—

प्रातः पठन् जपन् ध्यायन् विष्णोर्नाम यथा तथा।
मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत्॥ २८॥

इससे अधिक मैं नहीं जानता जो अधिक सुनने की इच्छा हो तो कैलाश पर जाओ जो सब भक्तों में विष्णु के श्रेष्ठ भक्त हैं। नारद वहाँ गये, दण्डवत् कर पास बैठे तो उन्होंने कहा कि कलियुग में मनुष्य थोड़ी उमर होकर अधर्म में नित्य रत रहते हैं। नाम में उनकी निष्ठा नहीं होती। ब्राह्मण पाखण्डी अधर्म में सदा रत, सन्ध्या से हीन, व्रतों से भ्रष्ट, दुष्ट मलिन रूप रहते हैं। नहीं जानते क्षत्री, वैश्य, शूद्र द्विजों से बाहर हैं जो कलियुग में धर्म-अधर्म को नहीं जानते इसलिए नाम का माहात्म्य आपसे सुनने को आया हूं। यह सुन प्रसन्न हो महादेव जी बोले कि विष्णु के हज़ार नाम गोप्य हैं, जिसको सुन मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं। हे नारद! एक वार पार्वती जी ने पूछा था कि तुम क्या जपते हो? भस्म रमाए, जटा रखाए, मृगछाला बिछाये क्यों रहते हो? तुम सब देवों के देव हमारे स्वामी संसार के नाथ हो। उस समय जो कुछ पार्वती से कहा था, वही कहता हूं, महादेव बोले। वह साक्षात् पिता सदा के बन्धु भगवान् हैं, हम सदा भक्त वे हमारे स्वामी हैं। फिर वह विष्णु के सहस्त्र नाम सुनकर नैमिषारण्य तीर्थ पर गये, जहाँ बहुत से ऋषि थे, उन सबने आदर सत्कार कर कहा कि तुम्हारे प्रताप से हमने पुराण सुने, अब बताइए कि सब पापों का किस भांति नाश हो—

त्वत्प्रसादाच्च देवेश! पुराणानि श्रुतानि च।
ब्रह्मन् केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ८२॥

दान, तपस्या, तीर्थ, तप, यज्ञ, ध्यान, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रसमूहों के बिना कैसे मुक्ति मिले—

विना दानेन तपसा विना तीर्थतपोमखैः।

विना दानैर्विना ध्यानैर्विना चेन्द्रियनिग्रहैः ॥
विना शास्त्रसमूहैश्च कथं मुक्तिरवाप्यते ॥ ८३ ॥

तब नारद जी ने उपर्युक्त वृत्तान्त सब कहा तब महादेव जी ने पार्वती से कहा कि वेद, पुराण के जानने वाले, काशी आदि तीर्थों में स्नान करने वाले, गया श्राद्ध, जप, तप, यम, नियम, गुरुकी सेवा, वर्णाश्रम मुक्त से धर्म ज्ञान आदि करोड़ों जन्म के उत्तम चरित्रों से विष्णु सब ईश्वरों के ईश्वर, पुराण पुरुषोत्तम सब भावों से आश्रित होकर श्रेष्ठ कल्याण को न प्राप्त होते थे और न मुझे तो भला मुझसा योगी, ज्ञान, वैराग से रहित, ब्रह्मचर्य्य सेवन, सब धर्मों को त्यागे हुए केवल विष्णु जी के नाममात्र के कहने वाले जिस गति को सुख से प्राप्त होते हैं उस को सब धर्म करने वाले नहीं प्राप्त होते—

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपे।
ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः ॥ ९८ ॥
सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पिनः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ॥ ९९ ॥

इतना कहकर महादेव जी ने मुख्य विष्णु महाराज के सहस्र नामों का वर्णन किया।

अध्याय ७२ में लिखा है कि जम्बू द्वीप में पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं वे सब तीर्थ विष्णु जी के सहस्र नाम में है॥

गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, सरस्वती नदी और सब तीर्थ वहीं पर वास करते हैं जहाँ पर विष्णु जी का सहस्र नाम स्थित है॥ १० ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २० में लिखा है कि जिस स्तोत्र से राजा दशरथ ने शनैश्चर की स्तुति की, उस स्तोत्र को जो मनुष्य एक या दो वार पढ़ेगा, वह क्षण भर में पीड़ा से छूट जावेगा।

देवता-असुर-मनुष्य, सिद्ध विद्याधर राक्षस इनके जन्म बारहवें, चौथे और आठवें स्थान में मैं प्राप्त हूंगा तो मृत्यु को दूङ्गा॥ ४२ ॥

परन्तु जो फिर श्रद्धा से युक्त पवित्र और एकाग्रचित्त होकर शमी के पत्रों से लोहे की दूसरी मूर्त्ति को पूजन कर उरद, तिल, लोहा, दक्षिणा

सहित काली गौ और बैल को ब्राह्मण को विशेष कर शनैश्चर के दिन ही में दे और स्तोत्र से पूजन जप करे तिनको मैं कभी पीड़ा नहीं करता॥ ४६ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७८ में अपामार्जन स्तोत्र का वर्णन है जिसके लिए ७९ अध्याय में बहुत कुछ महिमा वर्णन की है। उसी में लिखा है कि यह स्तोत्र रोग और ग्रहों से पीड़ित बालकों को शान्ति देने वाला है। इसके पढ़ने से भूत ग्रह विषनाश हो जाता है।

वामनपुराण ४८ में वेनस्तोत्र वर्णन किया है। इसके विषय में लिखा है कि जिस प्रकार सब देवताओं में महादेव श्रेष्ठ हैं उसी भांति सब स्तोत्रों में वेनस्तोत्र है, जो यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन, मान, अर्थ और विद्या का देने वाला है। रोग से दु:खित दीन, चोर और राजा के भय से छूट जाते हैं और इसी स्तोत्र के प्रभाव से इसी देह करके श्रेष्ठ वर्ण को प्राप्त हो जाता है—

यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्छिवः ॥ ८ ॥
तथास्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां वेननिर्मितः ॥ ९ ॥
राजकार्यविमुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्।
अनेनैव तु देहेन वर्णानां श्रेष्ठतां व्रजेत्॥ ११ ॥

इस स्तोत्र के प्रताप से मन और वाणी से किये पाप सब नष्ट हो जाते हैं॥ १६ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७३ में लिखा है कि जो रामरक्षा स्तोत्र का पाठ करते हैं, वे पुण्यभागी होते हैं।

अध्याय ७६ में लिखा है कि आभ्युदयिक और और्ध्वदैहिक स्तोत्र का पाठ करते हैं तो ब्राह्मण का मारने वाला भी पाप से छूट जाता है।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १५८ में लिखा है कि जो कोई आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्राक्ष और पूषण इस प्रकार के इन बारह सूर्यों के नामों को जो बुद्धिमान् मनुष्य पढ़ता है वह धन, पुत्र और पौत्रों को प्राप्त होता है और जो एक-एक नाम का आश्रय कर जो मनुष्य पृथ्वी में पूजन करता है वह सात जन्म तक धन से युक्त और वेद का पारगामी ब्राह्मण

होता है। क्षत्रिय राज्य को, बनियाँ धन को और शूद्र भक्ति को प्राप्त होता है इससे इस श्रेष्ठ सूक्त का जपना योग्य है—

एकैकं नाम आश्रित्य योऽर्चयेत नरो भुवि।

सप्तजन्म भवेद् विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥ १२॥

क्षत्रियो लभते राज्यं वैश्योत धनमवाप्नुयात्।

शूद्रो वै लभते भक्तिं तस्मात् सूक्तं परं जपेत्॥ १३॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय ३ में कृष्णस्तोत्र के विषय में लिखा है कि जो उपर्युक्त स्तोत्र को तीनों सन्ध्याओं में पढ़ता व सुनता है उसके पाप का नाश हो जाता है और पुत्रार्थी को पुत्र, भार्य्यार्थी को भार्य्या, जिसका राज्य जाता रहा हो उसको राज्य, धन जिसका नष्ट हुआ हो उसको धन, विपत्तियों से ग्रस्त को छुटकारा और रोगी को निरोगता तथा कैदी को नियमपूर्वक एक वर्ष तक सुनने से छुटकारा मिलता है—

नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।

त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते॥ १५॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्।

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत्॥ ४.४९॥

कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेण मुच्यते ध्रुवम्।

रोगात् प्रमुच्यते रोगी वर्षं श्रुत्वा तु संयतः॥ १७॥

प्रिय पण्डित जी! आपने सुना कि मन्दिर बनवाने, प्रतिमाप्रतिष्ठा कराने, प्रणाम करने, चरणामृत पीने, घृत-मधु आदि से स्नान कराने, पूजन करने, तुलसी, पीपल, आंवले इत्यादि के दर्शन करने से बड़े-बड़े पाप अर्थात् ब्राह्मणों का द्रव्य चुराना, मित्रों का नाश करना, झूठ बोलना, पराई स्त्रियों के साथ रति करना, मदिरा पीना इत्यादि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मन्त्र जपने और नाना प्रकार के फूल चढ़ाने, स्तोत्र पाठ करने से राज्य, धन, आयु इत्यादि कार्यों की सिद्धि होती है। फिर क्या कारण है कि भारत प्रतिदिन गिरता चला जाता है। इसके उपरान्त प्राचीनकाल में भी यह पुराण उपस्थित न थे और यदि थे तो बड़े-बड़े पापियों को आधीन करने के लिए देवताओं ने क्यों नहीं **अघोरेभ्यो०** इत्यादि मन्त्रों

और स्तोत्रों को पढ़ अपने कार्य्य की सिद्धि की? रावण और कंस इत्यादि के मारने के लिए श्रीराम और श्रीकृष्ण महाराज को क्यों जन्म लेना पड़ा? अमृत का घड़ा दैत्यों से लेने के लिए मोहिनीरूप धरना पड़ा? मैं कहाँ तक आपको बताऊं जब-जब देवतों पर पीड़ पड़ी तब-तब ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि के पास गये जिन्होंने उनके नाना प्रकार से काम किये जो पुराणों से प्रकट हैं फिर मन्त्र, स्तोत्र कहाँ रहे? इसके उपरान्त नानारोग मन्त्रों के जप से जाते रहते हैं तो परमात्मा ने औषधियों को क्यों बनवाया? लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर श्रीरामचन्द्र जी ने सुषेण हकीम को क्यों बुलाया? हनुमान जी को औषधि लेने को क्यों भेजा? जब बड़े-बड़े पाप मूर्त्तिपूजादि से ही जाते हैं तो फिर पुराणों में धर्मपालन के लिए क्यों शिक्षा है? श्रीकृष्ण और श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने धर्म के दश लक्षणों और योगादि की क्यों महिमा की? सदाचारादि के गुण क्यों गाए? इसके अतिरिक्त यदि विजय इन ही मन्त्रों इत्यादि बातों से प्राप्त होती थी तो राजा दशरथ इत्यादि ने पुत्रेष्टि यज्ञ क्यों किये? और धन की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ और व्यापार इत्यादि की क्या आवश्यकता? शत्रुओं पर विजय पाने के लिए श्रीराम जी ने लङ्का पर क्यों चढ़ाई की? महाभारत का घोर संग्राम क्यों हुआ? श्रीकृष्ण महाराज जरासन्ध के सम्मुख से क्यों भागे। सच तो यह है कि इन्हीं लटकों ने भारतवासियों को तमाम कर दिया। वेदों में उपदेश है कि विद्या और ब्रह्मचर्य्य तथा योगाभ्यास से शरीर और आत्मा के बल की वृद्धि कर याथातथ्य का विचार और उत्तम सत्सङ्ग में रह धर्म के दशों अङ्गों का पालन कर, पुरुषार्थ द्वारा धनादि पदार्थों का संग्रह करें।

जो पुरुष मन, वचन, कर्म से कभी भी किसी प्रकार के पाप करने की इच्छा नहीं करता, उसी को सर्व प्रकार के सुख और आनन्द मिलते हैं। जैसा कि **यजुर्वेद** अध्याय ४० में कहा है—

असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ ३॥

जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से निष्कपट हो उत्तम आचरण करते हैं वे ही देव और आर्य हैं। वही जगत् को पवित्र करते हुए अतुल सुखों को भोगते हैं और जो इसके विपरीत कार्य्य करते हैं वे ही असुर, राक्षस, पिशाचादि हैं वह कभी अविद्यारूपी सागर से पार हो आनन्द नहीं प्राप्त कर

सकते।

इसलिए पुराणों में भी लिखा है कि बिना धर्म के कोई कार्य सिद्ध नहीं होता और यजन, तप, दान, इन्द्रियों का दमन, क्षमा, ब्रह्मचर्य्य, साधुओं का सङ्ग, उनकी सेवा, गुरुओं की टहल यह धर्म के द्वार हैं जैसा कि **मत्स्यपुराण** अध्याय २११ वा २१२ में लिखा है।

वामनपुराण अध्याय १४ में लिखा है कि अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, दान, क्षमा, इन्द्रियों का दमन, शान्ति, कृपणता, शौच, तप, इन दश लक्षणों से युक्त धर्म का सबको सेवन करना चाहिए।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १६ अध्याय में लिखा है कि यथार्थ बोलना, शुद्ध रहना, अन्य का दुःख सहन करना, क्रोध को रोकना, धन का देना, आनन्द से रहना, टेढ़ा न बोलना, मन को निश्चल रखना, बाह्य इन्द्रियों को रोकना, स्वधर्म का त्याग न करना, सब में समदृष्टि का रखना, हानि-लाभ में उदासीन रहना, सत्शास्त्रों का विचार करना, ईश्वर को मानना अर्थात् नास्तिक न होना, तृष्णा का त्याग, संग्राम में उत्साह, प्रभाव, चतुराई, स्मरण, स्वतन्त्र रहना, क्रिया करने में चतुर, स्वच्छ रहना, व्याकुल न होना, निष्ठुर न होना, बुद्धि का प्रकाश, विजयी रहना, उत्तम स्वभाव, सहनशक्ति, पराक्रम, देह में बल, गम्भीर रहना, चञ्चल न होना, सब में श्रद्धा, यशकार्यों को करना, सम्मान योग्य कार्यों को करना, घमण्ड न करना, यह गुण और भी महागुण महत्त्व की इच्छा रखने वालों को करने योग्य हैं। और स्कन्ध ११ अध्याय १९ में कहा है कि हिंसा न करना, सत्यबोलना, मन से भी पराई वस्तु की चोरी न करना, किसी वस्तु पर आसक्त न होना, लज्जा, धर्म में विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा, अभय यह बारह संयम, शौच, जप, होम, श्रद्धा, अतिथिसेवा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष और आचार्य की सेवा इन नियमों का नित्य सेवन करे तो सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। जैसा कि—

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम्॥ ३३॥
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम्॥ ३४॥

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि॥ ३५॥

पद्मपुराण पाताखण्ड अध्याय ८४ में लिखा है कि जो मनुष्य भक्ति से परमात्मा की पूजा करते हैं वह मन, वचन और कर्म से अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य, शुद्धता, स्वल्प भोजन करना, वेदों का पढ़ना, चुगली न करना आदि उत्तम व्रतों को धारण करते हैं, उन्हीं को पुत्र, स्त्री, दीर्घायु, बल, राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और अनेकानेक वाञ्छित पदार्थ मिलते हैं।

श्रीमान् अब आप पर प्रकट हो गया कि उपर्युक्त लेख स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ साधन के अर्थ लिखे हैं। इसलिए इन पर विचार कर वेदोक्त विधि से परमात्मा का ध्यान कीजिए। पुराणों में जहाँ तहाँ यह भी लिखा है कि हे धरणी! हम पापात्मा पुरुषों की की हुई पूजा को ग्रहण नहीं करते।

पण्डितजी—बस सेठ जी! अब इस विषय को समाप्त कीजिए। हमने इतने में ही जान लिया।

सेठ जी—बहुत अच्छा, ओ३म् शम्।

पण्डित जी आदि सब महाशय चल दिए।

सेठ जी ने सब महाशयों को नमस्ते की।

पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया। अन्य सब महाशयों ने यथायोग्य कहा। सेठ जी भी अपने गृह को चले गये।

॥ इति सप्तम परिच्छेद ॥

यदि आप यह मानें कि यह पुराण वेद के भ्रम को सुधारने वाला है तो यह पुराण निर्भ्रान्त रहा और वेद जो ईश्वरीय ज्ञान है भ्रान्त वाला रहा तो फिर परमात्मा का पूर्णज्ञानी होना भी नहीं बनता, इधर यह लेख कि पुराण वेदानुकूल बनाये गये हैं तो फिर यदि वेदों में भ्रम है तो क्या फिर पुराण भ्रमरहित हो सकते हैं? —पृष्ठ ५२

अष्टम परिच्छेद

अवतार-प्रकरण

आर्य सेठ ने नियत समय के व्यतीत होने पर और अन्य महाशयगणों में से बहुधा जनों के आ जाने पर कहा कि आज श्रीमान् पण्डित जी अभी तक नहीं पधारे, क्या कारण?

अन्य सज्जन महाशय—सेठ जी साहिब! कोई ऐसा ही कारण आ गया होगा, वरन आज श्रीमान् कदापि न रुकते क्योंकि पण्डित जी कल मार्ग में कहते थे कि पुराणों में कैसी-कैसी बातें लिखी हैं जो बुद्धि में नहीं आतीं अब हमको अवतार विषय सुनने की बड़ी रुचि है इसलिए मैं कल शीघ्र आऊंगा, आप सब सज्जन महाशय भी नियत समय पर अवश्य आ जावें जिससे फिर कथा के आरम्भ में विलम्ब न हो।

लाला जानकीप्रसाद सेठ पधारे और यथायोग्य के पश्चात् कहा कि श्रीमान् पण्डित जी की माता जी के सिर में दर्द होता है इससे वह कुछ विलम्ब से आयेंगे।

अन्य महाशय इधर-उधर की बातें करने लगे। आधा घण्टा व्यतीत होने के पश्चात् श्रीमान् पण्डित जी पधारे।

सेठ जी और अन्य सभ्य महाश्यों ने यथायोग्य कहा, पण्डित जी ने सब सज्जनों को आशीर्वाद दिया और विराजमान हुए।

पण्डित जी ने कहा कि मेरी माता जी के शिर में पीड़ा हो जाने के कारण मुझको विलम्ब हो गया इसलिए आप क्षमा करें और सेठ जी अब आप अवतार विषय में जो कुछ कहना चाहें संक्षेप में कहिए।

सेठ जी और महाशय—आपकी माता जी की पीड़ा परमेश्वर दूर कर आनन्द देंगे।

सेठ जी—जो आपकी आज्ञा है, मैं उसी का पालन करूंगा।

श्रीमान्! परमात्मा न कभी कर्म करता है, न जन्म लेता है, फिर उसकी पूजा कहाँ! इस पर भी आपका वही विश्वास है तो सुन लीजिए।

पुराण एक स्वर होकर कह रहे हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब भगवान् हरि आत्मा को प्रकट करते हैं।

जैसा **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ९ अध्याय २४ में लिखा है—

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥ ५६॥

ऐसा ही **मार्कण्डेय पुराण** अध्याय ४ में लिखा है।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय ३७ में नारद जी ने कहा है कि राक्षसों के नाश के लिए धर्ममर्यादा की रक्षा के लिए अवतार लिया है—

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम्।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च॥ १४॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ५ में लिखा है कि जब विष्णु ने लिङ्ग की पूजा की और शिव प्रसन्न हुए तब शङ्कर ने कहा कि तुम सब लोक में मान्य और पूज्य होगे और ब्रह्मा के बनाये जगत् में जिस समय दुःख हो उस समय तुम सब दुःखों के दूर करने में तत्पर हो और अनेक अवतारों को धारण करके उत्तम कीर्त्ति का विस्तार करो और संसार के उद्धार के लिए तुम लीला करो—

तस्मात् त्वं सर्वलोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि।
ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते॥ १५॥
तदा त्वं सर्वदुःखानां नाशने तत्परो भव।
विविधानवतारांश्च गृहीत्वा कीर्त्तिमुत्तमाम्॥ १६॥

पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय २२ में लिखा है कि तुम्हारा जन्म कभी नहीं होता, हे जगत्पते! कभी तुम्हारा अन्त नहीं होता है। व हे विभो! वृद्धि, क्षय वा बन्धन तुम में नहीं हो तो भी भक्तों की रक्षा करने के लिए व धर्मरक्षा करने के लिए जन्मकर्म को करते हो—

तव जन्म तु नास्त्येव नान्तस्तव जगत्पते।
वृद्धिक्षयपरीणामास्त्वयि सन्त्येव नो विभो॥ ३१॥
तथापि भक्तरक्षार्थं धर्मस्थापनहेतवे।
करोषि जन्मकर्माणि ह्यनुरूपगुणानि च॥ ३२॥

श्रीमान् पण्डितजी! यदि हम इस बात को मान भी लें कि भगवान् का जन्म बिना कर्म किये पापियों के मारने के लिए होता है तो क्या इस कल्प में सृष्टि की आदि से आज तक संसार के सब भागों में इसी एक भारत में सम्पूर्ण पापी उत्पन्न हुए जिनके नाश करने के लिए यहाँ ही भगवान् के सब अवतार हुए। यदि आप विचार पूर्वक पुराणों का पाठ करें तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है कि परमात्मा के अवतार धारण करने का कारण धर्मरक्षा के सिवाय ऋषियों के शाप आदि का कारण भी है देखिए।

देवीभागवत स्कन्ध ४ अध्याय ६० में लिखा है कि जब शुक्र की माता ने कहा कि मैं अभी इन्द्र सहित विष्णु को अपने तपोबल से भक्षण करे लेती हूँ तब विष्णु ने सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला तब भृगु जी ने कहा कि तुमने ब्राह्मणी को मार डाला है इसलिए जाओ, तुम्हारे अवतार मृत्युलोक में बारम्बार हुआ करेंगे।

इसके उपरान्त **पद्मपुराण द्वितीयखण्ड** अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मा जी महाराज पुष्कर क्षेत्र में यज्ञ कर रहे थे जहाँ विष्णु महादेव इत्यादि देवता भी उपस्थित थे। जब यज्ञ का समय आया और सावित्री जी को आने में देर हुई तब इन्द्र ने एक योग्य कन्या को (जो गुण-कर्म में दूसरी लक्ष्मी थी) लाकर उनके सम्मुख खड़ा कर दिया जिसका विष्णु की सम्मति से ब्रह्मा ने गान्धर्व-विवाह कर यज्ञ का आरम्भ कर दिया। इतने में सावित्री जी आईं और सब व्यवहार को जान विष्णु जी को श्राप दिया कि जाओ, मृत्युलोक में भृगु के शाप से जो तुम्हारे अवतार होंगे उनमें एक अवतार में तुमको स्त्री का वियोग सहना पड़ेगा और बड़े क्लेश के पीछे स्त्री मिलेगी—

भार्यावियोगजं दुःखं तदा त्वं तत्र भोक्ष्यसे॥ १५२॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ व २ में नीचे लिखे अवतार लिखें हैं। सुनिए—

प्रथम स्कन्ध में १ पुरुष, २ वाराह, ३ नारद, ४ नारायण, ५ कपिल, ६ दत्तात्रेय, ७ यज्ञ, ८ ऋषभ, ९ पृथु, १० मत्स्य, ११ कूर्म, १२ धन्वन्तरि, १३ मोहिनी, १४ नृसिंह, १५ वामन, १६ परशुराम, १७ व्यास, १८ रामचन्द्र, १९ श्रीकृष्ण, २० बलदेव, २१ बुद्ध, २२ कल्कि॥

द्वितीय स्कन्ध में १ वाराह, २ यज्ञ, ३ कपिल, ४ दत्तात्रेय, ५ कुमार, ६ नारायण, ७ ध्रुव, ८ पृथु, ९ ऋषभ, १० हयग्रीव, ११ मत्स्य, १२ कूर्म, १३ नृसिंह, १४ हरि, १५ वामन, १६ हंस, १७ मनु, १८ धन्वन्तरि, १९ परशुराम, २० राम, २१ कृष्ण, २२ व्यास, २३ बुद्ध, २४ कल्कि॥

गरुड़पुराण अध्याय ८ में लिखा है कि मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह तथा वामन, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध और कल्कि यह दश नाम पण्डितों के सदा स्मरण करने योग्य हैं—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः।
रामो रामकृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च॥ १०॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः॥ ११॥

ऐसा ही **शिवपुराण धर्मसंहिता** अध्याय ९ और **वाराहपुराण** पूर्वार्द्ध अध्याय ४ श्लोक २ में लिखा है।

पण्डित जी! **श्रीमद्भागवत** प्रथम स्कन्ध में २२ और द्वितीय में २४ अवतार लिखे हैं अर्थात् पुरुष, नारद और मोहिनी अवतार नहीं लिखे इसी प्रकार प्रथम में कुमार, ध्रुव, हरी, हंस, और मनु पांच अवतारों का वर्णन नहीं है, अब आप ही विचार लें कि एक ही व्यास जी जो स्वयं परमात्मा के अवतार और त्रिकालदर्शी इसके लिखने वाले फिर इस भेद का क्या कारण? अब आप बतलाइए कि आप २२ मानेंगे वा २४? हमारी समझ में २७ अवतार मानने चाहिएं, परन्तु शोक है कि २७ अवतार कोई पौराणिक नहीं मानते। इसके अतिरिक्त पण्डित जी! परमात्मा ने सबसे श्रेष्ठ योनि मनुष्य की बनाई परन्तु पुराणों के लेखानुसार जब स्वयं परमेश्वर ने अवतार लिए तो मनुष्य योनि के अन्य वाराह, मत्स्य, कूर्म योनियों में भी अवतार लिया। श्रीमहाराज सत्य तो यह है कि—"**विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**"

अर्थात् विनाशकाल आने पर बुद्धि उल्टी हो जाती है जिसके कारण भली बुरी और बुरी भली जान पड़ती है। जैसा कि सनातनधर्मी भाई इस समय निन्दा को स्तुति और स्तुति को निन्दा समझ कर कार्य कर रहे हैं और कराने की चेष्टा में लगे रहते हैं और यथार्थ का कुछ विचार नहीं करते।

देखिए, श्रीमान्! अवतार के अर्थ उतरने के हैं क्योंकि अवतार शब्द

अव उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से घञ् प्रत्यय करने से बनता है। इसलिए जिन-जिन मनुष्यों में विशेष गुण देखे उन्हीं को पौराणिक पण्डितों ने अवतार मान लिया, इसी कारण इनमें मतभेद है। **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ३ में यह भी लिखा है कि सतोगुणी हरि के असंख्य अवतार हैं, जिस भांति कि अगम्य जल वाले सरोवर से हज़ारों नदियाँ बहती हैं। जैसा कि—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ २६॥

अब कहिए आप असंख्य अवतार मानेंगे या २२ वा २४ वा दस? इसके अतिरिक्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ८ श्लोक ३० पर भी दृष्टि डालिए जो साफ-साफ कह रहा है कि विश्वात्मन् अकर्ता होने पर भी आपका आत्मा से कर्म करना और जन्मरहित होने पर भी आप वाराह, मत्स्यादि तिर्यङ् (नीच) योनियों में जन्म लेना तथा रामचन्द्र और वामन आदि का रूप धारण करना अत्यन्त आश्चर्यजनक और कथन मात्र है।

इस पर भी आप परमेश्वर के अवतार मानते हैं तो यह बतलाइए कि नारद महाराज किस प्रकार परमेश्वर के अवतार हैं, जब कि इनके पूर्व जन्म दासीपुत्र का वृत्तान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १ अध्याय ५ में लिखा है—

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम्॥ २३॥

इसके उपरान्त **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय २४१ में महादेव जी ने पार्वती जी से कहा है कि श्रीराम और श्रीकृष्ण यह दोनों अवतार उपासना करने के योग्य हैं क्योंकि वह उत्तम गुणों से परिपूर्ण जिनकी ऋषियों ने भी उपासना की और जो मोक्ष के दाता हैं। जैसा कि—

उपास्यौ भगवद्भक्तैर्विप्रमुख्यैर्महात्मभिः॥ ८०॥
रामकृष्णावतारौ तु परिपूर्णौ हि सद्गुणैः।
उपास्यमानावृषिभिरपवर्गप्रदौ नृणाम्॥ ८१॥

क्या पण्डित जी! अन्य अवतार उपासना के योग्य नहीं? खैर, कुछ

हो इसका भी न्याय आप ही कीजिए। अब हम आपको श्रीकृष्ण और श्रीरामचन्द्र के गुणों का संक्षेप से कीर्त्तन सुनाते हैं, जिस पर पौराणिक महाशय ईश्वर के अवतार ही मानते हैं—

तदनन्तर कपिल, पृथु, दत्तात्रेय, व्यास, नारद, वामन, मोहिनी, परशुराम और बलदेव जी महाराज के वृत्तान्त अत्यन्त संक्षेप से सुनाऊंगा। जिनके चरित्रों ने परमात्मा के गुणों में भी धब्बा लगा दिया और अवतारियों को देव पदवी से भी गिरा दिया तिस पर भी आप यही कहते हैं कि आर्य लोग अवतारों की निन्दा करते हैं, इसलिए यह नास्तिक हैं। कृपा कर सुन लीजिए फिर न्याय कीजिए।

अवतार-चरित्र-चित्रण

श्रीकृष्ण महाराज

महाभारत आदि पर्व अध्याय १९६ में लिखा है कि कृष्ण और बलदेव जी विष्णु महाराज के एक काले बाल और एक श्वेत बाल के अवतार हैं। जैसा कि—

तयोरेको बलदेवो बभूव योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः।
कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्बभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः॥ ३३॥

विष्णु पुराण अंश ५ अध्याय १ में पराशर जी कहते हैं कि जब देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तब उन्होंने एक सफेद, दूसरा काला बाल उखाड़ कर उनसे कहा कि यह मेरे बाल भूमण्डल पर अवतार लेकर भूमि का भार और पीड़ा दूर करेंगे। हे देवो! देवता के समान जो देवकी नाम वसुदेव की स्त्री है उसका आठवाँ गर्भ यही मेरा बाल होगा और वह पृथ्वी में अवतार लेकर कंस को मारेगा—

तस्यायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः॥ ६३॥
अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि॥ ६४॥

विष्णुपुराण-अंश ५ के प्रथम अध्याय में लिखा है कि कृष्ण विष्णु महाराज के अंश का अंश है जैसा कि—**अंशांशावतारः।**

देवीभागवत-स्कन्ध ४ अध्याय १९ में लिखा है कि यदुकुल में

विष्णु अंशमात्र से वासुदेव का बेटा होगा। जैसा कि—

अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः ॥ ३४ ॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ६७ में शिव जी ने अर्जुन से कहा है कि कृष्ण मेरे ही अंश से उत्पन्न हैं, वह तुम्हारा कार्य करेंगे—

कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यन्ते करिष्यति।
स वै ममांशभूतश्च स तत् कार्यं करिष्यति॥

ऐसा ही **ब्रह्मपुराण** अध्याय ७२ श्लोक ५२ में लिखा है। **वायुसंहिता** उत्तरभाग पहला अध्याय श्लोक संख्या १२ में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने स्वेच्छा से अवतार धारण किया था कारण कि वे सनातन वासुदेव हैं—

स्वेच्छया ह्यवतीर्णोऽपि वासुदेवः सनातनः ॥ १२ ॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड के अध्याय ४-७ से जान पड़ता है कि इन्हीं श्रीकृष्ण जी ने जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न किया, पृथ्वी का भार उतारने के लिए जो इन तीनों देवताओं से नहीं हो सकता था, मथुरा में देवकी और वसुदेव के यहाँ जन्म लिया। **कृष्णजन्मखण्ड** के अध्याय ६ से ज्ञात होता है कि कृष्ण अवतार का कारण राधिका का स्नेह है। जैसा कि—

तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम्॥ २२६ ॥

प्रकृतिखण्ड अध्याय ३० में यम ने सावित्री से कहा है कि सब ईश्वरों के ईश्वर, सब कारणों के कारण, सब के आदि स्वरूप, सब की आत्माओं में वास करने वाले, सब देवताओं से पूजनीय श्रीकृष्ण ही हैं। वे माया से अनेक रूपों को धारण करते हैं। यथार्थ में वह निर्गुण हैं जो कोई इनकी अन्य देवताओं के साथ समता करता है, वह ब्रह्महत्या को पाता है—

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे।
सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि॥ १५४॥
माययाऽनेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे।
करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १५५ ॥

भगवद्गीता अध्याय ७ में कृष्ण महाराज ने कहा है कि मैं सम्पूर्ण

जगत् का उत्पन्न करने वाला तथा नाश करने वाला हूँ। अय अर्जुन! मुझसे परे अथवा बड़ा और कुछ नहीं है। यह सब जगत् मुझ में ऐसे वर्त्तमान है जैसे धागे में मणिसमूह—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ६॥

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिद् अस्ति धनञ्जय।

मयि सर्वमिदम्प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अध्याय ३ में लिखा है कि सब अंश कला अवतार हैं पर श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। जैसा कि—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥ २८॥

अब श्रीमान् इनके चरित्र जानने के लिए **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० पर दृष्टि डालिए क्योंकि इसी पुराण से महात्मा व्यास की आत्मा को शान्ति हुई थी।

(१) श्रीकृष्ण महाराज ने मिट्टी खाते समय अपनी माता को तीनों लोक अपने मुख में दिखलाए।

(२) गोपियों के दूध-माखन चुरा-चुरा कर खाना, कंस राजा के धोबी से कपड़ों को मांगना और जब उसने उनको न दिये तब उसको वहीं मार डालना, फिर वस्त्र पहन कर किसी से माला-चन्दन ले आप धारण करना।

(३) गोपियाँ श्रीकृष्ण को उपपति जार समझती थीं न कि पारब्रह्म और उसी जार बुद्धि से परमात्मा को प्राप्त हुईं—

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने॥ १२॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः॥ ११॥

स्कन्द १० अ० २९ ।११॥

(४) जिस समय गोपियाँ जमुना स्नान को गईं तो कृष्ण महाराज उनके वस्त्र और चीर उठाकर कदम्ब पर चढ़ गये और उनके मांगने पर भी वस्त्र न दिये, फिर जल से बाहर अपने सन्मुख खड़ा कर लिया, फिर उनको वस्त्र दिये, यह बात अभी तक प्रसिद्ध है और अभी तक यात्रियों को यह वृत्तान्त सुनाया जाता है।

(५) अजगरों और राक्षसों को मारा, गोवर्द्धन को अङ्गुली पर उठाया,

जरासन्ध से १७ वार हार अठारहवीं वार द्वारिका भाग कर बचे, फिर भीमसेन को साथ लेजाकर जरासन्ध से मल्लयुद्ध कराकर उसको मरवाया।

(६) इसके उपरान्त जब पाण्डव द्रोणाचार्य को न जीत सके तो कृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से झूठ बुलवाया कि आपका पुत्र मारा गया, तब द्रोणाचार्य यह सुन मूर्छित हो गिर पड़े, फिर कृष्ण और पाण्डवों ने उनको मार डाला।

(७) श्रीकृष्ण महाराज की १६००० रानियाँ लिखी हैं, फिर प्रत्येक के दश सन्तान होना बतलाया है, इस हिसाब से १ लाख ६० हज़ार पुत्र हुए। जैसा कि **श्रीमद्भागवत पूर्वार्द्ध** स्कन्ध १० अध्याय ६१ में लिखा है—

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाऽबलाः।
अजीजनन् अनवमान् पितुः सर्वात्मसम्पदा॥ १॥
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥ ४॥

हरिवंशपुराण में १ लाख सन्तानें लिखी हैं—

दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः॥ १०५.२१॥

(८) अब पण्डित जी महाराज और सुनिये **शिवपुराण वायुसंहिता** अध्याय १ में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज ने एक वर्ष शिव का उग्र तप कर महेश्वर का दर्शन पाया जिससे उनके सब अमङ्गल दूर हो मायामय सब कर्म्म मिट गये और निर्मल हो गये तब पार्वती और महादेव के वर से साम्ब पुत्र को पाया—

तपश्चकार पुत्रार्थं साम्बमुद्दिश्य शङ्करम्।
तपसा तेन वर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥ २०॥
साम्बं सगणमव्यग्रो लब्धवान् पुत्रमात्मनः।
यस्मात् साम्बो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः॥ २१॥

(९) **शिवपुराण धर्मसंहिता** अध्याय ८ में लिखा है कि जिस समय दैत्यों में मुख्य दैत्य युद्ध में निहत हुए तब विष्णु स्त्रियों को हरण कर पाताल में स्थित हो प्रसन्न हुए, वही त्रेता में रामरूप होकर जानकी को

प्राप्त कर स्त्री के विलास धन और पुत्रों से तृप्त न हुए, स्त्री सहित वनवासी होने के कारण कलियुग में फिर केशव ने जन्म ग्रहण किया जिन्होंने बाल्यावस्था में गोपियों के साथ विहार किया, उन्होंने गोपालों के दश सहस्र पुत्रों की उत्पत्ति की, फिर युवावस्था को प्राप्त हो रुक्मिणी के साथ विवाह कर प्रद्युम्नादि पुत्रों को उत्पन्न किया, फिर नरकासुर को मार सोलह हज़ार रानियों का हरण किया और उनसे रति फल भोगकर नब्बे सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया, जब इस प्रकार से स्त्रियों से तृप्ति न हुई तब रात्रि में धैर्यच्युत हो राधिका नामी स्त्री से विहार किया। इस प्रकार से नित्य ही स्त्रीजनों से प्रेम किया—

सहस्राणि ससर्जाशु मत्स्ये चाण्डं महाद्भुतम्।
स्त्रीणां तथापि नो तृप्तो दिव्यानां तु रतेर्यदा॥ ६८॥
तदा राधास्त्रियं काञ्चिद् निशि धैर्यादधर्षयत्।
तथापि परनारीणां लम्पटो नित्यमेव हि॥ ६९॥

(९) **पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड** अध्याय ८४ में लिखा है कि अर्जुन ने कृष्ण महाराज से प्रार्थना की कि आप मुझको वह आनन्द दिखलाइए जो आज तक किसी ने न देखा हो। इस पर एक सरोवर में स्नान कराये, वह स्त्री हो गये, फिर उन्होंने उसी रूप में श्री कृष्ण जी और राधा को देख स्त्री रूपी महाराज अर्जुन कामवश हो गये। इस दशा को श्रीकृष्ण महाराज जान अर्जुन रूपी स्त्री का हाथ पकड़ वन को ले गये और जैसा चाहा वैसा विहार करते रहे। यद्यपि वह योगीश्वर थे। फिर उससे कहा कि पश्चिम वाले सरोवर में स्नान करो, करते ही फिर अर्जुन हो गये। इन उपर्युक्त बातों को विचारिए।

रामावतार।

(१) **वाल्मीकि रामायण** में लिखा है कि राम जी का अवतार नारद मुनि के शाप से हुआ।

(२) जब रामचन्द्र महाराज ने धनुष तोड़ा तब परशुराम जी आये और इनसे वार्तालाप हुआ परन्तु एक ने दूसरे को जब कि दोनों अवतार थे नहीं पहचाना। अन्त को जब उनके तरकस को श्रीराम ने चढ़ा दिया तब उनको श्रीराम का अवतार जान पड़ा।

(३) जब श्रीराम दण्डक वन में गये तो उन्होंने अगस्त्य मुनि का स्थान सुतीक्ष्ण से पूछकर जाना था।

(४) रावण की बहन शूर्पणखा राम से विवाह करना चाहती थी, तब उन्होंने कहा कि तू लक्ष्मण जी के पास चली जा। उनको अभी विवाह नहीं हुआ। परन्तु **ब्रह्मवैवर्त्तपुराण** से प्रकट होता है कि उनका विवाह हो चुका था। जब वह उनके पास गई तो फिर राम जी ने सेन देकर लक्ष्मण से उसके नाक कान कटवा लिए जिससे रावण और राम का वैर हो गया।

(५) जब रावण के कहने पर मारीच हरिण बनकर आया तो राम जी ने उसको नहीं जाना।

(६) जब सीता का हरण हो गया तो उन्होंने यह नहीं जाना कि रावण ले गया वा कौन? क्योंकि वह वन-वन ढूंढ़ते हुए पम्पापुर पहुंचे, जहाँ हनूमान से भेंट हुई, जिसने सुग्रीव से मिलाया, वहाँ उसने वैरी बालि को छल से मारा।

(७) जब राम, लक्ष्मण, मारीच को मार कर वापिस आये और वहाँ सीता को न देखा तो अत्यन्त शोक से संतप्त होकर रोदन किया॥ २६० ॥

(८) जब सीता को ढूंढते हुए श्रीराम लक्ष्मण गोदावरी पर पहुंचे तब उससे पूछते हुए कि हे प्रिये! तुम हमारी सीता को जानती हो? जब वह न बोली तो उसको शाप दिया कि तुम्हारा जल रक्त हो जावे। तब वह मुनियों को साथ लेकर उनके पास गई जिन्होंने कहा कि यह आप के चरणकमलों से उत्पन्न हुई है, शाप के योग्य नहीं है, तब उसको शाप से मुक्त किया।

(९) **देवी भागवत** स्कन्ध ३ अध्याय १९ में लिखा है कि राम जी जब बालि को मार कर एक वर्ष वहाँ रहे, तब एक दिन राम ने लक्ष्मण से कहा कि बिना जानकी के हमारा जीवन अति ही दुर्लभ है और न उनके बिना हम अयोध्या को जायेंगे। देखो राज गया, वनवास हुआ, पिता मरे, स्त्री हरी गई, देखिए दुष्ट भाग्य अब क्या करता है? देखो होनहार नहीं मिटती। राजा मनु के वंश में जन्म लेकर ऐसे वनवास के दुःख भोग रहे हैं, तुम भी हमारे साथ में रह सब दुःख उठाते हो और नाना प्रकार के कष्ट भोगते हो, हमारे समान इस कुल में कोई भी दुःखी न हुआ, न होगा क्या करें? इस दुःखसागर से तरने का कोई उपाय नहीं। यहाँ वन में न द्रव्य है,

न सेना, किसके ऊपर कोप करें, तुम्हीं अकेले साथी हो। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। देखो, सीता दुष्ट रावण के यहाँ कैसे जीवेगी? स्त्री के साथ रखने से हम जैसे ऐश्वर्यवान् को भी दुःख हुआ तो फिर सामान्य मनुष्य की क्या गणना है? तब लक्ष्मण जी ने कहा—धीरज को धारण करो, रावण से सीता ले आवेंगे, जो आपत्ति और सम्पत्ति में धीरज धरते हैं, वही धीर कहाते हैं। अल्पबुद्धि लोग दुःखों से दुःखी होकर दुःखों को भोगते हैं। सुख-दुःख को दैवाधीन समझ कर दुःख को त्यागो, जिस काल से राज गया, सीता हरी गई, उसी काल से सीता मिलेगी।

देखो, अकेले राजा रघु ने दशों दिशाओं को जीत लिया था। उन्हीं के वंश में आप हैं। फिर क्यों सोच करते हो? इसी प्रकार दोनों भाई बातें कर रहे थे कि आकाश से नारद मुनि आये जिनकी पूजा की, तब उन्होंने कहा कि आप प्राकृत मनुष्यों की भांति क्यों शोक करते हो? आपका जन्म सीताहरण और रावण के मारने के लिए हुआ है। क्या आप नहीं जानते? पूर्व समय में सीता एक मुनि की कन्या थी, वह वन में तपस्या करती थी, तब रावण ने प्रार्थना की कि आप हमारी भार्या हूजिए, तब उसने न माना और हठ से पकड़ लिया। तब उन्होंने शाप दिया कि जा तेरे नाश के निमित्त हम पृथ्वी पर उत्पन्न होंगी। जब हमको ले जावेगा, तब तेरा नाश हो जाएगा। वही लक्ष्मी का अंश जानकी उत्पन्न हुई है, वह अपने नाश के निमित्त उनको ले गया है। अजन्मा आप हैं, तिसका जन्म भी इस दुष्ट के मारने के निमित्त देवताओं की प्रार्थना करने पर राजा दशरथ के यहाँ हुआ है। आप परमेश्वर और सीता परमेश्वरी, इससे आप धीरज धारण कीजिए। मैं रावण के नाश का उपाय बताता हूँ। आप क्वार मास के नवरात्रि का व्रत कीजिये, हम करा देंगे, सब कार्य सिद्ध हो जावेंगे। पूर्व समय में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र ने यह व्रत किया था। यह सुन कर नारद की विधि के अनुसार व्रत किया। तब भगवती सिंह पर चढ़कर आई और कहा कि तुम नारायण हो, वानरों की सहायता लेकर रावण को मारो।

(१०) **अग्निपुराण** अध्याय १० में लिखा है कि जिस समय हनूमान जी ने लङ्का से लौटकर मणि रामचन्द्र जी को दी, उस समय उन्होंने विरह में दुःखित होकर रोदन किया।

(११) सीता की ख़बर पाने पर सुग्रीवादि की सहायता लेकर लङ्का

पर चढ़ाई की।

(१२) जब रामचन्द्र समुद्र पर पहुंचे तो पार उतरने के लिए मार्ग नहीं पाया। इसके विषय में **पद्मपुराण** षष्ठ खण्ड अध्याय ४४ में लिखा है कि राम ने लक्ष्मण जी से कहा है कि अब क्या करें? तब लक्ष्मण जी ने कहा कि यहाँ से दो कोस पर वकदाल्म्य मुनि और अन्य उत्तम ब्राह्मण रहते हैं, उनके समीप चल कोई उपाय पूछकर कार्य करिए। यह सुन श्रीराम उनके समीप गये और वृत्तान्त कहा। तब मुनि ने कहा कि तुम एकाग्रमन होकर इस व्रत को करो जो फागुन के कृष्णपक्ष में विजया एकादशी होती है—

एकाग्रमनसो भूत्वा व्रतमेतत् समाचर।
फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत्॥ २४॥

तिसके व्रत से आपकी जीत होगी। वानरों समेत समुद्र को तर जाओगे—

तस्या व्रतेन हे राम! विजयस्ते भविष्यति।
निःसंशयं समुद्रं त्वं तरिष्यसि सवानरः॥ २५॥

फिर उन्होंने सब विधि सुनाई जिसको सुन उसी समय राम जी ने यथोचित व्रत किया और करने ही से राम की जीत हुई—

इति श्रुत्वा ततो रामो यथोक्तमकरोत् तदा।
कृते व्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः॥ ३६॥
प्राप्ता सीता जिता लङ्का पौलस्त्यो निहतो रणे॥ ३७॥

(१३) **तुलसीकृत रामायण** में लिखा है कि उन्होंने महादेव की स्थापना कर पूजा की, तब समुद्र आया, फिर उनका कार्य सिद्ध हुआ।

(१४) इसी भांति संग्राम के समाचार अङ्गदादि वानरों द्वारा मिला करते थे।

(१५) जब लक्ष्मण जी के शक्ति लगी तो राम ने बड़ा विलाप किया फिर विभीषण की सम्मति के अनुसार वैद्य को बुलाकर औषधि कराई।

(१६) जब राम ने रावण को मार सीता जी से भेंट की, उस समय उन्होंने बहुत निन्दित वचन कहे। तब सीता भी अग्नि में प्रवेश कर गई।

तब महादेव आदि देवता राम जी के समीप आये और बहुत कुछ राम और सीता की प्रशंसा की, इतने में अग्नि शरीर धारण कर आया और कहा कि इस सीता को लो, यह पापरहित है। मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। तब अग्नि के ऐसा कहने पर उसको ग्रहण किया।

(१७) रावण को मार कर १४ वर्ष पश्चात् अयोध्या में आकर राजा होकर राज्य करने पर लोकापवाद के भय से गर्भवती सीता को वनवास किया।

फिर निकाली हुई सीता वाल्मीकि ऋषि को दो पुत्र सौंप राम के चरणों का ध्यान कर पृथ्वीछिद्र में प्रवेश कर गई। तब वह ईश्वर होने पर भी शोक को न रोक सके, क्या यही ईश्वरावतार का चिह्न है? जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ९ अध्याय ११ में लिखा है—

हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम्॥ १४॥
मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह॥ १५॥
तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन् अपि धिया शुचः।

रामचन्द्र जी ने ब्रह्महत्या दूर करने के अर्थ अगस्त्य मुनि की आज्ञानुसार अश्वमेध यज्ञ किया।

पद्मपुराण पञ्चम पाताल खण्ड अध्याय ८ में लिखा है कि जब अगस्त्य मुनि रामचन्द्र जी के यहाँ गये तब उनको मालूम हुआ कि रावण ब्राह्मण था, तब बहुत विलाप कर कहा कि हम स्त्री के पीछे वेद-शास्त्र के विवेकी ब्राह्मण के कुल का नाश कर दिया। भला, हमारे समान दुर्मति, बुद्धिहीन कौन होगा—

अहो मे पश्यताज्ञानं विमूढस्य दुरात्मनः।
यद् ब्राह्मणकुले रूढं हतवान् कामलोलुपः॥ ७॥
महिलार्थे त्वहं विप्रं वेदशास्त्रविवेकवान्।
हतवान् वाडवकुलं बुद्धिहीनोऽतिदुर्मतिः॥ ८॥

इक्ष्वाकु के वंश में किसी ने ब्राह्मण को दुर्वचन नहीं कहा। देखो, जो

ब्राह्मण पूजा के योग्य थे, उनको मारा। हमारे पाप को कुम्भीपाक न सह सकेगा और कोई तीर्थ भी ऐसा नहीं जो हमको पवित्र करने में समर्थ हो। न यज्ञ, न तप, न दान, न देवता की प्रतिमा आदिक ऐसी हैं जो ब्राह्मण के मारने वाले को पवित्र कर सकें। इस लिए आप कृपा करके कोई व्रत, तप, दान बतलाइए जो हमारे पापों को भस्म करे—

इक्ष्वाकूणां कुले जातु ब्राह्मणो न दुरुक्तिभाक्।
ईदृशं कुर्वता कर्म मयैतत् सुकलङ्कितम्॥ ९॥
ये ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसम्मानभोजनैः।
ते मया निहता विप्राः शरसंघातसंहितैः॥ १०॥
कान् लोकान् नु गमिष्यामि कुम्भीपाकोऽपि दुःसहः।
न तादृशं तीर्थमस्ति यन्मां पावयितुं क्षमम्॥ ११॥
न यज्ञो न तपो दानं न वाचैव व्रतादिकम्॥ १२॥
प्रब्रूहि तादृशं मह्यं यादृशं पापदाहकम्।
व्रतं दानं मखं किञ्चित्तीर्थमाराधनं महत्॥ २७॥

जिससे हमारी विमल कीर्त्ति हो जो सब लोगों को पीछे से पवित्र करे चाहे वह लोग पापाचरण से पापी हो गये हों, ब्रह्महत्या से उनकी दीप्ति जाती रही हो, वह सबको पवित्र करे—

येन मे विमला कीर्त्तिर्लोकान् वै पावयिष्यति।
पापाचाराप्तकालुष्यान् ब्रह्महत्याहतप्रभान्॥ २८॥

तब अगस्त्य जी ने कहा कि जो अश्वमेध यज्ञ करता है, वह सब पापों से छूट जाता है। तब राम ने अश्वमेध यज्ञ किया—

सर्वं स पापं तरति योऽश्वमेधं यजेत वै।
तस्मात् त्वं यज विश्वात्मन् वाजिमेधेन शोभिना॥ ३१॥
अगस्त्यवाक्याच्छ्रीरामो विप्रहत्यापनुत्तये।
यागं करोति सुमहान् सर्वसंभारसंभृतम्॥ ३७.४॥

कहिए, पण्डित जी! यह कार्य ईश्वरावतार के हैं? कदापि नहीं। इसी से तो हम कहते हैं कि ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता। यह सब लेख

हमारे शत्रुओं ने पुराणों में लिख दिये, जिसके कारण अन्य कौमें पढ़-पढ़ कर हंसती हैं। इस लिए आप सबको परमेश्वर के अवतार न मानने चाहिएं। असल में यह सब धर्मात्मा पुरुष थे जिन्होंने संसार को बड़े-बड़े धार्मिक उपदेश दिए।

कपिल अवतार।

कर्दम ऋषि प्रजापति देवहूती को भगवान् वर देकर (कि मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूंगा) अन्तर्द्धान हो गये तो कर्दम ऋषि ने देवहूती से कहा कि तुमने मेरे साथ बहुत तपस्या की और असंख्य कष्ट उठाये, अब मैं चाहता हूं कि तुझको सुख दे आनन्द उठाऊं। तब देवहूती ने कहा कि मुझे आनन्द की इच्छा नहीं किन्तु आप की चरणसेवा की इच्छा रहती है। परन्तु कर्दम ऋषि ने न माना और सरोवर में स्नान करने की आज्ञा दी और उसने ऐसा किया। तब तो स्नान करते ही सोलह वर्ष की सुन्दरी हो गई। उसके साथ ही हज़ार लड़कियाँ तालाब में से निकलीं और वहाँ सोने के महल रत्नों से जड़े हुए बन गये जो अपनी सुन्दरता में वैकुण्ठ को ले जाते थे। फिर कर्दम ऋषि ने भी उसी तालाब में स्नान किया जिससे वह भी सोलह वर्ष के जवान पट्ठा हो गये। फिर वह दोनों उस स्थान पर विषय-भोग और नाना प्रकार के सुख भोगते रहे। उनके पास एक विमान था जिसके ऊपर वह दोनों बैठकर देवलोक, भूलोक, पातालोक इत्यादि में यात्रा किया करते थे, कहीं भी कोई रोक इनके लिए नहीं थी। इस प्रकार भोग करते हुए बहुत दिनों के पीछे देवहूती ने कहा कि अब भोग और सुख बहुत हो चुका अब जैसा श्रीभगवान् का वर है वैसा मेरे पुत्र उत्पन्न हो। इतना कहने की देर थी कि तुरन्त नारायण का अंश उसके गर्भ में आ गया। ब्रह्मा जी ने उसी समय आकर सूचना दी कि तुम्हारे घर अवतार नारायण का होगा और कपिलदेव जी परम योगीश्वर जटाधारी जन्म लेंगे। संसार में तुम्हारा नाम स्मरण रहेगा।

श्रीमहाराज! इस भागवत ने हर स्थान पर ईश्वरी नियम को तोड़ कर सत्यधर्म की कुदशा करदी। मेरी समझ में अब गङ्गास्नान की कुछ आवश्यकता नहीं वरन् उस सरोवर की खोज करनी चाहिए क्योंकि यदि वह मिल गया तो दारिद्र्य दूर हो जाएगा। हमारे वृद्ध सोलह वर्ष के जवान

पट्टा बन जायेंगे सहस्रों दासियाँ भी मिलेंगी। साथ ही सोने के भवन रत्नों से जड़ित बन जायेंगे। सत्य तो यह है कि अविद्या ने जिनके नेत्रों का प्रकाश खो दिया हो, वह क्या देख सकते हैं? पक्षपात ने जिनका मन फेर दिया, वह सत्य झूठ की परीक्षा कहाँ से करें? ब्रह्मा जी की साक्षी के सम्मुख भला कौन इसको असम्भव बतला सकता है? परन्तु सत्य किसी प्रकार मारा नहीं जाता इसलिए आप भी इसमें से सत्य को ग्रहण कीजिए।

राजा पृथु का अवतार।

जब राजा वेन ब्राह्मणों के श्राप से मर गया तब उसकी माता ने कहा कि उसके शरीर को जलाना नहीं जिन्होंने इसको मारा है वह आप ही जिलावेंगे। ब्राह्मणों ने विचार किया कि मृतक को जिलाना ठीक नहीं, परन्तु अपने ब्रह्मतेज से इसके शरीर से एक बेटा उत्पन्न करेंगे, वह राज्य करेगा और इन तीनों ने उसकी जांघ मथन की, इससे एक ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ जिसकी भयानक सूरत, छोटा डील और छोटी गर्दन वाला था। उत्पन्न होते ही उसने कहा कि मुझको क्या आज्ञा है? ब्राह्मणों ने देखा कि इसका स्वरूप राज्य के योग्य नहीं है तब उससे कहा कि भीलों पर जाकर सरदारी करो, इतना सुनते ही चला गया और फिर उसी मृतक शरीर की दाहिनी जङ्घा से एक सुरूपवान् पुरुष और एक परमसुन्दरी स्त्री निकली, पुरुष का नाम पृथु रक्खा, स्त्री से कहा कि तू इसका भार्य्या है। इसके पश्चात् जब ब्राह्मणों ने ज्ञानदृष्टि से देखा तो ज्ञात हुआ कि यह पुरुष नारायण का अवतार है और स्त्री लक्ष्मी है। अधर्मी राजा का सिंहासन इसको शोभा न देगा। कुबेर से कहा कि तू इसके लिए ऐसा सिंहासन ला जो रत्नों और मणियों से जड़ा हो। उसने उसी समय आज्ञा पालन की और वरुण ने छत्र, वायु ने चंवर लाकर अर्पण किया और सब देवताओं में जिनके पास जो कुछ राज्य का सामान था, लाकर राजा के सम्मुख रक्खा। अब वन्दीजनों ने (जिनको भाट व कवि जो इन्हीं ब्राह्मणों के गोल में से थे) राजा की प्रशंसा करनी प्रारम्भ की और बड़े-बड़े राजाओं का उदाहरण देने लगे परन्तु राजा को यह बात अप्रिय ज्ञात हुई। उसने कहा कि अब तक मुझसे कोई अच्छा काम नहीं हुआ, व्यर्थ प्रशंसा अच्छी नहीं, यह हंसी है। एक नारायण की स्तुति करनी चाहिए जो सबको प्रत्येक आवश्यक

पदार्थ देता है। परन्तु वन्दीजनों ने कहा कि तुम नारायण के अवतार हो, तुम वे काम करोगे जो अब तक किसी से नहीं हुए, प्रथम हमारी जिह्वा से बुरे वचन निकलते रहते हैं इसलिए हमको उचित है कि हम अपनी वाणी को आपकी प्रशंसा से पवित्र करें।

जब बहुत समय राजा पृथु को राज करते हो गया। एक दिन सम्पूर्ण प्रजा एकत्रित होकर राजा के पास आ निवेदन करने लगी कि हे महाराज! आप हमारे राजा हो हमारे शरीर इस प्रकार जल रहे हैं जैसे कोई सूखे पेड़ों में आग लगा देता है, हम भूख के मारे व्याकुल हैं, हमारे भोजन, अन्न और फल हैं। उसको भी पृथिवी अपने गर्भ में चुरा ले गई। पेड़ों पर फल भी नहीं आने देती। पृथिवी पर बीज हम डालते हैं परन्तु कुछ नहीं जमता। हम क्या खायें, क्या करें, कहाँ जायें? राजा वेन अधर्मी था इसी कारण पृथिवी ने ऐसा किया। आप धर्मात्मा राजा हो, हमारी रक्षा करो। राजा पृथु को यह बात सुनते ही क्रोध आया और धनुषबाण लेकर कहा कि पृथ्वी को मारूंगा और बाण को चढ़ाकर चाहा था कि पृथ्वी के खण्ड-खण्ड करूं कि इतने में पृथ्वी गौ का रूप धारण कर सामने आई। राजा ने गौ के मारने का भी कुछ दोष न समझा। अब पृथिवी दौड़ी और राजा भी उसके पीछे भागा। जब पृथ्वी ने देखा कि कहीं शरण नहीं मिलती तब राजा से कहा कि स्त्री और गौ के मारने का बड़ा पाप है, मारना उसको चाहिए जिससे कुछ दुःख पहुंचे, यदि मुझको मार डाला तो संसार किस पर बसेगा राजा ने एक न मानी और कहा तुझको अवश्य मारूंगा और इस संसार को अपने योगबल से महाप्रलय तक जल पर स्थिर रक्खूंगा। यह सुनकर पृथिवी डर गई और सोचा जो कुछ यह कहते हैं, वही करेंगे। अन्त को राजा से कहा कि मेरे ऊपर पहाड़ बहुत हैं, वह भी कहीं थोड़े, कहीं अधिक। लोग भी ऊपर-नीचे बस रहे हैं, इसीलिए मुझको दुःख हो रहा है ऊंचनीच को बराबर करो और मुझको दुहिये (जैसे गाय का दूध निकाला करते हैं) मैं सब औषधियाँ दूंगी।

यह सुनकर पृथु उठ खड़ा हुआ और जितने बड़े पहाड़ पृथिवी पर थे, सबको धनुष बाण की नोक से उठाकर उत्तराखण्ड की ओर डाल दिया और जो छोटे-छोटे रह गये उनको उसी धनुष की नोक से पृथिवी पर कूट दिया जो नीचे उतर गये। देखिए, पण्डित जी! पहाड़ कैसे धनुष की नोक

से उठ कर चले गये।[१]

दत्तात्रेय।

जब अत्रि जी को संसार उत्पन्न करने की आज्ञा हुई तब स्त्री-पुरुष दोनों ने विचार किया कि उत्तम सन्तान हो, उसके लिए उन्होंने सौ वर्ष तक तप किया परन्तु तपस्या में किसी का नाम नहीं लिया। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं ने आकर दर्शन दिये। तब अत्रि ने वर मांगा कि हमारे यहाँ सुपात्र सन्तान हो। अतः विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और महादेव की कृपा से दुर्वासा और ब्रह्मा की कृपा से चन्द्रमा उत्पन्न हुए। परन्तु शोक इतना कि इन तीनों में से दत्तात्रेय जी महाराज की अवतारों में गणना हुई और अन्य की नहीं। जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध दो अध्याय ७ श्लोक ४ में लिखा है और **मार्कण्डेय पुराण** अध्याय १६ में लिखा है कि अत्रि ऋषि ने विष्णु को प्रसन्न कर दत्तात्रेय को उत्पन्न किया जो साक्षात् विष्णु के अवतार थे तथा जो अत्रि के दूसरे पुत्र कहलाए—

विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत्॥ ९९॥

---

१. पृथिवी सब उन औषधि और फलों को अपने गर्भ में ले गई 'हम से क्या' किसी हिन्दू से ही पूछो तो वह भी कभी इसकी सत्यता पर प्रतीति न करेंगे। यों तो यह अन्न और फल सब पृथिवी के गर्भ में हैं। खेती के नियम के अनुसार यदि पृथिवी को ठीक करके बीज डाला जाये और समय पर वर्षा हो या कुवें या नहर का पानी दिया जावे तो सम्भव नहीं कि पृथिवी अन्न और फल न देवे। पुराणों की समझ में जैसा अग्नि, वायु जानदार है और उनके देवता पृथक्-पृथक् स्थापित किये गये हैं, वैसे ही पृथिवी को भी उन्होंने प्राणदार समझा। कल्पना करो, पृथिवी उस समय गोरूप बन गई तो यह संसार किस पर रहा? इसके अतिरिक्त उन्हीं पुस्तकों में और बहुत से उदाहरण विद्यमान होंगे, जब पृथ्वी को कष्ट हुआ, वह गौ रूप धारण कर के निवेदन करने के लिए देवताओं के पास गई। अब की बार अपनी विद्या के प्रतिकूल ऐसे बल में आई कि आप ही अपने पेट में सब पदार्थों को ले गई। फिर एक राजा वेन अधर्मी या अन्यायी था, उसी को कोई कष्ट देती, जहाँ वह बैठा या खड़ा हुआ था, वहीं पृथिवी फट जाती और वह भीतर धस जाता। सम्पूर्ण प्रजा को कष्ट क्यों दिया जैसा कि पृथिवी का औषधियों को गर्भ में ले जाना या इसका गौ का रूप धारण करना गप्प है, वैसे ही राजा पृथु का सारे संसार को अपने योग बल से जल पर रखना। यदि जल पर संसार ठहर सकता तो पृथिवी रचने की क्या आवश्यकता थी?

एक दिन योगी जी बहुत मुनियों के लड़कों के साथ एक तालाब पर स्नान करने को गये और पानी में गोता लगा कर अन्तर्द्धान हो गये। तब ऋषि-कुमार उनके दर्शनों की इच्छा से तालाब के किनारे खड़े रहे, देवताओं के सौ वर्ष पीछे महात्मा जी उसी तालाब से एक स्त्री समेत निकले कि स्त्री देखकर मुझको त्याग कर चले जायेंगे। तो मैं अकेला होकर यहाँ रहूँगा, जब इस पर भी उन्होंने उनका साथ न छोड़ा तब उस स्त्री के साथ वहाँ शराब पीने लगे—

ततः सह तया नार्य्या मद्यपानमथाकरोत्।

जब वह शराब पीकर मस्त हुए तब उसी स्त्री के साथ गान और नृत्य करने लगे तब ऋषिकुमार उनको छोड़कर चल दिए—

सुरापानरतं तेन सभार्य्यं तत्यजुस्ततः॥ ११४॥

गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम्।

दत्तात्रेय स्त्री के साथ वहाँ रहने लगे जहाँ वह शराब पीते परन्तु उनको दोष नहीं लगता था क्योंकि वे योगी थे—

मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम्॥ ११५॥

नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि॥ ११६॥

उधर दैत्यों के डर के कारण देवता लोग उनके पास गये और उनसे प्रार्थना की। तब दत्तात्रेय जी ने कहा कि मैं तो दीवाना हूँ, मुझसे क्या चाहते हो, तब उन सबों ने कहा कि राक्षसों ने सब राज्यकर यज्ञभाग भी छीन लिया है इस लिए हमारी रक्षा और उनके वध करने का यत्न कीजिए। तब दत्तात्रेय जी ने कहा कि मैं मद्य पीता और उच्छिष्ट इत्यादि खाता-पीता हूँ और जितेन्द्रिय भी नहीं हूँ तो ऐसे उन्मत्त से आप लोग शत्रुओं के जीतने की इच्छा क्यों करते हो—

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः।

कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम्॥ १४९॥

देवताओं ने कहा कि महाराज तुम सब दोषों से रहित हो तुमको कोई दोष नहीं और जगत् के नाथ हो और सब विद्या और ज्ञान के प्रवेश होने से तुम्हारा चित्त शुद्ध है। इसको दत्तात्रेय जी ने सुनके कहा कि यद्यपि

मुझको समदर्शी विद्या प्राप्त है पर इस स्त्री की सङ्गति से उच्छिष्ट हो रहा हूं—

सत्यमेतत् सुरा विद्या ममास्ति समदर्शिनः।
अस्यास्तु योषितः सङ्गादहमुच्छिष्टतां गतः॥ १५१॥

स्त्री के हर वक्त सम्भोग के दोष से मैं सेवायोग्य नहीं हूँ यह सुन फिर—

स्त्रीसम्भोगो हि दोषाय सातत्येनोपसेवितः।
एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन्॥ १५२॥

उन देवताओं ने कहा कि आप निर्दोष हैं तब उन्होंने हंसकर कहा कि यदि आपको यह मेरा मत पसन्द है तो तुम असुरों को युद्ध के लिए मेरे सम्मुख बुलाओ। उनका तेज-बल नष्ट हो जावेगा। देवताओं ने उनको बुलाया और युद्ध करते हुए महात्मा के समीप आये जहाँ महात्मा के बायीं ओर सर्वाङ्गसुन्दरी चन्द्रवदनी लक्ष्मी बैठी थी, जिस को देख कर कामदेव भी उत्तेजना हो व्याकुल हो गये और लड़ाई का ध्यान छोड़ उस स्त्री को डोली में बिठाकर अपने घर की ओर ले चले। तब महात्मा दत्तात्रेय जी ने कहा कि अब तुम अस्त्र-शस्त्रों से मार गिराओ क्योंकि मैंने अपनी दृष्टि से उनके तेज को हीन कर दिया है और स्त्री-हरण के पाप से उन लोगों का सब पुण्य जल गया इसलिए वह सब पराक्रमहीन हो गये—

परदारावमर्शाच्च दग्धपुण्या हतौजसः॥ १७७॥

देवताओं ने अस्त्र-शस्त्र, लेकर युद्ध में उनका नाश कर दिया और लक्ष्मी जी वहाँ से अन्तर्द्धान होकर दत्तात्रेय जी के पास आ विराजीं।

कहिए, पण्डित जी! कैसा अच्छा उपाय है?

व्यास महाराज।

व्यास जी महाराज के विषय में पौराणिक बड़ी-बड़ी प्रशंसा करते हैं और ईश्वर का अवतार मानते हैं। वहाँ वे उनको अठारह पुराणों का कर्त्ता और एक वेद के चार करने वाला भी मानते हैं तिस पर उन्हीं पुराणों में लिख मारा है कि जब उन्होंने सत्रह पुराण बना लिए तिस पर भी उनकी आत्मा को शान्ति नहीं हुई। एक दिन सोच में बैठे हुए थे कि नारद मुनि

आए और उनकी उपर्युक्त दशा को देख कर कहा कि तुम यदि अपनी आत्मा की शान्ति चाहते हो तो श्रीकृष्ण महाराज के गुणों का कीर्तन करो। तब उन्होंने **श्रीमद्भागवत पुराण** को बनाया जिससे उनकी शान्ति हुई। देखिए, पण्डित जी! यह तो आपके परमेश्वर के अवतारों की दशा है। प्रथम तो स्वयं परमेश्वर के अवतार, तिस पर वेद का ज्ञान लेते हुए भी सत्रह पुराणों को बनाया, जिस पर भी उनकी आत्मा को शान्ति नहीं हुई, यह कैसे शोक की बात है! क्या ईश्वर अवतारियों की आत्मा को भी ज्ञान की आवश्यकता होती है? यदि आवश्यकता ही हो तो वेद जो ईश्वरीय ज्ञान है, फिर उससे उनकी शान्ति क्यों नहीं हुई? एक वेद के चार क्यों किए? फिर सत्रह पुराण भी जो बनाये जिनके संसार के पाप तो कटे परन्तु उनके रचयिता व्यास जी को अशान्ति ही रही यह क्या तमाशे की बात नहीं है!

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय १० व १४ में लिखा है कि व्यास जी ने सौ वर्ष तक मेरु पर्वत पर एकाक्षरी मन्त्र जप भगवती और शिव का ध्यान किया। तब शिव जी उनके पास गये और कहा कि तुम्हारे सब गुण सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा। एक दिन अरणी सहित गुप्त अग्नि को अग्नि की इच्छा करके मथने लगे। उसी समय पुत्र होने की इच्छा भी चित्त में स्मरण हो आई कि जिस प्रकार मन्थन और अरणी के संयोग से अग्नि उत्पन्न होती है उसी भांति हमारे पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न हो सकता? इतने में घृताची नाम अप्सरा दिव्य रूप धारण किये हुए आकाश में दीख पड़ी। मुनि कामातुर हो चिन्ता करने लगे कि मुझको सौ वर्ष तपस्या करते हो गये परन्तु तो भी काम सता रहा है। द्वितीय इससे गृहस्थाश्रम में आनन्द भी प्राप्त न होंगे, यह तो काम के पीछे आकाश को चली जायगी, इसलिए हमारे योग्य नहीं। वह अप्सरा शाप के भय से शुकी का रूप धारण कर निकल गई। तब व्यास जी बड़े विस्मित हुए और मन खींचने पर भी न खिंचा और उनका......अरणी में पात हो गया। वह अरणी को अधिक मथने लगे तब उसमें व्यास जी के आकार का पुत्र उत्पन्न हुआ और शुकी को देख कामातुर हुए थे इसलिए उसका नाम शुक रक्खा।

पण्डित जी! यह व्यास अवतार की दशा। प्रथम परमेश्वर के अवतार, फिर भी पुत्र की इच्छा, जिसके लिए शिव और देवी का ध्यान, फिर

कामातुर होना, फिर अरणी-मन्थन से.........पात होना जिस से शुक की अद्भुत उत्पत्ति होना!

नारद।

इनके विषय में सम्पूर्ण पुराण एक स्वर होकर कह रहे हैं कि यह देवताओं और राक्षसों के समाचार इधर-उधर पहुंचाया करते थे तथा बहुधा उपदेश भी किया करते थे। इसके उपरान्त राजा अम्बरीष की कन्या का विवाह अपने साथ होने के अर्थ विष्णु के पास गये थे और कहा था कि उस कन्या को पर्वत ऋषि भी चाहते हैं इस लिए आप उनका मुंह बन्दर का सा कर देना परन्तु जब पर्वत ऋषि विष्णु जी के पास गये और सब वृत्तान्त कहा तो उनके कहने से नारद का मुंह लंगूर का सा बना दिया। जब यह दोनों स्वयंवर में गये तो लड़की इनका मुंह बन्दर और लंगूर का सा देखकर डर गई और उसने इन दोनों को छोड़ अन्य से विवाह कर लिया। परन्तु शोक तो यह है कि अवतारी होने पर भी उनको यह खबर नहीं हुई कि मेरा मुंह कैसा बना दिया है? जब नदी के पानी में परछाई पड़ी, तब ज्ञात हुआ। इसके उपरान्त **पद्मपुराण** से प्रकट होता है कि विष्णु महाराज ने उनको स्त्री बना दिया और वह बहुत काल तक स्त्री बने रहे, सन्तान भी हुई, परन्तु उन्होंने विष्णु महाराज की माया को स्वयं अवतारी होने पर भी नहीं जाना।

विष्णुपुराण अंश १ अध्याय १५ से विदित होता है कि जब दक्ष ने प्रजा बढ़ाने के लिए ५००० पुत्रों को उत्पन्न किया जिनको नारद महाराज ने बहका दिया। वह सब पृथ्वी के नापने आदि के लिए चले गये। तब दक्ष ने १००० पुत्रों को और उत्पन्न किया, उनको भी बहका दिया, इस कारण दक्ष ने शाप दिया कि जाओ, तुम्हारा यह शरीर छूट जावे, फिर गर्भवास हो।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय ५ श्लोक ४३ में लिखा है कि दक्ष महाराज ने कहा कि हे मूढ़! फिरते-फिरते लोकों में तेरा एक जगह पैर न ठहरेगा अर्थात् भ्रमण ही करता रहेगा—

तन्तुकृन्तन यद् नस्त्वमभद्रमचरः पुनः।
तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम्॥

वामनावतार।

जब दैत्यों ने देवताओं को नाना प्रकार के दुःख दिये तब श्री भगवान् अदिति के गर्भ से उत्पन्न हो देवताओं से कहने लगे कि हम कार्य करें? तब सबने कहा कि आप राजा बलि से तीनों लोक मांग कर हमको दें दीजिए। देवताओं के कहने पर वामन जी आठ ऋषियों समेत वहाँ गये। राजा बलि ने उनको फूलों के आसन पर बिठला, विधि से पूजा और प्रार्थना कर कहा कि आप अपने पधारने का कारण कहिए। तब वामन जी ने कहा कि तीन पांव अग्निकुण्ड के लिए पृथ्वी दीजिए और कुछ नहीं चाहता। **पद्म षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय २४० श्लोक १४—

अग्निकुण्डस्य पृथिवीं देहि दैत्यपते मम।

तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा आप लीजिए। इतना कहते ही छोटे रूप को छोड़ त्रिविक्रम देह को धारण कर सब कुछ उसका एक ही पग में नाप सब इन्द्र को दे दिया और बलि को रसातल पहुंचा दिया। कहिए, श्रीमान् यही परमेश्वरी लीला है? कि देवताओं की सहायता विना झूठ बोले वामन महाराज न कर सके जो साक्षात् नारायण के अवतार थे। क्या इसी का नाम सर्वशक्तिमानता है? इसके उपरान्त ईश्वर संसार का मित्र, तिस पर चालाकी से देवताओं से मित्रता और दैत्यों से वैर, क्या यही परमात्मापन है?

मोहिनी अवतार।

समुद्रमन्थन करने पर जब दैत्यों ने धन्वन्तरि जी के हाथ से अमृत का पूर्ण कलश छीन लिया तो श्री भगवान् ने मोहिनी (स्त्री की) मूर्त्ति बन, दैत्यों को मोहित कर, उनसे अमृत ले, देवताओं को अमृतपान करा दिया। इसी रूप के देखने की जब इच्छा महादेव जी ने प्रकट की, उस समय विष्णु महाराज ने गम्भीर भाव से हंस कर कहा कि यदि आपके देखने की इच्छा है तो दिखलाऊंगा लेकिन वह रूप काम का बढ़ाने वाला है, इसी से कामी जन बड़ा मान करते हैं। चुनांचे जब मोहिनी रूप को दिखलाया महादेव जी मोहित हो गये।[१]

१. पण्डित जी! क्या यही परमेश्वर के कर्त्तव्य हैं, क्या जीत का इससे अच्छा और कोई नुस्खा सर्वशक्तिमान् के पास न था।

परशुराम जी।

इनके पिता का नाम जमदग्नि और माता का नाम रेणुका था। जमदग्नि जी के पास एक कामधेनु गाय थी जिसको कीर्त्तवीर्य ने चाहा, महात्मा ने देने से इन्कार किया। तब बल से राजा ने लेना चाहा। उस समय कामधेनु ने सींगों और खुरों से उसकी सेना का नाश कर दिया। तब राजा ने क्रोध में आकर महात्मा जी को मार डाला। इधर परशुराम जी ने तपकर भगवान् से वरदान पाकर महाबली कीर्त्तवीर्य की सेना को मार, उस राजा को भी मार डाला और इधर-उधर के क्षत्रियों का भी नाश कर दिया। अश्वमेध यज्ञ कर के सात द्वीप वाली पृथ्वी को ब्राह्मणों को दान कर दिया। इन्होंने श्री रामचन्द्र को धनुष के तोड़ने पर बहुत कुछ कहा था फिर उनको भगवान् का अवतार जान आप तपस्या को चले गये।[१]

बलदेव जी

इनके विषय में **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ६१ में श्लोक २७ से ३७ तक लिखा है कि कलिङ्गदेश के राजा ने रुक्मी से कह बलदेव को पाशे के खेल में लगाया और यह जुआ इतना बढ़ा कि अन्त को बलदेव ने क्रोध में आकर दश करोड़ मोहरें दाव पर लगाईं और बलदेव जी महाराज की जीत हुई, परन्तु छल से रुक्मी कहने लगा कि हम जीते। दोनों में विवाद होने लगा। उसका फ़ैसला आकाशवाणी ने किया कि धर्म से बलदेव जी की जीत हुई तो भी उन्होंने न माना और बलदेव जी की हंसी की। बलदेव जी ने फिर उन सबको मारा और द्वारिका को चले गये।

---

१. क्रोध में आकर कीर्त्तवीर्य की सेना और राजा के अतिरिक्त आपने बिना अपराध के हज़ारों क्षत्रियों को सिवाय नाना के कुल के नाश किया। क्या ठीक था ? शायद इसी पर इनको उपास्य नहीं माना ! जैसा कि **पद्मपुराण** अध्याय २४१ में लिखा है कि परशुराम जी शक्ति के प्रवेश के कारण उपास्य नहीं श्रेष्ठ ब्राह्मण महात्मा भगवद्भक्तों को रामकृष्ण जी के अवतारों की उपासना करने योग्य है क्योंकि इनमें अच्छे गुण होने के कारण ऋषियों ने उपासना की है और यही मोक्ष देने वाला है। **"नोपास्यं हि भवेत्तस्य शक्त्यावेशान्महात्मनः"** परन्तु **गरुड़** और **शिवपुराणादि** में इनके नामस्मरण के लिए आज्ञा है। श्रीमान् क्या कहें, कहीं कुछ कहीं कुछ, तिस पर पुराण व्यास जी कृत माने जाते हैं !

विष्णुपुराण अंश ५ अध्याय २५ में लिखा है कि बलदेव जी ने वन में आकर गोपियों के साथ मदिरापान किया—

विचरन् बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुत्तमम्।
आघ्राय मदिरातर्षमवापाथ वराननः ॥ ५ ॥

भागवत स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ६५ में लिखा है कि बलदेव जी मथुरा आये और दो मास ठहरे और वन में मीठी मद्य की गन्ध लेते-लेते स्त्रियों सहित मद्य पिया—

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥

इसके उपरान्त व्रज की स्त्रियों के साथ विलास करने से जिनका चित्त चलायमान है, व्रज में रमण करते जिस प्रकार एक रात्रि व्यतीत हुई उसी भांति सब—

एवं सर्वा निशा याता एकैव चरतो व्रजे।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

बलदेव जी का शराब पीना और सूत को मार बारह वर्ष तक व्रत और प्रायश्चित्त करना

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ६ में लिखा है कि जब कौरव और पाण्डवों का युद्ध हुआ तब बलदेव जी ने किसी की ओर न होकर अपने स्वामियों सहित द्वारिकापुरी को पहुंच कर वहाँ मधुपान किया—

गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम्।
श्वो गन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः ॥ ६ ॥

यानी बलदेव जी मधुपान किये हुए वहाँ से रेवत नाम वन में गये, उसमें रेवती नाम एक स्त्री जो मदयुक्त और अप्सरा के समान रहती थी, उसका हाथ पकड़ लिया—

पीतपानो जगामाथ रेवतोद्यानमृद्धिमत्।
हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमप्सरोपमाम् ॥ ७ ॥

उसको साथ लेकर एक वन में पहुंचे जहाँ नाना प्रकार के पक्षी बोल

रहे थे, वृक्ष फलों से लदे हुए थे उसको देखते हुए ऐसे स्थान पर पहुंचे जहाँ अनेक ऋषि आसनों पर बैठे, जिनके बीच में सूत जी बैठे हुए कल्याणमयी कथा सुना रहे थे। ब्राह्मणों ने बलदेव जी को देखा जिनकी आंखें शराब के नशे में सुर्ख हो रहीं हैं, जब मुनियों ने उनको नशे में देखा तो सिवाय सूत जी के और सबों ने शीघ्र उठकर बड़े आदर, मान से बलदेव जी का पूजन किया—

दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम्॥ २७॥

बलदेव जी सूत जी के न उठने और आदर न करने से क्रोध में आकर मारे गुस्से के आंखें फड़कने लगीं। उसी दशा में जैसे राक्षस को मार देते हैं उसी भांति सूत जी को मार डाला—

ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः।
निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः॥ २९॥

तब ब्रह्मघात देखकर मुनि लोग अपनी-अपनी मृगछाला लेकर वन से निकल गये और बलदेव जी जिनकी आकृति दीवानों की सी हो रही थी, सोचने और पछताने लगे, यह बड़े पाप की बात है कि ब्राह्मण के स्थान में बिना अपराध के हमने सूत जी को मारा कि जिसके कारण ब्राह्मणों ने इस वन को छोड़ दिया—

ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः।
तथा हीमे द्विजाः सर्व्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः॥ ३२॥

जिस प्रकार सड़े मुर्दे में दुर्गन्धि आती है उसी भांति ब्रह्मघात के पाप से मेरा शरीर दुर्गन्धि करता है, यह कर्म मुझसे बहुत बुरा हुआ, अब कहाँ जाऊं? क्या करूं?—

शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः।
आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम्॥ ३३॥

ऐसी ईर्ष्या और नशा, घमण्ड और असावधानी को धिक्कार है कि जिसमें पड़कर मैंने ऐसा भारी पाप किया—

धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम्।
यैराविष्टेन सुमहद् मया पापमिदं कृतम्॥ ३४॥

अब मैं इस पाप के दूर करने के लिए बारह वर्ष तक व्रत और इस बुरे कर्म का उत्तम प्रायश्चित्त करूंगा—

तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम्।
स्वकर्मख्यापनं कुर्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम्॥ ३५॥

इतना कहकर वह तीर्थयात्रा को गये और पाप को दूर किया। ऐसा ही **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध ७ वा ९ में भी लिखा है[१]—

"हा" ऋषिसन्तान! क्या वास्तविक तू इस घोर निद्रा में पड़ी रहेगी? इन निन्दितशत्रुनिर्मित पुराणों को व्यासप्रणीत कहकर अपने पूर्वजों की कब तक निन्दा सुनती रहेगी। हे परमात्मन्! अब आप ही सुमति प्रदान कीजिए। हे जगदीश्वर! आप बुद्धि के भण्डार हैं, उस भण्डार में से बुद्धि देकर हमारे बेड़े को पार लगाइए।

श्रीमान् पण्डितजी—सेठ जी मेरे मन को इस विषय को इतना ही सुन शान्ति हो गई इसलिए अब इसको समाप्त कीजिए।

सेठ जी—बहुत अच्छा, ओ३म् शम्।

पण्डितजी महाराज ने कहा कि आपको उपर्युक्त विषयों के सुनाने में बहुत परिश्रम करना पड़ा है इसलिए अब पन्द्रह दिन के लिए विश्राम दीजिए।

द्वितीय—मुझको एक कार्य के लिए बाहर जाना है।

तृतीय—लाला जानकीप्रसाद जी इलाहाबाद जायेंगे।

चतुर्थ—लाला श्यामलाल व लाला केसरीमल व भोलानाथ व पण्डित घासीराम व लाला बांकेलाल जी को सम्बन्धियों में जाने की आवश्कता है।

---

१. जिनको अंशावतार कहते हैं, वही बलदेव जी हमारे सनातनी भाई ईश्वर के भी बड़े भाई जिनको कि जगन्नाथ कहते हैं उनके इन चरित्रों (शराब पीकर अप्सराओं के साथ रमण, निरपराधी सूत का वध) पर ध्यान दें। कारण कि यदि हम कुछ इस पर टिप्पणी चढ़ावेंगे, तब तो आप कहेंगे कि हमारे इष्टदेव की निन्दा करते हैं। परन्तु अब आप ही सत्य का अवलम्बन करके विचारिये तो सही कि यह कथा उनकी निन्दा करती है या प्रतिष्ठा? क्योंकि उनके चरित्र ही यहाँ स्वयं साक्षी हैं॥

पञ्चम—जगन्नाथ व बाबू हजारीलाल व केदारनाथ लाला बदरीप्रसाद जी व मुंशी लक्ष्मीनारायण व मुंशी श्यामसुन्दर लाल व मुंशी प्यारेलाल व नाज़िर साहिब व छदम्मीलाल गायक हरिद्वार आदि स्थानों में जाने वाले हैं। इसलिए भी इस कार्य को बन्द करना होगा।

लाला मोहनलाल ने कहा कि यथार्थ में हम सबको आवश्यक काम हैं।

पण्डितजी—सेठ जी! हम सब आपको इस परिश्रम का धन्यवाद देते हैं और आशा है कि उपर्युक्त विषयों पर विचार करने से प्रत्येक को अधिक लाभ होगा।

सेठ जी—मैं इस योग्य नहीं यह सब आपकी बड़ाई है। हाँ, मैं अपने परिश्रम को उसी समय सफल समझूंगा जब भारत के प्रत्येक स्त्री और पुरुष मेरे अभिप्राय को जान इस पर सच्चे मन से विचार कर लाभ उठायेंगे यदि सब सज्जन महाशयों की यह सम्मति है और आवश्यक कार्य हैं तो मुझको स्वीकार है। आज ता० २३ जून है, इस हेतु अब ता० ८ जौलाई से कथा का आरम्भ होगा।

सब सज्जन महाशय चल दिए।

आर्य सेठ ने नमस्ते की।

पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया और अन्य सभ्य पुरुषों ने यथायोग्य की। सेठ जी भोजन को गये।

नैपथ्य में—पुराणों की लीला अपार है। देखिए, आगे क्या-क्या निकलता है? यथार्थ में तो पुराणों में कहीं कुछ, कहीं कुछ। इतने में तीन मार्ग आगये और महाशयगण अपने-अपने मार्ग को तीन टोलियों में विभाजित हो चल दिये। सबने आपस में यथायोग्य कहा।

एक टोली के मनुष्यों की बातचीत।

पण्डित प्यारे लाल—पण्डित जी! अब तक आपकी समझ में क्या आया?

पण्डितजी—अभी कुछ न पूछिये। मैंने एक दिन अपने मित्रों के साथ विचार किया था उस समय लाला भोलानाथ और मथुराप्रसाद और लाला प्रयागनरायन जी भी उपस्थित थे परन्तु उत्तर कोई यथार्थ न देता था,

अप्रसन्नता की झलक झलकती थी, अब हम जाते हैं। यात्रा में हमको यदि किसी योग्य पुरुष से भेंट हुई तो अवश्य ही विचार करेंगे, फिर आपसे कहेंगे।

मुंशी विहारीलाल जी ने कहा कि सेठ जी ने पुराणों की वेदविरुद्ध बातों का पुराणों से ही निश्चय कर दिया, इसलिए हमारी समझ में तो यह सब पुराण महर्षि व्यासकृत नहीं जान पड़ते।

इतने में श्रीमान् का स्थान आ गया और नमस्कार कर चल दिए।

॥ इति अष्टम परिच्छेद ॥

पुराणतत्त्व-प्रकाश का प्रथम भाग समाप्त।

जिस प्रकार पृथ्वी पर सब पानी सूर्यनारायण शोष लेते हैं, उसी भांति क्षुधा से पीड़ित मनुष्य के शरीर की सब नसें सूख जाती हैं और जब मूढ़ पुरुष क्षुधा से क्षुधित होते हैं तो तब उनको कुछ नहीं सूझता, वह मर्यादा से बाहर हो जाते हैं, वह लोग माता, पिता, पुत्र, स्त्री, कन्या, भ्राता स्वजन बान्धव को छोड़ देते हैं और वह देवताओं और पितरों गुरु ऋषियों धेनुओं की पूजा नहीं कर सकते हैं। और विपरीत इसके जो क्षुधित नहीं होता, वह इन सब कामों को अच्छे प्रकार कर सकता है। इसलिए कहा है कि जगत् में अन्न से श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं।

एकादशी व्रत

प्रत्येक मनुष्य को सदा पथ्यापथ्य का विचार कर मिताहारी हो पञ्च कर्मेन्द्रियां, पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और ग्यारहवां मन इन एकादश को जिनकी एकादश संख्या है, सदा नियम में चलाने का नाम एकादशी व्रत है, न कि अन्न न खाने का। पृ० ४०१

ओ३म्

पुराण-तत्त्व-प्रकाश

द्वितीय भाग

पन्द्रह दिन व्यतीत होने के पश्चात् समय पर श्रीमान् पण्डित जी और अन्य महाशयों का

प्रवेश।

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डितजी को आते देख उठकर दोनों हाथ जोड़ कर बड़े प्रेम से श्रीमान् को नमस्ते कर कहा कि आइए, पधारिए, विराजमान हूजिए।

सुयोग्य पण्डित जी ने हर्ष के साथ आयुष्मान् कहा और विराजमान हुए।

सेठ जी से कुशल प्रश्न और गृह के समाचार पूछे जिसका उन्होंने यथावत् उत्तर दिया इतने में अन्य महाशयगण भी आ गये। सबने श्रीमान् को यथायोग्य कहकर आनन्द समाचार सुने। इसके उपरान्त श्रीमान् सेठ जी से कहा अब आप कथा का आरम्भ कीजिए परन्तु प्रथम आप देव और त्रिदेव-लीला ही संक्षेप से सुनाकर अन्य विषय को सुनाना आरम्भ करें।

आर्य सेठ—बहुत अच्छा, जो आपकी आज्ञा, प्रथम निम्नलिखित मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना की—

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजुः० ३६.३॥

जो ईश्वर प्राणों से प्यारा, दुःखभञ्जन, सुखस्वरूप, जगत्पिता, अत्यन्त भजने के योग्य, विज्ञानस्वरूप, दिव्यगुणयुक्त सबके आत्माओं का प्रकाशक,

सब सुखों का दाता है, उसको प्रेमभक्ति से निश्चयकर अपनी आत्माओं में धारण करें, वह हमारी बुद्धियों को उत्तम धर्मसंयुक्त कामों में लगावे।

पुनः पण्डित जी से कहा कि अब मैं आपको इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वसिष्ठ, विश्वामित्र, बृहस्पति, शुक्र, अगस्त्य, भृगु जी बड़े-बड़े देव और मुनियों की लीला सुनाता हूँ फिर त्रिदेवलीला को सुनाऊंगा।

प्राचीन कालमें पुरुषों के समान स्त्रियाँ अधिकार रखती थीं अर्थात् जिस प्रकार गुणों से पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते थे, उसी प्रकार विद्या आदि गुणों के कारण स्त्रियाँ भी ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा होती थीं, जब ही तो भारत स्वर्गधाम बना हुआ था। इतिहासों के देखने और पुराणों के पाठ करने से विदित होता है कि प्राचीन काल में अनेकानेक स्त्रियाँ विद्यावती हुईं, उनमें से कुछ के संकेतमात्र वृतान्त सुनाता हूँ। सुलभा ने राजा जनक को योग विद्या की अनेक सूक्ष्म बातें बतलाई थीं और अपने समान घर न मिलने के कारण ब्रह्मचर्य ही से संन्यास ग्रहण कर देश का उपकार दिया था। विद्योत्तमा ने अपने मूर्ख पति कालिदास को कविशिरोमणि बना दिया। वसुन्धरा ने अपने पति बुद्धदेव के संन्यास धारण करने पर स्वयं संन्यास लेकर जगत् का उपकार किया। इसी प्रकार अत्रि के साथ अनुसुइया, वसिष्ठ के साथ अरुन्धती और महर्षि पतञ्जलि के साथ उनकी स्त्री, इस भांति सैकड़ों स्त्रियां ऋषियों के साथ गई थीं। —पृष्ठ ७३

नवम परिच्छेद

देव और मुनिलीला।

इन्द्र लीला।

आर्य सेठ—श्रीमान् इन्द्र महाराज देवतों में देवराज कहलाते हैं, परन्तु पुराणों के पाठ करने से उनके कार्य बड़े घृणित प्रतीत होते हैं। देखो, जब कोई पुरुष तप करने का प्रबन्ध करता और ज्यौं-ज्यौं तप निर्विघ्न होता जाता, त्यौं-त्यौं देवराज के हृदय में घबराहट उत्पन्न हो जाती, फिर वह उसके तप भंग करने के अनेकानेक उपाय सोच उनको काम में लाते। कहाँ तक कहें, वह बड़ी-बड़ी अप्सराओं को भेज, काम के वशीभूत करा, उनको तप से भ्रष्ट करा देते और स्वयं भी बहुत सी अप्सराओं को रखते थे, इस पर भी देवताओं में श्रेष्ठ देवराज के पद पर सुशोभित रहते थे।

देवी भागवत स्कन्ध ४ अध्याय १२ में लिखा है कि शुक्र महाराज दैत्यों की विजय के लिए महादेव के समीप बृहस्पति के समान मन्त्र लेने गये, तब महादेव जी ने उनसे कहा कि १०० वर्ष धूम्रपान करो, फिर मन्त्र बतलायेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया जब यह वृत्तान्त इन्द्र महाराज को ज्ञात हुआ तो अपनी पुत्री जयन्ती से कहा कि हम तुमको शुक्र महाराज को दिये देते हैं, तुम उनको प्रसन्न कर उनका तप भंग करो या वह हम पर वैसे दया करने लगे। यह सुन कन्या वहाँ गई और उनकी अच्छे प्रकार से सेवा की। जब १०० वर्ष व्यतीत हो गये और शिव जी ने प्रसन्न होकर उनको वर दिया तब शुक्र जी ने जयन्ती से कहा कि तुम कौन हो और क्या चाहती हो? सत्य कहो, हम तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हैं जो तुम मांगोगी वही तुमको देंगे। तब जयन्ती ने कहा कि आप अपने तपोबल से जान लीजिए। इस पर उन्होंने कहा कि मैंने जान लिया। परन्तु तुम भी तो कहो। तब उसने अपने आने का वृत्तान्त कह सुनाया जिसके लिए इन्द्र ने भेजा था। जिसको सुन मुनि ने कहा कि अच्छा हम तुम्हारे साथ दस वर्ष तक अलक्ष में विहार करेंगे और वैसा ही किया—

काऽसि कस्याऽसि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम्।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे॥ ३९ ॥
किं वाञ्छसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने।
प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाऽद्य वरं वरय सुव्रते॥ ४० ॥
ततः सा तु मुनिं प्राह जयन्ती मुदितानना।
चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि॥ ४१ ॥
ज्ञातं मया तथाऽपि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम्।
करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया॥ ४२ ॥
शक्रस्याऽहं सुता ब्रह्मन्पित्रा तुभ्यं समर्पिता।
जयन्ती नामतश्चाऽहं जयन्ताऽवरजा मुने॥ ४३ ॥
सकामाऽस्मि त्वयि विभो वाञ्छितं कुरु मेऽधुना।
रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम्॥ ४४ ॥
मया सह त्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनि।
सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया॥ ४५ ॥
एवमुक्ता गृहं गत्वा जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्।
तया सहावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः॥ ४६ ॥

पद्मपुराण—स्वर्ग तृतीयखण्ड अध्याय २४ में भी यह कथा लिखी है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के कृष्णजन्म खण्ड अध्याय ६१ में लिखा है कि एकबार इन्द्र मन्दाकिनी नदी के तट पर गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या को देख काम के वशीभूत हो गये। दैवयोग से किसी दिन गौतम शङ्कर के यहाँ गये हुए थे, इधर इन्द्र ने अपने मनोरथ सिद्ध्यर्थ महात्मा गौतम का रूप बना अहल्या के यहाँ जाकर विहार किया—

एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम्।
शक्रो गौतमरूपेण तां सम्भोगं चकार सः॥ ४४॥

इतने में गौतम घर आये उन्होंने दोनों के अनुचित व्यवहार को

देखकर इन्द्र से कहा कि जा तेरे शरीर में भग ही भग हो जायेगी और अहल्या से कहा कि तू शिला हो जा—

सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो स्वयं मन्दिरमाययौ।
निर्गच्छन्तं महेन्द्रञ्च ददर्श मुनिपुङ्गवः॥ ४५॥
नग्नामहल्यां रहसि पीनश्रोणिपयोधराम्।
मुनिः शशाप शक्रं च भगाङ्गश्च भवेति च॥ ४६॥
कोपाच्छशाप पत्नीञ्च रुदन्तीं भयविह्वलाम्।
त्वञ्च पाषाणरूपा च महारण्ये भवेति च॥ ४७॥

यही कथा **गणेशपुराण** और **मार्कण्डेय पुराण** अध्याय ५ में लिखी है।

नृसिंह उपपुराण अध्याय ६३ में लिखा है कि एक दिन इन्द्र विमान पर बैठकर मानसरोवर पर गये जहाँ कुबेर की स्त्री को देख मोहित हो गये और उसके गृह को गये। उधर इन्द्र की आज्ञा से काम ने स्त्री को प्रेरित किया। तब वह काम के वशीभूत हो पूजा छोड़कर इन्द्र के पास गई। फिर अपने-अपने वृत्तान्त को एक दूसरे ने सुनाया। जिस पर इन्द्र ने कहा कि हमको भजो, तुम्हारे बिना आनन्द नहीं। इन्द्र उसको मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में ले गये, वहाँ अच्छे प्रकार विहार किया। जब कुबेर को यह समाचार मिला कि उनकी स्त्री चित्रसेना को कोई चुरा कर ले गया, तब वह आत्मघात करने पर उतारू हो गये, उस पर मन्त्री ने नाड़ीजङ्घा नाम राक्षसी को उसकी खोज के लिए भेजा जो अत्यन्त सुन्दररूप धारण कर इन्द्र के स्थान को गई जिसको देख इन्द्र वशीभूत हो गये और उसको विमान में बिठला गुप्त स्त्री को दिखलाने के लिए चले। मार्ग में नारद महाराज मिले उस समय इन्द्र से कुशल क्षेम पूछने के पीछे नाड़ीजङ्घा से पूछा कि राक्षसों के यहाँ आनन्द है? तेरे भाई विभीषण प्रसन्न हैं? उस समय इन्द्र ने बहुत विस्मित हो कहा कि इस दुष्टा ने हमको खूब छला। अन्त को उसके मारने का विचार कर महात्मा तृणबिन्दु के आश्रम पर उसके केश पकड़ कर खैंचा, वह रोदन कर पुकारने लगी, इतने में महात्मा भी आ गये, जिन्होंने कहा कि रोदन करती हुई स्त्री को छोड़ दे परन्तु इन्द्र ने कोपके कारण कुछ न सुना और उसको मार डाला। उस समय मुनि ने

कोपकर इन्द्र से कहा कि हे दुष्ट! तूने हमारे तपोवन में ऐसा कार्य्य किया, इस कारण तुम मेरे शाप से स्त्री हो जाओ। तुरन्त इन्द्र स्त्री हो गये।

इन्द्र महाराज की और लीलाओं को सुनिये। जब अदिति के इन्द्र उत्पन्न हो गये उसके बहुत काल व्यतीत होने के पीछे दिति ने कश्यप से कहा कि इन्द्र के समान हमारे भी पुत्र हो तब मुनि ने कहा कि पयोव्रत करो तो वैसा ही पुत्र होगा। दिति स्वीकार कर गर्भ धारण के पीछे पयोव्रत में स्थित हो गई। गर्भ बढ़ चला थोड़े ही दिन प्रसूति के शेष रह गये, तब अदिति जी ने अपने पुत्र इन्द्र से कहा कि जिस प्रकार से हो सके दितिका गर्भ गिरा दो, नहीं तो तुमसे भी अधिक प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा और राज्य छीन लेगा। यह सुन इन्द्र दिति जी के निकट जा उनकी सेवा में लग गया। एक दिन वह दिन में सो गई, इन्द्र पैर दाब रहे थे, अन्त को वह सूक्ष्म रूप को धारण कर दिति के गुप्त स्थान में प्रवेश कर गये और गर्भ के वज्र से सात खण्ड कर दिये। जब वे रोने लगे तो फिर एक-एक के सात-सात खण्ड कर दिये, जो ४९ पवन हो गये। इसी भांति वृत्रासुर से मित्रता कर विश्वासघात किया।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १२ में लिखा है कि पुरूरवा और इन्द्र में बड़ा प्रेम था। एक दिन इन्द्र के आगे उर्वशी नाच रही थी। राजा पुरूरवा भी वहाँ बैठे थे जिनके रूप को देख वह सब भूल गई और इन्द्र ने उसको शाप दिया कि आज से ५५ वर्ष तक तू लता हो कर रहेगी और राजा प्रेत हो कर तेरे साथ भोग करेंगे—

पञ्चपञ्चाशदब्दानि लताभूता भविष्यसि॥ ७३॥

अध्याय १७ में लिखा है कि जब ब्रह्मा जी ने यज्ञ करने का आरम्भ किया और सावित्री जी के आने में देर हुई तब इन्द्र ने एक गोपकन्या को लाकर खड़ा कर दिया जिसके साथ विष्णु की सम्मति से गान्धर्व विवाह कर यज्ञ करने में लग गये, इतने में सावित्री देवी आई और वृत्तान्त को जान इन्द्र से कहा कि तुमने यह अनुचित कार्य्यवाही की है, इससे इन्द्र तुम कभी संग्राम में न जीतोगे, पुत्र भी तुम्हारा नष्ट हो जाएगा—

यस्मात्ते क्षुद्रकं कर्म तस्मात्त्वं लप्स्यसे फलम्॥ ४८॥
यदा संग्राममध्ये त्वं स्थाता शक्र भविष्यसि।

तदा त्वं शत्रुर्भिबद्धो नीतः परमिकां दशाम्॥ ४९ ॥

पराभवं महत्प्राप्य न चिरादेव मोक्ष्यसे॥ १५० ॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ३ में एक कथा है कि इन्द्र बूढे पक्षी का रूप धारण कर एक मुनि के पास गये और कहा कि मुझको भोजन दो। मुनि ने कहा कि जो भोजन की इच्छा हो सो लो। तब इन्द्र ने मनुष्य मांस की इच्छा की। मुनि ने अपने पुत्रों से कहा, जिन्होंने अपना मांस देने से इन्कार किया। तब पिता ने पुत्रों को शाप दिया कि तुम सब पक्षी हो जाओ और इन्द्र से कहा कि अब तुम मेरे शरीर का मांस भक्षण करो—

भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम!।

आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ॥ ४६ ॥

क्योंकि जो अपने वचन पर रहता है वही ब्राह्मण है। तब इन्द्र ने कहा कि मैं योगाभ्यास करके अपने शरीर को छोड़ दूंगा और इस समय किसी जीव के मांस का भक्षण न करूंगा। यह सुन मुनि ने ध्यान से देखा और इन्द्र पक्षी का रूप छोड़ अपने रूप में हो गये। तब इन्द्र ने कहा कि आप पाप रहित हैं आपकी परीक्षा के लिए मैं आया था—

भो भो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुध्याबोध्यं बुधात्मक।

जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ॥ ५२ ॥

चन्द्रलीला।

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय ११ में लिखा है कि बृहस्पति की स्त्री तारा बड़ी सुन्दरी थी। एक दिन अपने यजमान चन्द्रमा के गृह गई। उसको देख चन्द्रमा और तारा चन्द्रमा को देख कामातुर हुई। फिर कई दिन तक दोनों ने विहार किया—

दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः ॥ १.११.९ ॥

फिर बृहस्पति ने अपने शिष्य को भेज बुलवाया, पर वह न गई, तब बृहस्पति जी आप गये और कहा कि हम सब देवताओं के गुरु हैं, तुम हमारे यजमान हो। जो मूर्ख गुरु की स्त्री से भोग करता है, वह महा पातकी होता है। चन्द्रमा ने कहा कि हमने नहीं बुलाया, वह आप अपनी इच्छा से आई है। वह अपने घर को चले गये। फिर थोड़े दिनों के पीछे

कहा कि तुम शिष्य हो, गुरुपत्नी माता के समान होती है। इस पर चन्द्रमा ने कुछ न सुना, तब वह इन्द्र के पास गये और सब वृत्तान्त कहा। तब इन्द्र ने चन्द्रमा के पास दूत भेजा जिसने जाकर सब वृत्तान्त कहा और यह भी निवेदन किया कि आपके यहाँ २८ स्त्रियाँ हैं और इसके उपरान्त रम्भा आदि भी विहार के लिए मौजूद हैं, तब चन्द्रमा ने कहा कि इन्द्र और बृहस्पति दोनों बड़े ज्ञानी हैं जो अपनी सुधि नहीं लेते। देखो, बृहस्पति ने अपने बड़े भाई की स्त्री ममता को ग्रहण कर लिया, उसी दिन से तारा अप्रसन्न हो गई।

इससे तुम कह दो हम नहीं देंगे, उसने वैसा ही कह दिया। फिर क्या, युद्ध की तय्यारी होने लगी। उधर शुक्र ने चन्द्रमा से कहा कि तुम कदापि न देना, हम तुम्हारी सहायता करेंगे। अन्त को बहुत दिनों तक युद्ध हुआ। तब ब्रह्मा जी ने समझा कर तारा को चन्द्रमा से दिला दिया, परन्तु चन्द्रमा ने उसको गर्भिणी कर दिया। जब पुत्र हुआ तब चन्द्रमा ने कहा कि हमारे सदृश पुत्र है, हमको दे दो। इस पर फिर संग्राम की ठहरी। तब ब्रह्मा ने एकान्त में तारा से पूछा कि किसका पुत्र है? उसने धीरे से कहा कि चन्द्रमा का। तब उन्होंने चन्द्रमा को दिला दिया, जिसका नाम बुध रक्खा—

तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे।
सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति॥ ८२॥
तमुवाचाऽसितापाङ्गी लज्जमानाप्यधोमुखी।
चन्द्रस्येति शनैरन्तर्जगाम वरवर्णिनी॥ ८३॥
जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः॥ ८४॥

यही कथा **ब्रह्मवैवर्त्तपुराण** प्रकृतिखण्ड अध्याय ५८ में भी लिखी है।

सूर्यलीला

देवी भागवत स्कन्ध २ अध्याय ६ में लिखा है कि शूरसेन राजा की कन्या कुन्ती जिसको कुन्तिभोज नाम राजा कन्यापन में मांग ले गये थे,

एक दिन राजा ने कुन्ती को अग्निहोत्र की अग्नि की रक्षा के लिए नियत किया। तब किसी समय दुर्वासा ऋषि आये और राजा ने उनको चातुर्मास्य के निमित्त टिकाया, जिनकी कुन्ती ने बड़ी सेवा की जिससे प्रसन्न हो उन्होंने उसको एक मन्त्र बताया कि इससे तुम जिस देवता का ध्यान करोगी वह आकर तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेगा। इतना कह मुनि तो चले गये उसने मन्त्र की परीक्षा लेने के लिए मन्त्र पढ़के सूर्य्य का आह्वान किया। वह मनुष्य का रूप धर वहाँ आये जिसके भय से वह रजस्वला हो गई और कहा कि मैं आपके दर्शन से प्रसन्न हुई, आप अपने मण्डल को चले जाइए।

तब सूर्य्य ने कहा कि तुमने हमको क्यों बुलाया था, जब कि हमको वैसे ही वापिस करना था?

हम तो तुमको देख कर कामातुर हैं, इससे हमको भजो। तब उन्होंने कहा कि हम तो अभी कन्या हैं, आप सर्वसाक्षी और धर्मज्ञ हैं। हम कुलीन की कन्या हैं, इससे आपको ऐसे वचन न कहने चाहिएं—

कुन्त्युवाच—कन्याऽस्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम्।
तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्याऽस्मि सुव्रत ॥ २४ ॥

तब सूर्य्यनारायण ने कहा कि ऐसे जाने से तो हम को बड़ी लज्जा आवेगी क्योंकि सब देवता हमारी निन्दा करेंगे कि ज्यों के त्यों ही लौट आये। इससे हमको रति दो, नहीं तो जिसने तुमको मन्त्र बताया है उसको और तुम्हें दोनों को हम शाप देंगे। तुम्हारा कन्याव्रत भंग न होगा यह कह सविता जी कुन्ती में गर्भधारण कर अपने मण्डल को चले गये—

इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम्।
भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्वाऽतिवाञ्छितम् ॥ २८ ॥
गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मन्दिरे स्थिता। २९।

यह गर्भधारण कर गुप्त स्थान में रहने लगी। जिसके भेद को एक दासी के उपरान्त माता-पिता आदि किसी ने न जाना, जब सूर्य्य के समान पुत्र हुआ तब दासी के हाथ एक मञ्जूषा में बन्द कर गङ्गा में छुड़वा दिया। जिसको अधिरथ ने पाया और पुत्र को लेकर अपनी अपुत्रा स्त्री को दिया, जिसका राधा नाम था। इसलिए वह राधा पुत्र कहलाया॥

पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय आठ में लिखा है कि विश्वकर्म्मा की कन्या संज्ञा जो सूर्य्य को ब्याही गई थी, जब वह अपने पति का तेज न सह सकी, तब उसके अपने शरीर से अपने समान एक स्त्री उत्पन्न की, जिसका नाम छाया था, उसको वह अपनी सन्तान सौंपकर चली गई। छाया रह गई, जो सूर्य्यनारायण की सेवा करने लगी। जिससे सन्तान हुई फिर वह अपनी सन्तान पर अधिक प्रेम करने लगी। जिसका वृत्तान्त जब सूर्य्य को मालूम हुआ तब सूर्य्य भगवान् संज्ञा के पिता के समीप गये और उनकी पुत्री का सब वृत्तान्त कहा। उस समय विश्वकर्मा ने कहा कि आपका तेज न सहकर वह संज्ञा घोड़ी का रूप धारण कर हमारे निकट चली आई। जब हमने उससे कहा कि तूने अपने पति के प्रतिकूल काम किया है, तुम हमारे यहाँ न आओ। इस पर वह उसी रूप में मरुदेश में चली गई और वहाँ ही है। इसलिए आप हमसे प्रसन्न हों और आप कहें तो हम आपको यन्त्र पर चढ़ाकर कुछ छील डालें जिससे तेज कम हो जाय।

तो आपका तेज संज्ञा सह सकेगी ऐसा आपका रूप बना दें जो लोगों को आनन्द करेगा तब सूर्य्य ने कहा कि अच्छा। इस पर विश्वकर्मा ने सूर्य्य को यन्त्र पर चढ़ाकर उनका तेज छील डाला। उसी से विष्णु भगवान् का सुदर्शन चक्र बना, महादेव का त्रिशूल भी उसी से बनाया व इन्द्र का वज्र भी उसी से निर्म्माण किया गया—

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम्।
अपनेष्यामि ते तेजः कृत्वा यन्त्रे दिवाकरम्॥ ६२॥
रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो।
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमे कृत्वा दिवाकरम्॥ ६३॥
पृथक् चकार तेजश्च चक्रं विष्णोः प्रकल्प्यत्।
त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चापरम्॥ ६४॥

इस प्रकार जब सूर्य्य का अद्भुतरूप विश्वकर्मा ने बना दिया, उसमें भी चरण बहुत उत्तम बनाये पर उन सूर्य्य के चरणों को वे मारे तेज के न देख सके, तब उन्होंने बहुत कम तेज के पाद उनके कर डाले—

न शशाक च तद्द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः।
अद्यापि च ततः पादौ न कश्चित्कारयेत् क्वचित्॥ ६६ ॥

इसके पीछे सूर्य्यनारायण भूलोक पर आये व घोड़े का रूप धारण कर उस घोड़ी के रूप को प्राप्त संज्ञा के संग विहार करने लगे।

पर तो भी तेज विशेष था। संज्ञा ने जाना कि और कोई है, इस कारण उसको और भी विह्वलता हुई और बहुत ही व्याकुल हुई व दूसरा पति जानकर नाक से सूंघ उसने सूर्य्य का वीर्य अलग कर दिया। उसी से अश्विनी कुमार नाम देवताओं के वैद्य उत्पन्न हुए—

ततः स भगवान् गत्वा भूर्लोकममराधिपः।
कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः॥ ६९ ॥
अश्वरूपेण महता तेजसा च समन्वितः।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला॥ ७० ॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्कया।
तस्याथ रेतसो जातावश्विनाविति नः श्रुतम्॥ ७१ ॥

फिर जब संज्ञा ने यह जाना कि हमारे स्वामी सूर्य्य ही अश्व का रूप धारण कर आये हैं तब बहुत प्रसन्न हुई और अपना पूर्वरूप धारण कर अपने पति के साथ विमान पर चढ़कर देवलोक को चली गई—

ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं सन्तोषमगमत्परम्॥ ७२ ॥
विमानेनागमत्स्वर्गे पत्न्या सह मुदान्वितः॥ ७३ ॥

वसिष्ठ और विश्वामित्र लीला।

मार्कण्डेयपुराण अध्याय ९ से प्रकट होता है कि त्रेतायुग में राजा हरिश्चन्द्र धर्मात्मा राजा हुए। जब वसिष्ठ जी ने विश्वामित्र का सब वृत्तान्त और राजा हरिश्चन्द्र की दशा को सुना तो क्रोध में आकर उनको शाप दिया कि तुम बगुला हो जाओ—

तस्माद् दुरात्मा ब्रह्मद्विड् यज्वनामवरोपिता।
मच्छापोपहतो मूढः स वकत्वमवाप्स्यति॥ ९ ॥

जब इस शाप को विश्वामित्र ने सुना तब वसिष्ठ की तरफ क्रोध

करके विश्वामित्र ने शाप दिया तू भी मेरे शाप से सूती अर्थात् सारस पक्षी का शरीर धारण कर—

श्रुत्वा शापं महातेजा वसिष्ठं प्रति कौशिकः।
त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत॥ १०॥

जब दोनों पक्षी हो गये तब क्रोध से दोनों आपस में लड़ने लगे और उससे बड़ा हाहाकार मच गया। तब देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा जी वहाँ गये और कहा अब न लड़ो। परन्तु इस पर भी उन्होंने न माना तब ब्रह्मा जी संसार का नाश होते हुए देखकर और उन दोनों महात्माओं की भलाई चित्त से विचार कर तिर्य्यग्भाव उनका हर लिया जब वह तामसी भाव को छोड़कर अपने शरीर अर्थात् वसिष्ठ और विश्वामित्र हो गये तब ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम दोनों ने अपनी-अपनी बड़ाई को छोड़कर तामसी भाव को प्राप्त होकर ऐसा युद्ध किया। देखो, काम, क्रोध यह दोनों तपस्या में विघ्न डालने वाले हैं जिनके वश होकर तुमने अपनी तपस्या में हानि की। अब इस पाप को छोड़ दो, तब ही कल्याण होगा। ब्राह्मण के वास्ते तपस्या ही बड़ा बल है—

तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ।
परित्यजत भद्रं वो ब्राह्मं हि प्रचुरं बलम्॥ २९॥

यह सुनकर दोनों महात्मा लज्जित हो अपना-अपना क्रोध छोड़कर आपस में मिल गये। ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये।

बृहस्पति जी

यह महाविद्वान् देवताओं के गुरु थे। इनके विषय में लिखा है कि इन्होंने अपने बड़े भाई उतथ्य की स्त्री को अपनी स्त्री बनाया था। देवताओं की जीत के लिए शुक्र का रूप धारण कर सौ वर्ष तक दैत्यों के गुरु बन उनको धर्मच्युत कर दिया था, जिससे देवताओं ने उनको फिर परास्त कर दिया परन्तु फिर शुक्र ने प्रताप से विजय पाई॥

शुक्र जी

यह दैत्यों के गुरु थे और सदा धर्म से उनकी विजय चाहते थे। एक बार जब दैत्य बहुत निर्बल हो गये तो आपने महादेव जी की तप्स्या कर

वर पा लिया और दैत्यों की रक्षा में लगे रहे। इसी बीच इन्द्र जी ने अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र के प्रसन्न करने के लिए या कहिए तप भ्रष्ट करने को उनके पास भेजा था। उन्होंने सौ वर्ष तक अदृश्य हो जयन्ती से भोग किया और अपनी पुत्री देवयानी के कहने से मृतक कच को कई बार जीवित कर दिया था।

अगस्त्य मुनि

अगस्त्यमुनि के विषय में यह प्रसिद्ध चला आता है कि आपने समुद्र के सब जल का पान कर लिया था। विन्ध्याचल पर्वत जल सूर्य्य के मार्ग को रोकना चाहता था तब आपने उससे कहा कि अभी न बढ़ो, जब वह दक्षिण से लौट आवें तब बढ़ना, उसने ऐसा ही किया। आज तक पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। अगस्त्य आज तक आते हैं अर्थात् उससे मिथ्या बोले। एक बार अगस्त्यमुनि की स्त्री की इच्छा पूर्ण करने के लिए धन की चाहना हुई, तब वह इल्वल नाम राक्षस के पास गये जिसने अपने भाई वातापि को काट अगस्त्य मुनि को भोजन कराया। वह उसकी धुरी आसन पर बैठ कर सब मांस खा गये। जब इल्वल ने वातापि को पुकारा तब अगस्त्य जी ने कहा कि वह पच गया अब नहीं निकल सकता। देखो, **महाभारत वनपर्व** अध्याय ९९—

वातापे निष्क्रमस्वेति पुनः पुनरुवाच ह।
तं प्रहस्याब्रवीद्राजन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
कुतो निष्क्रामितुं शक्तो मया जीर्णस्तु सोऽसुरः। ९।

कश्यप मुनि।

देवीभागवत स्कन्ध ४ अध्याय ३ में लिखा है कि—

एक समय की बात है कि कश्यप मुनि यज्ञ करने के निमित्त वरुण की गायें चुरा लाये और मांगने पर भी नहीं दीं, जब वरुण जी ने ब्रह्मा जी के पास जा प्रणाम कर कहा कि कश्यप हमारी धेनु चुरा ले गये और मांगने पर भी नहीं देते इससे हमने उन्हें शाप दिया है कि मनुष्य लोक में गोपाल और तुम्हारी दोनों स्त्रियाँ भी गोपी होकर जिस प्रकार हमारी गायें बिना बच्चों के रोती हैं, उसी भांति तुम बन्दी गृह में पड़कर रुदन करोगे। इतना

कह ब्रह्मा जी ने कश्यप जी को बुलाया और कहा कि आप ज्ञाता हो, अन्याय से इनकी गायें क्यों लीं और मांगने पर नहीं दीं? इसलिए तुम्हारे पुत्र होते ही मरते जायेंगे—

मृतवत्सा दितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले। ७॥

भृगु जी

भृगुजी महाराज ने महादेव जी को शाप दिया कि स्त्री के संग मत्त होकर मेरा निरादर किया इसलिए योनिलिङ्ग का स्वरूप तुम्हारा हो जाय। जैसा—

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २५५ में लिखा है—

नारीसङ्गमत्तोऽसौ यस्मान्मामवमन्यते।

योनिलिङ्गस्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति॥ ३२॥

और विष्णु महाराज को भी शाप दिया कि आपने बिना अपराध के मेरी माता का सिर काट डाला इसलिए पृथ्वी पर सात जन्म तक मनुष्यों के बीच में उत्पन्न होगे (**प्रथम सृष्टि खण्ड** अध्याय १३)—

यत्त्वया जानता धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता॥ २४५॥

तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो हि मानुषेषूपयास्यसि॥ २४६॥

इसके उपरान्त इन्होंने मरी हुई अपनी माता को तपोबल के प्रताप से जीवित कर लिया था। देखिए, कैसा अनोखा तपोबल है।

समीक्षा

देवीभागवत स्कन्ध ४ अध्याय १३ में राजा जन्मेजय ने कहा है कि देवताओं के गुरु अङ्गिरा के पुत्र धर्मशास्त्र, पुराण, वेद के वक्ता होकर मिथ्या बोलें तो फिर अन्य मनुष्य क्या मिथ्याभाषण न करेंगे—हरि, ब्रह्मा, इन्द्र और अन्य देवता छल करने में बड़े दक्ष हैं तो अन्य मनुष्यों की क्या कथा! वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, बृहस्पति जब यही लोग पाप करने लगे तो धर्म की कहाँ गति और इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मा यही लोग परदारा गमन करते हैं तो श्रेष्ठत्व त्रिलोकी में किनमें स्थित होगा, किन के वचन उपदेश के विषय में माने जायेंगे? क्योंकि बृहस्पति आदि की तो यह दशा ठहरी कि देवताओं के कहने से शुक्र का रूप दैत्यों से छल करने

के निमित्त धारण कर लिया, फिर संसार में कौन न करेगा—

गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा।
सुतोऽङ्गिरस एवाऽसौ स कथं छलकृन्मुनिः॥ २॥
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम्।
कथितं मुनिभिर्येन परमात्माऽपि लभ्यते॥ ३॥
वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ता चेद्दानवान्प्रति।
कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी॥ ४॥
अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि।
तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः॥ ८॥
क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहोऽयं ममात्मनः।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये॥ ९॥
हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथान्ये सुरसत्तमाः।
सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा॥ १०॥
कामक्रोधाभिसन्तप्ता लोभोपहतचेतसः।
छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः॥ ११॥
वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा।
एते पापरताः कात्र गतिर्धर्मस्य मानद॥ १२॥
इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधाः परदाराभिलम्पटाः।
आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद॥ १३॥
वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियाऽनघ।
सर्वे लोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा॥ १४॥

तब व्यास जी ने कहा कि ब्रह्मा क्या अन्य सब देव रागी हैं क्योंकि जो देह को धारण करेगा उसमें विकार अवश्य होंगे। हाँ, यह चतुर हैं, इससे इनका रागी होना सर्वथा विदित नहीं होता, समय-समय पर यह भी मरते और जन्म लेते हैं। फिर इनसे मिथ्या बोलने-छल करने में शंका क्या हुई।

यह संसार इसी प्रकार का है। भला देह धारण करके कौन पाप नहीं करता? देखो, बृहस्पति की भार्य्या चन्द्रमा ने ले ली थी। बृहस्पति ने अपने भाई की स्त्री को ग्रहण कर लिया था—

व्यास उवाच।

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा॥ १५॥
रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि रागसंयुतः।
"रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप"
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते॥ १६॥
म्रियते नात्र सन्देहो नृप किञ्चित्कदाऽपि च।
स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छन्ति पार्थिव॥ २९॥
प्रभवन्ति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः।
तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते॥ ३०॥
नाऽत्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव।
यो बिभेतीह संसारे स दारान्न करोत्यपि॥ ३२॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो विचरत्यविशङ्कितः।
तस्माद् बृहस्पतेर्भार्या शशिना लम्भिता पुनः॥ ३३॥
गुरुणा लम्भिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् रागलोभादिभिर्वृतः॥ ३४॥

इन्द्र का ४९ पवनों को और सूर्य महाराज का घोड़ा बन संज्ञा घोड़ी के साथ समागम कर अश्विनीकुमार का उत्पन्न करना। शुक्र महाराज का मृतक कच का जीवित करना आश्चर्यजनक और सृष्टिक्रम के विपरीत है। तदनन्तर बृहस्पति जी का मिथ्या बोलना। वसिष्ठ और विश्वामित्र जी का क्रोधी होना। कश्यप का चोरी और अगस्त्य जी का मनुष्य मांस भक्षण करना। पढ़कर रोना आता है क्योंकि हम सब ऋषियों की सन्तान होते हुए अपने प्राचीन पुरुषाओं की निन्दा को पढ़ते-सुनते चले जाते हैं और कुछ विचार नहीं करते। क्या पण्डित जी ऋषियों का रक्त शरीर में शेष नहीं

रहा ? जब ही तो इन निन्दायुक्त पुराणों के न मानने वाले आर्य्यों को आप निन्दक कहते हैं। अब मेरी आप सबसे यही प्रार्थना है कि आप विचार कर सत्य का ग्रहण करें।

सेठ जी—पण्डित जी! अब मैं इस विषय को समाप्त करता हूँ। श्रीमान् कहिए, जहाँ उपर्युक्त कार्य्य देवताओं के हों, वहाँ की मनुष्य लीला का क्या ठीक, फिर भी आप यह कहते ही चले जाते हैं कि कृतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में पाप कम था, कलियुग पाप का मूल है। देखिये तो इन्द्र, चन्द्र, सूर्य्य और बृहस्पति का व्यभिचारी होना, और जिससे अन्य जातियों के सम्मुख नीचा शिर न करना पड़े॥ ओ३म् शभ्॥

श्रीमान् पण्डित जी—सेठ जी! यह बातें सुनकर तो हमारी समझ में भी नहीं आता कि यह पुराण व्यास महाराज ने लिखे हों।

पण्डित जी व अन्य सज्जन पुरुष चलने की तय्यारी कर चल दिये।

आर्य सेठ ने पण्डित जी को नमस्ते और सज्जनों को यथायोग्य कहा॥

पण्डित जी ने आशीर्वाद और अन्य महाशयों ने यथायोग्य की, सब चल दिए।

सेठ जी अपने आवश्यक कार्य्य के लिए घर को गये।

॥ नवम परिच्छेद समाप्त॥

पौराणिक पण्डितों ने अपने प्रयोजन साधनार्थ सर्वोन्नति की जड़ स्त्रियों को शूद्रा कह कर उनको वेदादि विद्या से विमुख रख ब्रह्मचर्य को उठा ***अष्टवर्षा भवेद् गौरी*** *सुना अल्पावस्था में विवाह कराकर बल, बुद्धि साहसहीन कर अपनी चेली बना तन, मन, धन स्वामी जी के अर्पण करने का आर्डर पास कर भारत को चौपट कर दिया।* —*पृष्ठ ८३*

दशम परिच्छेद

श्रीमान् पण्डित जी नियत समय पर आकर सुशोभित हुए और कई एक मान्यगण भी आ गये, परन्तु सेठ जी अदालत में जाने के कारण उपस्थित न थे।

अन्य महाशयगणों ने यथायोग्य की पश्चात् श्री महाराज से मार्ग के आनन्द समाचार सुने इतने में सेठ जी आ गये।

सेठ जी ने हाथ जोड़कर श्रीमान् पण्डित जी को नमस्ते और अन्य महाशयगणों को यथायोग्य कहा।

पण्डित जी ने आशीर्वाद और अन्यों ने यथायोग्य कहा।

इसी बीच लाला हरदेवप्रसाद जी व बाबू पन्नालाल जी व लाला गणेशीलाल जी व लाला भगवानदास अत्तार व बाबू छीतरमल व बाबू तोताराम व लाला डूंगरमल जी जो कासगंज से सेठ जी के यहाँ पधारे थे, आकर विराजमान हुए और सब सज्जनों को नमस्ते की।

पण्डित जी—सेठ जी! अब आप त्रिदेवलीला का संक्षेप से वर्णन कीजिए।

आर्य सेठ—बहुत अच्छा, आज मैं आपको संक्षेप के साथ त्रिदेवलीला को सुनाता हूँ। पण्डित जी ध्यान पूर्वक सुन विचार कीजिए।

त्रिदेवलीला

ब्रह्मलीला

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय १२ में लिखा है कि सरस्वती अपनी पुत्री को जो मन को हरती थी जिसकी कुछ इच्छा न थी, हे विदुर! उसकी इच्छा करते हुए—

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः।

अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्॥ २८॥

अधर्म में पिता की बुद्धि को देखकर उनके पुत्र मरीच्यादि ने उपदेश कर कहा—

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः।

मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन्॥ २९॥

कि हे पिता! यह काम पहिले किसी ने नहीं किया और न अन्य करेंगे, आप काम को वश में न कर बेटी के साथ प्रसङ्ग करना चाहते हो—

नैतत् पूर्वैः कृतं त्वद्ये न करिष्यन्ति चापरे।

यत् त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः॥ ३०॥

मत्स्यपुराण अध्याय ३ में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने अपनी पुत्री पर मोहित होकर उसको अपनी स्त्री बना देवताओं के सहस्र वर्ष पर्यन्त प्रसङ्ग किया। जिसके कारण उनके ऊपर की ओर पांचवाँ शिर उत्पन्न हो गया, जिसको उन्होंने जटाओं से ढक सृष्टि रचने को कहा। जैसा कि—

तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया।

तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत् पञ्चमं तस्य धीमतः।

आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रञ्चावृणोत् प्रभुः॥ ४०॥

वामनपुराण अध्याय ४९ में लिखा है कि यज्ञ से उत्पन्न कन्या को बहुत सुन्दरी देख ब्रह्मा जी उसको मैथुन के लिए बुलाते हुए। और जिस महापाप से ही उनका शिर कट गया—

तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनायाजुहाव ताम्।

तेन पापेन महता शिरोऽशीर्यत वेधसः॥ ५॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ४९ में लिखा है—

पुरा ब्रह्मा विमोहेन सरस्वत्या रूपमद्भुतम्।

दृष्ट्वाजगाम तां पश्चात्तिष्ठेति विह्वलः स्वयम्॥

तद्वचनं तदा पुत्री श्रुत्वा कोपसमन्विता।

उवाच किं ब्रवीषि त्वं मुखेनाऽशुभभाषिणा॥

ब्रवीषि चेद्विरुद्धं वै विभाषी भव सर्वदा।

तद्दिनं हि समारभ्य पञ्चमेन मुखेन च॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्णखण्ड अध्याय ३५ में लिखा है कि जब

ब्रह्मा ने ऐसा पाप विचारा तब ऋषि ने ब्रह्मा से कहा कि ऐसे पापी नरक को जाते हैं, जिसको सुन उन्होंने योग द्वारा प्राण छोड़ दिये, जिसको सुन पुत्री ने भी प्राणों को त्याग दिया, इस पर नारायण आये और दोनों को जीवित कर दिया—

पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ५८ ॥
ब्रह्मा शरीरं संत्यक्तुं व्रीडया च समुद्यतः ॥ ६७ ॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं सर्वान्प्राणान्निरुध्य च ॥ ६८ ॥
बभूव हृदि कृत्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥ ७० ॥
कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः ।
योगेन देहन्तत्याज सा प्रलीना च ब्रह्मणि ॥ ७१ ॥
नारायणो मदंशश्च कृपयागत्य सत्वरम् ।
ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात्सुताञ्च ताम् ॥ ७३ ॥

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय १० में लिखा है कि ब्रह्मा पार्वती के विवाह में उनके चरणों को देखकर स्खलित हो गये, जिससे बालखिल्य ब्रह्मचारी उत्पन्न हुए—

चतुर्वक्त्रश्च रक्ताङ्गो गुरूणां सद्गुरुर्महान् ।
दीर्घायुर्जनकः प्राज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
गौर्या विवाहे तत्पादौ दृष्ट्वा प्रस्खलितोऽभवत् ।
यत्र ते बालखिल्यास्तु जाताः सद्ब्रह्मचारिणः ॥

ऐसा ही **गणेशपुराण** अध्याय ३३ में लिखा है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण महाराज वन में गाय चराने जाते थे तो एक दिन ब्रह्मा गायों को चुरा कर ले गये।

पद्मपुराण पातालखण्ड अध्याय २० में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने प्रजाओं को नाशयुक्त देखा, इससे उनके तारने के लिए अपने गण्डस्थल से अनेक जल उत्पन्न करके पापनाशिनी गण्डकी नदी को बनाया—

पुरा दृष्ट्वा प्रजानाथः प्रजाः सर्वा विपावनीः ।
स्वगण्डविप्रुषोऽनेकैः पापघ्नीं सृष्टवानिमाम् ॥ १४ ॥

और **सृष्टिखण्ड** अध्याय १७ से प्रकट होता है कि ब्रह्मा जी ने पुष्कर में यज्ञ किया। उस समय सावित्री जी के आने में देर हुई तब इन्द्र ने एक गोपकन्या को ला गान्धर्व विवाह कर यज्ञ में बिठलाकर कार्य्य किया। जिसके पश्चात् सावित्री देवी देवताओं की देवियों के साथ यज्ञस्थल में आई और उपर्युक्त कार्य्य को देखकर उन्होंने कहा कि तुमने काम के वशीभूत होकर गोपकन्या को बिठलाकर हमको लज्जित किया। भला, अब मैं किस भांति सखियों को मुंह दिखलाऊंगी ? तब ब्रह्मा जी ने कहा कि काल बीता जाता था और तुम्हारे आने में देरी हुई तब इन्द्र ने यह स्त्री ला दी। विष्णु भगवान् ने अनुमोदन किया जिसके कारण हमने इसको ग्रहण किया। अब हमारे अपराध को क्षमा करो। अब हम तुम्हारा कोई अपराध न करेंगे तुम्हारे चरणों पड़ते हैं। तब उन्होंने ब्रह्मा जी को श्राप दिया कि जाओ आज से तुम्हारी पूजा कार्तिक की पूर्णमासी के अतिरिक्त न होगी—

नैव ते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यन्ति कदाचन।
ऋते तु कार्त्तिकीमेकां पूजां सांवत्सरीं तव॥ १४६॥
करिष्यन्ति द्विजाः सर्वे मर्त्या नान्यत्र भूतले।
एतद् ब्रह्माणमुक्त्वा ह शतक्रतुमुपस्थितम्॥ १४७॥

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय ६ में लिखा है एक बार ब्रह्मा और विष्णु में अपने-अपने महत्त्व पर झगड़ा हुआ अर्थात् ब्रह्मा कहते थे हम सबसे प्रधान हैं। इस पर उन दोनों में घोर युद्ध हुआ तब देवता महादेव जी के पास गये तब शिव जी आकर दोनों के बीच में एक स्तम्भ को इतना बढ़ाया जो आकाश और पाताल में पूर्ण हो गया। इसके अनन्तर शिव ने कहा कि तुम दोनों में से जो इसका अन्त देख आवेगा वही जगत् में सब देवों में बड़ा अर्थात् पूज्य समझा जाएगा। यह सुन ब्रह्मा ऊपर को विष्णु नीचे को गये। जब सैंकड़ों वर्ष जाते-जाते भी उनको पता न मिला, तब विष्णु ने आकर सत्य कह दिया कि मुझको इसका पता नहीं मिला और ब्रह्मा जी ने आकर झूठ बोला कि अन्त तक पहुंच गया। देखो, फूल केतकी का उसके ऊपर रक्खा था। तब महादेव जी ने विष्णु से कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ क्योंकि ईश्वरत्व की इच्छा होने पर भी तुमने झूठ नहीं

बोला इसलिए आज से तुम्हारी मूर्त्ति की पूजा जगत् में होगी—

इतः परं ते पृथगात्मनश्च क्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनं च।

और ब्रह्मा जी से कहा कि तुमने मिथ्या बोला इस कारण तुम्हारी पूजा नहीं होगी—

अथाह देवः कितवीविधि विगतकन्धरम्।

ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षी शठमीशत्वमास्थितः ॥

नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयात्स्थानोत्सवादिकम्।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ३२ में लिखा है कि मोहिनी कामातुर हो ब्रह्मा के समीप गई। ब्रह्मा ने इस कारण निषेध किया कि तू विष्णु की प्रिया है।

तब मोहिनी ने ब्रह्मा जी को शाप दिया कि जाओ तुम्हारी पूजा न होगी। तब ब्रह्मा जी ने वैकुण्ठ में नारायण के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब नारायण जी ने ब्रह्मा से कहा कि तुम गङ्गा स्नान करो, शाप दूर हो जाएगा। आगे तुम्हारी पृथक् पूजा न होगी किन्तु अन्य देवताओं की पूजा के साथ तुम्हारी पूजा होगी—

यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति। ३५.७।

वाराहपुराण अध्याय ११३ में लिखा है कि एक समय ब्रह्मा जी जंभाई लेते थे। उस समय हयग्रीव नामक दैत्य ब्रह्मा के मुख में से वेदों को निकालकर रसालत को ले गया—

वेदेषु चैव नष्टेषु मत्स्यो भूत्वा रसातलम्।

प्रविश्य तानथोत्कृष्य ब्रह्मणे दत्तवानसि ॥

विष्णुलीला

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय १५ में लिखा है कि विष्णु महाराज जालन्धर की स्त्री के समीप उसका रूप बनाकर गये और उससे प्रसङ्ग कर लक्ष्मी के प्रेमरस से अधिक सुख माना और वृन्दा ने वियोग का सब दुःख माधव से दूर किया—

ताम्बूलैश्च विनोदैश्च वस्त्रालङ्करणैः शुभैः।

अथ वृन्दारिका देवी सर्वभोगसमन्विता ॥ ४१ ॥

प्रियं गाढं समालिङ्ग्य चुचुम्ब रतिलोलुपा।
मोक्षादप्यधिकं सौख्यं वृन्दामोहनसम्भवम्॥ ४२॥
मेने नारायणो देवो लक्ष्मीप्रेमरसाधिकम्।
वृन्दा वियोगजं दुःखं विनोदयति माधवे॥ ४३॥

जब वृन्दा को उनका कपट मालूम हुआ, तब उसने शाप दिया कि जिस भांति माया के रूप से मैं मोहित हुई हूँ उसी प्रकार आपकी स्त्री को कोई माया से तपस्वी रूप होकर हरेगा—

अहं मोहं यथा नीता त्वया मायातपस्विना।
तथा तव वधूं मायातपस्वी कोऽपि नेष्यति॥ ५४॥

अध्याय १०३। जब वृन्दा अग्नि में जल गई तो भगवान् वारम्वार स्मरण कर चिता की भस्म की रज के निकट ही स्थित हो गये। मुनि और सिद्धों के समूह के समझाने पर भी शान्ति को प्राप्त न हुए—

ततो हरिस्तामनु संस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुण्ठितः।
तत्रैव तस्थौ मुनिसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम्॥ ३१॥

सृष्टिखण्ड अध्याय ४ में लिखा है कि जब भगवान् ने समुद्रमन्थन किया और अमृत निकला और उसको जब दैत्यों ने ले लिया तब भगवान् ने एक सुरूपा स्त्री का रूप धारण कर दैत्यों को लुभाया, जब वह मोहित हो गये तो उस स्त्री ने कहा कि कमण्डलु हमको दे दो, मैं सदा तुम्हारे घर ही में रहा करूंगी। तब दैत्यों ने उस रूपवती पर मोहित होकर उस अमृत के पात्र को दे दिया। तब वह स्त्री अमृत का पात्र देवताओं को देकर अन्तर्द्धान हो गई—

मायया लोभयित्वा तु विष्णुः स्त्रीरूपसंश्रयः।
आगत्य दानवान्प्राह दीयतां मे कमण्डलुः॥ ७३॥
युष्माकं वशगा भूत्वा स्थास्यामि भवतां गृहे।
तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां नारीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्॥ ७४॥
प्रार्थयानास्सुवपुषं लोभोपहतचेतसः।
दत्त्वामृतं तदा तस्यै ततोऽपश्यन्त तेऽग्रतः॥ ७५॥

ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदामृतम्॥ ७६॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांस्ते समभ्ययुः॥ ७७॥

यही **मत्स्यपुराण** अध्याय २४९ में लिखा है—

पातालखण्ड अध्याय ७५ में लिखा है कि एक समय ब्रह्मा नारदमुनि के साथ विष्णु के समीप गये और उनसे नारद के प्रश्न को कहा तब विष्णु महाराज ने ब्रह्म से कहा कि तुम इनको अमृतसर में स्नान कराओ। ब्रह्मा ने ऐसा ही किया। वह स्नान करते ही अपूर्व स्त्री रूप हो गये—

तत्क्षणात्तत्सरःपारे योषितां सविधेऽभवम्॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता॥ ३१॥

जिनको देखकर बहुधा स्त्रियाँ वहाँ आकर पूछने लगीं कि तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? यह सुन वह विस्मित हो गये। इतने में ललिता सखी आई और उसने चौदह अक्षर का मन्त्र दिया। जिसको ग्रहण करते ही हम वहाँ पहुंचे जहाँ सनातन कृष्ण चन्द्र थे। जिन्होंने मुझको देखकर कहा कि हे प्रिये! यहाँ आओ व भक्ति से हमारे साथ आलिङ्गन करो। ऐसा कई एक वर्ष तक रातदिन क्रीड़ा करते रहे। उसके पीछे उन्होंने राधिका से कहा यह तुम्हारी प्रकृति है जो नारद रूपिणी स्त्री होकर आई है सो इसको अमृतसर में स्नान कराओ स्नान करते ही हम फिर नारद हो गये और स्त्री का रूप जाता रहा और कृष्ण के गुण गाने लगे।

ततो निमज्जनादेव नारदोऽहमुपागतः॥ ४९॥

वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यं मुहुर्मुदा॥ ५०॥

और अध्याय ७४ में विष्णु भगवान् के अवतार श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन को स्त्री बना उसके साथ विहार कर फिर उनको अपने रूप में कर दिया।

राजा अम्बरीष की पुत्री श्रीमती के स्वयंवर में नारद और पर्वत मुनि को धोखा देकर आप ले जाना।

लिङ्गपुराण अध्याय ५ में लिखा है कि राजा त्रिशङ्कु की सती बड़ी पतिव्रता थी, जिसको दश हज़ार वर्ष तक विष्णु की सेवा करते व्यतीत हो गये। एक दिन एकादशी का व्रत और नारायण द्वादशी के दिन भगवान् के

मन्दिर में दोनों ने शयन किया। उससे नारायण ने स्वप्न में कहा कि तू क्या चाहती है, उसने कहा कि मैं ऐसा पुत्र चाहती हूँ कि जो आपका परमभक्त हो। यह सुन कर एक फल उसको दिया। रानी ने प्रातःकाल उठ सब वृत्तान्त राजा से कहा। फिर पति की आज्ञा पा फल का भक्षण कर लिया और समय पूरा होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका संस्कार प्रसन्नता के साथ कर उसका नाम अम्बरीष रक्खा, जो बड़ा विष्णुभक्त हुआ। पिता त्रिशङ्कु अम्बरीष को राज्य दे परलोक सिधारा। अम्बरीष राज्य का भार मन्त्रियों को दे तप करने गया। एक-एक हजार वर्ष तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप से तप करता रहा। इस बीच नारायण ने इन्द्र का रूप धर ऐरावत पर चढ़ अम्बरीष के निकट आ कहा कि मैं इन्द्र हूँ। वर मांग। राजा ने कहा कि मैंने तेरी प्रसन्नता के लिए तप नहीं किया, न तुझसे वर चाहता हूँ, मेरे स्वामी नारायण हैं, जब उनकी कृपा होगी तब वर मांगूंगा, तो हँसकर भगवान् ने अपना रूप प्रकट किया तब तो अम्बरीष भक्ति से प्रणाम कर स्तुति करने लगा। जिसको सुन भगवान् ने कहा कि तेरी इच्छा हो सो वर मांग। तब राजा ने कहा कि जैसे आप शिवभक्त हैं वैसा मैं आपका रहूँ। सब जगत् को वैष्णव बनाऊं। राज्य और यज्ञ करूं। तब भगवान् ने कहा कि ऐसा ही होगा। यह सुदर्शन, चक्र तेरे राज्य की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करेगा। यह कह भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। राजा अम्बरीष भी प्रसन्न हो भगवान् को प्रणाम कर अपनी राजधानी अयोध्या में आ धर्मराज करने लगा। घर-घर भगवान् की पूजा वेदध्वनि से होने लगी। यज्ञों की धूम मच गई। आनन्द से राज्य करते हुए कुछ काल व्यतीत हो गया तब राजा के शुभ लक्षणों से युक्त एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसके जन्म के समय राजा ने बड़ा उत्सव मनाया और उसका नाम श्रीमती रक्खा। जब वह वरने योग्य हुई तो राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई, इतने में नारद और पर्वतमुनि आये जिनका राजा ने बड़ा आदर और सत्कार कर आसन पर बिठाया। उन्होंने भी श्रीमती को देखा तो मोहित हो राजा से पूछा कि यह किसकी कन्या है? राजा ने सब हाल कहा। तब नारद और पर्वत मुनि ने अपने-अपने मन में मिलने की इच्छा की, फिर नारद जी ने राजा को पृथक् ले जाकर कहा कि हमारे साथ इसका विवाह कर दो, इसी भांति पर्वत मुनि ने अपना अभिप्राय प्रकट किया, तब राजा ने दोनों मुनियों से कहा कि

श्रीमती तो एक है आप दोनों इसकी इच्छा प्रकट करते हैं फिर भला मैं किसके साथ विवाह करूं ? इसलिए अब मेरी यह इच्छा है कि पुत्री तुम दोनों में से जिसके साथ चाहे विवाह कर ले, जिसको दोनों ने स्वीकार किया और कहा कि कल जब हम आवेंगे तब ऐसा ही करना। इतना कह दोनों चले गये। परन्तु थोड़ी दूर जाकर नारद ने पर्वत मुनि का साथ छोड़ दिया और विष्णु लोक को गये जहाँ विष्णु को प्रणाम कर कहा कि आपसे एकान्त में मुझको कुछ कहना है, वह उठकर अलग हो गये तब उन्होंने कहा कि अम्बरीष के श्रीमती नामी एक रूपवती कन्या है जिसको मैंने और पर्वतमुनि दोनों ने मांगा, राजा ने कहा कि पुत्री जिसको स्वीकार करे उसे ही मैं दे दूंगा कल स्वयंवर होगा इसलिए पर्वत का स्वरूप बन्दर का सा कर दीजिए। हम आपके भक्त हैं। भगवान् ने कहा कि ऐसा ही होगा। आप जाइए। नारद मुनि भगवान् को प्रणाम कर अयोध्या गये। इसी अवसर में पर्वतमुनि भी वहाँ पहुंचे और भगवान् से एकान्त में प्रार्थना की कि नारद का मुख लंगूर का सा दीख पड़े, क्योंकि हम आपके भक्त हैं। भगवान् ने पर्वतमुनि की प्रार्थना सुनकर कहा कि ऐसा ही होगा। तुम भी अयोध्या को जाओ, परन्तु यह समाचार नारद जी से न कहना। पर्वतमुनि अयोध्या में आये जहाँ उत्तम प्रकार से सभामण्डप बनाया था। कन्या भी सब प्रकार से श्रृंगार किये युवतियों के संग स्वयंवर सभा में आई जहाँ दोनों मुनि भी आए। उनको आसन दिया। फिर श्रीमती से कहा कि इन दोनों में से जिसकी इच्छा हो उसके गले में जयमाल डाल दे। राजा की आज्ञा पा कर दोनों मुनियों के समीप जाकर देखा तो एक का मुख बन्दर और दूसरे का लंगूर सा दीख पड़ा। तब उसने जाना कि यह दोनों वे मुनि नहीं हैं। हाँ, तीसरा आदमी १६ वर्ष की अवस्था का जो श्यामवर्ण सब भूषण धारण किए, दीर्घ भुजा, ऊंची छाती, कमल के से नेत्र अति सुन्दर दीख पड़ा। तब उन दोनों से पूंछने पर जान पड़ा कोई मायावी पुरुष है। हमारी जान में वह बड़ा तस्कर विष्णु इस उत्तम कन्या को हरने तो नहीं आया ? जो उसके मन में कपट न होता तो हम दोनों के मुख बन्दर और लंगूर के क्यों बनाता ? इतने में राजा ने कहा कि महाराज आपके मुख देख कन्या भयभीत होती है तब दोनों ने कहा कि तेरा ही सब प्रपञ्च है। इसलिए तू कह दे कि एक के गले में माला डाल दे। राजा ने कहा, श्रीमती

फिर उठी, उसको फिर वही तीसरी मूर्त्ति सुन्दर दीख पड़ी और यह दोनों वैसे ही दीखे। तब श्रीमती ने निर्भय हो उस तीसरे के कण्ठ में माला डाल दी और वह दिव्य पुरुष कन्या को अपने संग ले अन्तर्धान हो गया। तब तो सभा के लोग कहने लगे कि श्रीमती ने भगवान् का आराधन बहुत किया इसलिए विष्णु भगवान् उसके पति हुए। फिर दोनों मुनि अपना तिरस्कार देख, विष्णुलोक को गये। मुनियों को आता जान श्रीमती से कहा कि तुम गुप्त हो जाओ! तब वह छिप गई। दोनों मुनि वहाँ पहुंचे, प्रणाम किया। भगवान् ने आरदपूर्वक आसन दिया। फिर नारद जी ने कहा कि आपने हमारे साथ कपट किया और उस कन्या को आपने हर लिया। भगवान् ने कानों पर हाथ धरे और कहा कि हे मुनीश्वरो! मुझको इस वृत्तान्त की ख़बर भी नहीं कि आप दोनों क्या करते फिरते हैं। यह सुन नारद जी ने भगवान् के कान में कहा कि हमारे कहने से आपने पर्वत का मुख तो बन्दर का सा बना दिया परन्तु हमारा मुख लंगूर का सा क्यों बना दिया? तब उन्होंने नारद के कान में कहा कि तुम्हारे पीछे पर्वत मुनि आये और तुम्हारे समान उन्होंने हमसे प्रार्थना की तब हमने आपका लंगूर का सा बना दिया? इतना कह भगवान् बोले कि हे मुनीश्वरो! हमको आप दोनों तुल्य ही हैं इसलिए दोनों का वचन मानना पड़ा इसमें हमारा कौन अपराध है? यह सुन नारद ने कहा कि जो आप ऐसा कहते हैं तो वह दोनों भुजाओं में धनुष बाण धारे पुरुष कौन था जो दोनों के बीच में श्रीमती को दीख पड़ा और उसको उड़ा लाया? तब भगवान् ने कहा कि महाराज अनेक मायावी पुरुष जगत् में फिरते हैं क्या जाने श्रीमती को कौन हर लाया। हम तो शपथ खाकर कहते हैं कि आप दोनों की आज्ञा से दोनों के मुख बनाये और हमारी चार भुजा हैं शंख, चक्र, गदा, पद्म धारते हैं, यह भी आप जानते हैं कि हमारी कुछ इच्छा उस कन्या के लिए नहीं थी। इस भांति भगवान् के वचन सुन दोनों मुनि बोले कि ठीक है इसमें आपका कुछ दोष नहीं, यह सब उस दुष्ट राजा की माया है। इतना कह दोनों भगवान् को प्रणाम कर वहाँ से चल दिए। फिर राजा के समीप आये क्रोध से कहने लगे तू बड़ा दुष्ट है। तैंने हम दोनों को बुलाया और कन्या किसी तीसरे को दे दी! इसलिए तमोगुण तेरी बुद्धि को ढाक लेगा जिससे तू अपनी आत्मा को न जानेगा। इतना कहते ही एक अन्धकार का पुंज वहाँ

उत्पन्न हुआ और राजा की ओर चला तब सुदर्शन चक्र ने प्रकट हो उस अन्धकार को हटाया और वह अन्धकार नारद और पर्वत की ओर चला और सुदर्शन चक्र भी दोनों मुनियों के पीछे लगा मुनि भयभीत हो वहाँ से भागे लोकालोक पर्वत पर्य्यन्त भागते फिरे परन्तु सुदर्शन चक्र और उस अन्धकार ने उनका पीछा न छोड़ा। तब तो अतिव्याकुल हो भगवान् की शरण में गये और कहा कि हे प्रभो! हमारी रक्षा करो। राजकन्या के निमित्त हमारी यह दुर्दशा हुई। तब भगवान् ने विचारा कि यह दोनों हमारे भक्त हैं और अम्बरीष भी हमारा ही भक्त है इसलिए हमको तीनों की रक्षा उचित है। यह विचार सुदर्शन चक्र और अन्धकार का निवारण किया और अन्धकार से कहा कि सुदर्शन चक्र हमारी आज्ञा से राजा की रक्षा करता है इसलिए यह निष्फल नहीं हो सकता और ऋषिशाप भी वृथा न होना चाहिए इस कारण अम्बरीष के वंश में बड़ा धर्मात्मा राजा दशरथ होगा उसके पुत्र हम होंगे और हमारा नाम राम होगा और हमारी दक्षिण भुजा भरत, वाम भुजा शत्रुघ्न और शेष का अवतार लक्ष्मण, ये तीन हमारे भ्राता होंगे तब हमारी भार्य्या सीता को रावण हरेगा उस समय तू हमारे समीप आ जाना हम तुझको ग्रहण करेंगे। अब मुनियों का पीछा छोड़ दे इतना भगवान् का वचन सुन अन्धकार नाश को प्राप्त भया और सुदर्शन चक्र अपने स्थान को गया, दोनों मुनि भी बड़े भय से छूटे। भगवान् को प्रणाम कर वहाँ से चले और परस्पर कहने लगे कि अब हम जन्मपर्य्यन्त किसी कन्या से विवाह की इच्छा न करेंगे। कुछ काल के पीछे नारद और पर्वत विष्णु भगवान् की सब माया जान गये। भगवान् से विमुख हो शिव भक्त हो गये—

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम्।
मायां विष्णोर्विनिन्द्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतुः ॥ १५६ ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड में लिखा है कि विष्णु महाराज की लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती यह तीन स्त्रियाँ थीं। एक बार गङ्गा क्षणमात्र विष्णु को देखकर हँसी और कटाक्ष किये जिसको देख सरस्वती ने गङ्गा को शाप दिया कि तू नदी रूप हो जा। इसी प्रकार गङ्गा ने सरस्वती को शाप दिया कि कलियुग में तू नदी रूप होजा। इतने में विष्णु जी जो प्रथम वहाँ से उठकर चले गये थे। आये और सबसे कहा कि बहुत सी स्त्रियों

से संसार में निन्दा होती है और वह नरक को जाता है। इसलिए अब एक सुशीला लक्ष्मी ही को अपने पास रहने दूंगा। गङ्गा तू महादेव और सरस्वती तुम ब्रह्मा के पास जाओ। तब गङ्गा ने विष्णु से कहा कि आपने बिना अपराध के ही मेरा त्याग किया इसलिए मैं अपने शरीर को त्याग दूंगी और तुम निर्दोषी के मारने वाले कहलाओगे और जो मनुष्य निर्दोषी स्त्री को त्यागता है वह कल्पभर नरक में रहता है—

निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो जनो भवे।

स याति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा॥ ६.७३॥

देवीभागवत स्कन्ध ९ अध्याय २३ में लिखा है कि महादेव जी का शङ्खचूड़ दैत्य से संग्राम हो रहा था और दोनों सौ वर्ष तक संग्राम करते रहे परन्तु एक भी न हारा। उस समय विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का रूप धरकर शङ्खचूड़ के पास गये और कहा कि आप सब सम्प्रदायों के दाता हैं। मुझको एक वस्तु की इच्छा है तुम प्रथम देने की प्रतिज्ञा कर लो। दैत्य ने कर ली। तब वृद्ध ब्राह्मण ने कहा हम कवच चाहते हैं, उसने दे दिया। फिर विष्णु महाराज ने शङ्खचूड़ का स्वरूप बना उसकी स्त्री तुलसी के निकट जा प्रसङ्ग किया—

शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति॥ ११॥

गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह॥ १२॥

श्रीमान् और भी सुनिये मुर नाम दैत्य से जब आप संग्राम से हार पहाड़ की एक गुफा में छिपकर सो रहे तिसपर दैत्य पहुंचा इनकी खोज में था इतने में विष्णु महाराज के शरीर से एक कन्या उत्पन्न हो गई और उसने मुर को मार डाला। इतने में इनकी नींद गई, जागे। मुर को मरा देख पूछने लगे इसको किसने मारा? कन्या ने कहा—मैंने, तब उसको प्रसन्न हो वरदान दिए। कहिए यही सर्वशक्तिमानता के कर्त्तव्य हैं? तिस पर इनके कान के मैल से मधुकैटभ नाम दो दैत्य भी उत्पन्न हुये थे। क्या यह हँसी नहीं है?

श्रीमान् पण्डित जी! पुराणों में लिखा है कि समुद्रमन्थन के समय असुरों से अमृत देने की प्रतिज्ञा की और असुर को अमृत पीते देखा तो चक्र से उसका सिर काट डाला। वामनरूप धारण कर राजा बलि से यज्ञ

करने के लिए अग्नि की रक्षा के अर्थ तीन पैर पृथ्वी कुटिया बनाने को मांग सब पृथ्वी ले ली।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अध्याय ८८ में लिखा है कि एक बकासुर दैत्य ने शिव जी की आराधना कर शिव को प्रसन्न कर यह वर पा लिया कि मैं जिसके शिर पर हाथ धरूं वह तुरन्त भस्म हो जाय। दैत्य ने पार्वती के लेने की इच्छा कर शिव जी के शिर पर हाथ धरना विचारा। यह जान वह सब ओर भागे पर कहीं किसी ने रक्षा न की। तब वैकुण्ठनाथ के पास गये। तब वह उठ दैत्य के पास गये और कहा कि यदि शिव ऐसा वर देने वाला सच्चा है तो दक्ष से शापित क्यों हुए? हम तो यह बात झूठी समझते हैं, यदि सच्ची है तो प्रथम अपने सिर पर हाथ रख कर देखो। यह सुन ज्यों ही उसने अपने सिर पर हाथ धरा त्यों ही वह भस्म हो गया, कहिए यह कमाल साक्षात् परमेश्वर को करना चाहिए जो शिव के लिए झूठ बोला और उससे विश्वासघात किया॥

लिङ्गपुराण अध्याय ९६ में लिखा है कि प्रह्लाद की रक्षा के लिए जब विष्णु भगवान् ने नृसिंहावतार धारण कर हिरण्य कश्यप को मारा। उस समय उनको बड़ा ही क्रोध था। इसकी शान्ति के लिए देवताओं ने स्तुति की परन्तु शान्ति न हुई। तब वीरभद्र ने आकर बहुत कुछ स्तुति की तब शान्ति न हुई वरन् वीरभद्र को मारने के लिए उठे। उसी समय शिव महाराज ने शरभ पक्षी का रूप धारण कर अपने पञ्जे और चोंच और पङ्खों से नृसिंह को आकाश में उठाकर ले जाकर खूब पटक-पटक मारा। तब देवताओं ने बहुत स्तुति कर कहा कि आज छोड़ दो। जैसा कि—

उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च॥ ७३॥
उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षाघातविमोहितम्।
हरिं हरन्तं वृषभं विश्वेशानं तमीश्वरम्॥ ७४॥
अनुयान्ति सुराः सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः। ७५।

महादेवलीला।

श्रीमहाराज महादेव की लीला का वर्णन करना भी कठिन है। देखिए, **पद्मपुराण सृष्टिखण्ड** अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मा जी का यज्ञ हो रहा था तो महादेव जी यज्ञशाला में भिक्षा मांगने के लिए मुञ्जसूत्र धारण

किये व एक बड़ी भारी खोपड़ी हाथ में लिए ऋत्विज् के समीप आकर बैठ गये। तब वेदवादी ब्राह्मण ने उनसे कहा कि तुम ऐसा निन्दित भेष बनाये यहाँ यज्ञशाला में कैसे चले आये? तब उनको बहुत धुधकारा वा निन्दा की, और खेदा भी, पर वे वहाँ से न उठे। तब हँसकर महादेव जी उन ब्राह्मणों से बोले कि हे ब्राह्मणो! सबको सन्तुष्ट करते ब्रह्मा जी के यज्ञ में हमको छोड़ और कोई नहीं निकाला जाता, हम कैसे निकाले जाते हैं? तब ब्राह्मणों ने कहा कि अच्छा, भोजन कर लो तब चले जाना। उन्होंने कहा अच्छा, तब लाकर अन्न दिया। उन्होंने कमल में धरकर भोजन कर ब्राह्मणों से कहा कि हम अब स्नान के लिए पुष्कर को जाते हैं, वह चले गये। तब ब्राह्मणों ने कहा कि कपाल यहाँ ही धरा है। हम लोग क्योंकर कार्य्य करें, क्योंकि इसके रहने से अपवित्रता होती है? तब उन ब्राह्मणों में से एक ने उठाकर बाहर फेंक दिया। तब उसको दूसरा और दिखलाई दिया था फिर तीसरा दिखलाई दिया, उसको फेंका, इसी प्रकार हज़ार तक फेंके। जब अन्त न मिला तब सब पुष्कर में स्तुति करने के लिए गये। देखा कि महादेव जी स्नान कर कुछ मन्त्र जप रहे थे। सब ने महादेव जी की स्तुति की तब प्रसन्न होकर कहा कि जाओ यज्ञ करो। हमने कपाल उठा लिया और ब्रह्मा से कहा कि तुम भी कुछ वर मांगो। तब ब्रह्मा ने कहा कि हम यज्ञ में दीक्षित हैं हम ही सबको देते हैं चाहे सो आप ही मांग लीजिए। तब महादेव जी ने कहा कि अच्छा किसी समय हमीं आपसे मांग लेंगे। इतना कह सब चले गये। जब मन्वन्तर बीत गया और महादेव जी घूमते-घूमते दूसरे मन्वन्तर में वहाँ पहुंचे तो ब्रह्मा यज्ञ कर रहे थे। तब फिर उसी भेष में नग्न अपने गुप्त स्थान को बायें हाथ से थामे ब्रह्मा जी की सभा में आये। तब सब उनको देखकर हंसने लगे, कोई उन्मत्त समझ मिट्टी-धूल फैंकने लगे। किसी ने पकड़ा, किसी ने जटा पकड़कर घसीटा। किसी ने कहा कि यह व्रत तुमको किसने सिखलाया है। देखो, यहाँ सुन्दर स्त्रियाँ बैठी हैं जिस पर तुम इस भांति चले आये हो। तब महादेव जी ने कहा कि हमारा शिश्न तो ब्रह्मा का रूप है, और स्त्रियों के गुप्त स्थान सब जनार्दन के रूप हैं। तुम लोग हमारा वीर्य हो, फिर हमको वृथा क्यों क्लेश देते हो? हम ही ने पुत्र उत्पन्न किया है व उस पुत्र में हम भी उत्पन्न हैं—

शिश्नं मे ब्रह्मणो रूपं भगं चापि जनार्दनः।
उप्यमानमिदं बीजं लोकः क्लिश्नाति चान्यथा॥ ६१॥
मयायं जनितः पुत्रो जनितोऽनेन चाप्यहम्।
महादेवकृते सृष्टिः सृष्टा भार्या हिमालये॥ ६२॥

इसी से हमारी की हुई सृष्टि है व हम ही ने भार्य्या हिमालय के यहाँ उत्पन्न की उसमें उमा रुद्रों को दी। बताओ, वह किसकी कन्या है? तुम सब इस बात को भी जान लो कि हमारी स्त्री को ब्रह्मा ने नहीं उत्पन्न किया, न विष्णु भगवान् ने। यह भी जान लो कि हम ही ने ब्रह्मा का शिर काट डाला था फिर तुम लोग ब्रह्मा की उपासना कैसे करते हो और हमको मारते हो? इतना कहने पर भी ब्राह्मणों ने शिव का मारना बन्द नहीं किया। तब शङ्कर ने फिर कहा तिस पर और भी तंग किया जिस पर शिव जी ने उनको शाप दिया कि कलियुग में वेदवर्जित हो जाओगे, बड़ी-बड़ी जटा रखाओगे, यज्ञ कर्म से भ्रष्ट हो जाओगे व परस्त्रियों के सङ्ग भोग करोगे, जब माता-पिता से रहित हो जाओगे तो वेश्याओं की दूतता करोगे। किसी पुत्र को अपने पिता का धन न मिलेगा और न किसी का पुत्र पण्डित होगा। रुद्र के शिवालय की भिक्षा लेंगे, शूद्रों के श्राद्ध में भोजन करेंगे। परस्पर विरोध रहेगा, बहुधा धर्मरहित हो जायेंगे और जिन ब्राह्मणों ने हमको दुःखी नहीं किया उनके घरों में धन, धान्य पूर्ण रहेगा। घर की स्त्रियाँ सुशीलतादि गुणों से युक्त होंगी। ऐसा कह वह अन्तर्द्धान हो गये—

दण्डैश्चापि च कीलैश्च उन्मत्तवेषधारिणम्।
पीड्यमानस्ततस्तैस्तु द्विजैः कोपमथागमत्॥ ६९॥
ततो देवेन ते शप्ता यूयं वेदविवर्जिताः।
ऊर्ध्वजटाः क्रतुभ्रष्टाः परदारोपसेविनः॥ ७०॥
वेश्यायां तु रता द्यूते पितृमातृविवर्जिताः।
न पुत्रः पैतृकं वित्तं विद्यां वापि गमिष्यति॥ ७१॥
सर्वे च मोहिताः सन्तु सर्वेन्द्रियविवर्जिताः।
रौद्रीं भिक्षां समश्नन्तु परपिण्डोपजीविनः॥ ७२॥

आत्मानं वर्तयन्तश्च निर्ममा धर्मवर्जिताः ।
कृपार्पिता तु यैर्विप्रैरुन्मत्ते मयि साम्प्रतम्॥ ७३ ॥
तेषां धनं च पुत्राश्च दासीदासमजाविकम्।
कुलोत्पन्नाश्च वै नार्यो मयि तुष्टे भवन्त्विह॥ ७४॥
एवं शापं वरं चैव दत्वान्तर्द्धानमीश्वरः॥ ७५॥

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय ५ में दक्ष ने पार्वती से कहा कि जिस कारण तुम्हारे पति का निमन्त्रण हमने नहीं किया। सुनो, एक तो वे मनुष्य की खोपड़ी ही को पात्र बनाये लिए रहते हैं, गजचर्म्म ओढ़ते, चिता की भस्म लगाते, त्रिशूल धारण करते, दण्ड लिए रहते, नंगे सदा रहते, श्मशानभूमि में निवास करते, अङ्गों में विभूति लगाते कि कोई भी अङ्ग बाक़ी न रखते। व्याघ्र का चर्म्म ओढ़ते हैं। हाथी का भी ऐसा चर्म ओढ़ते हैं, जिससे रक्त के बिन्दु टपकते रहते हैं। मरे हुए मनुष्यों की कपालों की माला तो गले में धारण किये ही रहते हैं।

हाथ में एक मनुष्य की मांजर बिना मांस की रहती है। एक कन्था ऊपर से और ओढ़े रहते जिसमें सदा अग्नि प्रज्वलित रहता है। सर्प का लङ्गोट बनाय अपना आच्छादित करते। सर्पों के राजा वासुकि जी को ही यज्ञोपवीत बनाये रहते। फिर ऐसा रूप अमङ्गल बनाये पृथिवी पर घूमा करते, यह भी नहीं कि कहीं छिपकर बैठें। आप तो आप, अपने संग हज़ारों भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, ब्रह्मराक्षसादि भी सब नङ्ग-धड़ङ्ग व त्रिशूल धारण किये तीन नेत्रधारी सदा गाते-बजाते और नाचते रहते हैं। ऐसे ही और भी सब ख़राब ही वेश तुम्हारे पति जी किये रहते हैं। उनको देखकर हमको लज्जा होती है कि लोग कहेंगे कि इनके ऐसे ही दामाद हैं। फिर वे यहाँ सब देवताओं के निकट कैसे बैठ सकते हैं? इस प्रकार वेष बनाये वे किसी ऐसे स्थान पर बैठने के योग्य कब हैं वत्से! इन्हीं सब दोषों के कारण व सब लोगों की लज्जा से तुम्हारे पति को निमन्त्रण नहीं दिया—

येनाद्य कारणेनेह पतिस्ते न निमन्त्रितः।
कपालपात्रधृक्चर्मी भस्मावृततनुस्तथा॥ ३६ ॥

शूली मुण्डी च नग्नश्च श्मशाने रमते सदा।
विभूत्याङ्गानि सर्वाणि परिमार्ष्टि च नित्यशः॥ ३७॥
व्याघ्रचर्मपरीधानो हस्तिचर्मपरिच्छदः।
कपालमालां शिरसि खट्वाङ्गं च करे स्थितम्॥ ३८॥
कट्यां वै गोनसं बध्वा लिङ्गेऽस्थ्नां वलयं तथा।
पन्नगानां तु राजानमुपवीतं च वासुकिम्॥ ३९॥

दक्ष के यज्ञ को शिव के द्वारा विध्वंस करना।

दक्ष के यज्ञ में जो देवता और मुनि थे सबको शिव जी ने दग्ध किया। सती के वियोग से खिन्न होय दक्ष का यज्ञ नाश करने की आज्ञा शिव जी ने वीरभद्र को दी। वह शिव जी की आज्ञा पाय अपने रोमों से करोड़ों गण उत्पन्न कर सबको साथ ले, रथपर बैठ ब्रह्मा जी को सारथि बनाया। दक्ष के यज्ञ को जाते भए, कनखल में दक्ष का यज्ञ हो रहा था। वहाँ जाकर कहा कि देवता मुनियों सहित तेरे नाश को मुझे शिव जी ने भेजा है। इतना कह यज्ञशाला में आग लगवा दी। सब गण क्रोधकर यज्ञस्तम्भों को उखाड़ने लगे। इन्द्र की भुजा का स्तम्भ चन्द्रमा को मार गिराया फिर वीरभद्र ने इन्द्र का शिर काट लिया। अग्नि के दोनों हाथ छेदन कर जिह्वा भी खैंच ली। यम का दण्ड छीन माथे में लात मारी। विष्णु और वीरभद्र का युद्ध हुआ। तब उन्होंने हजारों नारायण उत्पन्न किये। वे सब वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे। वीरभद्र ने भी उन सब नारायणों को शस्त्रों से हटाय एक गदा का प्रहार विष्णु भगवान् की छाती में ऐसा किया कि मूर्च्छित हो भूमि पर गिरे और थोड़े ही काल में सम्भलकर उठे और अति क्रोधकर वीरभद्र के मारने के अर्थ सुदर्शन चक्र उठाया परन्तु वीरभद्र ने चक्र सहित उनको स्तम्भन कर दिया और अति तीक्ष्ण बाण से विष्णु भगवान् का मस्तक छेदन कर दिया और उस मस्तक को अपने पवन से उठाकर आहवनीय नाम अग्नि के कुण्ड में गिरा दिया। इस भांति क्षणमात्र में यज्ञशाला दग्ध कर दी। कलश फोड़ दिये, स्तूप उखाड़ डाले और यज्ञ के सभासद् मार दिये। तब यज्ञ भी भयभीत हो मृग का रूप धारण कर आकाश की ओर भागा परन्तु वीरभद्र ने एक बाण से उसका भी शिर उड़ा दिया। धर्म, प्रजापति, कश्यप बहुत पुत्रों करके युक्त

अरिष्टनेमि और अङ्गिरा मुनि कृशाश्व और जो-जो इधर-उधर भागते हुए देख पड़े सबके मस्तकों को पाद से ताड़न कर गिराया। सरस्वती और देवमाता की नासिका अपने तीक्ष्ण नखों से उखाड़ ली। दक्ष प्रजापति का शिर काटकर अग्नि में दग्ध कर दिया। इस प्रकार क्षण भर में उस दक्ष के यज्ञ वाट को श्मशान के तुल्य कर दिया और अति क्रोध से गरजने लगे। तब हाथ जोड़ ब्रह्मा जी प्रार्थना करने लगे कि हे वीरभद्र जी! आपने अपने यज्ञ का नाश किया। देवता और मुनि मार दिए। अब आप क्रोध को शान्त करें, अपने गणों को भी रोकें। यह ब्रह्मा जी का वचन सुन वीरभद्र शान्त भये और अपने सब गणों को भी चारों ओर से बुला लिया। इस अवसर पर नन्दी आदि गणों को साथ ले श्री महाराज शिव जी भी वहां आये। उनको देख ब्रह्मा जी ने बहुत सी स्तुति की और शिव जी को प्रसन्न भये जान यज्ञ में मारे गये देवता और मुनियों को जीवनदान मिलने के लिए प्रार्थना की। श्री महादेव जी ने जो-जो यज्ञ में मारे गये और जिनके अङ्गभङ्ग हो गये थे सबको पहिले की भांति कर दिया और जीवनदान दिया। सरस्वती और देव माता की नासिका ठीक कर दी। इन्द्र, वरुण, विष्णु और दक्ष का शिर लगा दिया। परन्तु दक्ष का पूर्व शिर अग्नि में दग्ध हो गया था, इस कारण यज्ञ के पशु का मस्तक काट दक्ष के लगाया। दक्ष भी फिर जीवनदान पाय हाथ जोड़ शिव जी की स्तुति करने लगे। उसकी स्तुति से प्रसन्न हो शिव जी ने दक्ष को अपना गण बनाया और भांति-भांति के वर दिए। नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवता मुनि परमेश्वर की स्तुति करने लगे शिव जी भी प्रसन्न हो उनको अभीष्ट वर दे अन्तर्द्धान हो गये और देवता भी चले गये।

शिवपुराण द्वितीय रुद्रसंहिता तृतीय पार्वती खण्ड अध्याय १८ में लिखा है कि जब पार्वती हिमालय पर महादेव जी की सेवा करती थीं उसी समय तारकासुर ब्रह्मा जी से वर पाकर राजा हुआ जिससे सम्पूर्ण देवताओं को क्लेश हुआ। तब वह ब्रह्मा जी के समीप गये और वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने कहा कि इसने मेरी तपस्या की है। मैंने इसको वर दिया है कि तब तक तू नहीं तरेगा जब तक महादेव जी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न न होगा। इसलिए तुम सब इसी उपाय को करो। तब इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर सब वृत्तान्त कहा, जिसने हिमालय पर जाकर सबको

पुकार कार्य किया। जब पार्वती इनकी पूजा के लिए गई तो काम से पीड़ित महादेव जी ने अपने हाथ को उसके वस्त्राञ्चल धारण करने को बढ़ाया। तब तक वह दूर चली गई—

इत्येवं वर्णयित्वा तु तदङ्गानि मुहुर्मुहुः। ३७॥

हस्तं वस्त्राञ्चले यावत्तावच्च दूरतो गता। ३८॥

स्त्रियों के स्वभावें से वह सुन्दरी लज्जित होकर अपने अंगों को देखती और प्रकाश करती चली। इस प्रकार पार्वती की चेष्टा देखकर शिव जी मोह को प्राप्त हो गये और कहने लगे जो मैं इसका आलिङ्गन करूं तो कैसा सुख होगा—

एवं चेष्टां तदा दृष्ट्वा शम्भुर्मोहमुपागमत्। ४०॥

यद्यालिङ्गनमेतस्याः करोमि किं पुनः सुखम्॥ ४१॥

फिर क्षणमात्र विचार कर कहा कि मैं किस प्रकार मोह को प्राप्त हो गया जो मैं ईश्वर होकर पराये अङ्ग का स्पर्श करना चाहता हूँ, फिर दूसरा क्षुद्रपुरुष क्या करेगा? ऐसे ज्ञान को प्राप्त हो दृढ़ कटिबन्धन को शिव जी रचते हुए कि कहीं ईश्वर भ्रष्ट होते हैं क्या?—

क्षणमात्रं विचार्यैवं किमहं मोहमागतः। ४२।

ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं पराङ्गस्पर्शनं मुदा।

तर्हि कोऽन्यतमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति॥ ४४॥

एवं विवेकमासाद्य पर्यङ्कबन्धनं दृढम्।

रचयामास सर्वात्मा ईश्वरः किं पतेदिह॥ ४५॥

और अध्याय १४ में लिखा है कि शिव जी महाराज पार्वती के अन्तर्भाव की परीक्षा लेने के लिए वहाँ गये जहाँ पार्वती जी तपस्या कर रही थीं। शिव जी ने एक वृद्ध स्वामी का रूप धारण कर लिया था। तब यह वहाँ पहुंचे पार्वती ने अतिथि का बड़ा सत्कार किया। तब इन्होंने पूछा कि ऐसा घोर तप किस लिए करती हो? तब पार्वती जी ने सखी द्वारा कहा कि शिव को पति बनाने के लिए, तब अतिथि ने शिव की सब प्रकार से बुराई की। जिसको सुन पार्वती ने उसको बहुत बुरा-भला कहकर अनेक प्रकार से शिव की प्रशंसा की। जिसको सुन अतिथि ने शिव रूप में होकर

कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ जो चाहो सो मैं करने को उपस्थित हूँ, चलो घर चलो। पार्वती ने कहा कि मैं पिता के घर जाती हूँ और वहाँ से विवाह कर आपकी सेवा करूंगी। तब शङ्कर ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा हो। वैसा ही होगा। इतना कह अन्तर्धान हो काशी में जाकर विचार करने लगे और पार्वती के विरह में उत्कण्ठित हो सप्तऋषियों का स्मरण किया—

इत्येवं वचनं श्रुत्वा शिवोऽपि च शिवां तदा।
उवाच वचनं त्वं च यदिच्छसि तथेति तत्॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्गत्वा काशीं विचारयन्।
सस्मार च ऋषीन् सप्त विरहाविष्टमानसः॥

लिङ्गपुराण अध्याय २९ में शिव का अतिथि बन सुदर्शन नाम महात्मा की स्त्री के साथ एक घृणित व्यवहार से उसकी परीक्षा करना लिखा है।

महाभारत सौप्तिक पर्व में लिखा है कि कुरुक्षेत्र की लड़ाई के पश्चात् जब युधिष्ठिर और उसके संगी जो रण में से बच निकले थे अपने डेरे पर आये जहाँ रात भर रखवारी करने की प्रतिज्ञा कर रक्षा के वास्ते रहे पर जब अश्वत्थामा जो उनका शत्रु था रात को गया और महादेव जी की विनती की तो उन्होंने उसको अपना खड्ग दिया जिससे उसने द्रौपदी के पुत्रों को मार डाला।

महादेव जी की माया।

देवी भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय १२ में लिखा है। एक बार सनकादि ऋषि महादेव के दर्शनों के लिए वहाँ गये जहाँ शिव जी सदा रहते थे। पहुंच कर देखा तो महादेव और पार्वती क्रीड़ा करने में आसक्त हैं। उन्हें देख पार्वती जी ने लज्जित हो चटपट अपने पट धारण किए। ऋषि लोग यह दशा देख कर बदरिकाश्रम में श्री नारायण के दर्शन को चले गये। तब अति लज्जित पार्वती को देख महादेव जी ने शाप दिया कि तू क्यों लज्जित होती है आगे से हमको छोड़ जो कोई इस वन को आवेगा वह तुरन्त स्त्री हो जावेगा—

अद्य प्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने।
वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति॥ २२॥

इसके अनुकूल वैवस्वत मनु का पुत्र सुद्युम्न नाम राजा बिना जाने, एक दिन शिकार खेलने को गया। वहाँ जाते ही राजा स्त्री और घोड़ा घोड़ी हो गया—

सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह।
तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः ॥ २४ ॥

फिर वह लज्जा के कारण अपने राज्य को वापिस नहीं गया और स्त्री हो जाने पर उसका नाम इला हुआ। एक दिन चन्द्रमा और बुद्ध वहाँ पहुंचे। तब बुद्ध ने उस रूपवती स्त्री को देख उसकी इच्छा की, इसी प्रकार इला ने भी चाहा कि यह हमारे पति हों। निदान, दोनों का समागम हुआ, जिससे पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ—

संयोगस्तत्र संजातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम्। २८ ॥
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम्। २९ ॥

जब पुत्र हुआ तो बड़े सोच में हो वसिष्ठ जी का स्मरण किया जिन्होंने आकर महादेव जी की बड़ी प्रार्थना करने पर प्रसन्न किया और वर मांगा कि यह राजा फिर पुरुष हो जाय जिस पर महादेव जी ने कहा कि हमारा वाक्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हाँ, हम तुमसे प्रसन्न हुए, इससे राजा एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा—

मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किल ॥ ३३ ॥

श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध अध्याय १२ में लिखा है कि देव और दानवों में घोर संग्राम हुआ तब विष्णु जी ने मोहिनी स्त्री का रूप बना दानवों को मदिरा और देवताओं को अमृतपान कराया। जब यह वृत्तान्त महादेव जी ने सुना तब उमा सहित बैल पर चढ़ गणों सहित वहाँ पहुंचे जहाँ विष्णु भगवान् थे। उस समय उन्होंने विष्णु महाराज की स्तुति कर कहा—

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥

तुम्हारे अनके अवतार मैंने देखे। अब मैं उस नारी रूप को देखना चाहता हूँ जिससे तुमने दैत्यों को मोहित किया है और देवताओं को अमृत

पिलाया है—

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः।
पश्यतां देवकार्य्याणि गते पीयूषभाजने॥ १५॥
तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम। १६॥

इस प्रकार से महादेव को सुन के भगवान् विष्णु बोले कि जब अमृत का पात्र देवताओं से दैत्यों के पास चला गया तब मैंने दैत्यों को मोहित करने के निमित्त जो स्त्री का रूप धारण किया था वह तुमको दिखलाऊंगा वह मेरा रूप कामियों को अत्यन्त प्यारा है परन्तु वह केवल सङ्कल्पमात्र ही है। ऐसा कहके भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्द्धान हो गये। जहाँ उमा के सहित महादेव विराजमान थे, और चारों ओर को देख रहे थे। इसके अनन्तर समीपवर्ती बाग़ में जिसमें लाल-लाल और कोमल पत्ते तथा पुष्प खिले हुए थे, गेंद को उछालती हुई एक कन्या अत्यन्त सुन्दरी को देखा और मन्द मुस्कान वाली स्त्री को गेंद उछालते देखकर महादेव ऐसे काम से व्याकुल हुए उनके पास बैठे पार्वती और गणों की भी लज्जा जाती रही। जब उस स्त्री के हाथ से गेंद बहुत दूर चली गई और वह उसको पकड़ने के लिए झपटी और वायु ने उसके बारीक वस्त्र को उड़ाया, महादेव उस स्त्री पर ऐसे मोहित हुए कि पार्वती के सामने ही उसके पीछे भागे। वह वस्त्रहीना महादेव को अपने पीछे आता देखकर बहुत लज्जित हुई और वृक्षों में छिप गई। महादेव भी वृक्षों में उसके साथ चले गये और उसका जूडा पकड़ के (गोद) भर के आलिङ्गन किया। वह स्त्री इधर को तड़पकर महादेव की भुजाओं से छूटी और भागी इस आलिङ्गन से जहाँ-जहाँ महादेव का वीर्य पतन हुआ वहीं-वहीं सोने की खानें हो गईं।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १४४ में लिखा है कि एक बार गाय और बैल आपस में क्रीड़ा कर रहे थे, बैल ने विष्ठा और मूत्र को छोड़ा तो वह महादेव के माथे पर गिर पड़ा—

पुरा वृषेण गोलोके क्रीडता सह मातृभिः।
मुक्तं तथा शकृन्मूत्रं पतितं हरमूर्द्धनि॥ १४॥

तब उन्होंने गौवों को शाप दिया। गौवों ने उनसे प्रार्थना की, तब आपने उनसे कहा कि जब तुम साभ्रमती तीर्थ में ब्रह्मवल्ली के समीप

खण्डसंज्ञक ह्रद में स्नान करो तब तुम स्वर्ग को जाओगी। फिर गौवों ने ऐसा ही किया—

गावः शप्ता भगवता संप्रसाद्य पुनर्हरम्।
प्राप्स्यामहे पुनर्लोकं इति देवं ययाचिरे॥ १६॥
यदा साभ्रमतीतीर्थे ब्रह्मवल्लीसमीपतः।
खण्डसंज्ञह्रदे स्नात्वा स्वर्गं वै प्राप्स्यथ ध्रुवम्॥ १७॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १५४ में लिखा है कि एक बार महातेजस्वी विश्वामित्र जी खड्ग धार तीर्थ पर गये और साभ्रमती में स्नान कर महादेव जी के दर्शन किये और प्रतिदिन पूजा करने लगे, उस स्थान पर किसी दुष्ट कौलिक ने आकर महादेव जी के ऊपर मांस चढ़ाया—

तत्र कोऽपि महादुष्टः कौलिकः पापरूपधृक्।
मांसं दत्तं तदा तेन शिवस्योपरि भामिनि॥ ६१॥

जब विश्वामित्र ने देखा तो कहा कि पापी को दण्ड नहीं दिया। इसलिए मैं उनको शाप दूंगा—

न दत्तस्तस्य दण्डो हि शर्वेण परमात्मना।
तस्मादहं हि निश्चित्य शापं दास्ये न संशयः॥ ६३॥

यह विचार उसी समय महादेव जी को शाप दिया कि इस घोर कलियुग में तुम सर्वथा गुप्त रहो। इस प्रकार शाप देकर श्रेष्ठ मुनि चले गये—

अस्मिन्कलियुगे घोरे गुप्तस्त्वं भव सर्वथा।
इति दत्वाथ वै शापं गतवान्मुनिसत्तमः॥ ६५॥

एक बार शिव जी ने विष्णु भगवान् से भिक्षा मांगी। विष्णु ने अपना दाहिना हाथ समर्पण किया। शिव ने त्रिशूल मारा और रुधिर की धारा कपाल में गिरने लगी। शिव ने उसको मथा उसमें से एक पुरुष उत्पन्न हुआ।

और भी सुनिये कि जब दक्ष महाराज ने अपने यज्ञ में पार्वती के पति महादेव को नहीं बुलाया तो पार्वती जी वहाँ ही भस्म हो गईं। जिनके शोक में महादेव जी हरद्वार में आये और शोक में डूब गये। उस समय नारद

मुनि ने आकर सब वृत्तान्त कहा जिसको ध्यान से उन्होंने जान शोक दूर किया। सृष्टिखण्ड अध्याय ५ में।

शिव जी ने अञ्जनी के साथ छल किया और उसे अपने पास बुला के मन्त्र देने के धोखे से अपना वीर्य उसके कान में डाल दिया जिससे हनुमान् उत्पन्न हुए।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण गणेशखण्ड अध्याय १८ में लिखा है कि एक समय शिव जी ने क्रोध कर शस्त्र से सूर्य्य को मारा जब वह मृतक हो गये तो कश्यप जी महाराज विलाप करने लगे और सब तरफ़ अन्धकार हो गया। कश्यप जी ने शाप दिया जैसे मेरे पुत्र को तूने मारा है ऐसे ही तेरे पुत्र गणेश का शिर निश्चय कट जाएगा—

मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च।
त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नं भविष्यति न संशयः॥ ११॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १२२ में लिखा है कि पार्वती जी ने दीपमालिका के दिन जुआ में महादेव जी को जीतकर नग्न छोड़ दिया था, इससे महादेव जी दुःखी और पार्वती सुखी रहती हैं—

गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः।
अतोऽयं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखे स्थिता॥ २६॥

कहिए श्रीमान्, जुआ खेलना भी धर्म का कार्य हो गया, क्योंकि महादेव और पार्वती जी ने खेला, इतना ही नहीं वरन् साल भर की हार-जीत मालूम होती है यानी उस रात्रि में जो जीते उसकी साल भर तक जीत और जो हारे उसकी साल भर तक हार होती रही है।

श्रीमान् इस हार-जीत को जानने के बहाने से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष जुआ का सर्वत्र प्रचार हो गया। धर्मशास्त्र जिसको बुरा बताते हैं, पुराण उससे वर्ष भर की हार-जीत सुख-दुःख की कथा कहते हैं, तिस पर तुर्रा यह कि पार्वती सी पतिव्रता स्त्री ने महादेव को इतना हराया कि धोती तक जीत ली और नग्न उनको छोड़ दिया। जिससे वह दुःखी रहते हैं। कहिए, जो आप दुःखी रहते हैं फिर औरों को क्योंकर सुखी करते हैं, क्या पतिव्रताओं का यही धर्म है ?

पद्मपुराण पञ्चम पातालखण्ड अध्याय १११ से कि जब सब देवता स्नान करके चले तब तुम्बरू नाम गान्धर्व आकर गाने लगा। उसी समय हनुमान भी गाने लगे जिसको सुन सब प्रसन्न हुए और सबने अपना-अपना गाना बन्द कर हनुमान जी का गाना सुनना पसन्द किया, वह गाने लगे। जब भोजन का समय हुआ सब भोजन को चले, महादेव अपने बैल पर चढ़कर चले, तब हनुमान जी से कहा कि तुम भी चढ़ लो और गाना सुनाते चलो, तब हनुमान जी ने कहा कि आपके सिवाय कोई नहीं चढ़ सकता। हाँ, आप हमारे ऊपर सवार हो लें, हम आपके मुख की ओर मुख किये गाना सुनाते हुए चलेंगे। तब महादेव जी उनकी पीठ पर सवार हो लिए। महादेव के सवार होते ही हनुमान ने अपना शिर काट डाला व घुमाकर कांधे पर जोड़ दिया। १०६ ॥

महादेव जी की ओर मुख करके गाते हुए चले। इस प्रकार शिव जी को गीत सुनाते हुए गौतम जी के घर गये। १७७ ॥

और भोजन के पश्चात् हनुमान जी ने फिर गान किया जिसको सुन जितने काष्ठ गौतम के गृह में लगे थे व जितने आसन पत्रादिक काष्ठ थे, वे सब गीले हो गये और सभी में नवीन पल्लव निकल आए। १७९ ॥

और उस गान में सबका चित्त लग गया। उस समय हनुमान जी महादेव के चरणों पर हाथ धरे हुए शिर पर शिव जी को सवार कराये प्रसन्न चित्त स्तुति कर रहे थे। तब महादेव जी ने हनुमान् जी का शिर दोनों हाथों से पकड़कर जैसा प्रथम था, वैसा ही कर दिया। १८२ ॥

शिव, ब्रह्मा और विष्णु की दशा।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १११ में लिखा है कि एक बार सब देवगण समूह के साथ हरि महादेव सह्य पर्वत की चोटी पर यज्ञ करने के लिए एकत्र हुए। जब मुहूर्त का समय आया तब तक स्वरा नहीं आई। तब विष्णु ने कहा कि यदि स्वरा नहीं आई तो गायत्री से कार्य लो जिसको महादेव जी ने भी पसन्द किया। तब भृगु जी ने ब्रह्मा के दक्षिण भाग में गायत्री को बिठाकर दीक्षा विधि आरम्भ की इतने में स्वरा भी आ गई और कहा कि जहाँ पूजने योग्य की पूजा नहीं होती और अपूज्य की पूजा होती है वहाँ दुर्भिक्ष मरण और भय यह तीन होते हैं। हमारे स्थान पर आपने इस

छोटी को बिठाला है इसलिए सब जड़ और नाना प्रकार के रूप वाले होवो—

ममासने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता।

तस्मात्सर्वे जडीभूता नानारूपा भविष्यथ॥ १५॥

स्वरा के शाप को सुन गायत्री उठी और देवताओं के रोकने पर भी स्वरा को शाप दिया—

ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिता तदा।

समुत्थायाशपद्देवैर्वार्यमाणापि तां स्वराम्॥ १७॥

कि तुम्हारे स्वामी हमारे भी स्वामी हैं। इसलिए तुमने वृथा शाप दिया, इससे तुम भी नदी हो—

तव भर्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येवं तथा खलु।

वृथाशपस्त्वं यस्मान्मां भव त्वमपि निम्नगा॥ १८॥

तब शिव, विष्णु इत्यादि देवता हाहाकार करते पृथ्वी पर गिर दण्डवत् प्रणाम कर स्वरा से कहने लगे—

ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः सुराः।

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन्॥ १९॥

कि हे देवि! तुमने इस समय सब ब्रह्मादि देवताओं को शाप दिया है जो वे सब जड़ होकर नदी हो जावेंगे, तीन लोक नाश हो जावेंगे। तुमने यह अज्ञान से किया इससे इस शाप को निवृत्त करो—

तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनाशं यास्यति ध्रुवम्।

अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम्॥ २१॥

तब स्वरा ने कहा कि यज्ञ के आदि में तुमने गणेश को नहीं पूजा जिससे विघ्न उत्पन्न हुआ। हमारे वचन झूठे न होंगे जिससे अपने-अपने अंश से नदी होकर बहो। हम दोनों भी अपने-अपने अंश से नदी होकर पश्चिम मुख हो कर बहेंगी—

आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे।

भविष्यावो वै देवाः पश्चिमाभिमुखावहे॥ २४॥

इस प्रकार स्वरा के वचन सुन ब्रह्मा, विष्णु और महादेव उसी समय में अपने-अपने अंशों से जड़ होकर नदी होते हुए—

इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
जडीभूता भवन्नद्यः स्वांशैरेव तदा नृप॥ २५॥

विष्णु जी कृष्णा, महादेव जी वेण्या और ब्रह्मा जी ककुद्मिनी गङ्गा ये अलग-अलग उसी समय हो गये—

तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्या देवो महेश्वरः।
ब्रह्मा ककुद्मिनी गङ्गा पृथगेवाभवत्तदा॥ २६॥

और चतुर्थ देवता भी सह्य पर्वत पर अपने-अपने अंश को जड़ करके नदियाँ होते हुए—

देवाः स्वानपि तानंशान् जडीकृत्य विचक्षणाः।
सह्याद्रिशिखरेभ्यस्ताः पृथगासन् सुनिम्नगाः॥ २७॥

गायत्री और स्वरा भी उसी समय में पश्चिम बहने वाली नदियाँ हुईं—

गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा॥ २८॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ११५ में लिखा है कि पीपल भगवान् विष्णु का रूप है, बरगद महादेव और ढाक ब्रह्मा जी का रूप है—

अश्वत्थरूपी भगवान् विष्णुरेव न संशयः।
रुद्ररूपी वटस्तद्वत् पालाशो ब्रह्मरूपधृक्॥ २२॥

इन सबका दर्शन पूजन और सेवा पापनाश करने वाली है—

दर्शनं पूजनं सेवा तेषां पापहरा स्मृता।
दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशकरणी ध्रुवम्॥ २३॥

इनके वृक्ष होने का कारण यह है कि एक बार महादेव जी पार्वती जी से भोग करते समय देवताओं ने अग्नि को भेजकर विघ्न किया था। उस समय उस सुख के भ्रंश होने से क्रोध में आकार शाप दिया था—

ततः सा पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः।
रतोत्सवसुखभ्रंशात्कम्पमाना रुषा तदा॥ २६॥

कि कृमि और कीट आदि भी रति के सुख को जानते हैं उसके विघ्न करने से देवताओ! वृक्ष हो जाओ—

कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरतं सुखम्।
तद्विघ्नकरणाद्देवा ह्युद्भिज्जत्वमवाप्स्यथ॥ २७॥

इस प्रकार क्रोध युक्त पार्वती जी ने देवताओं को शाप दिया तो सब देवसमूह निश्चय कर वृक्ष हो गये।

उसी शाप से विष्णु जी पीपल और महादेव जी बरगद हुए—

तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः॥ २९॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १५८ में लिखा है कि पूर्वसमय में कोलाहल के युद्ध में दानवों ने देवताओं को जीत लिया तो देवता प्राण बचाने की इच्छा से सूक्ष्म होकर वृक्षों में प्रवेश कर जाते भये—

पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निर्जिताः सुराः।
वृक्षेषु विविशुस्तत्र सूक्ष्माः प्राणपरीप्सया॥ २॥

वहाँ बेल के पेड़ में महादेव जी, पीपल में नाशरहित हरि जी, सिरस में इन्द्र और नीम में सूर्य्यनारायण स्थित हो गये—

तत्र बिल्वे स्थितः शम्भुरश्वत्थे हरिरव्ययः।
शिरीषेऽभूत्सहस्राक्षो निम्बे देवः प्रभाकरः॥ ३॥

पण्डित जी—सेठ जी! अब इस विषय को समाप्त कीजिए।

सेठ जी—मेरी तो यह इच्छा थी आपका दो, तीन दिन त्रिदेवलीला ही सुनाता क्योंकि इन तीनों देवों के वृत्त से पुराण भरे पड़े हैं।

पण्डित जी—हम देव और मुनिलीला ही को सुनकर पुराणों का तत्त्व जान चुके थे परन्तु त्रिदेव लीला ने तो रहे सहे भ्रम को मेट दिया। क्या कहूँ सेठ जी! मुझसे आज आपकी प्रशंसा नहीं होती। यदि स्वामी दयानन्द जीवित होते तो मैं उनके चरणों को पकड़कर कृतार्थ होता, जिन्होंने भारत के रहे सहे महत्त्व को बचा लिया।

इस विषय में आपके नोटों की आवश्यकता नहीं क्योंकि ब्रह्मा,

विष्णु और शिव जी के नाम से जो कार्य पुराणों में लिखे हैं जिनको आपने सुनाया है, वह स्वयं ही उनके महत्त्व का प्रकाश कर रहे हैं। न मालूम सनातन धर्म सभा के लीडर पण्डित आदि क्यों प्राण देते हैं और इन निन्दित कर्मों को स्तुति कहते हैं? सच तो यह है कि यह पुराण व्यास महाराज के कदापि लिखित नहीं है? कहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, भगवान् के रूप, कहाँ उनके यह अनोखे कर्त्तव्य! अब तो मुझको भी रोना आता है। सत्य कहा है कि जब नाश होने वाला होता है तब बुद्धि प्रथम बिगड़ जाती है, यही दशा भारतवासियों की हो रही है। कि हम सब अपने मुंह अपनी निन्दा को स्तुति कहकर अन्यों से कहलाना चाहते हैं। धन्य है स्वामी जी को जिन्होंने लाखों आदमी एक ओर होते हुए भी सत्य के बल का संसार में प्रकाश कर दिया। इस कारण सेठ जी मैं तो इस विषय में आपका आज से सहमत हूँ। पुराण स्वार्थियों ने हमारी अवनति के लिए बनाकर प्रकाश और प्रचार कर दिए। बस और मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

अन्य महाशयों में से कितने एक महाशयों ने कहा कि महाराज पुराणों की लीला सुनकर तो हमारे छक्के छूट गये। यह कैसे धर्म पुस्तक हैं, इनमें यह क्या लिखा है?

सेठ जी—श्री महाराज और अन्य महाशयों को धन्यवाद देता हूँ क्योंकि आपने सत्य को प्रकट कर दिया। आपसे प्रार्थना यही है, आप भले प्रकार अपने मित्रों के साथ विचार करें और संसार में सत्य का प्रकाश करें, जिससे भारत के धर्मसम्बन्धी विचारों की जगत् में बड़ाई हो और हम सब देव, पितर, ऋषि-ऋण से उर्ऋण हो परमात्मा की आज्ञा पालन करते हुए सुखों को भोगें॥ ओ३म् शम्॥ सब चल दिए।

सेठ जी ने पण्डित जी को नमस्ते, अन्यों को यथायोग्य कहा।

पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया, अन्य सभ्यगणों ने यथायोग्य कहा।

सेठ जी अपने गृह में पधारे।

॥ इति दशम परिच्छेद॥

एकादश परिच्छेद

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी नमस्ते।

पण्डित जी—आयुष्मान्।

अन्य सज्जन महाशय आने लगे और यथायोग्य कर विराजमान होते गये।

सेठ जी—कहिए श्रीमान् अब आप क्या सुनना चाहते हैं?

पण्डित जी—सेठ जी व्रत और तीर्थ माहात्म्य के विषय में जो आपकी सम्मति हो उसका अच्छे प्रकार वर्णन कीजिए।

सेठ जी—बहुत अच्छा।

श्रीमान् पण्डित जी! पुराणों में अनेकानेक व्रत लिखे हैं जिनके बड़े-बड़े माहात्म्य सुन-सुन कर संसारी जन उनका पालन करना अपना परम धर्म समझते हैं यदि मैं उन सबका वृत्तान्त सुनाऊं तो बहुत काल चाहिए इसलिए संक्षेप के साथ उनके नाम और माहात्म्य सुनाता हूँ। आप दया पूर्वक सुन विचारकर सार को ग्रहण कर कार्य कीजिए जिसका प्रभाव पब्लिक पर उत्तम हो॥

व्रतों की संख्या

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध में—कृष्णाष्टमी, अनघाष्टमी, सोमाष्टमी, ध्वजनवमी, उल्कानवमी, दशावतारव्रत, रोहिणीव्रत, अवियोगव्रत, गोविन्दशयनव्रत, भीष्मपञ्चक, मल्लाद्वादशी, अखण्डद्वादशीव्रत, मनोरथ-द्वादशी, धरणीद्वादशीव्रत, अङ्कपादव्रत, दुर्गन्धिनाशनव्रत, यमादर्शनव्रत, अनङ्गत्रयोदशीव्रत, पालीव्रत, रम्भाव्रत, शिवचतुर्दशी, श्रावणिकाव्रत, नक्तव्रत, सर्वफलत्यागव्रत, युद्धविजयपूर्णिमाव्रत, सावित्रीव्रत, कृत्तिकाव्रत, अनन्तव्रत, नक्षत्रव्रत वैष्णवनक्षत्र पुरुषव्रत, शैवनक्षत्र पुरुषव्रत, सम्पूर्णव्रत, वेश्याओं को कल्याण देने हारे कामव्रत, शनैश्चरव्रत, संक्रान्तिव्रत, पञ्चाशीतिव्रत, इत्यादि।

उत्तरार्द्ध में—शकटव्रत, तिलकव्रत, अशोकव्रत, करवीर, कोकिल, बृहद्व्रत, भद्रव्रत, अशून्यशयनव्रत, गोत्रिरात्रव्रत, हरकालव्रत, ललिता तृतीयाव्रत, अवियोगव्रत, उमामहेश्वरव्रत, सौभाग्य शयनव्रत, अनन्तफलदा तृतीया, रसकल्याणी तृतीया, आर्द्रानन्दकरी तृतीया, चैत्र भाद्र और माघशुक्ल तृतीया, अनन्तादि तृतीया, अक्षय तृतीया, अङ्गारक चतुर्थी, विघ्नविनाशक चतुर्थी, शान्तिव्रत, सरस्वतीव्रत, नागपञ्चमीक व्रत, भीम पञ्चमी व्रत, विशोक षष्ठीव्रत, कमलषष्ठी, मन्दारषष्ठी, ललिताषष्ठी, विजयसप्तमी, कुक्कुटीव्रत, अचलासप्तमी, बुधासप्तमी श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत, दुर्गाष्टमीव्रत, प्रतिमास, पुष्यद्वितीयाव्रत, गौरीतृतीयाव्रत, विधानचतुर्थीव्रत, सप्तमीव्रत, रथसप्तमीव्रत, फलसप्तमीव्रत, जयासप्तमीव्रत, जयन्ती, महाजयन्ती, नन्दासप्तमी, फाल्गुन, शुक्लसप्तमी, पदद्वयव्रत, दोला, दमलक, शयन आदि।

मत्स्यपुराण में—कृष्णाष्टमी, कुलवृद्धव्रत, सौभाग्यशयनव्रत, पुरुषस्त्री का वियोग न होने वाला, अन्ध्रव्रत, संसार के उद्धार होने का व्रत, विशोकसप्तमी, पापमोचनसप्तमी, शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी, मदारसप्तमी, शुभसप्तमी, प्रियजन का वियोग न होने वाला व्रत, अनन्त फलदायीव्रत, विष्णु भगवान् के उत्तम व्रत, इत्यादि व्रतों का वर्णन है।

वाराहपुराण में लिखा है कि पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, एकादशी व द्वादशी व्रत, विधान, अभीष्ट पतिलाभव्रत, मुक्तिप्राप्तव्रत, धन्यव्रत, कान्तिव्रत, सौभाग्यप्राप्तिव्रत, अविघ्नव्रत, शान्तिव्रत, पुत्रप्राप्तव्रत, शौर्य्यव्रत, सार्वभौमव्रत, पृथ्वीकृतव्रत, अगस्तशरीरव्रत, कापालिकव्रत।

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखण्ड में लिखा है कि भीम निर्जला वेश्यानङ्गक व्रत, रोहिणीचन्द्रशयनव्रत, अशून्यशयनव्रत, सौभाग्यव्रत, सावित्रीव्रत।

और **षष्ठ उत्तरखण्ड** में लिखा है कि तुलसी जी का त्रिरात्रवृत, जन्माष्टमीव्रत, त्रिस्पृशाव्रत, उन्मालिनीव्रत, पक्षवर्द्धिनी एकादशी, बारह मास की एकादशी के व्रत, श्रवणद्वादशीव्रत, कार्तिक माहात्म्य की अनेकानेक प्रकार से उत्तमता दिखाई है फिर उसके महीने भर के व्रत का वर्णन, भीष्म पञ्चकव्रत, दीपव्रत, चातुर्मास्यव्रत, वैतरणीव्रत, ऋषिपञ्चमीव्रत, यमद्वितीया, गोवर्द्धनपूजा, राधाअष्टमी, बृहस्पति आदि व्रतों का वर्णन है।

अग्निपुराण में लिखा है कि प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी,

पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, श्रावण द्वादशीव्रत, अखण्ड द्वादशीव्रत, त्रयोदशीव्रत, चतुर्दशी शिवरात्रिव्रत, अशोक पूर्णिमाव्रत, वारव्रत, नक्षत्रव्रत, दिवसव्रत, मासव्रत, नानाव्रत, दीपदानव्रत, मासोपवासव्रत, भीष्मपञ्चकव्रत, कौमुद व्रत हैं।

शिवपुराण में लिखा है कि शिवरात्रि व्रत विधि उसका माहात्म्य लक्षणाष्टमीव्रत, नामाष्टमीव्रत, पाशुपतव्रत।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—हरिव्रत, व्रतमाहात्म्य, त्रिमासिकव्रत, द्वादशी जयदुर्गाव्रत, जन्माष्टमीव्रत आदि।

इसके अतिरिक्त **आदित्य पुराण** के अनुसार रविवार, शिवपुराण से सोमवार और तेरस चन्द्रखण्ड के कथनानुसार मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर को व्रत रखने की आवश्यकता है यही सप्ताह के सात दिन होते हैं। और भी सुनिये विष्णु भगवान् की एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह भगवान् की अनन्त चौदश, चन्द्रमा की पौर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्त्तिक स्वामी की छट, नागों की पञ्चमी, गणेश की चौथ, गौरी की तीज, अश्विनी कुमार की दुइज आद्या देवी की प्रतिपदा, भैरव की अमावस। और २४ एकादशियों के व्रतों के रहने की आज्ञा है जिनमें व्रत के दिनों में यम और नियम धारण करने का भी आदेश है और बहुधा व्रतों में अन्न खाने का निषेध ही नहीं वरन् महापाप बतलाया है। इन उपर्युक्त व्रतों की महिमा को सुन-सुन कर स्त्री, पुरुष लट्टू हो जाते हैं क्योंकि लिखा है कि इनके करने से मान्धातादि राजा स्वर्ग को गये, महादेव बाबा कपाल से छूटे। श्रीरामचन्द्र जी दुःखों से बचे, भीमसेन जी का कल्याण हो गया, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पाप क्षण में कट गये, योगीजन इन व्रतों को कर मोक्ष पा गये। इसके उपरान्त यज्ञ दान, तीर्थ भी व्रतों की समानता नहीं कर सकते। तदनन्तर काशी ग्रहण स्नान, गयापिण्ड, गौमती स्नान, कुम्भ में केदारदर्शन, बदरीनारायण यात्रा, कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण स्नान इत्यादि भी व्रतों के फल के समान फल नहीं देते और न हज़ार अश्वमेध, न सौ राजसूय यज्ञ उनकी बराबरी कर सकते हैं। इसके उपरान्त व्रत करनेवालों की सौ-सौ पीढ़ी तर जाती हैं। १८ प्रकार के कोढ़ की यही दवा है। प्रथम के हज़ार जन्म के पाप दूर हो जाते हैं। ८८ हज़ार विप्र के भोजन का फल

मिलता है। काशी, प्रयाग, द्वारिका, बदरीनाथ आदि तीर्थों की कौन कहे त्रिलोकी के तीर्थों का फल इन व्रतों के करने से मिलता है, मन, वाणी के पाप जागरण से जाते रहते हैं, वर्षा कराने की यही औषध है, इससे ब्राह्मण का मारनेवाला, सोना चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरुपत्नी से गमन करनेवाला, वेश्यागामी, जुआरी, गोत्रनाशक, झूठ बोलने वाला, गुरुनिन्दक, युद्ध से भागने आदि के पाप ही नहीं, वरन् मेरु के समान हत्या सब दूर हो जाती है और पुत्र सन्तान, धन, ऐश्वर्य, सम्पदा, बुद्धि, राजसुख, मोक्ष मिलती है। विधवापन जाता रहता है, कुल का विरोध मिट जाता है इत्यादि फल प्राप्त होते हैं। जिसके कारण भारतवासी स्त्री, पुरुष बिना विचार किये इधर को झुकते चले जाते हैं जिससे भारत का स्वरूप ही पलट गया।

व्रत-तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण

अब प्रथम मैं **एकादशी तिथि की महिमा** पश्चात् **विष्णु महाराज का एकादशी होना** और **उनके शरीर से एक कन्या का उत्पन्न होना** और तत्पश्चात् **२४ एकादशियों की कथा** इसके अनन्तर अन्य **व्रतों की महिमा** का वर्णन करूंगा, आप कृपापूर्वक श्रवण कीजिए। देखिए—

पद्मपुराण सप्तम क्रियायोगसार अध्याय २२ में लिखा है कि जिस प्रकार सब देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ हैं। आदित्यों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, वृक्षों में पीपल, वेदों में सामवेद, कवियों में शुक्र, वर्णों में ब्राह्मण, मुनियों में व्यास, देवर्षियों में नारद, दानों में अन्नदान, इन्द्रियों में मन, महीनों में कार्तिक, पाण्डवों में अर्जुन, शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ हैं। उसी भांति सब व्रतों में एकादशीव्रत श्रेष्ठ है क्योंकि विष्णुभगवान् स्वयं एकादशी तिथि हो गये। प्रथम भगवान् ने स्थावर जङ्गम संसार को रच सबके दमन के लिए पाप पुरुष को रचा—

सृष्ट्वादौ पुरुषश्रेष्ठः संसारं सचराचरम्।
सर्वेषां दमनार्थाय सृष्टवान् पापपूरुषम्॥ ७॥

जिसका ब्राह्मणों की हत्या मस्तक, मदिरा का पीना नेत्र, सोने का चुराना मुख, गुरु की शय्या में जाना कान, स्त्री हत्या नाक, गऊ की हत्या का दोष भुजा, न्याय का चुराना गर्दन, गर्भहत्या गला, पराई स्त्री से भोग

मित्र, मनुष्यों का मारना पेट, शरणागत की हत्यादिक नाभि के छिद्र की अवधि, करिहांव गुरु की निन्दा सक्थिभाग, कन्या का बेचना विश्वास वाक्य का कहना गुदा इन्द्रिय, प्रीति का मारना चरण, उपपातक रोयें जिसके थे। इस प्रकार बड़ी देह वाले भयङ्कर काले वर्ण पीले नेत्र अपने आश्रयों के अत्यन्त दुःख देने वाले अत्यन्त उग्र पुरुषों में उत्तम पाप पुरुष को देखकर दया समेत प्रजाओं के नाश करने वाले प्रभु जी चिन्तना करते हुए—

तं दृष्ट्वा पापपुरुषमत्युग्रं पुरुषोत्तमम्।
सदयश्चिन्तयामास प्रजाक्लेशहरः प्रभुः ॥ १३ ॥

कि यह दुर्जन, क्रूर अपने आश्रयों के क्लेश देने वालों को प्रजाओं के दमन के लिए तो मैंने रचा, अब इसके कारण को रचता हूँ—

सृष्टोऽयं दुर्जनः क्रूरः स्वाश्रयक्लेशदायकः।
प्रजानां दमनार्थाय सृजाम्येतस्य कारणम्॥ १४॥

तदनन्तर भगवान् विष्णु जी आप ही यमराज हो गये और पापियों के दुःख देने वाले रौरवनरकों को रचते हुए—

अथासौ भगवान्विष्णुर्बभूव स्वयमन्तकः।
ससर्ज रौरवादींश्च निरयान्पापिदुःखदान्॥ १५॥

जो मूर्ख पाप का सेवन करता है वह परमपद को नहीं जाता और यमराज की आज्ञा से रौरव नरक में जाता है—

पापं यः सेवते मूढो न याति परमं पदम्।
यमाज्ञया व्रजेत्तत्र नरकं रौरवादिकम्॥ १६॥

एक समय विष्णु महाराज गरुड़ पर चढ़ यमराज के मन्दिर को गये जहाँ यमराज ने उनकी अनेकानेक प्रकार से पूजा की, फिर उन्होंने दक्षिण दिशा में रोने का शब्द सुन विस्मययुक्त हो यमराज से बोले कि यह रोने का शब्द कहाँ से आता है—

तत्रोपविष्टो भगवान्यमेन सह दैत्यहा।
शुश्राव क्रन्दनं ध्यानं दक्षिणस्यां दिशि प्रभो॥ २०॥
अथासौ कमलाकान्तो विस्मयाविष्टमानसः।

उवाचेति यमं तेषां कुतोऽयं क्रन्दनध्वनिः ॥ २१ ॥

तब यमराज ने कहा कि पापी मनुष्य नरकों में अपने हाथ से किये हुए दोषों से कष्ट पाते हैं। उसी से दुःखित होकर वह चिल्ला रहे हैं। तब भगवान् वहाँ गये और उन रौरवनरकादिकों में पापी पुरुषों को देखकर दयावान् हो प्रभु चिन्तना करते हुए।

कि मैंने प्रजाओं को रचा है, मेरे स्थित होने में अपने कामों के दोषों से वे एकान्त दुःख देने वाले नरक में क्लेश पाते हैं। हे ब्राह्मण! इस प्रकार तथा और भी करुणानिधान भगवान् चिन्तना कर सहसा से वहाँ ही आप ही एकादशी तिथि हो जाते हुए—

एतच्चान्यच्च विप्रेन्द्र विचिन्त्य करुणामयः ।

बभूव सहसा तत्र स्वयमेकादशी तिथिः ॥ २७ ॥

तदनन्तर उन सब पापियों को सुनाते हुए। तब वे सब पाप रहित होकर परमधाम को जाते हुए। तिससे एकादशी को परमात्मा विष्णु की मूर्त्ति जानिए। यह सब दुष्कृतियों में श्रेष्ठ और व्रतों में उत्तम व्रत है—

तस्मादेकादशीं विष्णोर्मूर्त्तिं विद्धि परात्मनः ।

समस्तदुष्कृतिश्रेष्ठं व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥ २९ ॥

तीनों लोकों के पवित्र करने वाली एकादशी तिथि को कर, शङ्का युक्त पाप पुरुष होकर विष्णु की स्तुति करने को प्राप्त होता हुआ—

एकादशीं तिथिं कृत्वा पावयन्तीं जगत्त्रयम् ।

शङ्कितः पापपुरुषो विष्णुं स्तोतुमुपाययौ ॥ ३० ॥

तदनन्तर पाप पुरुष भक्ति से हाथ जोड़कर लक्ष्मीपति भगवान् की स्तुति करता हुआ ॥ ३१ ॥

उसकी स्तुति को सुनकर परमेश्वर प्रसन्न होकर उससे बोले—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, क्या तुम्हारा अभिमत है, उसको कहिए ॥ ३२ ॥

तब पापपुरुष बोला—हे विष्णु जी! भगवान् ने मुझे रचा है अपनी अनुग्रह में दुःख देने वाला मैं हूँ, सो एकादशी के प्रभाव से इस समय में नाश को प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥

इस संसार में मेरे मरने से सब देहधारी संसार के बन्धनों से छूट

जावेंगे—

मृते मयि जगत्यस्मिन्सर्वे ते च शरीरिणः।
भविष्यन्ति विनिर्मुक्ता भवबन्धैः शरीरिणः॥ ३४॥

हे प्रभु! सब देहधारियों में श्रेष्ठों की मुक्ति हो जाने की आप संसाररूपी कौतुक के मन्दिर में किनके साथ क्रीड़ा करेंगे—

सर्वेषु च विमुक्तेषु देहिश्रेष्ठेषु पूरुषम्।
संसारकौतुकागारे कैस्त्वं क्रीडिष्यसे प्रभो!। ३५॥

हे केशवजी! यदि संसार रूपी कौतुक के मन्दिर में क्रीड़ा करने की आपकी वाञ्छा हो तो एकादशी तिथि के डर से मेरी रक्षा कीजिए—

क्रीडितुं यदि ते वाञ्छा जगत्कौतुकमन्दिरे।
एकादशीतिथिभयात्तदा मां त्राहि केशव॥ ३६॥

हज़ारों पुण्य मेरे मारने में समर्थ नहीं हैं, पुण्यकारी एकादशी मेरे मारने में समर्थ है, इससे वर देने वाले हूजिए—

अन्यैः पुण्यसहस्त्रैस्तु मां हन्तुं नहि शक्यते।
शक्नोत्येकादशी पुण्या मां हन्तुं वरदो भव॥ ३७॥

मनुष्य-पशु-कीड़े तथा और जन्तुओं में पर्वत वृक्ष और जल के स्थानों में नदी समुद्र और वन के प्रान्तों में स्वर्ग, मनुष्यलोक, पाताललोक, देवता, गन्धर्व और पक्षियों में एकादशी तिथि के डर से भागता फिरता हूं, मुझको कहीं निर्भय स्थान नहीं मिलता। मैं करोड़ों ब्रह्माण्ड के बीच एकादशी तिथि में स्थित होने को स्थान नहीं पाता, फिर वह पृथ्वी पर गिर रोने लगा। उस समय भगवान् ने कहा उठो, शोक मत करो, एकादशी तिथि में तुम्हारे स्थान को कहता हूँ। ३८-४५।

तीनों लोकों को पवित्र करने वाली एकादशी के आने में अन्न में स्थित होना। अन्न में आश्रित होकर स्थित हुए तुमको मेरी मूर्त्ति यह एकादशी तिथि नहीं मारेगी। ४६, ४७।

इतना कह भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। और पापपुरुष कृतार्थ होकर जैसा आया था वैसा ही चला गया।

श्रीमान् विष्णु महाराज का एकादशी तिथि होना। देखिए, क्या गढ़न्त

है—प्रथम पापों को रचना फिर पापियों को देख कर दुःखी होना, तिस पर स्वयं एकादशी हो जाना, परन्तु पण्डित जी जब हम **पद्मपुराण** के **षष्ठ उत्तर खण्ड** अध्याय ३८ को देखते हैं तो वहाँ यह लिखा मिलता है—एक समय युधिष्ठिर महाराज ने कृष्ण महाराज से पूछा कि पुण्यकारी एकादशी तिथि किस प्रकार से उत्पन्न हुई और वह क्योंकर देवताओं की प्यारी हुई ? यह सुनकर श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि कृतयुग में मुर नामी दैत्य ने इन्द्र आदि सब देवताओं को जीत स्वर्ग से निकाल दिया उन्होंने घूमते हुए महादेव के पास जाय सब वृन्तात कहा, उनके कहने से सब क्षीरसागर में गये और प्रार्थना की! तब विष्णु जी बोले कि हे इन्द्र! वह दैत्य कैसा है कैसा रूप-बल है और उसका स्थान कहाँ है! वीर्य और पराक्रम क्या है! कुछ उसको वर भी मिला है, यह सब हमसे कहो।

तब इन्द्र ने सब वृत्तान्त कहा जिसको सुनकर चन्द्रावती नगरी को उस राक्षस को मारने के लिए गये। उसने पहिले देवताओं को जीता। वह सब दिशाओं को भाग गये।

फिर भगवान् ने बाणों को छोड़ा और चक्र से लाखों शिर काट लिए फिर भगवान् से बाहुयुद्ध देवताओं के हज़ार वर्ष तक वह राक्षस करता रहा। तब भगवान् बड़ी चिन्ता को प्राप्त भये। देवता सब नष्ट हो गये। आप हार कर बदरिकाश्रम को चले गये—

विष्णुश्चिन्तां प्रपन्नश्च नष्टाः सर्वाश्च देवताः।
विष्णुश्च निर्जितस्तेन गतो बदरिकाश्रमम्॥ ८०॥

वहाँ सिंहवती नाम बारह योजन की गुफा में जाकर सोये, पीछे दानव भी घुस कहने लगा कि मैं निस्सन्देह मारूंगा, तब तो विष्णु की देह से एक रूपवती कन्या अस्त्र, शस्त्र सहित उत्पन्न हुई—

निर्गता कन्यका तत्र विष्णुदेहाद्युधिष्ठिर।
रूपवती सुसौभाग्या दिव्यप्रहरणायुधा॥ ८५॥

और उसको मुरनाम दैत्य ने देखा और युद्ध होने लगा और उसकी हुंकार से वह भस्म हो गया। जब वह दैत्य मर गया। तब विष्णु भी जग उठे—

हुङ्कारैर्भस्मसाज्जातो मुरनामा महासुरः।
निहते दानवे तस्मिंस्तत्र देवस्त्वबुध्यत॥ ८८॥

और कहने लगे इसको किसने मारा? तब कन्या ने कहा कि इसने देवता, गन्धर्व इत्यादि को स्वर्ग से निकाल दिया था और आप सोते थे, मैंने सोचा कि यह तीनों लोकों का नाश कर देगा। यह सुन विष्णु जी बोले कि जिसने हमको जीत लिया, उसको तुमने कैसे जीत लिया? तब कन्यारूपी एकादशी बोली कि मैंने तुम्हारे प्रसाद से इसको मार डाला—

त्वत्प्रसादाच्च भोः स्वामिन्महादैत्यो मया हतः॥ ९३॥

तब भगवान् ने कहा कि तुमने तीनों लोकों में मुनि-देवताओं को आनन्द दिया, इसलिए जो कुछ मांगो मैं निस्सन्देह दूंगा, जो देवताओं को दुर्लभ हो। तब एकादशी बोली कि मुझको तीन वरदान दीजिए। विष्णु ने कहा, बहुत अच्छा। तब एकादशी ने कहा कि तीनों लोकों और चारों युगों में सब तीर्थों से प्रधान सब विघ्नों के नाश करने वाली, सिद्धि देनेवाली देवी हो जाऊं—

सर्वतीर्थप्रधानं हि सर्वविघ्नविनाशनी।
सर्वसिद्धिकरी देवी त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम्॥ ९९॥

जो मनुष्य आपकी भक्ति से हमारा व्रत करे, वह आपकी कृपा से सब सिद्धि को प्राप्त हो जाये—

मामुपोष्यन्ति ये भक्त्या तव भक्त्या जनार्दन।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो॥ १००॥

जो व्रतकर रात्रि में एक बार भोजन करें, उनको हे माधव जी! द्रव्य, धर्म, मोक्ष दीजिए—

उपवासे च नक्तं च एकभक्तं करोति च।
तस्य वित्तं च धर्मं च मोक्षं वै देहि माधव॥ १०१॥

विष्णु ने कहा कि जो तुम कहती हो वह सब होगा। हे भद्रे! सब मनोरथों को तुम देवोगी और कोई नहीं देवेगा—

यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति।
सर्वान्मनोरथान्भद्रे दास्यसि त्वं च नान्यथा॥ १०२॥

जो संसार में हमारे भक्त हैं चारों युगों, तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं, तुमको मैं शक्ति मानता हूँ। निस्सन्देह तुम्हारे व्रत में स्थित जो हमारी पूजा करेंगे वे मोक्ष को प्राप्त होंगे। तीज, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी इन सब में विशेषकर एकादशी अत्यन्त प्रिया है, इससे सब तीर्थों से पुण्य अधिक सत्य-सत्य होगा। यह तीन वाणी से वर दिया। तब तो एकादशी बड़ी हृष्ट-पुष्ट हो गई—

इदं दत्त्वा वरं तस्यै तिस्रो वाचो न संशयः।
हृष्टा पुष्टा च संजाता एकादशी महाव्रता॥ १०६॥

फिर भगवान् ने कहा कि तुम शत्रु को मारोगी, सब विघ्नों का नाश करोगी, सिद्धि और वर को देवोगी—

शत्रुं हंसि परां तस्य ददासि परमां गतिम्।
त्वं हंसि सर्वविघ्नानि सर्वसिद्धिवरप्रदा॥ १०७॥

जो मनुष्य एकादशी में उपवास करते हैं उन्हें निस्सन्देह वैष्णव स्थान, जहाँ भगवान् रहते हैं, प्राप्त होता है—

एकादश्यां प्रकुर्वीत ह्युपवासं न संशयः।
ते यान्ति वैष्णवं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः॥ ११५॥

पण्डित जी—इन दोनों बातों में कौन सी बात सच्ची है? परन्तु सनातन धर्म के मन्तव्य के अनुसार पुराणों को व्यास महाराज ने बनाया है। क्या व्यास जी की ऐसी ही बुद्धि थी? नहीं! नहीं! नहीं नहीं!!! वह बड़े ज्ञानी महात्मा थे। इसीलिए तो हम कहते हैं कि यह पुराण महर्षिकृत नहीं हैं।

अब हम आपको २४ एकादशियों के माहात्म्य संक्षेप के साथ **पद्मपुराण** से सुनाते हैं—

मोक्षदा।

अध्याय ३९

अगहन के शुक्ल पक्ष की एकादशी यह सब पापों को हरने वाली, मोक्ष नाम की है, इसकी पूजा के लिए तुलसी की मंजरी धूप, दीप, नाच,

गीत से रात्रि में जागरण करे। पुराणों को सुने तो जिसके पाप से पितृ नरकों में हों वह एकादशी के पुण्यभाव से मोक्ष पाते हैं—

अधोयोनिगताश्चैव पितरो यस्य पापतः।
अस्याश्च पुण्यदानेन मोक्षं यान्ति न संशयः॥ १३॥

चम्पकनगर में वैखानस नाम एक राजा था, जो प्रजा को पुत्रों की भांति पालता था, जिसके यहाँ वेद के जानने वाले ब्राह्मण भी रहते थे। एक दिन रात्रि में राजा ने स्वप्न देखा कि हमारे पितृ नरक में हैं—

एवं राज्यं प्रकुर्वाणो रात्रौ स्वप्नस्य मध्यतः।
स्वकीयपितरो दृष्ट्वा अधोयोनिगता नृप॥ १६॥

राजा देखकर बड़े विस्मय को प्राप्त हो सब हाल स्वप्न का ब्राह्मणों से कहा कि मेरे पितृ नरक में हैं, बारम्बार रोते हैं। उन्होंने हमसे कहा कि हमको नरक से निकालो, इसलिए वह व्रत बतलाइए कि जिससे पितृ मोक्षगामी हों।

तब ब्राह्मणों ने कहा कि यहां से थोड़ी दूर पर पर्वतमुनि चारों वेदों के जानने वाले बसते हैं। वहाँ जाओ। राजा गया और मुनि को दण्डवत् कर बैठ गया। मुनि ने कुशल पूछी, राजा ने कहा कि हमारे सातों अङ्गों में कुशल हैं परन्तु मैंने स्वप्न में अपने पितरों को नरक में देखा है यही दुःख है। इनके मोक्ष का उपाय बतलाइये, इसी के लिए मैं आपके पास आया हूँ। मुनि ने एक मुहूर्त्त ध्यान कर कहा कि तुम्हारे पिता राज्य के अभिमान से राज्य धर्म में प्रवृत्त हो स्त्री के ऋतुकाल में किसी गांव को चले गये और स्त्री को ऋतुदान नहीं किया उसी के पास से तुम्हारे पिता पितरों समेत घोर नरक में डाले गये॥ ३६, ३७॥

इसलिए अब तुम अगहन की मोक्ष नाम एकादशी का व्रत जो सबको करना चाहिए। आप कर पिता को पुण्य दीजिए जिसके पुण्य प्रभाव से मोक्ष होगा। राजा ने घर आकर उपर्युक्त व्रत किया और व्रत का पुण्य राजा को दे दिया जिसके देते ही आकाश में फूलों की वर्षा हुई और राजा वैखानस के पिता पितरों समेत मोक्ष को गये—

दत्ते पुण्ये क्षणेनैव पुष्पवृष्टिरभूद्दिवि।
वैखानसस्य तातो वै पितृभिर्मोक्षमाविशत्॥ ४३॥

और वह आकाश से पुण्यकारी वाणी बोले कि हे पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा कह स्वर्ग को चले गये—

राजानं चान्तरिक्षे स गिरं पुण्यामुवाच ह।
स्वस्ति स्वस्तीति ते पुत्र प्रोच्य चैवं दिवं गतः॥ ४४॥

इससे बढ़कर मोक्ष देने वाली कोई एकादशी नहीं है। इसके पुण्य की गिनती को मैं नहीं जानता। यह व्रत हमको बड़ा प्रिय है[१]—

नातः परतरा काचिन्मोक्षदैकादशी भवेत्।
पुण्यसंख्यां न जानामि राजन्मे प्रियकृद् व्रतम्॥ ४६॥

चिन्तामणि के समान यह मनुष्यों को मोक्ष देने वाली है, इसके पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है।

सफला।

अध्याय ४०

पौष के कृष्ण पक्ष में सफला नाम एकादशी होती है। सर्पों में जैसे शेषजी, पक्षियों में गरुड़, देवताओं में विष्णु, दो पांववालों में ब्राह्मण, ऐसे ही व्रतों में एकादशी श्रेष्ठ है। हे राजन्! वे मनुष्य सदैव हमारे पूज्य हैं जो एकादशी व्रत करते हैं वे इस लोक में धनवान् होते हैं। जब मरते हैं तो उनको मोक्ष मिलता है—

---

१. अब यहाँ पर यह विचारना चाहिए कि यदि यह सिद्धान्त है तो फिर **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण** प्रकृतिखण्ड, अध्याय ३७, श्लोक १७ में यह क्यों लिखा कि **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।** परन्तु पद्मपुराणी यह लिखते हैं कि इस एकादशी के करने से न केवल अपने ही पाप दूर होते हैं किन्तु पितृगणों तक को भी नरक से स्वर्ग में पहुंचा देती है।

कहिए, पण्डित जी! अब क्या और चाहिए? लीजिए, एकादशी का व्रत पितृगणों को नरक से स्वर्ग भी पहुंचा देता है अर्थात् पुत्रादि के कर्म जन्मों को भी लाभ पहुंचाते हैं। इसके उपरान्त जब उपर्युक्त एकादशी व्रत से पितृ स्वर्ग को चले जाते हैं फिर गया श्राद्धादि की क्या आवश्यकता रही? सब मिल पितरों के स्वर्गवास के लिए इसी व्रत की ओर सनातनी भाइयों को ध्यान करना चाहिए, इसमें धन भी न्यून होगा समय कम खर्च, तिस पर गया आदि के आने-जाने की हैरानी, मार्ग की थकावट की बचत, फिर क्यों उधर ध्यान दिया जाता है— पण्डित जी! पुराणों की लीला अपार है।

हरिवासरसंलीनाः कुर्वन्त्येकादशीव्रतम्।
इहैव धनसंयुक्ता मृता मोक्षं लभन्ति ते॥ ८॥

महिष्पति नाम राजा की चम्पावती नगर में पांच पुत्र थे। उनमें से बड़ा पुत्र सदैव भारी पापों को करता रहता था। दूसरों की स्त्रियों को भोगता और मदिरा पीता—

तेषां मध्ये तु ज्येष्ठो वै महापापरतः सदा।
परदाराभिचारी च वेश्यासक्तश्च मद्यपः॥ १७॥

उसने पिता के द्रव्य को पाप कर्मों से खर्च किया। नित्य ही असत् व्रतों में रहता, ब्राह्मणों की निन्दा करता—

पितुर्द्रव्यं तु तेनैव गामितं पापकर्मणा।
असद्वृत्तिरतो नित्यं भूसुराणां तु निन्दकः॥ १८॥

राजा ने अपने ऐसे लुम्पक नाम पुत्र को देख उसके भाइयों से सम्मति कर राज्य से निकाल दिया, जो सघन वन में पहुंचा, जहाँ वह जीवों को मार कर निर्वाह करता। उसी वन में एक पुराना पीपल का वृक्ष था, उसी के समीप लुम्पक रहता था। बहुत काल बीतने पर पौष की कृष्णपक्ष की दशमी में वृक्षों के फल भोजन कर रात्रि में वस्त्रहीन जाड़े के कारण प्राणहीन सा हो गया। और सूर्योदय तक उस को चेत न हुआ वरन सफला एकादशी के दो पहर दिन में चेता और पांवों से पीड़ा के कारण चल भी न सका, भूख से अत्यन्त पीड़ित हुआ और जीवों के मारने की शक्ति भी न रही—

वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्क्षामः पीडितोऽभवत्।
न शक्तिर्जीवघाते तु लुम्पकस्य दुरात्मनः॥ ३६॥

तब वह फल तोड़कर अपने आश्रम को लौट आया। इतने में सूर्य नारायण अस्त हो गये। फलों को वृक्ष की जड़ में धर, हे तात! क्या होगा? ऐसा कह रोने लगा और यह कहा कि इन फलों से लक्ष्मी के पति भगवान् प्रसन्न होवें, ऐसा कह उसको नींद न आई।

तब तो भगवान् ने उस दुरात्मा का रात्रि में जागरण और फलों से उसका सफला एकदशी का पूजन माना—

रात्रौ जागरणं मेने विष्णुस्तस्य दुरात्मनः।
फलैस्तु पूजनं मेने सफलायास्तथानघ॥ ४०॥

अकस्मात् लुम्पक ने इस व्रत को किया तो अकण्टक राज्य मिला—

अकस्माद् तमेवैतत्कृतवान्वै स लुम्पकः।
तेन पुण्यप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ४१॥

कि जब तक सूर्योदय और विष्णु जी प्राप्त रहें तब तक वह राज्य भोगे तिसी समय में आकाशवाणी हुई—

सूर्यस्योदयनं यावत्तावद्विष्णुर्जगाम ह।
दिवि तत्कालमुत्पन्ना वागुवाचाशरीरिणी॥ ४२॥

कि हे पुत्र! तुम सफला एकादशी के प्रभाव से राज्य को प्राप्त होगे, ऐसा वचन कहते ही वह लुम्पक सुन्दररूप धारता हुआ—

राज्यं प्राप्स्यसि पुत्र त्वं सफलायाः प्रसादतः।
तथेत्युक्ते तु वचसि दिव्यरूपधरोऽभवत्॥ ४३॥

उसकी बुद्धि श्रेष्ठ वैष्णवी हो गई और शोभायुक्त अकण्टक राज्य को प्राप्त हुआ—

मतिरासीत्ततस्तस्य परमवैष्णवी नृप।
दिव्याभरणशोभाढ्यो लेभे राज्यमकण्टकम्॥ ४४॥

उसने ५१० वर्ष राज्य किया। उसके पुत्र स्त्रियाँ सुन्दर कृष्ण के प्रसाद से हुई—

कृतं राज्यं तु तेनैवं वर्षाणि दश पञ्च च।
मनोज्ञास्तस्य पुत्रास्तु दारा कृष्णप्रसादतः॥ ४५॥

तब उसने शीघ्र राज को छोड़, पुत्र को दे, कृष्ण के समीप प्राप्त हुआ कि जहाँ पर जाकर मनुष्य शोच नहीं करते—

आशु राज्यं परित्यज्य पुत्रे चैव समर्प्य च।
ततः कृष्णस्य सन्निध्यं यत्र गत्वा न शोचति॥ ४६॥

हे राजन्! जो इस प्रकार सफला एकादशी का पूजन करता है, वह

इस लोक में सुख भोगता और मरकर मोक्ष को प्राप्त होता है[१]—

एवं यः कुरुते राजन् सफलाव्रतमुत्तमम्।
इह लोके सुखं प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात्॥ ४७॥

पुत्रदा।

अध्याय ४१

पौष शुक्ला एकादशी का नाम पुत्रदा है जो तीनों लोकों में सबसे श्रेष्ठ है। भद्रावती पुरी में सुकेत नाम राजा जिनकी रानी का नाम चम्पका था, पुत्र के न होने से दोनों क्लेश में रहते थे। एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो कर सघन वन को गये जहाँ नाना प्रकार के पशु-पक्षी और वृक्ष, तालाब आदि थे। क्षुधा और जल से पीड़ित तालाब के किनारे जहाँ मुनि लोग वेद का जप कर रहे थे, पहुंचा और दण्डवत् कर उनसे पूछा कि आप लोग यहाँ किस लिए एकत्रित हैं? मुनियों ने कहा कि आज से पांचवे दिन माघ का स्नान होगा इसके स्नान के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। हे राजन्! इस समय पुत्रदा नाम एकादशी है, इसमें व्रत करने वालों को भगवान् पुत्र देते हैं—

अद्य चैकादशी राजन् पुत्रदानामनामतः।
पुत्रं ददात्यसौ विष्णुः पुत्रदाकारिणां नृणाम्॥ ४५॥

इस प्रकार के वचन सुन एकादशी पुत्रदा का व्रत विधान से किया और द्वादशी परायण कर मुनियों को बारम्बार नमस्कार कर घर आये। रानी ने गर्भ धारण किया। नवें मास तेजस्वी पुत्र हुआ जो कुछ काल के पीछे राजा हो प्रजा की रक्षा करने लगा। हे राजन्! एकान्तचित्त होकर जो व्रत करते हैं, वे लोक में पुत्रवान् होते हैं और परलोक में सुख प्राप्त करते हैं। इसके सुनने से, पढ़ने से अग्निष्टोम का फल होगा हैं[२]—

---

१. पण्डित जी! राजा के पुत्र ने श्रद्धा से व्रत नहीं किया इस पर विष्णु भगवान् ने इतना फल दे दिया, परन्तु वर्त्तमान समय में हमारे बहुधा सनातनी भाई बड़ी श्रद्धा से व्रत और जागरण करते हैं, फिर भी दीन दशा में ग्रसित हैं। क्या विष्णु महाराज इस समय में किसी और कार्य में लिप्त हैं जो अपने ऐसे श्रद्धालु भक्तों की दरिद्रता का भी नाश नहीं करते।

२. श्रीमान् पण्डित जी, राजा दशरथ जी ने पुत्रों के अर्थ ऋषियों की सम्मति से यज्ञकर पुत्र लाभ किया था परन्तु यहाँ एक एकादशी व्रत के करने से ही पुत्र की

एकचित्तास्तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाव्रतम्।
पुत्रान्प्राप्येह लोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्॥ ५३ ॥

षट्तिला।

अध्याय ४२

माघ कृष्ण में जो एकादशी होती है उसको षट्तिला कहते हैं जिसको पुलस्त्य ने दालभ्य से कहा है।

एक समय दालभ्य ऋषि पुलस्त्य मुनि के पास गये और कहा महाराज मनुष्य ब्रह्महत्यादि अनेक पापों से युक्त हैं। पराया द्रव्य चुराते हैं। व्यसन में मोहित होते हैं। वह नरक से क्योंकर बिना परिश्रम किये थोड़े दान से किस प्रकार से बचें, सो आप कहिए। पुलस्त्य ने कहा कि माघ के कृष्ण पक्ष में षट्तिला नाम एकादशी का व्रत करें। भगवान् का पूजन, कृष्ण का नाम-कीर्त्तन, जागरण, परमात्मा से प्रार्थना, जितेन्द्रिय रह, काम, क्रोध, ईर्ष्या को छोड़। अर्घ्य दे। ब्राह्मण को छतुरी दे। जूता कपड़े, श्यामा गाय, काले तिल के पात्र का दान करे क्योंकि जितनी संख्या तिल है वह उतने हज़ार वर्ष स्वर्ग में बसता है। तिल से स्नान, उबटना, होम, जल, तिल, भोजन यह छः तिल भोजन पाप के नाशने वाले हैं—

तान्प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्ति द्विजोत्तमे।
तिलप्ररोहजाः क्षत्रे यावत्संख्यास्तिला द्विज॥ २० ॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी॥ २१ ॥
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥ २२ ॥

पहिले मनुष्य लोक में एक ब्राह्मणी हुई जो व्रतचर्या और देवपूजा में रत रहकर सदा हमारी पूजा कर व्रतों से शरीर को क्लेशित करती रहती थी परन्तु भिक्षुक को भिक्षा और ब्राह्मणों को तृप्त नहीं करती थी। तब मैं

प्राप्त हो गई। कहिए श्रीमान्! क्या एकादशी के व्रती पुत्रहीन नहीं हैं? यदि हैं तो फिर क्यों? क्या राजा दशरथ जी के समय यह पुराण न थे जिससे उनको अन्य उपाय करना पड़ा?

कपालरूप धारण कर भिक्षा का पात्र ले मनुष्यलोक में जा उससे भिक्षा मांगी। तब उसने बड़ा क्रोध कर मिट्टी का पिण्ड तांबे के बर्तन में छोड़ दिया। तब भगवान् उसको लेकर स्वर्ग को गये—

तया कोपेन महता मृत्पिण्डस्ताम्रभाजने।
क्षिप्तो यावदहं ब्रह्मन्! पुनः स्वर्गगतो द्विज॥ ३२॥

कुछ काल के पीछे वह स्त्रीदेह को त्याग स्वर्ग को गई जहाँ मिट्टी के पिण्ड देने के कारण सुन्दर घर मिला परन्तु उसमें अन्नादि कुछ भी न था। तब वह भगवान् के पास गई और कहा मैंने बहुत व्रत उपवास किये हैं, परन्तु मेरे घर में कुछ दिखलाई नहीं देता उन्होंने कहा कि तुम विस्मय मत करो। देवों की स्त्रियाँ तुम्हारे देखने को आवेंगी, उन्हीं के उपदेश से उसने षट्तिला का व्रत किया कि जिससे उसके घर में धन, धान्य, सोना, चांदी भी भर गया। क्षण मात्र में रूप और कांति को प्राप्त हुई। इसलिए जो मनुष्य जन्म-जन्म में आरोग्य और दरिद्र का नाश करना चाहे वह षट्तिला के व्रत को विधिपूर्वक तिलदान दे तो वह मनुष्य बिना परिश्रम ही सब पापों से छूट जावे, इसमें विधिपूर्वक सुपात्र को दान देने से सब पाप नाश हो जाते हैं। कोई अनर्थ शरीर में परिश्रम नहीं होता[१]—

अतितृष्णा न कर्त्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
आत्मवित्तानुसारेण तिलान्वस्त्राणि दापयेत्॥ ४९॥
लभते चैवमारोग्यं नरो जन्मनि जन्मनि।
न दारिद्र्यं न कष्टत्वं न च दौर्भाग्यमेव च॥ ५०॥
सम्भवेद्वै द्विजश्रेष्ठ षट्तिला समुपोषणात्।
अनेन विधिना भूप तिलदाता न संशयः॥ ५१॥
मुच्यते पातकैः सर्वैरनायासेन मानवः।
दानं च विधिवत्पात्रे सर्वपातकनाशनम्॥ ५२॥

१. तिलों के दान से एक हज़ार वर्ष स्वर्ग मिलता है। क्या इससे भी सहज कोई और उपाय स्वर्ग की प्राप्ति हो सकता है? फिर मैं पूछता हूँ कि व्रतादि से शरीर सुखाना अथवा कष्ट उठाना और विष्णु की पूजा करने से क्या प्रयोजन है? हाँ, इस कथा से सुपात्र को दान देने की आज्ञा मिलती है। अफ़सोस है कि हमारे सनातनी भाई इस पर दृष्टि डालकर दान नहीं करते।

जया।

अध्याय ४३

युधिष्ठिर के पूछने पर कृष्ण ने कहा कि माघ के शुक्ल पक्ष में जया नाम एकादशी होती है, इसके व्रत करने से मनुष्य प्रेत नहीं होता, इससे श्रेष्ठ कोई पापनाशिनी और मोक्षदायक नहीं है—

पवित्रा पापहन्त्री च काममोक्षदा नृणाम्।
ब्रह्महत्यापहन्त्री च पिशाचत्वविनाशिनी॥ ५॥
नैव तस्या व्रते चीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम्।
नातः परतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी॥ ६॥

इससे यत्न से इसको करना चाहिए। एक समय में स्वर्ग में इन्द्र राज करते थे। जहाँ कल्पवृक्षयुक्त नन्दनवन में देवता लोग सुखपूर्वक रहते थे। एक बार इन्द्र इच्छापूर्वक आनन्द से पचास करोड़ स्त्रियों समेत नाचने लगे और गन्धर्वों की स्त्रियाँ गाने लगीं। चित्रसेन की मालिनी स्त्री की कन्या पुष्पदन्ती और पुष्पदन्त का पुत्र माल्यवान् (जो पुष्पदन्ती के रूप से अत्यन्त मोहित था) भी वहां उपस्थित था, इससे वह शुद्ध गान न कर सकी। तब इन्द्र अपना अपमान समझ क्रोधित हो दोनों को शाप दे बोले कि हे पतित मूर्ख! तुम दोनों को धिक्कार है, हमारी आज्ञा को तुमने भङ्ग किया, इससे स्त्रीभाव धारण करने वाले पिशाच हो मनुष्य लोक प्राप्त होकर कर्म के फल भोग करो—

युवां पिशाचौ भवतां दम्पती भावधारिणौ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणः फलम्॥ २६॥

इन्द्र के शाप से वह दोनों पिशाच हो हिमवान् पर्वत पर प्राप्त हुए और मारे जाड़े के व्याकुल पिशाच ने पिशाचनी से कहा कि क्या रोमहर्षण हमने अधिक पाप किया जिससे अपने ही दुष्कर्म से पिशाचता प्राप्त हुई जो घोर नरक से भी अधिक दुःख देने वाली है? इसलिए सब प्रकार से पाप न करने चाहिएं। इसी चिन्ता में दोनों दुःखित हो रहे थे। इतने में माघ की जया एकादशी प्राप्त हुई तो उस दिन आहार, जलपान न किया। न किसी जीव को मारा, न फल खाए, केवल पीपल के वृक्ष के समीप दुःखयुक्त

स्थिर रहे। सूर्यनारायण अस्त हो गये। इसी दुःख में रात व्यतीत हुई। द्वादशी के सूर्य उदय हुए। इसी व्रत के प्रभाव से दोनों पूर्व के समान रूपयुक्त हो विमान पर चढ़ स्वर्ग को जा इन्द्र के आगे प्रणाम किया। तब इन्द्र विस्मय हो बोले कि मेरे शाप को किसने छुड़ाया? तब माल्यवान् ने कहा कि भगवान् के प्रसाद, जया एकादशी के व्रत और हे स्वामिन्! आपकी भक्ति से पिशाचपन गया—

वासुदेवप्रसादेन जयायास्तु व्रतेन च।
पिशाचत्वं गतं स्वामिंस्तव भक्तिप्रभावतः॥ ४८॥

इन्द्र यह सुनकर बोले कि तुम दोनों भगवान् की भक्ति एकादशी के करने वाले हो इसलिए हमको भी पूज्य हो तुम निस्सन्देह पुष्पदन्ती के संग विहार करो। तब कृष्ण ने कहा कि जिसने जया का व्रत किया उसने सब दान, यज्ञ किये—

सर्वदानानि तेनैव सर्वयज्ञा अशेषतः।
दत्तानि कारिताश्चैव जयायास्तु व्रतं कृतम्॥ ५३॥

वह मनुष्य करोड़ कल्प तक वैकुण्ठ में निश्चय आनन्द करता है। हे राजन्! पढ़ने, सुनने से अग्निष्टोम का फल पाता है[१]—

कल्पकोटिर्भवेत्तावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम्॥ ५४॥

विजया।

अध्याय ४४

फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की एकादशी को विजया कहते हैं। पूर्व समय में जब रामचन्द्र १४ वर्ष के लिए वन में गये और पञ्चवटी पर सीता ने लक्ष्मण समेत निवास किया, जहाँ से यशस्विनी सीता को रावण हर ले

---

१. पण्डित जी! इस कथा में बहिन पर भाई का आसक्त होना लिखा है। तिस पर भी भगवान् ने विमान पर चढ़ा स्वर्ग में पहुंचा दिया और इन्द्र महाराज ने स्वयं आज्ञा दे दी कि तुम अपनी बहिन के साथ विहार करो। क्यों न हो, जब इन्द्र महाराज स्वयं ही ५० करोड़ स्त्रियों के साथ नाच रहे थे। प्यारे पण्डित जी! आप स्वयं तो विचार करें। क्या हमारे प्राचीन पुरुष और देवता ऐसे ही थे जो उपर्युक्त कर्म करने वालों को स्वर्ग में रहने की स्पष्ट आज्ञा दे दी। फिर भला पापों की वृद्धि क्यों न हो।

गया। जिसके दु:ख से रामचन्द्र जी मोह को प्राप्त हो सीता को ढूंढ़ते हुए मरे जटायू के पास आये और कबन्ध को मार सुग्रीव के साथ मित्रता की और वानर सीता को ढूंढने को गये तब हनुमान ने सीता की लङ्का में होने की ख़बर दी, तब सुग्रीव की सम्मति से लङ्का पर चढ़ाई की, तब रास्ते में समुद्र मिला।

सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः।

तब राम जी ने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण किस पुण्य से इस समुद्र से पार हों क्योंकि यह सदैव अगाध और जल के जन्तुओं से भरा है। कोई उपाय नहीं दीखता जिससे इसको पार हो जावें—

उपायं नैव पश्यामि येनासौ सुतरो भवेत्॥ १२॥

तब लक्ष्मण ने कहा कि आप आदि देव हैं यहाँ से दो कोस पर वकदालभ्य मुनि और बहुत से ब्राह्मण रहते हैं उनसे चलकर कोई उपाय पूछिये। यह सुन राम जी वहाँ पहुंचे। मुनि को मस्तक से प्रणाम कर बोले कि मुनि जी आपकी कृपा से जिस प्रकार हम समुद्र उतर जावें उस उपाय को प्रसन्न होकर इसी समय कहिए—

भवतश्चानुकूलत्वात्तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया।
तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु साम्प्रतम्॥ २०॥

यह सुन वकदालभ्य मुनि ने कहा कि हे राम! आज तुम व्रतों में जो व्रत उत्तम है उसको कीजिए जिसके करने से सहसा तुम्हारी जीत होगी, लङ्का को राक्षसों समेत जीत, निर्मल कीर्त्ति होगी—

कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति।
लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च स्वच्छां कीर्तिमवाप्स्यसि॥ २३॥

एकाग्र मन होकर इस व्रत को करो जो फाल्गुन के कृष्णपक्ष में विजया एकादशी होती है—

एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत्समाचर।
फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत्॥ २४॥

तिसके व्रत से आपकी जीत होगी वानरों समेत समुद्र तर जाओगे। अब हे राजन्! इसकी विधि सुनो—

तस्या व्रतेन हे राम! विजयस्ते भविष्यति।
निःसंशयं समुद्रं त्वं तरिष्यसि सवानरः॥ २५॥

दशमी के दिन एक घड़ा सोने, चांदी, तांबे या मिट्टी का स्थापन करे और उसमें जल पत्ते छोड़ देवे। सप्तधान्य नीचे यवों के ऊपर रक्खे। तिसके ऊपर सोने के प्रभु नारायण को स्थापन करे। एकादशी के दिन सवेरे स्नान करे, फिर कलश को रख कण्ठ में माला पहिरावे सुपारी, नारियल, चन्दन, धूप, दीप अनेक प्रकार की नैवेद्य लगावे, कलश के आगे अच्छी-अच्छी कथाओं से दिन रात्रि व्यतीत करें। अखण्ड व्रत के हेतु घी के दीप से प्रकाश करे। जब द्वादशी के सूर्योदय हों तब कलश को नदी, झरना, तालाब में विधिपूर्वक पूजन कर स्थापन करे। सोने की भगवान् की मूर्ति को वेद के पारगामी ब्राह्मण को देवे। हे राम! यूथों समेत इस व्रत को यत्नपूर्वक करो, तुम्हारी जय होगी॥ ३५॥

इति श्रुत्वा ततो रामो यथोक्तमकरोत्तदा।
कृते व्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः॥ ३६॥

ऐसा सुनकर उसी समय में राम जी ने यथोचित व्रत किया। व्रत के करने से ही राम की जीत हुई।

लङ्का को जीता, रावण को मारा, सीता को पाया। इस विधि से हे पुत्र! जो व्रत करते हैं—

प्राप्ता सीता जिता लङ्का पौलस्त्यो निहतो रणे।
अनेन विधिना पुत्र ये कुर्वन्ति नरा व्रतम्॥ ३७॥

उनकी इस लोक में जीत होती है, मरने पर नाश रहित स्वर्ग मिलता है। इस कारण हे पुत्र! विजया का व्रत करना चाहिए—

इह लोके जयप्राप्तिः परलोकस्तथाक्षयः।
एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्तव्यं विजयाव्रतम्॥ ३८॥

विजया के माहात्म्य से सब पाप नष्ट होते हैं। पढ़ने-सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है[१]—

---

१. प्यारे भाइयो! क्या अब भी इसमें कुछ सन्देह रहा कि श्रीरामचन्द्र जी को ईश्वर बताते थे?

विजयायाश्च माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
पठनाच्छ्रवणाच्चैव वाजपेयफलं लभेत्॥ ३९॥

आमला।

अध्याय ४५

फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में आमला एकादशी होती है जो विष्णुलोक को देने वाली है। पूर्व समय में जबकि सब जीव नष्ट हो गये और एक जल ही जल हो गया और परमात्मा सनातन पुरुष अपने नाशरहित श्रेष्ठ ब्रह्मपद को प्राप्त भए, अनन्तर जागते हुए ब्रह्म के मुख से चन्द्रमा के समान दीप्तिवाला थूकने से बिन्दु उत्पन्न हुआ, वह पृथिवी पर गिर पड़ा—

ततोऽस्य जाग्रतो ब्रह्ममुखाच्छशिसमप्रभः।
ष्ठीवनाद्बिन्दुरुत्पन्नः स भूमौ निपपात ह॥ १०॥

तो उस बिन्दु से भारी आंवले का वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसकी शाखा प्रशाखा बहुत फैलीं और वह फल के भार से नव गया—

तस्माद्बिन्दोः समुत्पन्नः स्वयं धात्रीनगो महान्।
शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण नामितः॥ ११॥

उसके पीछे ब्रह्मा ने अन्न देवता राक्षस आदि को रचा, देवता लोग आंवले के पास पहुंचे और देखकर चिन्ता कराने लगे कि हम नहीं जानते। तब आकाशवाणी हुई कि यह आंवले का वृक्ष श्रेष्ठ वैष्णव है। इसके स्मरण से गोदान का फल होता है—

क—दुःख मोह का होना, सीता का ढूंढना, क्या यही सर्वज्ञता के लक्षण हैं?

ख—जिनको यह भी ज्ञात नहीं कि किस पुण्य से समुद्र पार हों, और क्या उपाय करें?

ग—भला जो अपने आप तरने के लिए तो साधारण मुनि से उपाय पूछे, तब दूसरों को क्या तार सकते हैं? दाशरथि राम के जपने वालो अब भी इस श्लोक पर दृष्टि डाल अपने आपको सम्हालो और वैदिक शरण में आओ।

घ—रामचन्द्र उपास्य थे, वा उपासक? यदि उपास्य थे, तब तो यह कथा झूठी और यदि वे उपासक थे, तो उनकी उपासना करना वृथा है।

आमलकीनगो ह्येष प्रवरो वैष्णवो मतः।

अस्य संस्मरणादेव लभेद् गोदानजं फलम्॥ १६॥

छूने से दूना खाने से तिगुना फल होता है जिससे सब यत्न से आंवला सदा सेवने योग्य है॥ १७॥

यह सब पाप नाशने वाली वैष्णवी है। इसकी जड़ में विष्णु तथा ऊपर में ब्रह्मा स्थित हैं—

सर्वपापहरा प्रोक्ता वैष्णवी पापनाशिनी।

तस्या मूले स्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वे च पितामहः॥ १८॥

स्कन्ध में परमेश्वर महादेव, शाखाओं में सब मुनि, प्रशाखाओं में देवता—

स्कन्धे च भगवान् रुद्रः संस्थितः परमेश्वरः।

शाखासु मुनयः सर्वे प्रशाखासु च देवताः॥ १९॥

पत्तों में देवता, पुष्पों में पवन, फलों में सब प्रजापति स्थित हैं—

पर्णेषु चासते देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा।

प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेव व्यवस्थिताः॥ २०॥

मैंने सर्वदेवमयी इस आमलकी को कहा। तिससे विष्णु की भक्ति में परायणों के द्वारा यह पूजने योग्य है—

सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री च कथिता मया।

तस्मात्पूज्यतमा ह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः॥ २१॥

तब देवता बोले आप कौन हैं? तब वाणी ने कहा कि जो सब प्राणियों के भुवनों का कर्त्ता है वही मैं विस्मित विद्वानों को देख सनातन विष्णु को प्राप्त हुआ हूं—

यः कर्त्ता सर्वभूतानां भुवनानां च सर्वशः।

विस्मितान् विदुषः प्रेक्ष्य सोऽहं विष्णुः सनातनः॥ २३॥

तब सब उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् ने कहा कि क्या चाहिए तब देवताओं ने कहा कि थोड़े परिश्रम से बहुत फल देने वाले व्रतों में उत्तम व्रत कहिए। जिससे विष्णुलोक भी प्राप्त हो। तब भगवान् ने

फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की आमला एकादशी का व्रत बतलाया और कहा कि एकादशी के दिन प्रथम उठ दातौन कर पतित लोगों के दर्शन न करे। फिर तीसरे पहर को नदी तालाब में स्नान करे। फिर मासे या आधे मासे की परशुराम की सोने की मूर्त्ति बनावे, फिर घर आकर पूजा होम करे। फिर सामग्री समेत आमले के नीचे जावे, फिर वहाँ जाकर चारों ओर मन्त्रपूर्वक शुद्ध कलश का स्थापन करे। पञ्चरत्न छोड़े। छतुरी, खड़ाऊं रख सफेद चन्दन से पूजा करें। फिर कलश में माला डाल धूपदीप देवे और उसके ऊपर रख लाई से भर परशुराम का मूर्त्ति का स्थापन करे, फिर भक्ति से रात्रि में जागरण कर धर्म के आख्यान स्त्रोत नाच गीत में बितावे, फिर आंवले की विष्णु के १०८ या २८ नामों से प्रदक्षिणा करे, फिर ब्राह्मण की पूजा कर परशुराम की छतुरी खड़ाऊं सब ब्राह्मणों को दे देवे। फिर भगवान् से प्रार्थना करे कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों और आंवले की प्रदक्षिणा कर विधि से स्नान कर ब्राह्मणों को भोजन करा कुटुम्ब सहित आप भी खावे। इस प्रकार करने से जो पुण्य होता है वह सब मैं तुमसे कहता हूँ। सब तीर्थ सब दानों में जो फल है, सब यज्ञों से अधिक फल होता है। यह व्रतों में उत्तम व्रत तुमसे कहा। इतना कह भगवान् अन्तर्द्धान हो गये और ऋषियों ने सम्पूर्ण व्रत किया—

सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः।
एतद्वः सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम्॥ ६१॥
एतावदुक्त्वा देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
ते चापि ऋषयः सर्वे चक्रुः सर्वमशेषतः॥ ६२॥
तथा त्वमपि राजेन्द्र कर्तुमर्हसि सत्तम।
व्रतमेतद् दुराधर्षं सर्वपापप्रमोचनम्॥ ६३॥

अध्याय १२१ में आमले का माहात्म्य है कि जो कोई आमले से भूषित, मस्तक हाथ, मुंह, देह में आमलों को धारण करता और उन्हीं को खाता है, वह नारायण होता है—

धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत्॥ २॥

जो आंवलों को वैष्णव धारण करता है, देवताओं का प्रिय होता है।

मनुष्यों की क्या कथा और तुलसी आंवले को विशेषकर न त्यागे। जब तक कण्ठ में माला स्थित रहेगी तब तक भगवान् उसके पास रहते हैं। आमला, द्वारिका की मिट्टी, तुलसी जिसके घर में रहती है उसका जीवन सफल है। जितने दिन मनुष्य कलियुग में आंवले की माला धारण करता है, उतने ही हज़ार वर्ष वैकुण्ठ में निवास होता है। जो आंवले, तुलसी की दो मालाओं को धारण करता है, वह करोड़ कल्प स्वर्ग में वास करता है।[१]

पापमोचनी।

अध्याय ४६

लोमश ने मानधाता से कहा कि चैत के कृष्ण पक्ष में पिशाच नाशने वाली पापमोचनी एकादशी कहलाती है—

---

१. भूगर्भ पदार्थविद्या के ज्ञाता इस कहानी पर विशेष ध्यान दें कि विष्णु के थूक से आमले का वृक्ष उत्पन्न हुआ। शोक कि ऐसी गढ़ना और व्यास जी निर्माता। ज्ञात होता है कि पुस्तक निर्माता ने दर्शन शास्त्रों का स्वप्न में भी दर्शन नहीं किया था। यदि विष्णु के थूक से आमले का वृक्ष उत्पन्न हुआ तो उस वृक्ष में भी विष्णु जैसे ही गुण होने चाहिएं क्योंकि "**कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः**" (वैशेषिक दर्शन २.१.२४) अर्थात् जो कारण में गुण होते हैं, वही कार्य में भी आते हैं।

कविता भी हो तो ऐसी कि आंवले के वृक्ष को साक्षात् विष्णु ही बना दिया। इस जगह पर उन उपमा देने वालों को भी शिर झुकाना पड़ा कि जिन्होंने कमर को बाल से भी पतली लिखा है।

प्रायः देखते हैं कि ग्रीष्म ऋतु में प्रत्येक जाति के प्रत्येक जन आंवले का येनकेन प्रकारेण सेवन करते हैं। तब तो न मालूम कितने नारायण बन गये होंगे और यदि यह नारायण बन गये तो हमारे सनातन धर्मी भाइयों के सब ही पूज्य होंगे। आंवले का फल क्या है मानों नारायण बनाने की गोली है। सनातनधर्मी भाइयो! फिर ऐसे अवसर को क्यों खोते हो? एक-एक फल खाकर साक्षात् नारायण बन जाओ।

२—क्या सनातनधर्मी भगवान् एकदेशी हैं? तब तो यदि सौ दो सौ आदमी माला ही माला धारण कर लें तब भगवान् किस-किस के पास रहेंगे। यदि तुलसी और आंवले की माला से करोड़ कल्प तक स्वर्ग मिलता तो पूर्व ऋषि, मुनि और महात्मा तपस्या कर नाना प्रकार के कष्ट क्यों उठाते? सच तो यह है कि इन्हीं असम्भव और आसान नुस्खों ने सनातनधर्मी द्विजातियों को सन्ध्या, अग्निहोत्रादि से छुड़ा शूद्रत्व को प्राप्त करा दिया। शोक, फिर भी विचार नहीं करते।

चैत्रमास्यसिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी।
एकादशी समाख्याता पिशाचत्वविनाशिनी॥ ४॥

उसी कामना, सिद्धि कल्याण को देनेवाली कथा को कहता हूँ। सुनो, पूर्व समय में चैत्ररथ वन में वसन्त समय में गान्धर्वों की कन्या किन्नरों के साथ रमण कर रही थी। इन्द्रादि देवता भी क्रीड़ा में लग रहे थे। वहीं मेधावीनाम ब्रह्मचारी ऋषि थे। उनके मोहने के लिए युक्तियाँ कर रही थी। उनमें से मञ्जुघोषा नाम उनके स्थान के पास मीठे स्वरों से गाती और काम के वाणों को चलाने लगी और मेधावी मुनि को देख काम के वशीभूत हो गई और मुनि भी उस पर मोहित हो गये। तब मञ्जुघोषा वीणा को नीचे धर मुनि को लिपट गई। मुनीश्वर ने वृक्ष में लता की नाईं लिपटा जानकर रति किया—

वलितेव लता वृक्षं वातवेगेन कम्पितम्।
सोऽपि रेमे तया सार्द्धं मेधावी मुनिपुङ्गवः॥ २१॥

उसके उत्तम रूप को देखकर शिवतत्त्व चला गया, कामतत्त्व के वश में प्राप्त हो गये—

तस्मिन्नेव ततो दृष्ट्वा तस्यास्तं देहमुत्तमम्।
शिवतत्त्वं गतं तस्य कामतत्त्ववशं गतः॥ २२॥

उस कामी ने रमरण करते हुए रात्रि, दिन भी नहीं जाना, इस प्रकार मुनि का आचार तो लोप हो गया और बहुत समय व्यतीत हो गया—

न निशां न दिनं सोऽपि रमन् जानाति कामुकः।
बहुवर्षगतः कालो मुनेराचारलोपतः॥ २३॥

मञ्जुघोषा मुनि से बोली कि मैं देवलोक को जाना चाहती हूँ। मुनि ने कहा कि इस समय प्रदोष समय में लाना चाहती हो, प्रातःकाल को सन्ध्या तक हमारे समीप रहो। मारे डर के ५५ वर्ष ९ महीने ३ दिन मुनि के साथ रमण कर कहने लगी कि मैं अपने घर को जाऊंगी। मेधावी बोले इस समय प्रभाती है, जब तक हम सन्ध्या करें तब तक यहीं स्थित रहो। तब वह मुस्कराकर कहने लगी कि आप बीते हुए समय को तो विचार कीजिए। तब तो मुनि ५७ वर्ष उसके साथ रमण करते हुए विचार क्रोध कर तपस्या को नाश होते हुए देख उससे बोले कि तू पिशाची हो, इस

प्रकार उसको शाप दिया कि हे पापे! हे दुराचारे! तुझको धिक्कार है—

समाश्च सप्तपञ्चाशद् गता तस्य तया सह।
चुक्रोध सततस्तस्यै ज्वालामाली बभूव ह॥ ३३॥
नेत्राभ्यां विस्फुलिङ्गान्स मुञ्चमानोऽतिकोपनः।
कालरूपां तु तां दृष्ट्वा तापसः क्षयकारिणीम्॥ ३४॥
दुःखार्जितं क्षयं नीतं तपो दृष्ट्वा तया सह।
स कम्पोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः॥ ३५॥
तां शशापाथ मेधावी त्वं पिशाची भवेति च।
धिक् त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये॥ ३६॥

मुनि के शाप से जलती हुई नम्रता से उनकी प्रसन्नता के लिए शाप के अनुग्रह के लिए कहने लगी कि सज्जनों का संग वचनों से होता है। आपके साथ मुझे बहुत वर्ष बीत गये। इस कारण आप मुझ से प्रसन्न हूजिए। तब मुनि बोले कि हे भद्रे! शाप के अनुग्रह करने वाला वचन सुनिये, मैं क्या करूं? हे पापे! तूने मेरा तप नष्ट कर दिया—

शृणु मे वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम्।
किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं महत्तपः॥ ३९॥
चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु भवेदेकादशी शुभा।
पापमोचनिकानाम सर्वपापक्षयङ्करी॥ ४०॥

चैत के कृष्ण पक्ष में पापमोचनी नाम एकादशी होती है, वह सब पापों को नाशती है। उसके व्रत करने से पिशाचत्व जाता रहता है। ऐसा कह मेधावी पिता के आश्रम को चले गये। पिता च्यवन पुत्र को देखकर बोले पुत्र! तूने पुण्य तो सब नष्ट कर डाला। मेधावी ने कहा कि मैंने अप्सरा के साथ रमण कर पाप किया। अब हे तात! प्रायश्चित्त कहिए, जिससे पाप नष्ट हो जावे। तब च्यवन बोले कि चैत्र कृष्ण पक्ष में पापमोचनी एकादशी होती है जिसके व्रत करने से पाप की राशि भी नष्ट होती है—

चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी।
अस्या व्रते कृते पुत्र पापराशिः क्षयं व्रजेत्॥ ४४॥

पिता के वचन सुन उन्होंने यह व्रत किया जिससे पाप नष्ट हो गये

और तपस्यायुक्त हो गया—

इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम्।
गतं पापं क्षयं तस्य तपोयुक्तो बभूव सः॥ ४५॥

उस मञ्जुघोषा ने भी उत्तम व्रत किया। वह भी पापमोचनी के व्रत से पिशाचत्व से छूट गई और सुन्दर रूप धारण कर वह अप्सरा स्वर्ग में चली गई—

साप्येवं मञ्जुघोषा च कृत्वैतद् व्रतमुत्तमम्।
पिशाचत्वाद्विनिर्मुक्ता पापमोचनिकाव्रतात्॥
दिव्यरूपधरा सा वै गतान्तके वराप्सरा॥ ४६॥

लोमश मुनि बोले कि हे मानधाता! मनुष्य में श्रेष्ठ जो पापमोचनी व्रत करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं—

पापमोचनिकां राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः।
तेषां पापं च यत्किञ्चित्तत्सर्वं च क्षयं व्रजेत्॥ ४७॥

हे राजन्! पढ़ने, सुनने से हज़ार गौओं का फल प्राप्त होता है। ब्राह्मण का मारने वाला, सोने का चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, गुरु पत्नी से गमन करने वाला—

पठनाच्छ्रवणाद्राजन्! गोसहस्रफलं लभेत्।
ब्रह्महा हेममहारी च सुरापो गुरुतल्पगः॥ ४८॥

यह सब इस व्रत के करने से पापरहित हो जाते हैं और यह व्रत बहुत पुण्य देने वाला और व्रतों में उत्तम है[१]—

---

१. कहिए सनातनधर्मी भाइयो! अब भी आपको कुछ शङ्का शेष रह गई कि प्राचीन समय में आपके पौराणिकी मनुष्य प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध होते थे। पौराणिक भाइयो! यदि यह कथा सत्य है तो कृपाकर अपने पतित भाइयों को क्यों नहीं व्रत कराकर शुद्ध कराते?

धर्मशास्त्र में परस्त्री गमन को महापाप लिखा है जो कि ऐसे साधारण व्रतों से शुद्ध नहीं हो सकता, किन्तु कर्मानुकूल अवश्य फल भोगने पड़ेंगे। इसी प्रकार ब्रह्महत्या, गुरुपत्नीगमन जो कि महापातकों में गिनाये गये हैं, एकादशी के व्रत से छटने लिखे हैं। ऐसी शिक्षा घोर-पाप में प्रवृत्त कराने वाली मनुष्यों को दुष्कर्म से निर्भय प्रदान करने वाली नहीं तो क्या है?

व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवन्ति ते।
बहुपुण्यप्रदं ह्येतत् कारणाद् व्रतमुत्तमम्॥ ४९ ॥

कामदा

अध्याय ४७

चैत्र शुक्लपक्ष में कामदा एकादशी होती है। पूर्व समय में नागपुर नाम नगरी में पुण्डरीक इत्यादि नाग रहते थे। वहाँ का पुण्डरीक राजा था, जिसकी गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा सेवा करती थीं, जिनमें से ललिता, ललित एक दूसरे से प्रसन्न धन, धान्य से युक्त रहते थे। एक दिन ललित ने गीत गाते हुए ललिता का स्मरण किया जिसके कारण गान में आनन्द न आता था जिसको ककण्ट ने जानकर पुण्डरीक से कहा। सर्पों के राजा पुण्डरीक ने क्रोध में आ शाप दिया कि रे दुर्बुद्धे ! तू पुरुषों का खाने वाला राक्षस हो जा। तब वह राक्षस हो गया। ललिता उसकी बुरी सूरत को देख दुःखित हो पति के साथ वन में घूमने लगी और वह वन में पुरुषों को खाने लगा, ललिता एक सुन्दर स्थान को देख जहाँ शान्तिदेह मुनि रहते थे, नमस्कार कर उनके आगे खड़ी हो गई। मुनि ने उसको दुःखित देख वृत्तान्त पूछा, तब उसने सब वृत्तान्त कहते हुए कहा कि मेरा स्वामी राक्षस हो गया है, जिससे मुझको बड़ा क्लेश रहता है। मुझको कोई ऐसा व्रत बतलाइये कि जिससे वह राक्षसपने से छूट जाय। तब ऋषि ने कहा कि तुम चैत्रमास शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का व्रत विधिपूर्वक करो। वह पुण्य स्वामी को दो उसने वैसा ही किया। द्वादशी के दिन ब्राह्मण के समीप भगवान् के आगे अपने पति के तारने के लिए कि मैंने कामदा एकादशी का व्रत किया है, उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति की पिशाचता दूर हो जाय—

चैत्रमासस्य रम्भोरु शुक्लपक्षोऽस्ति साम्प्रतम्।
कामदैकादशी नाम पापघ्नी ललिते परा॥ २९ ॥
कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम्।
अस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम्॥ ३० ॥

दत्ते पुण्ये क्षणात्तस्य शापदोषः प्रयास्यति।
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताभवत्॥ ३१॥
उपोष्यैकादशीं राजन् द्वादशीदिवसे तथा।
विप्रस्यैव समीपे तद्वासुदेवस्य चाग्रतः॥ ३२॥
वाक्यमुवाच ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै।
मया तु तद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम्॥ ३३॥
तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता।
ललितावचनादेव वर्त्तमानोऽपि तत्क्षणे॥ ३४॥

ललित का पाप जाता रहा, सुन्दर देहरूप हो गया। राक्षसता जाकर गन्धर्वता प्राप्त हो गई—

गतपापः स ललितो दिव्यदेहो बभूव ह।
राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्ता गन्धर्वता पुनः॥ ३५॥

सोना और रत्नों से युक्त होकर ललिता के साथ रमण करने लगा। फिर पहिले रूप से अधिक दोनों श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर—

हेमरत्नमाकीर्णो रेमे ललितया सह।
विमानवरमारूढौ पूर्वरूपाधिकौ च तौ॥ ३६॥

कामदा के प्रताप से अत्यन्त शोभित हुए ऐसा जानकर हे नृपश्रेष्ठ! यह व्रत नियम से करना चाहिए—

दम्पती अत्यशोभेतां कामदायाः प्रभावतः।
इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः॥ ३७॥

लोकों के हित के लिए तुम्हारे आगे हमने कही यह ब्रह्महत्यादि पापों की नाशने वाली पिशाचता नष्ट करने वाली है—

लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नी पिशाचत्वविनाशनी॥ ३८॥

चराचर तीनों लोकों में इससे श्रेष्ठ कोई नहीं है। पढ़ने-सुनने से

वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है[१]—

नातः परतरा काचित् त्रैलोक्ये सचराचरे।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् वाजपेयफलं लभेत्॥ ३९॥

वरूथिनी।

अध्याय ४८

वैशाख कृष्णपक्ष में वरूथिनी एकादशी होती है। सर्वदा इसके व्रत करने से पाप की हानि, सौभाग्य की प्राप्ति, गर्भ के वास की छुड़ाने वाली मानधाता आदि इसी के प्रताप से स्वर्ग को गये। भगवान् महादेव भी ब्रह्मकपाल से छूट गये। जो मनुष्य दश हज़ार वर्ष तक तप और जो सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में एक भार सोने के पुण्य का फल पाता है। सब दानों में विद्यादान श्रेष्ठ है। वरूथिनी एकादशी का करने वाला समान फल को पाता है। जो कन्या को गहनों से युक्त कर पुण्य करता है, वह उसी फल को इस व्रत का करने वाला पाता है। व्रत रखने वाला कांसा, मांस, मसूर, चना, कोदों, साग, मधु, पराया अन्न, दूसरी वार भोजन, मैथुन, दशमी को छोड़ दे। जुआ, पान, दातौन, पराया अपवाद, चुगली, चोरी, जीव मारना, रति, क्रोध, झूठ यह एकादशी में छोड़ दें। कांस, मांस, मदिरा, शहद, तेल, पतित से बोलना, कसरत, प्रवास, दूसरी वार भोजन बनवाना, पराया अन्न यह द्वादशी में छोड़ देवे। इस विधि से जो वरूथिनी का व्रत करता है, उसके सब पाप नष्ट कर अन्त में भगवान् नाशरहित गति देते हैं। जो रात्रि में जागरण कर भगवान् को पूजते हैं, उनके सब पाप छूट जाते हैं। तिससे पापों से डरे हुये को सब प्रकार से करना चाहिए और पढ़ने-सुनने से हज़ार गोदान का पुण्य होता है और सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है[२]—

---

१. यद्यपि लोक में भी यही देखा जाता है कि कर्म का फल करने वाले को ही मिलता है और यह वेद की भी आज्ञा है। परन्तु इस कहानी में भी औरों की भांति एक का किया पुण्य दूसरे को देना लिखा है जो कि वेदविरुद्ध है।

२. इस कथा के पढ़ने से ज्ञात होता है कि मांस, मदिरा एकादशी के दिन एवं द्वादशी के दिन में छोड़ देवे तो क्या शेष दिनों में सेवन रहे, यदि १ महीने में २ दिन मांस मदिरा छोड़ भी दें तो क्या केवल दो ही दिन के छोड़ने और इस व्रत के करने से

सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्या पापभीरुभिः ॥ २४॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्त्रफलं लभेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥ २५ ॥

मोहिनी।

अध्याय ४९

रामचन्द्र के पूछने पर वसिष्ठ ने कहा कि वैशाख के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी सब पाप के नाश करने वाली होती है—

वैशाखस्य सिते पक्षे राम यैकादशी भवेत्।
मोहिनीनाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा॥ ७॥

इसके व्रत के प्रभाव से मनुष्य मोह के जाल पापों के समूहों से छूट जाते हैं। मैं सत्य-सत्य कहता हूँ—

मोहजालात्प्रमुच्यन्ते पातकानां समूहतः।
अस्या व्रतप्रभावेन सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ८॥

इस कारण से हे राम! पापों की नाशने वाली यह एकादशी करने योग्य है। हे राम, सरस्वती के किनारे भद्रावती नाम नगर में द्युतिमान् राजा

ऐसे कर्मों से जिनसे कि द्विजत्व से शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है, निवृत्त हो विष्णुलोक को प्राप्त हो सकता है? सत्य तो यह है कि ऐसी लालची शिक्षाओं ने ही मनुष्यों को इन दुष्ट कर्म्मों की ओर प्रवृत्त कर दिया।

हमने प्राय: पौराणिक भाइयों को यह कहते सुना है कि "**समरथ को नहिं दोष गुसाईं, रवि पावक सुरसरि की नाईं**" परन्तु इस कथा में विचित्रता और इसके विपरीत यह कि महादेव जी भी ब्रह्म-कपाली के शाप से शापित हो इस उपर्युक्त एकादशी के व्रत से मुक्त हुए। विचारशील पुरुषो! विचारो तो सही कि जिनको आप साक्षात् भगवान् मानते हैं वह भी इससे शुद्ध हुए। तब वे अपने उपासकों को कैसे शुद्ध वा मुक्त कर सकते हैं? क्या यह महादेव की महिमा के परस्पर विरुद्ध नहीं है? इसी से तो हम कहते हैं कि पुराण एक दूसरे के विरुद्ध होने एवं आपके देवताओं को लाञ्छन लगाने से किसी विरोधी के बनाये जान पड़ते हैं न कि व्यासकृत।

हुआ। वहाँ धनपाल नाम एक बनिया रहता था, जो विष्णु का भक्त, मन्दिर तालाब का बनवाने वाला, पुण्यात्मा था, जिसके पांच पुत्र थे, जिनमें पांचवां धृष्टबुद्धि था, जो पराई स्त्रियों से रति की लालसा करने वाला, जुआ खेलने वाला, अन्याय में पिता के द्रव्य का नाश करने वाला, मदिरा पीने वाला, वेश्या से प्रीति करने वाला इत्यादि दुष्ट स्वभावी था, जिसको पिता और बान्धवों ने निकाल दिया, तब वह, नगर में चोरी करने लगा, पकड़े जाने पर कई बार राजा ने छोड़ भी दिया, तिस पर भी चोरी को न छोड़ा। फिर पकड़े जाने पर राजा ने उसको देश से निकाल दिया। यह भूख-प्यास से व्याकुल हो जंगली जानवरों को मार-मार कर अपना निर्वाह करने लगा। किसी पुण्य के प्रभाव से कौडिन्य जी के आश्रम पर पहुंच गया। महात्मा वैशाख में गङ्गास्नान कर आये थे, उनके कपड़े की बूंद उसके ऊपर गिरी, उसी से उसके पाप अशुभ नष्ट हो गये तब तो हाथ जोड़कर कौडिन्य से बोला—

माधवे मासि जाह्नव्याः कृतस्नानं तपोधनम्।
आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः॥ ३०॥
तद्वस्त्रबिन्दुस्पर्शेन गतपापो हताशुभः।
कौडिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः॥ ३१॥

कि हे ब्रह्मन्! हमारे ऊपर दया करके कहो कि जिस पुण्य के प्रभाव से युक्त होवे। महात्मा ने कहा कि तुम सुनो, वैशाख के शुक्ल पक्ष में मोहिनी एकादशी होती है, तुम उसका व्रत करो। इस व्रत के करने से देहधारियों के बहुत जन्मों के इकट्ठे पाप मेरु के समान भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार से वचन सुन प्रसन्नचित्त विधिपूर्वक व्रत कर, पापरहित हो, सुन्दर देह धारण कर गरुड़पर चढ़, सब उपद्रवों से रहित विष्णुलोक को चला गया—

एकादशीव्रतं तस्याः कुरु मद्वाक्यनोदितः।
मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं गच्छन्ति देहिनाम्॥ ३४॥
बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता।
इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा धृष्टबुद्धिः प्रसन्नधीः॥ ३५॥

व्रतं चकार विधिवत्कौडिन्यस्योपदेशतः।
कृते व्रते नृपश्रेष्ठ गतपापो बभूव सः॥ ३६॥
दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम्॥ ३७॥

हे रामचन्द्र! इस प्रकार उत्तम मोहिनी व्रत है, चराचर त्रिलोकी में इससे बढ़कर कोई नहीं। यज्ञादिक तीर्थदान इसकी सोलहवीं कला को भी नहीं, प्राप्त होते, पढ़ने-सुनने से हज़ार गौओं का फल होता है[१]—

इतीदृशं रामचन्द्र उत्तमं मोहिनीव्रतम्।
नातः परतरं किञ्चित् त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ३८॥
यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३९॥

अपरा।

अध्याय ५०

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम अपरा है जो अपार फल को देती है। ब्रह्महत्या करने वाला, गोत्र का नाश करने वाला, गर्भ का गिराने वाला, पराई स्त्री में रसिक—

अपरा नाम राजेन्द्र अपरा पुत्रदायिनी।
लोके प्रसिद्धितां याति अपरां यस्तु सेवते॥ ३॥
ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा।
परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च॥ ४॥

यह अब अपरा के सेवन से पापहीन निश्चय हो जाते हैं। झूठी

---

१. इस कथा के पढ़ने से स्पष्ट होता है कि गुरु वसिष्ठ की आज्ञानुसार श्रीरामचन्द्र जी ने भी सीता के वियोग से भयभीत हो कर यही व्रत किया है। सब विचारशील सुजान जन विचार सकते हैं कि उस पहिली कथा में तो महादेव शाप से छूटे और इसमें रामचन्द्र दुःख से छूटे। तब भी कोई संशय शेष रहा कि यह ईश्वर थे? प्यारे भाइयो! कुछ बुद्धि से काम लीजिए और फिर देखिए कि वेद आपको क्या बात रहा है।

गवाही देने वाला, झूठा मान करने वाला, झूठ बोलने वाला—

अपरासेवनाद्राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम्।
कूटसाक्ष्यं कूटमानं तुलाकूटं करोति यः॥ ५॥

झूठ वेद शास्त्र का पढ़ने हारा, झूठा ज्योतिषी वैद्य—

कूटवेदं पठेद्यस्तु कूटशास्त्रं तथैव च।
ज्योतिषी गणकः कूटः कूटायुर्वैदिको भिषक्॥ ६॥

झूठी गवाही से युक्त यह सब नरक को जाते हैं परन्तु अपरा के सेवन से उनके पापों का नाश हो जाता है—

कूटसाक्ष्यसमायुक्ता विज्ञेया नरकौकसः।
अपरासेवनाद्राजन् पापैर्मुक्ता भवन्ति ते॥ ७॥

क्षत्री धर्म को छोड़ युद्ध से भागने वाला, पापी अपरा के सेवन से पापों से छूट स्वर्ग को जाता है और जो विद्यावान् शिष्य अपने गुरु की निन्दा करता है, वह भी अपरा के व्रत से सद्गति को पाता है—

क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते।
स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः॥ ८॥
अपरासेवनात्सोऽपि पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत्।
विद्यावान्यः स्वयं शिष्यो गुरुनिन्दां करोति च॥ ९॥
स महापातकैर्युक्तो निरयं याति दारुणम्।
अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः॥ १०॥

मकर के सूर्य, माघस्नान प्रयाग से जो फल होता है, काशी ग्रहण से जो पुण्य होता है, गया में पिण्ड देने से, गोमती स्नान से, सिंह-कन्या की बृहस्पति में कृष्णवेणी के स्नान करने से, कुम्भ में केदार के दर्शन से, बदरी नारायण की यात्रा और सेवन से जो फल मिलता है, कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण से जो फल मिलता है, हाथी, घोड़ा, सोने के दान से, दक्षिणा समेत यज्ञ करने से, जो फल मिलता है वैसा ही फल अपरा के व्रत से प्राप्त होता है। आधी ब्याई हुई गौ के देने, सोना, पृथिवी के देने से जो फल मिलता है वही अपरा से होता है। यह अपरा पापरूपी वृक्ष काटने के लिए

कुल्हाड़ी है। पापरूपी ईंधन जलाने में अग्निरूप है। पापरूप अंधेरा दूर करने के लिए सूर्यरूपी है। पापरूपी सारङ्गों को सिंहरूपी है। जल में बुलबुला जन्तुओं से पुत्तकी नाईं—

महिमानमपरायाः शृणु राजन्वदाम्यहम्।
मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे यत्फलं नृणाम्॥ ११॥
काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यमुपरागे निमज्जनात्।
गयायां पिण्डदानेन पितृणां तृप्तिदो यथा॥ १२॥
सिंहस्थिते देवगुरौ गौतम्यां स्नातको नरः।
कन्यागते गुरौ राजन्कृष्णवेणीनिमज्जनात्॥ १३॥
यत्फलं समवाप्नोति कुम्भकेदारदर्शनात्।
बदर्याश्रमयात्रायां तत्तीर्थसेवनादपि॥ १४॥
यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे।
गजाश्वहेमदानेन यज्ञं कृत्वा सदक्षिणम्॥ १५॥
तादृशं फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात्।
अर्धप्रसूतां गां दत्वा सुवर्णवसुधां तथा॥ १६॥
नरो यत्फलमाप्नोति अपराया व्रतेन तत्।
पापद्रुमकुठारीयं पापेन्धन इवानलः॥ १७॥
पापान्धकारतरणिः पापसारङ्गकेसरी।
बुदबुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु॥ १८॥

एकादशी के व्रत के बिना फिर जन्म-मरण होता रहता है, अपरा का व्रत कर भगवान् की पूजा करने से सब पापों से छूट विष्णुलोक को जाता है[१]—

---

१. प्यारे भाइयो! यदि इस व्रत का इतना प्रभाव था तो महाभारत के समय श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने क्यों अर्जुन को यह उपदेश दिया कि रण से भागने वाले क्षत्री की मुक्ति नहीं होती? अब इसकी सत्यता आप सज्जन लोग स्वयं ही विचार लें एवं महापातकों की भी जिसके लिए कि महात्मा तुलसीदास तक लिख रहे हैं कि "जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा" परन्तु इसमें सबके विपरीत लिखा है।

जायन्ते मरणं चैव एकादश्या व्रतं विना।
अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम्॥ १९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥ २०॥

निर्जला।

अध्याय ५१

व्यास जी युधिष्ठिर से कहते हैं, मानव धर्म, वैदिक धर्म, तुमने सुना, कलियुग में इनके करने की सामर्थ्य नहीं। इसलिए सुखपूर्वक थोड़ा उपाय, थोड़े धन, थोड़े क्लेश में महाफल देने वाला सब पुराणों का सारभूत यह है कि पक्षों की एकादशी में भोजन न करे। द्वादशी में पवित्र फूलों से भगवान् को पूजे, ब्राह्मणों को भोजन करा पीछे आप भी भोजन करे। सूतक और अशौच में भोजन करना न चाहिए, जिनको स्वर्ग की इच्छा हो, वह जब तक जिएं इसको करें, चाहे पापी, दुराचारी, धर्म से हीन हो परन्तु एकादशी में भोजन न करे तो वह यमराज के पास नहीं जाते—

अपि पापा दुराचाराः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः।
एकादश्यां न भुञ्जाना न ते यान्ति यमान्तिकम्॥ ९॥

यह सुन भीमसेन ने कहा कि हमसे सब भाई कहते हैं। परन्तु हमसे भूख नहीं सधती और स्वर्ग जाने की इच्छा भी है। इसलिए आप निश्चय करके ऐसा कोई कार्य बतलाइये जिससे मेरा भी कल्याण हो। तब व्यास ने कहा कि वृष, मिथुन के सूर्य में जब ज्येष्ठ मास में एकादशी हो तो बिना जल के व्रत करे और आचमन भी न ले। नहीं तो व्रत नष्ट हो जाता है, उदय पर्यन्त जो मनुष्य जल को छोड़ देता है, वह बारह द्वादशियों के फल को पाता है—

उदयादुदयं यावद् वर्जयित्वोदकं नरः।
श्रूयतां समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम्॥ २१॥

जो मनुष्य बिना जल के एकादशी व्रत करता है, वह सब पापों से छूट जाता है। जो उस दिन स्नान दान करता है, वह नाश रहित है, जो एकादशी को अन्न-अन्न भोजन करता है, वह पाप भोगता है—

एकादश्यां दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः ॥ ४३ ॥
इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम्।

इस लोक में चाण्डाल मर कर दुर्गति को प्राप्त होता है, जो ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी में व्रत कर दान देते हैं, वह परम पद पाते हैं। ब्राह्मण का मारने वाला, मदिरा पीने वाला, चोर, गुरु से वैर करने वाला यह सब निर्जला व्रत से पापों से छूट जाते हैं। जिन्होंने इस का व्रत नहीं किया, उन्होंने आत्मा से वैर किया, वे ही पापी चोर हैं—

ये च दास्यन्ति दानानि द्वादश्यां समुपोषिताः ॥ ४४ ॥
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे प्राप्स्यन्ति परमं पदम्।
ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेषी सदानृती ॥ ४५ ॥
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्निर्जला यैरुपोषिता।
विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशीदिने ॥ ४६ ॥

जो शान्त, दांत, दान में परायण, रात्रि में जागरण कर भगवान् को पूजता है, वह सौ आने वाली, सौ बीती हुई पीढ़ियों को और अपने को वासुदेव के मन्दिर में प्राप्त करता है।[१]

ऐसा ही **वाराह पुराण** पूर्वार्द्ध अध्याय ३५ में लिखा है॥

योगिनी।

अध्याय ५२

आषाढ़ के कृष्णपक्ष में योगिनी नाम एकादशी पापों की नाशने वाली होती है। यह संसाररूपी समुद्र में डूबे हुओं को नौका, सनातनी व्रत करने

---

१. कलियुग में यदि वैदिक धर्म करने की सामर्थ्य नहीं तो शंखासुर से वेदों के बचाने के प्रयत्न के लिए आपके पौराणिकी ईश्वर को वाराह का अवतार क्यों लेना पड़ा? मित्रवर्य! क्या इससे यह स्पष्ट प्रकट नहीं होता है कि वेदों की महिमा गिराने और नवीन मत चलाने को यह विरोधियों एव आलसियों ने बातें प्रकट कर दीं, वरन् सनातन वेद क्या किसी जाति व काल विशेष के लिए हो सकते हैं? कदापि नहीं।

इससे स्पष्ट प्रकट है कि यह किसी ऐसे पुरुष की रचना है कि जो पुनर्जन्म को नहीं मानता वरन् सौ पीढ़ी आगे व पीछे को न लिखता, बाहरी बुद्धि॥

वालों को त्रिलोकी में सारभूत है। अलका में कुबेर जी महाराज महादेव को पूजते थे। हेममाली फूलों को लाया करता था। एक दिन एक रूपवती विशालाक्षी स्त्री के प्रेम में डूब कर मध्याह्न समय तक नहीं ले गया, तब कुबेर ने यज्ञ को भेजा कि हेममाली कहाँ है? यज्ञ ने घर आकर जाना कि वह स्त्री पर मोहित होने के कारण घर ही में पड़ा है। कुबेर ने यह सुनकर फिर यज्ञ से उसको बुलाया। वह उड़ता हुआ उनके सामने गया। कुबेर ने क्रोधित होकर कहा कि हे दुष्ट! तूने देवों की निन्दा की। इसलिए स्त्री वियोग होकर तेरे अठारह कोढ़ हो जावें, तू इस स्थान से चला जा। कुबेर के ऐसे वचन कहते ही वह उस स्थान से गिर गया और भारी दुःखों अर्थात् कोढ़ से पीड़ित हो दुःखी होने लगा—

अष्टादशकुष्ठवृत्तो वियुक्तः कान्तया तया।
अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छस्व प्रमथाधम॥ १५॥
इत्युक्ते वचने तस्य तस्मात्स्थानात्पपात सः।
महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठैः पीडितविग्रहः॥ १६॥

वह इस दुःख से दुःखी घूमता हुआ हिमालय पर गया और वहाँ मार्कण्डेय महर्षि को देखा। उन्होंने पूछा कि क्या दशा है? तब उसने सब वृत्तान्त कहा। मार्कण्डेय बोले कि तूने सत्य ही कह दिया, इसलिए कल्याण देनेवाले व्रत का उपदेश करता हूँ। उन्होंने कहा आषाढ़ कृष्णपक्ष की योगिनी एकादशी का व्रत कर। मार्कण्डेय जी के उपदेश से उसने यथोचित व्रत किया तो १८ कोढ़ जाते रहे—

मार्कण्डेयोपदेशेन व्रतं तेन कृतं यथा।
अष्टादशैव कुष्ठानि गतानि तस्य सर्वशः॥ ३१॥

वह जन ८८ हज़ार विप्रों को भोजन कराता है, जो योगिनी व्रत करता है, उनका फल समान होता है[१]—

---

१. सनातनधर्मी भाइयों को चाहिए कि इस कोढ़ की दवा को पेटेण्ट कराकर सनातनधर्म गज़ट से विज्ञापन निकाल दें। क्योंकि सम्भव है कि सिविल सर्जन और वैद्य लोगों ने इस दवा को न जाना हो! हरिद्वार और हृषीकेश के मध्य में बहुत से कुष्ठी हैं, क्या कोई पद्मपुराणी एकादशी का व्रत करने वाला वहाँ नहीं रहता वा जाता है? कृपा करके कोढ़ियों को यह दवा बता दें।

अष्टाशीतिसहस्त्राणि द्विजान्भोजयते तु यः।
तत्समं फलमाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥ ३३ ॥

देवशयनी।

अध्याय ५३

आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम देवशयनी है। पापों के नाश के लिए ब्रह्मा ने इसको सबसे उत्तम रचा है। इससे श्रेष्ठ मोक्षदायक कोई नहीं है—

पापिनां पापनाशाय सृष्टा धात्रा महोत्तमा।
अतः परा न राजेन्द्र वर्त्तते मोक्षदायिनी ॥ ४ ॥

इसलिए वैष्णव को चाहिए कि आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में एकादशी का अच्छे प्रकार व्रत करें क्योंकि इसके पुण्य की गणना में ब्रह्मा भी असमर्थ हैं[१]—

नास्याः पुण्यस्य संख्यानं कर्तुं शक्तश्चतुर्मुखः।
एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्यां व्रतोत्तमम् ॥ ३० ॥
सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
स च लोके मम सदा श्वपचोऽपि प्रियङ्करः ॥ ३१ ॥

कामिका।

अध्याय ५४

श्रावण कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम कामिका है। उस दिन गङ्गा काशी, नैमिषारण्य, पुष्कर इत्यादि में जो फल होता है, वह कृष्ण के पूजन से होता है। जो मनुष्य पापरूपी कीचड़ से व्याकुल संसाररूपी समुद्र में

बहुधा सनातनी ब्राह्मण देवता यह कहते हैं कि आर्यसमाजियों ने न्यौते बन्द कर दिये। हमारी समझ में न्यौते बन्द कराने वाली यह एकादशी है, जिसके व्रत करने से ८८ हज़ार विप्रभोज का फल मिलता है।

१. इससे श्रेष्ठ मोक्षदायक कोई नहीं तो क्या और सब उपर्युक्त झूठी हैं? ब्रह्मा जिन्होंने कि जगत्, रचा वह भी उसके गुण गिनने में असमर्थ! महिमा हो तो यहाँ तक!

डूबे हुए हैं, तिनके उद्धार के लिए कामिका व्रत उत्तम है—

ये संसारार्णवे मग्नाः पापपङ्कसमाकुले।
तेषामुद्धरणार्थाय कामिकाव्रतमुत्तमम्॥ १४॥

इससे बढ़कर कोई पवित्र और पापनाशिनी नहीं है, नारद यह जानो इसे भगवान् ने अपने आप कहा है—

नातः परतरा काचित् पवित्रा पापहारिणी।
एवं नारद जानीहि स्वयमाह परो हरिः॥ १५॥

आध्यात्मिक विद्या में विरक्त मनुष्यों को जो फल मिलता है, उससे अधिक कामिका व्रत करने वालों को मिलता है—

अध्यात्मविद्यानिरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः।
ततो बहुतरं विद्धि कामिकाव्रतसेविनाम्॥ १६॥

कामिका व्रत वाला रात्रि में जागरण करने से यमराज को नहीं देखता, दुर्गति को पाता नहीं, जो एक भार सोना और चौगुनी चांदी देने से फल मिलता है, वह तुलसीदल के पूजने से मिलता है—

रात्रौ जागरणं कृत्वा कामिकाव्रतकृन्नरः।
न पश्यति यमं रौद्रं नैव गच्छति दुर्गतिम्॥ १७॥
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदलपूजनात्।
रत्नमौक्तिकवैडूर्यप्रवालादिभिरर्चितः॥ २१॥

जो मनुष्य एकादशी में दिन-रात्रि दीप जलाता है, उसका पुण्य अगणित है। जो कृष्ण के आगे आज के दिन दीप जलाता है, उसके स्वर्ग में पितृ अमृत से तृप्त होते हैं। जो घी या तिल के तेल से दीपक जलाता है, वह सौ करोड़ दीपों से पूजित सूर्य लोक को प्राप्त नहीं होता—

इस व्रत से बुरी योनियों को नहीं देखते, योगी लोग इसका व्रत करने से मोक्ष को प्राप्त हुये हैं—

न पश्यन्ति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात्।
कामिकाया व्रते चीर्णे कैवल्यं योगिनो गताः॥ १८॥

तिससे नियतात्माओं करके सब यत्नों से करने योग्य है और तुलसीपत्तों

से जो भगवान् को पूजता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता जैसे जल से कमल धो जाता है[१] ॥

पुत्रदा।

अध्याय ५५

श्रावण के शुक्ल पक्ष में पवित्ररूपिणी पुत्रदा एकादशी होती है, जिसके सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है। पूर्व समय में द्वापर युग के आदि में महिष्मती पुर में महीजित नाम राजा था। पुत्रहीन होने से चिन्ता युक्त रहता था। एक दिन प्रजा पुरुषों से उसने कहा कि इस जन्म में अन्याय से धन नहीं लिया। प्रजा का पुत्रों के बराबर पालन किया, धर्म से पृथिवी को जीता, सज्जनों की सेवा, शत्रुओं को दण्ड दिया, परन्तु हमको किस कारण से पुत्र नहीं मिला सो तो कहिए, यह सुन प्रजा और पुरोहित सम्मति कर गहन वन को गये, वहाँ ऋषियों के आश्रमों को देख रहे थे, इतने में धर्मतत्त्व के जानने वाले महात्मा लोमश जिनकी सबने वन्दना की, तब उन्होंने कहा कि अपना कारण कहिए तो उन्होंने उपर्युक्त सब वृत्तान्त कह कर प्रार्थना की कि अब जिस प्रकार से राजा के पुत्र हो उसको आप कहिए। महात्मा लोमश मुहूर्त्तमात्र आनकर राजा के पूर्व जन्म का हाल जान बोले कि यह पूर्वजन्म में क्रूर धनहीन बनिया था। वाणिज्य के अर्थ एक गांव से दूसरे गांव को जाता था। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को दोपहर के समय प्यास से व्याकुल था, जल पीने को तालाब पर गया, उसी समय बछड़ा सहित एक गाय पानी पीने को आई, जो प्यास घाम से व्याकुल थी, उस जल पीती हुई को खेद कर आप जल पीने लगा, उसी कर्म से यह पुत्रहीन राजा है—

तृष्णातुरा निदाघार्ता तस्यामम्बु पपौ तु सा।
पिबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं पपौ स्वयम्॥ २९ ॥
कर्मणा तेन पापेन पुत्रहीनो नृपोऽभवत्।
कस्यापि जन्मनः पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ३० ॥

---

१. यदि कामिका का ऐसा माहात्म्य था तो श्रीकृष्ण महाराज ने इसका अर्जुन को उपदेश न कर योगाभ्यास की शिक्षा क्यों दी ?॥

तब सबने कहा कि पुण्य से पाप नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए आपके उपदेश के प्रसाद से राजा के पुत्र हो। तब लोमश बोले कि श्रावण के शुक्ल पक्ष में पुत्रदा एकादशी वाञ्छित फल को देने वाली सुनी जाती है, उसका व्रत सब लोग कीजिए—

श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता।
एकादशी वाञ्छितदा कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः॥ ३२॥

यह सुन सब मनुष्य दण्डवत् कर नगर में आये और विधिपूर्वक सब लोगों ने व्रत किया—

इति श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिमेत्य पुरं व्रतम्।
यथाविधि यथान्यायं कृतं तैर्जागरान्वितम्॥ ३३॥

व्रत का पुण्य सब मनुष्यों ने राजा को दे दिया। तब रानी ने सुन्दर गर्भ को धारण किया—

तस्य पुण्यं सुविमलं दत्तं नृपतये जनैः।
दत्ते पुण्येऽथ सा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम्॥ ३४॥

और तेजस्त्री पुत्र को उत्पन्न किया—

प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम्॥ ३५॥

द्वादशी में भगवान् का पवित्रारोपण करावे। जो मनुष्य विधि से यह व्रत नहीं करता, उसकी वैष्णवी पूजा वर्ष भर की निष्फल हो जाती है। जो इसका माहात्म्य सुनता है, वह पापों से छूट जाता है, इस लोक में पुत्र सुख पाकर परलोक में स्वर्ग को प्राप्त होता है[१]—

तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला वैष्णवस्य तु।
श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरः पापात् प्रमुच्यते।

---

१. न जाने महर्षि वसिष्ठ और शृंगी ऋषि ने क्यों महाराज दशरथ को वृथा कष्ट दे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। क्या उस समय में व्यासकृत पुराण उपस्थित न थे? परन्तु जो कुछ हो अब तो उपस्थित हैं, सनातन धर्म्मी भाइयों के लिए यह एकादशी पुत्रों की देने वाली है इसलिए जिन सनातनधर्मी भाइयों को पुत्र की इच्छा हो इसी से पुत्र प्राप्त कर लें॥ फिर न जाने ग्रहों की दुकान क्यों खोलते हैं कबरों और मदार इत्यादि को क्यों पूजने जाते हैं?

इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिं लभेत्॥ ४४॥

अजा।

अध्याय ५६

भादौं की कृष्णपक्ष की एकादशी को अजा कहते हैं। पूर्व समय में सब पृथिवी का राजा हरिश्चन्द्र हुआ, जो सत्यप्रतिज्ञा करने वाला था। किसी कर्म से राज्य से भ्रष्ट हो गया तो उसने अपने को एवं स्त्री और पुत्र को चाण्डाल के हाथ बेच डाला। जहाँ वह मुर्दों के कपड़े लेता था, परन्तु सत्य को वहाँ भी नहीं छोड़ा। इस काम को करते हुए वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन दु:खी हो कहने लगा कि क्या करूँ? इतने में गौतम ऋषि वहाँ आ गये और हाल सुनकर महात्मा ने कहा कि भादौं के कृष्ण पक्ष में अजा एकादशी आने वाली है? हे राजन्! इसका व्रत करो तो तुम्हारे पापों का अन्त हो जावेगा। तुम्हारे भाग्य के वश यह सातवें दिन प्राप्त होगी॥ १५॥

उसका व्रतकर रात्रि में जागरण करो इस प्रकार व्रत करने से तुम्हारा पाप निश्चय नाश हो जावेगा—

उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु।
एवमस्या व्रते चीर्णे तव पापक्षयो ध्रुवम्॥ १६॥

हे राजाओं में उत्तम तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से मैं प्राप्त हुआ हूँ। ऐसा कह वे अन्तर्धान हो गये—

तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम।
इत्येवं कथयित्वा च मुनिरन्तरधीयत॥ १७॥

राजा ने मुनि के वचन सुन उत्तम व्रत किया व्रत करने से क्षण मात्र में राजा के पाप का नाश हो गया—

मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम्।
कृते तस्मिन् व्रते राज्ञः पापस्यान्तोऽभवत् क्षणात्॥ १८॥

राजा का दु:ख जाता रहा। स्त्री मिल गई, पुत्र जी गया। आकाश में नगाड़े बजे। फूलों की वर्षा हुई और अकण्टक राज्य राजा ने पाया और पुर परिवार समेत स्वर्ग भी मिला। जो मनुष्य इसका व्रत करते हैं, स्वर्ग को

जाते हैं। इसके पढ़ने-सुनने से अश्वमेध का फल होता है[१]—

सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते नृप।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि अश्वमेधफलं लभेत्॥ २३॥

पद्मा।

अध्याय ५७

भाद्रपद शुल्कपक्ष की एकादशी को पद्मा कहते हैं ब्रह्मा ने नारद से कहा कि सूर्यवंश में मानधाता नाम राजा हुए जो धर्म से प्रजा का पालन करते थे। बहुत काल बीतने पर ३ वर्ष तक उसके राज्य में वर्षा नहीं हुई जिससे प्रजा दु:खित हो राजा से प्रार्थना करने लगी कि महाराज आप जैसे धर्मात्मा राजा होने पर भी न मालूम वर्षा क्यों नहीं होती? आप उपाय सोचिये। तब राजा गहन वन को गया। मुनियों के आश्रमों में घूमता हुआ, अङ्गिरा ऋषि के समीप पहुंचा। नमस्कारादि कर अपना सब वृत्तान्त कहा। तब ऋषि बोले कि यह युगों में उत्तम कृतयुग है, इसमें मनुष्य धर्म में परायण हैं, धर्म चार पावों का है—

एतत् कृतयुगं राजन् युगानामुत्तमं मतम्।
अत्र ब्रह्मपरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः॥ २९॥

इसलिए ब्राह्मण ही तपस्यायुक्त होने चाहिएं अन्य नहीं, सो हे राजेन्द्र! तुम्हारे राज्य में शूद्र तपस्या कर रहा है—

अस्मिन् युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः॥
विषये तव राजेन्द्र वृषलोऽयं तपस्यति॥ ३०॥

इसी कारण मेघ नहीं वर्षते, इसके मारने में यत्न कीजिए तो दोष निर्वृत्त हो—

---

१. क्या राजा हरिश्चन्द्र ने पापों के फल से दु:ख पाया अथवा विश्वामित्र को दान दे वचन न लौटने से प्रकट होता है कि एकादशी का माहात्म्य बढ़ाने को यह कथा लिख दी है, वास्तविक कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। वरन् एकादशी के व्रती सब सुखी ही देखे जाते!

एतस्मात्कारणाच्चैव न वर्षति बलाहकः।
कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति॥ ३१॥

तब राजा बोले कि इस निरपराधी तपस्वी को मैं नहीं मारूंगा। आप धर्म का उपदेश दीजिए, जिससे दोष नष्ट हो—

नाहमेनं वधिष्यामि तपस्यन्तमनागसम्।
धर्मोपदेशं कथय उपसर्गविनाशनम्॥ ३२॥

फिर ऋषि बोले कि हे राजन्! जो ऐसा ही है तो भादों के शुक्ल पक्ष की एकादशी पद्मा का व्रत कीजिए—

यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम्।
नभस्यस्य सिते पक्षे पद्मा नामेति विश्रुता॥ ३३॥

इस व्रत के प्रभाव से अच्छी वर्षा होगी, यह सर्वसिद्धियों की देने वाली उपद्रवनाशिनी है—

तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम्।
सर्वसिद्धिप्रदा ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी॥ ३४॥

राजा ने यह सुन कर घर जाकर चारों वर्णों और प्रजा समेत इस व्रत को किया—

भाद्रमासे सिते पक्षे पद्माव्रतमथाकरोत्।
प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः॥ ३६॥

जिससे मेघ वर्षे, अन्न अच्छा उत्पन्न हुआ—

एवं व्रते कृते राजन् प्रववर्ष बलाहकः।
जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यशालिनी॥ ३७॥

इसलिए उत्तम व्रत करना चाहिए। दही, भात, जल से भरा कलश, छाता, जूते, ब्राह्मण को दे, प्रार्थना करे कि हे गोविन्द! आप सुख दीजिए।[१]

---

१. वाह रे फिलासफ़ी शूद्र तो तप करके परमात्मा का स्मरण करे और पौराणिकी अङ्गिरा ऋषि उसके मारने का राजा को उपदेश दें। विचारशीलो! आप विचार सकते हैं कि शूद्र की तपस्या से मेघ बन्द हो, सदुपदेष्टा ऋषि तपस्वी को मारने की आज्ञा दें, यदि ऐसा ही था तो वाल्मीकि आदि कौन थे? हमारे ब्राह्मण भाइयों

इन्द्रा।

अध्याय ५८

क्वार कृष्णपक्ष में इन्द्रा नाम एकादशी होती है, जिससे भारी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पितृ नरक में हैं, उनको गति देती है—

आश्विने कृष्णपक्षे तु इन्द्रा नाम नामतः।
तस्या व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति॥ २॥
अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनी।
शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम्॥ ३॥

कृतयुग में महिष्मतीपुर में चन्द्रसेन राजा हुआ जो धर्मात्मा था। एक दिन नारद आये और कुशल पूछने के पीछे राजा ने आने का कारण पूछा, उन्होंने कहा कि मैं ब्रह्मलोक से यमलोक को गया तो वहाँ मैंने तुम्हारे पिता को देखा। उन्होंने कहा कि उसको किसी पूर्वजन्म के विघ्न से यमराज के पास आना पड़ा है इसलिए पुत्र से कह देना कि तुम इन्द्रा एकादशी का व्रतकर स्वर्ग पहुंचाओ, इसलिए आपके पास आये हैं। नारद ने सब विधि बताई, उसने वैसा ही किया अर्थात् स्त्री, पुत्रों, नौकरों समेत राजा ने उत्तम व्रत किया—

यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम्।
अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः॥ ३२॥

व्रत करने पर ही हे युधिष्ठिर! आकाश से फूलों की वर्षा हुई। राजा के पिता गरुड़ पर चढ़ स्वर्ग को गये—

कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः।
तत्पिता गरुडारूढो जगाम हरिमन्दिरम्॥ ३३॥

को उचित है कि जहां-जहाँ पानी की वर्षा न हो, वहीं इस व्रत के प्रभाव से पानी वर्षा देवें क्योंकि भारतवर्ष के मनुष्य अकाल में स्वयं पीड़ित रहते हैं जब कि उनके पास पानी वर्षाने की एकादशीरूपी कला मौजूद है तो फिर समस्त देश में दुर्भिक्ष क्यों पड़ते हैं?

इन्द्रसेन ने अकण्टक राज्य किया और आप भी स्वर्ग को चले गये[१]—

इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम्।
राज्ये निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम्॥ ३४॥

पापकुशा।

अध्याय ५९

क्वार के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पापकुशा कहते हैं, यह पापनाशिनी है। इसमें पद्मनाभ नाम अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए इसको पूजे तो स्वर्ग मोक्ष की देने वाली है। फिर बहुत काल तीव्र तपस्या कर जो फल मिलता है, वह भगवान् के नमस्कार करने से मिलता है। मोहयुक्त मनुष्य बहुत पाप करके भी सब पाप नाश करने वाले भगवान् को नमस्कार कर नरक को नहीं जाता। पृथिवी, तीर्थ, पवित्र स्थान जितने हैं, वे विष्णु के नाम से प्राप्त होते हैं, उनको यमलोक की यातना भी नहीं होती। मनुष्य घोर पाप करने पर भी एक एकादशी व्रत करने से यम यातना को नहीं प्राप्त होते जैसा पाप नाशने वाला पद्मनाभ व्रत है वैसा तीनों लोकों को पवित्र करने वाला अन्य नहीं है। तब ही तक पाप रहते हैं, जब तक पद्मनाभ का व्रत नहीं करता। हज़ार अश्वमेध यज्ञ, सौ राजसूय यज्ञ एक एकादशी की सोलहवीं कला को नहीं प्राप्त होते। इसके बराबर कोई व्रत संसार में नहीं, जो लोग बहाने से भी करते हैं वे यमलोक को नहीं जाते।

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १३॥
एकादशीसमं किञ्चिद् व्रतं लोके न विद्यते।
व्याजेनापि कृता यैश्च न ते यान्ति हि भास्करिम्॥ १४॥

---

१. यह स्पष्ट प्रकट है कि प्राणान्त होने पर यह शरीर मृतवत् पड़ा रहता है और कर्मानुकूल जीवात्मा दूसरा शरीर धारण करता है यथा महात्मा कृष्ण कहते हैं कि (**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**) परन्तु इस कथा में यह विचित्रता है कि स्वर्ग में उसके पिता को देखा। फिर दूसरे, यह पिता-पुत्र का शारीरिक सम्बन्ध न कि आत्मिक?

यह एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, आरोग्यता, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र देने वाली। गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र भी एकादशी व्रत के पुण्य को प्राप्त नहीं होते—

स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी।
कलत्रसुतदा ह्येषा धनमित्रप्रदायिनी॥ १५॥
न गङ्गा न गया राजन्न च काशी च पुष्करम्।
न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात्॥ १६॥

हे राजन्! रात्रि में जागरण कर एकादशी के दिन का व्रतकर मनुष्य वैष्णवपद प्राप्त करता है—

रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्।
अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम्॥ १७॥

दश माता, दश पिता, दश स्त्री की पीढ़ियों का उद्धार करता है—

दशैव मातृके पक्षे राजेन्द्र दश पैतृके।
प्रियाया दशपक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः॥ १८॥

व्रत करने वाले चार भुजा व सुन्दर स्वरूप को धारण कर गरुड़ पर चढ़ माला पहन पीताम्बर पहन भगवान् के मन्दिर को जाते हैं—

चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः।
स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमन्दिरम्॥ १९॥

बाल, युवा, वृद्धावस्था में भी एकादशी का व्रत कर दुर्गति को प्राप्त नहीं होता[१]—

---

१. क्या यह यजमानों के खुश करने और वैदिकधर्म से विमुख करने वाली शिक्षा नहीं है कि जो बहाने से भी करते हैं वे यमराज के यहाँ नहीं जाते? शोक ऐसी शिक्षा पर!

हमको बड़ा आश्चर्य ऐसी कथाओं पर होता है कि एक ओर तो यह **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण** प्रकृति खण्ड, अध्याय ३७, श्लोक १७ का वचन "**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**" और दूसरी ओर इसमें लिखा है कि माता की दश पीढ़ी एवं पिता की दश पीढ़ी, स्त्री की दश पीढ़ी केवल एक एकादशी के व्रत से तर जातीं हैं। पाठकगण क्या न्याय इसी का नाम है?

बालत्वे यौवनत्वे च वृद्धत्वे च नृपोत्तम।
उपोष्यैकादशीं नूनं नैव प्राप्नोति दुर्गतिम्॥ २०॥

रमा।

अध्याय ६०

कार्तिक कृष्णपक्ष की एकादशी को रमा कहते हैं। पूर्व समय में मुचकुन्द नाम राजा विष्णु का भक्त और सत्यवादी था जिसकी इन्द्र, कुबेर, यम से मित्रता थी। उसने अपनी लड़की चन्द्रभागा का राजा चन्द्रसेन के पुत्र शोभन के साथ विवाह कर दिया। इसी समय में शोभन श्वसुर के घर आया, वह दिन एकादशी के व्रत का था। राजा के राज्य में इसका बड़ा नियम था। नगारा बजते ही इसने चन्द्रभागा से कहा कि अब मैं क्या करूं? तब उसने कहा कि यदि भोजन करो तो घर से निकल जाओ। उसने कहा मैं भी व्रत करूंगा। जब भूख लगी और रात्रि आई शोभन की सूर्योदय में मृत्यु हो गई। तब तो राजा ने राजाओं के योग्य काष्ठ से जलवा दिया। चन्द्रभागा ने अपने देह को अपने पति के साथ नहीं जलाया—

दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः।
चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पतिना सह॥ २०॥

शोभन रमा एकादशी के प्रभाव से मन्दाचल के कंगूरे पर देवलोक में प्राप्त हुआ जहाँ वह सुन्दर महलों में सिंहासन पर बैठा हुआ अप्सराओं से सेवित था। वहाँ कोई मुचकुन्द के पुर में बसने वाला सोम शर्मा ब्राह्मण तीर्थयात्रा करता हुआ राजा के दामाद के पास गया। शोभन ने सोम शर्मा को उठ कर प्रणाम किया और श्वसुर आदि की कुशल पूछी, उसने कहकर कहा कि आप इस नगर में कैसे आये? शोभन ने कहा कार्तिक के कृष्णपक्ष में रमा एकादशी के व्रत के प्रभाव से मैंने अनिश्चय पुर तो प्राप्त किये? अब आप यह कीजिए जिससे निश्चय हो जावे—

कार्तिकस्यासिते पक्षे या नामैकादशी रमा॥ ३१॥
तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्र पुरमध्रुवम्।
ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम॥ ३२॥

तब ब्राह्मण ने कहा हमको यह निश्चय कैसे हो? उसने कहा

मुचकुन्द की कन्या चन्द्रभागा से कहना वहाँ निश्चय हो जावेगा। वह मुचकुन्दपुर में आया और सब वृत्तान्त चन्द्रभागा से कहा कि हे सुभगे! मैंने तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा जो इन्द्र के समान हैं, जिनको वह पुर अनिश्चित प्राप्त हुआ है। इसलिए तुम मुझको भी ले चलो, आपका बहुत पुण्य होगा यह सुनकर वह दोनों वहाँ गये। पति को देखकर बहुत प्रसन्न हुई, इसी प्रकार पति स्त्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और आनन्द मङ्गल से आयु व्यतीत करने लगे, यह रमा एकादशी का माहात्म्य है[1]॥

प्रबोधिनी।

अध्याय ६१

कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी प्रबोधिनी होती है। तभी तक तीर्थ, समुद्र, तालाब, भागीरथी की गङ्गा पृथ्वी पर गरजती है जब तक कार्तिक के शुक्ल पक्ष की विष्णु की प्रबोधिनी एकादशी नहीं आती—

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिके॥ ५॥
तावद् गर्जन्ति विप्रेन्द्र गङ्गा भागीरथी क्षितौ।
यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी॥ ६॥

हज़ार अश्वमेध, सौ राजसूय यज्ञ का फल एक प्रबोधिनी एकादशी के व्रत करने से मिलता है—

अश्वमेधसहस्त्राणि राजसूयशतानि च।
एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या लभेन्नरः॥ ७॥

जो तीनों लोकों में दुर्लभ, नहीं दिखने वाली वस्तु प्रबोधिनी देती है ऐश्वर्य्य, सम्पदा, बुद्धि, राज, सुख यह सब भक्ति से व्रत करने वालों को प्रबोधिनी देती है—

यद् दुर्ल्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्यस्य न गोचरम्।
तदप्यप्रार्थितं पुत्र ददाति हरिबोधिनी॥ ८॥
ऐश्वर्यं संपदं प्रज्ञां राज्यं च सुखसंपदः।

---

१. भगवद्गीता के पाठी इस कथा पर सम्यक् रीत्या विचार करें।

ददात्युपोषिता भक्त्या जनेभ्यो हरिबोधिनी ॥ ९ ॥

मेरुमन्दिराचल के समान जो पाप कहे हुए हैं उनका भी नाश करने वाली है—

मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युक्तानि यानि च।
एकेनैवोपवासेन दहते पापनाशिनी ॥ १० ॥

पहिले हज़ार जन्मों में जो पाप इकट्ठा किया हो, उसको भी रुई की नाईं जला देती है—

पूर्वजन्मसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम्।
निशि जागरणं चास्या दहते तूलराशिवत् ॥ ११ ॥

मनुष्य ब्रह्महत्यादिक घोर पाप करके भी श्रेष्ठ विष्णु के पदों को प्राप्त होते हैं—

विमुक्तो नारकैर्दुःखैर्याति विष्णोः परं पदम्।
कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः ॥ १६ ॥

विष्णु का जागरण कर मनुष्य पापहीन हो जाता है जो फल अश्वमेध आदि यज्ञों से भी नहीं मिलता—

कृत्वा तु जागरणं विष्णोर्द्धौतपापो भवेन्नरः।
दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्र अश्वमेधादिकैर्मखैः ॥ १७ ॥

वह इसके जागरण में सुख से मिलता है। सब तीर्थों में स्नान कर सोना, पृथिवी देने से जो फल मिलता है—

प्राप्यते तत्सुखं चैव प्रबोधिन्यास्तु जागरे।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु प्रदत्त्वा काञ्चनं महीम् ॥ १८ ॥

वह भगवान् के जागरण से मिलता है, वही सुकृती और कुल पवित्र उसी ने किया जिसने कार्तिक में प्रबोधिनी का व्रत किया जैसे मनुष्यों का मृत्यु निश्चय है, तैसे धन देह भी है—

तत्फलं समवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः।
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम् ॥ १९ ॥
कार्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी।

यथा ध्रुवं नृणां मृत्युर्धनं गात्रं तथा ध्रुवम्॥ २०॥

ऐसा जानकर एकादशी व्रत करने योग्य है जितने त्रिलोकी में तीर्थ हैं—

इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं वैष्णवं दिनम्।

यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये संभवन्ति च॥ २१॥

उसके घर में सब समझो जो अच्छे प्रकार प्रबोधिनी व्रत करते हैं और प्रबोधिनी का जिसने यह व्रत किया, उसके बहुत पुण्यों से क्या है—

तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम्।

किं तस्य बहुभिः पुण्यैः कृता येन प्रबोधिनी॥ २२॥

कार्तिक में प्रबोधिनी पुत्र, पौत्र को देने वाली है वही ज्ञानी, योगी, तपस्वी, जितेन्द्रिय है—

पुत्रपौत्रप्रदा ह्येषा कार्तिकहरिबोधिनी।

स ज्ञानी च स योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः॥ २३॥

भोग मोक्ष उसी के हैं जो प्रबोधिनी का व्रत करता है। यह विष्णु को बहुत प्रिय है, धर्मसार को सहायता देती है—

भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति उपास्ते हरिबोधिनीम्।

विष्णोः प्रियतरा ह्येषा धर्मसारसहायिनी॥ २४॥

जो मनुष्य व्रत भक्ति से करता है, वह मुक्ति को पाता है और गर्भ में फिर नहीं आता—

यः करोति नरो भक्त्या भुक्तिभाक् स भवेन्नरः।

प्रबोधिनीमुपोषित्वा गर्भे न विशते नरः॥ २५॥

हे नारद! इस व्रत को करो। कर्म, मन, वाणी से जो पाप है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद।

कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम्॥ २६॥

उनको प्रबोधिनी के जागरण नष्ट करते हैं। स्नान, दान, तप, पूजा को भगवान् का उद्देश्य कर जो प्रबोधिनी में करता है, वह अक्षय होता है। जो भक्ति से पूजा और व्रत करते हैं, सैंकड़ों जन्म के पापों से छूट जाते हैं। हे

पुत्र नारद! यह महाव्रत बड़े पापों का नाशने वाला है—

समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्तैः शतजन्मजैः।
महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम्॥ २९॥

बाल्य, युवा, वृद्धावस्था में जो सौ जन्म तक पाप किये हों, उनको इनको इसमें जपे, भगवान् नाशते हैं क्योंकि यह एकादशी धन-धान्य देने वाली, पुण्य करने वाली और सब पापों की नाशने वाली है—

बाल्ये यत्संचितं पापं यौवने वार्द्धके तथा।
शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु॥ ३२॥
तत् क्षालयति गोविन्दश्चास्यामभ्यर्चितो नृणाम्।
धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा॥ ३३॥

जो भक्ति से व्रत करता है, उसको कुछ भी कठिन नहीं है। चन्द्र, सूर्य, ग्रहण में जो पुण्य है ,उसका हज़ार गुणा गुण प्रबोधिनी के जागरण में है। स्नान, जप, तप, भोजन, दान, होम, पढ़ना इस प्रबोधिनी में करने से करोड़ गुणा देते हैं और जन्मभर में जो पुण्य इकट्ठा किया हो परन्तु कार्तिक में व्रत न किया हो तो सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं—

वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम्॥ ३७॥

यज्ञ, दान जपादि को सेवने से भी भगवान् प्रसन्न नहीं होते जैसा कार्त्तिक में शास्त्र की कथाओं से होते हैं। जो मनुष्य विष्णु की कथा का आधा या चौथाई श्लोक कहते या सुनते हैं उनको सौ गौ का फल होता है, इससे सब धर्मों को छोड़कर विष्णु के आगे शास्त्र कहे या सुने। जो मनुष्य कल्याण की इच्छा या लोभ से करता है वह सौ पीढ़ियों को तार देता है जो नियम से सुनता है, उसको सातों द्वीप युक्त पृथ्वी के दान करने का फल मिलता है। जो बांचने वाले को दान देता है, उसको नाशरहित लोक मिलता है और जो शंख में जल लेकर अर्घ्य देता है तो सब तीर्थों में सब दानों के करने से जो फल मिलता है, तिसका करोड़ गुणा फल प्रबोधिनी को अर्घ्य देने से मिलता है। गुरु को भोजन कपड़ा दे, केतकी के एक पत्र से भगवान् सहस्र वर्ष तक अगस्त्य के फूलों से पूजन करने वालों की नरक की अग्नि नष्ट हो जाती है। मुनि के फूलों से मनोवाञ्छा, तुलसीदल से दश हज़ार वर्ष के पाप नष्ट हो जाते हैं और जो मनुष्य देखे, छुवे, ध्यान

लगावे, नाम-स्तुति करे, सींचे और पूजन करे तो करोड़ हज़ार युग उसकी सुकृति बढ़ती है। जिस प्रकार तुलसी के डाले बीज तुलसी पृथिवी पर बढ़ती है वे लगाने वाले के वंश में जो उत्पन्न हुए होंगे, होने वाले हैं वे सब हज़ार वर्ष भगवान् के घर में वास करते हैं।[१]

कमला।

अध्याय ६२

मल मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी को कमला कहते हैं। अन्तिपुरी में शिव शर्म्मा नाम एक ब्राह्मण हुए हैं जिनके ५० पुत्र थे, जिसमें छोटा कुकर्मी था, इसलिए सबने छोड़ दिया। वह चलता हुआ प्रयाग पहुंचा। त्रिवेणी में स्नान किया, भूख से व्याकुल हुआ हरिमित्र मुनि के स्थान पर पहुंचा। वहाँ मलमास की एकादशी कमला की कथा हो रही थी, जहाँ बहुत मनुष्य सुन रहे थे। उसने सुना, सबके साथ शून्य स्थान में व्रत भी किया। उसके प्रताप से आधी रात को लक्ष्मी आई और बोली कि मैं तुझको वर दूंगी। तब जयशर्म्मा ने कहा कि हे रम्भे! आप कौन हैं ? इन्द्र की इन्द्राणी, महादेव की पार्वती या गन्धर्वी या किन्नरी या चन्द्रमा-सूर्य्य की स्त्री हो, मैंने आपके समान किसी को नहीं देखा ? तब लक्ष्मी बोली कि मैं वैकुण्ठ से आई हूँ और कमला के प्रभाव से भगवान् ने भेजा है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने एकादशी का मुनियों के साथ प्रयाग में व्रत किया है। इसलिए तुम्हारे वंश में सब मनुष्य लक्ष्मी से युक्त होंगे, यह महीनों में श्रेष्ठ महीना है जैसे पक्षियों में गरुड़, नदियों में गङ्गा इत्यादि हैं। इसमें निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः उठ स्नान कर इन्द्रियों को वश कर विष्णु का पूजन कर भगवान् से प्रार्थना करे। फिर आप भोजन करे। लक्ष्मी जी यह वर

१. क्या राजा दिलीप एवं श्रीरामचन्द्रादि के समय में ऐसे सुगम व्रत न थे जो केवल एक दिन के व्रत और जागरण करने से मुक्ति प्राप्त कर लेते। इसके उपरान्त इस व्रत के न करने से भगवान् जन्मभर के पुण्यों का नाश कर देते हैं। कहिए यह न्याय है या पक्षपात। यथार्थ में ग्रन्थकर्त्ता ने वा किसी मिलाने वाले पुरुष ने प्रबोधिनी महिमा बढ़ाने के लिए इतना फल दिया और तुलसी और अगस्त्यादि के वृक्षों से स्पर्श और सींचने से करोड़ हज़ार वर्ष से भी अधिक सुकृति बढ़ती है तो हम सबसे माली अधिक महिमा के योग्य है और वही स्वर्ग अधिकारी होंगे। सज्जन जनो! कुछ तो विचार कीजिए।

देकर अन्तर्धान हो गई। तब ब्राह्मण धनाढ्य होकर पिता के घर गया[१]—

इत्युक्त्वा कमला तस्मै वरं दत्त्वा तिरोदधे।
सोऽपि विप्रो धनी भूत्वा पितुर्गेहं समागतः ॥ ४२ ॥

कामदा।

अध्याय ६३

मलमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा कहते हैं। कलियुग में एकादशी संसार के बन्धन को छुड़ाने वाली है—

एकादशी कलौ राजन् भवबन्धनविमोचनी।
कामदा सर्वकामानां पापानां पापहा भुवि ॥ ४ ॥

इतवार, मंगल, संक्रान्ति में सदा एकादशी व्रत करने योग्य है क्योंकि पुत्र, पौत्र की बढ़ाने वाली है—

रविवारेऽथ माङ्गल्ये संक्रमे वा नृपोत्तम।
एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ॥ ५ ॥

इसका व्रत विष्णु के प्यारे भक्त को कभी त्यागने योग्य नहीं है क्योंकि यह नित्य ही आयु, यश, पुत्र, आरोग्य, द्रव्य, मोक्ष, राज्य को देती है। हे राजन्! जो नित्य श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त एकादशी व्रत को करते हैं, वे मनुष्य जीवन्मुक्त और विष्णुरूप, निस्संदेह दिखलाई देते हैं—

एकादशीव्रतं क्वापि न त्याज्यं विष्णुवल्लभैः।
आयुःकीर्तिप्रदं नित्यं संतानारोग्यवित्तदम् ॥ ६ ॥
मोक्षदं रूपदं राज्यं नित्यमेकादशीव्रतम्।
ये कुर्वन्ति महीपाल श्रद्धया परया युताः ॥ ७ ॥
यथोक्तविधिना लोके ते नरा विष्णुरूपिणः।
जीवन्मुक्तास्तु भूपाल दृश्यन्ते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

---

१. कहिए, पापियों को अब कौन भय रहा जो वह पाप से डरें चाहें जितना चोरी, रिश्वत, जारी इत्यादि नीच से नीच कर्म कर केवल एक दिन जाकर स्वयं या बेबशी से व्रत करके सारे पाप छूटकर लक्ष्मी जी तक प्राप्त होंगी, परन्तु न जाने आजकल लक्ष्मी जी सो गई हैं या विष्णु की आज्ञाकारिणी नहीं रहीं जो आज कल प्रायः एकादशी के व्रती बहुत कम धनवान् दिखाई देते हैं।

सब मनुष्यों को सब कामनाओं की देने वाली है, क्योंकि एकादशी पवित्र पावन है। व्रत रखने वाला दशवीं के दिन कांस, मांस, मसूर, चना, कौदौं साग, मधु, पराया अन्न, दूसरी बार भोजन, मैथुन यह वस्तुएं छोड़ देवे। जुआ खेलना, क्रीड़ा, नींद, पान, दतून, पराया कलङ्क, चुगली, चोरी, जीव मारना, मैथुन, क्रोध, झूठ वचन यह सब एकादशी में त्याग देवे। कांसा, मांस, मसूर, तेल, झूठ बोलना, कसरत, परदेश जाना, दूसरी बार भोजन मैथुन, बैल की पीठ, पराया अन्न साग यह द्वादशी को छोड़ देवे। हे राजन्! इस विधि से जो कामदा के व्रत को करते हैं और रात्रि में जागरण कर विष्णु को पूजते हैं, वे परमगति को प्राप्त होते हैं।[१]

एकादशी जागरण माहात्म्य।

अध्याय ३७

जो मनुष्य आनन्द समेत निद्रारहित सदा जागरण करता है, उसके सब पाप छूट जाते हैं॥

जो मूर्ख भगवान् के जागरण में उनके आगे नाचता नहीं, वह सात जन्मपर्य्यन्त लंगड़ा होता है—

यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरे हरेः।
पंगुत्वं तस्य जानीयात् सप्तजन्मानि वाडव॥ ४०॥

जो गीत नाच जागरण करता वह ब्रह्मा का पद और हमारे (विष्णु के) पद को सत्य ही पाता है—

यः पुनः कुरुते गीतं नृत्यं जागरणं हरेः।
ब्राह्मं पदं मदीयं च सत्यं वै तस्य वैष्णवम्॥ ४१॥

जिन मनुष्यों ने करोड़ जन्म में पाप किये हैं, सब कृष्ण के जागरण की रात्रि में नष्ट हो जाते हैं—

यत्किञ्चित्क्रियते पापं कोटिजन्मनि मानवैः॥
श्रीकृष्णजागरे सर्वं रात्रौ नश्यति वाडव॥ ४४॥

काम, अर्थ, सम्पदा, पुत्र, यश, शाश्वत लोक, यज्ञ द्वादशी के जागरण

---

१. क्या एकादशी, द्वादशी के अतिरिक्त चोरी आदि दुष्ट कर्म करने चाहिएं। यदि जीवन मुक्ति ऐसे एक दिन के व्रतों से मिले तो यमनियमादि की आज्ञा की क्या आवश्यकता?

बिना दश हज़ार यज्ञों से भी नहीं मिलते—

कामार्थौ संपदः पुत्राः कीर्तिर्लोकाश्च शाश्वताः।
यज्ञायुतैर्न लभ्यन्ते द्वादशीजागरं विना॥ ४७॥

जागरण के लिए भगवान् के मन्दिर में जाते हुए पुरुष के जितने पग होते हैं, उतने ही अश्वमेध के समान फल उसका होता है॥ ४८॥

यावत्पदानि चलति केशवायतनं प्रति।
अश्वमेधसमानि स्युः जागरार्थं प्रगच्छतः॥ ४९॥

चलते हुए की पृथ्वी में जो धूलिकण गिरती है, उतने ही में हज़ार वर्ष जागरण करने वाला स्वर्ग में बसता है—

पादयोः पतितं यावद्धरण्यां पांशु गच्छताम्।
तावद्वर्षसहस्राणि जागरो वसते दिवि॥ ५०॥

जो कुछ ब्रह्महत्या के बराबर पाप किये हैं, वह सब एकादशी के जागरण से नष्ट हो जाते हैं—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
कृष्णाहे जागरात्तानि विलयं यान्ति खण्डशः॥ ७१॥

एक ओर श्रेष्ठ दक्षिणाओं से समाप्त हुए सब यज्ञ और दूसरी ओर भगवान् को प्यारा उन्हीं का जागरण, काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, गया, शालिग्राम का महाक्षेत्र, अर्वदारण्य पुष्कर, मथुरा, सब तीर्थ, यज्ञ, चारों वेद, यह सब भगवान् के जागरण में प्राप्त होते हैं।

गङ्गा, सरस्वती, तापी यमुना शतदुकी, चन्द्रभागा, विशसता यह सब नदियाँ भी जागरण में पहुंचती हैं। तालाब, कुण्ड सब समुद्र भी एकादशी में कृष्ण के जागरण में नाचते गीत गाते वीणा बजाते हुए प्रसन्न करते हैं, उनकी देवता लोग वाञ्छा करते हैं।

विष्णु के बराबर कोई देवता नहीं, द्वादशी के बराबर कोई तिथि नहीं। इसके व्रत करने से अक्षय फल होता है।[१]

---

१. इससे प्रथम तो यह कहा था कि एकादशी के समान कोई व्रत नहीं। अब यह कहा कि द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं। इसमें भगवान् के पूजन की विधि में नाचने से साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु का पद प्राप्त होता है और यदि न नाचे तो सातजन्म लँगड़ा होता है क्या इससे बढ़कर और भी कोई अचम्भे की बात है।

अब कुछ अन्य व्रत-माहात्म्य भी सुन लीजिए।

त्रिस्पृशाव्रत।

अध्याय ३४

नारद जी ने महादेव जी से कहा कि आप त्रिस्पृशा नाम व्रत को कहिए। जिसके सुनने से मनुष्य कर्मबन्धन से क्षणमात्र में छूट जाता है, यह सुन महादेव जी ने कहा कि सब पापों के समूह महादु:खों के नाश करने वाला त्रिस्पृशा नाम व्रत सुनो। शास्त्र, पुराणादिक, यज्ञ-कोटियों तीर्थ, अनेक व्रतों के समय और देवताओं के पूजन से मोक्ष नहीं होता। इसलिए देव-देव ने यह वैष्णवी तिथि मोक्ष ही के लिए दिखलाई है—

मोक्षार्थे देवदेवेन दृष्टा वै वैष्णवी तिथिः ॥ ७ ॥

कलियुग में ब्राह्मण सांख्य को कठिनता से जानते और इन्द्रियों का वश में करना और मन को जीतना महाकठिन है। इसलिए कामी ध्यान की धारणा से वर्जित मनुष्य त्रिस्पृशा के व्रत करने से ही मोक्ष को पाते हैं—

कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी ॥ १२ ॥

इसको सबसे पहिले मत्स्य भगवान् ने जीवों के उद्धार के लिए कहा था कि विषयों से संयुक्त जो मनुष्य होंगे, उनको भी हम इस व्रत के करने से मोक्ष देंगे।

कार्तिक के शुक्लपक्ष में सोमवार या बुधवार के दिन जो त्रिस्पृशा हो तो करोड़ पापों का नाश करने वाली होती है—

कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रिस्पृशा जायते यदि।
सोमेन सोमजेनापि पापकोटिविनाशिनी ॥ १३ ॥

जिसके व्रत करने से हत्यायुक्त महादेव के हाथ से कपाल गिर गया, कलियुग के करोड़ों पापसमूहों से गङ्गादेवी छूट गई—

हस्ताद् ब्रह्मकपालं तु तत्क्षणात्पतितं भुवि ॥ १४ ॥
कलिकल्मषकोट्यौघैर्मुक्ता देवी त्रिमार्गगा ॥ १५ ॥

बाहुवीर्य की आठ हत्या, शतायुध ने वन में एक ब्राह्मण को मारा था, इसकी हत्या और इन्द्र की नमुचि से उत्पन्न हत्या इस व्रत के प्रताप से

जाती रही—

हत्याष्टौ बाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने।
गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशासमुपोषणात्॥ १६ ॥

जो जन इस व्रत को नहीं करते वह प्रयाग, काशी, गोमती, कृष्ण जी के समीप में मरने से भी मोक्ष को नहीं पाते क्योंकि इनमें स्नान करने से शाश्वती मुक्ति होती है और त्रिस्पृशा व्रत के करने से कामभोग से युक्त भी मनुष्य घर ही में मुक्ति पाता है—

न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र त्रिस्पृशा यदि नो कृता॥ २० ॥
गृहेऽपि जायते मुक्तिर.....त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम्॥ २२-२३ ॥

यह सुन नारद जी ने कहा कि उस व्रत का वर्णन कीजिए। तब महादेव जी ने कहा कि प्राची सरस्वती के तट गङ्गा ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा कि कलियुग के करोड़ों ब्रह्महत्यादिक पापों ये युक्त मनुष्य हमारे जल में स्नान करते हैं, उनके सैंकड़ों पाप दोषों से हमारी देह कलुषीकृत है, वह पाप किस प्रकार से जायँ?

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि तुम रोदन न करो हमारे सम्मुख प्राची देवी है और सरस्वती जी बह रही हैं। इसमें नित्य स्नान करने से पवित्र हो जाओगी, क्योंकि मैं यहाँ निस्सन्देह सैंकड़ों तीर्थों और देवताओं से युक्त बसता हूँ, यह स्थान मेरे प्रिय पवित्र और करोड़ हत्या का नाश करने वाला है, इसको मैं तुमको देता हूँ क्योंकि तुम मेरे प्राणों से अधिक प्यारी हो।

ब्राह्मण का मारना, मदिरा पीना, गौ और शूद्रकी स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का द्रव्य छीन लेना, माता-पिता का सत्कार न करना, कुम्हार के चाक को छूना। गुरु जी से बैर करना। अभक्ष्य भोजन करना इन सब पापों के करने से प्राची सरस्वती में हमारे आगे एकवार तुम स्नान करो, पाप से हीन हो जाओगे—

चक्रियानाद् गुरुद्रोहादभक्ष्यस्य च भक्षणात्।
सर्वपापस्य करणात् प्राची ब्रह्मसुता सुते॥ ३४ ॥

व्यपोहयति पापानि सकृत्स्नानेन मेऽग्रतः।
कुरु स्नानं सरिच्छ्रेष्ठे विपापस्त्वं भविष्यसि॥ ३५॥

यह सुन गङ्गा ने कहा कि मैं नित्य आने में असमर्थ हूँ, अब मेरे पाप कैसे नष्ट होंगे? इसको आप कहिए। अच्छा तो मैं और उपाय कहता हूँ। क्योंकि तुम मेरे चरण से उत्पन्न हो, सरस्वती से अधिक, सौ करोड़ तीर्थों से अधिक, करोड़ यज्ञ, व्रत, दान, जप, होम से अधिक धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फल की देने वाली सांख्य योग से भी अधिक कल्याण युक्त त्रिस्पृशा को करो—

सरस्वत्यधिकाया च तीर्थकोटिशताधिका।
मखकोट्यधिका वापि व्रतदानाधिका च या॥ ३८॥
जपहोमाधिका या च चतुर्वर्गफलप्रदा।
सांख्ययोगाधिका या च त्रिस्पृशा क्रियतां शुभा॥ ३९॥

तब कृष्ण महाराज ने कहा कि एकादशी द्वादशी वेधी हो और कुछ रात्रि रहे जो त्रयोदशी भी हो जावे, वह त्रिस्पृशा जानने योग्य है और दशमी युक्त एकादशी को करने से करोड़ जन्म का किया हुआ पुण्य और पुत्र नष्ट हो जाते हैं और अपने पुरुषों को स्वर्ग से नरक रौरव आदि में डाल देता है। ऐसे अपराध को मैं नहीं क्षमा करता हूँ। तब गङ्गा जी बोली कि हे जगन्नाथ! आपके वचन से त्रिस्पृशा को मैं करूंगी और आप ही की आज्ञा से सब पापों से छूट जाऊंगी—

करिष्येऽहं जगन्नाथ त्रिस्पृशां वचनात्तव।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यामि तवाज्ञया॥ ५५॥

इसलिए करोड़ों तीर्थ करने से जो फल है, वह त्रिस्पृशा के व्रत करने से मिलता है—

तीर्थकोटिषु यत्पुण्यं क्षेत्रकोटिषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशासमुपोषणात्॥ ८१॥

जो मनुष्य भक्ति से इसको करता है, उसको हज़ार मन्वन्तर काशी जी में गङ्गा के स्नान करने से जो फल होता है, वह इस त्रिस्पृशा के करने वाले को होता है। करोड़ वर्ष प्राची सरस्वती और यमुना के स्नान से जो

फल मिलता है, वह इस व्रत के करने वाले को मिलता है। कुरुक्षेत्र में करोड़ सूर्यग्रहण में स्नान, सोने के सौ भार दान करने से जो फल है, वह त्रिस्पृशा के करने से भी है। करोड़ हज़ार पाप, करोड़ सैकड़ों हत्या एक ही व्रत से शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। यह त्रिस्पृशा का व्रत गति नहीं होने वालों को गति देने वाला है। जिन्होंने सैंकड़ों भारी पाप किये हैं, वह भी गति की इच्छा करते हैं। कलियुग में त्रिस्पृशा को प्राप्त होकर जो अधम मनुष्य नहीं करते हैं, उनके जन्म का फल और जीना निष्फल होता है[१]—

यः करोति नरो भक्त्या शृणु वक्ष्यामि तत्फलम्।
गङ्गावगाहने ब्रह्मन् वाराणस्यां तु यत्फलम्॥ ८६ ॥
मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु त्रिस्पृशाकारको हि तत्।
प्राची च यमुनास्नाने वर्षैर्यत्कोटिभिः फलम्॥ ८७ ॥

---

१. पण्डितजन ही हमारे इस विचार से सहमत हो सकेंगे क्योंकि दुराग्रहियों से तो कुछ आशा नहीं।

क—आपका यह अटल सिद्धान्त है कि "न हि पङ्केन पङ्काभः, अर्थात् 'कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलती' तब यह किस प्रकार हो सकता है कि जो गङ्गा स्वयं अपने पाप छोड़ने का यत्न ढूंढती फिरे वह दूसरों को निष्पाप करे।

ख—यह कि जल जड़ है न कि चैतन्य और प्रवाहशालिनी होने से इसका नाम गङ्गा है तब किस प्रकार जल ने ऐसी बातें कीं जो कि सर्वथा असम्भव हैं।

ग—पाप, पुण्य बुरे और अच्छे कर्म्मों का फल है और इनकी निवृत्ति भोग से ही हो सकती है परन्तु पुस्तक निर्माता ने अपने विचार में पाप पुण्य को द्रव्य मान दर्शनशास्त्रों के विरुद्ध न जाने किस प्रकार यह असम्भव लेख लिख दिया कि गङ्गा कहती है कि जो पापी मुझमें आकर स्नान करते उनसे मैं भी दूषित हूँ? यदि यह बात सत्य है तब तो इस प्रकार आपके सब उपास्य देव दूषित हो गये।

घ—जब गङ्गा के पाप निवारणार्थ त्रिस्पृशा का व्रत बनाया तो हमारे सनातनी भाइयों को चाहिए कि आज से गङ्गास्नान छोड़ त्रिस्पृशा का ही व्रत करें, क्यों विचारी गङ्गा को पापिनी बना उसको दुःख देते हैं? परन्तु जब त्रिस्पृशा में बहुत से पाप इकट्ठे हो गये तो न जाने वह विचारी किसका व्रत ढूंढती और करती फिरेगी? इससे भी बढ़कर विष्णु महाराज का गङ्गा के लिए असम्भव और बालबुद्धि सा यह उपाय कि हे गंगे! तू सरस्वती में स्नान कर जिससे तू अवश्य पवित्र हो जावेगी। बुद्धिमान् सज्जन जन ध्यानपूर्वक विचारें।

तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशाव्रतकृन्नरः।
तत्फलं तु कुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः॥ ८८॥
हेमभारशतैर्दानैस्त्रिस्पृशाकरणेन तत्।
पापकोटिसहस्राणि हत्याकोटिशतानि च॥ ८९॥
एकेनैवोपवासेन क्रियते भस्मसाद् द्रुतम्।
त्रिस्पृशाया व्रतं यत्तु अगतीनां गतिप्रदम्॥ ९०॥
गतिमिच्छन्ति विप्रर्षे महत्पापशतानि च।
स्वयं कृष्णेन कथितं पाराशर्यस्य चाग्रतः॥ ९१॥
कलौ ये त्रिस्पृशां लब्ध्वा न कुर्वन्ति नराधमाः।
तेषां जन्मफलं चैव जीवितं विफलं भवेत्॥ ९४॥

उन्मीलनी व्रत।

अध्याय ३५

महादेव ने नारद से कहा कि जब दिनरात एकादशी हो और सबेरे एक घड़ी हो (द्वादशी भेदी) वह उन्मीलनी व्रत जानना चाहिए यह विशेषकर भगवान् को प्रिय है—

एकादशी अहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत्।
उन्मीलनी तु सा ज्ञेया विशेषेण हरिप्रिया॥ ३३॥

तीनों लोकों में जो तीर्थ, पवित्र स्थान, यह यज्ञ, वेद, तपस्या हैं, वे उन्मीलनी के करोड़वें भाग के बराबर नहीं—

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
कोट्यंशे नैव तुल्यानि मखा वेदास्तपांसि च॥ ३४॥

इसके समान कोई न हुआ है न होगा, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, काशी, पुष्कर हिमाञ्चल पर्वत, मेरु, गन्धमादन, नील, निषध, विन्ध्याचल पर्वत, नैमिषारण्य गोदावरी, कावेरी, चन्द्रभागा, वेदिका, तापी पयोष्णी, क्षिप्रा, चन्दना, चर्मण्वती, सरयू, गण्डक, गोमती, विपाशा महानद, शोण यह सब उन्मीलनी के बराबर नहीं हैं—

उन्मीलनीसमं किञ्चित् न भूतं न भविष्यति।
प्रयागो न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करः॥ ३५॥
शैलो हिमाञ्चलो नैव न मेरुर्गन्धमादनः।
शैलो न नीलनिषधो न विन्ध्यो नैव नैमिषम्॥ ३६॥
गोदावरी न कावेरी चन्द्रभागा न वेदिका।
न तापी न पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चन्दना॥ ३७॥
चर्मण्वती च सरयूश्चन्द्रभागा न गण्डिका।
गोमती च विपाशा च शोणाख्यश्च महानदः॥ ३८॥

हे राजन्! बार बार बहुत कहने से क्या है? उन्मीलनी के बराबर कोई नहीं है, भगवान् से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है—

किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो नराधिप।
उन्मीलनीसमं किञ्चिन्न देवः केशवात्परः॥ ३९॥

इस व्रत के करने से पाप समूह का क्षणमात्र में नाश हो जाता है। जिस मास में उन्मीलनी व्रत तिथि हो उसी महीने के नाम से गोविन्द जी की यत्नपूर्वक पूजा करे और मास के नाम से भगवान् की सोने की मूर्त्ति बनावे और पवित्र जल, पञ्चरत्न, चन्दन, फूल, अक्षत और मालाओं से युक्त कलश का स्थापन करे और चन्दन, जल, गेहूँ, बर्त्तन अनेक रत्नों से संयुक्त मल्लिका और चमेली के फूलों से पूजन करे। दो कपड़े, जनेऊ, दुपट्टा, जूता इत्यादि सब निवेदन करे और सोने से सींग मढ़ी, चांदी के खुर, तांबे से पीठ, कांसे की दोहनी, रत्न की पूंछवाली, बछड़ा और गहनों से युक्त गऊ गुरु जी को देवे, धूप दीप नैवेद्य फल इत्यादि को मन्त्रों सहित देवे। फिर विष्णु भगवान् के चरण गुह्यपति, गुह्यइन्द्रिय इत्यादि सर्वमूर्त्ति का सब अंग पूजन करे और फिर विधि पूर्वक अर्घ्य देवे कहे कि हे सुब्रह्मण्य! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है मुझको शोक है, मोह, महापाप सागर से उद्धार कीजिए और हमारे पुरुष कुयोनि में प्राप्त या पाप से मृत्यु के वश में प्राप्त हैं उनको प्रेतलोक से उद्धार कीजिए मैं आपके आधीन हूँ। मेरी भक्ति अचल हो और फिर आरती करे, कपड़े, गोदान गुरु जी को दे और दिन कर्म करके ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। इसी विधि से जो इस व्रत

को करता है, वह करोड़ हज़ार कल्प श्रीविष्णु जी के समीप बसता है[१]—

अनेन विधिना यस्तु कुर्यादुन्मीलनीव्रतम्॥ ६७॥
कल्पकोटिसहस्राणि वसते विष्णुसन्निधौ॥ ६८॥

जयन्ती व्रत।

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय ४ में लिखा है कि जयन्ती व्रत से जो विमुख रहता है वह सब धर्मों से छूट कर निश्चय नरक को जाता है—

जयन्त्याम् उपवासेन यो नरोऽत्र पराङ्मुखः।
सर्वधर्मविनिर्मुक्तो यात्यसौ नरकं ध्रुवम्॥ ३८॥

उसके घर में भाग्यहीनता, विधवापन, लड़ाई और सन्तान का विरोध और धन का नाश नहीं होता—

न दौर्भाग्यं न वैधव्यं न भवेत् कलहो गृहे।
सन्ततेर्न विरोधं च न पश्यति धनक्षयम्॥ ४१॥

जितने तीर्थ व्रत और नियम हैं वे जयन्ती के व्रत की सोलहवीं कला को भी नहीं पाते—

यानि कानि च तीर्थानि व्रतानि नियमानि च।
जयन्तीवासरस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ४४॥

भगवान् की प्यारी जयन्ती आचारहीनता कुलभ्रष्टता यशहीनता और बुरी योनि में उत्पन्न हुए पाप का शीघ्र ही नाश कर देती है—

आचारहीनं कुलभ्रष्टं कीर्तिहीनं कुयोनिजम्॥
नाशयत्याशु पापं च जयन्ती हरिवल्लभा॥ ४७॥

जयन्ती में व्रत करने वाला मेरुपर्वत के बराबर ब्रह्महत्यादिक सब पापों को जला देता है—

---

१. प्यारे भाइयो! विचारो और सोचो तो सही कि अब भी आपको कुछ इसमें संदेह रहा कि पुराण में एक को दूसरा छोटा बना रहा है। यथा—तीनों लोक में जो तीर्थ, पवित्र स्थान, यज्ञ, वेद हैं, वह उन्मीलनी के करोड़वें भाग के बराबर नहीं कि जिसके करने से करोड़ हज़ार कल्प श्रीविष्णु जी के समीप बस सारे पापों से छूट जाता है।

मेरुतुल्यानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।

स निर्दहति सर्वाणि जयन्त्यां समुपोषकः ॥ ४८ ॥

जयन्ती में व्रत करने हारा, पुत्र की इच्छा वाला पुत्र को, धन की कामना वाला धन और मोक्षवाला मोक्ष को पाता है—

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।

मोक्षार्थी लभते मोक्षं जयन्त्यां समुपोषकः ॥ ४९ ॥

जयन्ती के स्मरण और कीर्त्तन करने से सात जन्म के इकट्ठे किये पापों को जला देती है फिर व्रत करने वालों के पुण्य का क्या कहना है—

स्मरणात्कीर्त्तनात्पापं सप्तजन्मार्जितं मुने।

जयन्ती दहते तच्च किं पुनः सोपवासकृत्॥ ५ ॥

भादों में जन्माष्टमी, चैत्र में शुक्लपक्ष में शुभकारिणी नवमी, फाल्गुन में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, वैशाख में शुक्लपक्ष चतुर्दशी, कुवार में दुर्गाष्टमी और शुक्लपक्ष की श्रवणयुक्त द्वादशी यह ६ महापुण्यकारिणी शुभ देने वाली जयन्ती कहाती हैं।

जयन्ती व्रत करने वाले को दिन-दिन में हज़ार गौवों के देने का फल प्राप्त होता है। जो कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण में हज़ार भार सोना देने, हज़ार करोड़ कन्याओं के दान, समुद्र पर्यन्त इस पृथ्वी के देने से और जो माता, पिता और गुरुओं की भक्ति और तीर्थ सेवा और सत्यव्रत वालों को और गङ्गा, यमुना और सरस्वती के जलस्नान करने से जो पुण्य है। जिसको सहस्रबाहु, कर्ण, बुद्धिमान् कुमार, सागर, दिलीप, रामचन्द्र, गौतम, गार्ग्य, पराशर, वाल्मीकि और द्रौपदी के पुत्र साधु ने पूर्व समय में किया था—

कर्त्ता गवां सहस्रं तु यो ददाति दिने दिने।

तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ ९ ॥

हेमभारसहस्रं तु कुरुक्षेत्रे रविग्रहे।

तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ १० ॥

कन्याकोटिसहस्राणां दाने भवति यत्फलम्।

तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ १२ ॥

ससागरामिमां पृथ्वीं दत्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ १३॥
मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिं युक्तः करोति यः।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ १५॥
आपदाहरणार्थाय तीर्थसेवाकृतात्मनाम्।
सत्यव्रतानां यत्पुण्यं जयन्त्यां समुपोषणे॥ १६॥
गङ्गायां नर्मदायां यत् पुण्यं सारस्वते जले।
स्नात्वा पुण्यमवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे॥ १७॥

जन्माष्टमी व्रत

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १३ में लिखा है कि जो मनुष्य भक्ति से कृष्ण जन्माष्टमी के व्रत को करता है, वह करोड़ कुल से युक्त होकर अन्त में विष्णु जी के पुर को प्राप्त होता है—

कृष्णजन्माष्टमी ब्रह्मन् भक्त्या करोति यो नरः।
अन्ते विष्णुपुरं याति कुलकोटियुतो द्विज॥ २॥

बुधवार वा सोमवार में रोहिणी नक्षत्रयुक्त होकर अष्टमी करोड़ कुल को मुक्ति देने वाली है—

अष्टमी बुधवारे च सोमे चैव द्विजोत्तम।
रोहिणीऋक्षसंयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा॥ ३॥

जो महापापों से युक्त होकर भी उत्तम व्रत को करता है, वह सब पापों से छूटकर अन्त में हरि जी के स्थान को जाता है—

महापातकसंयुक्तः करोति व्रतमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेर्गृहम्॥ ४॥

जो अधम मनुष्य कृष्ण जन्माष्टमी को नहीं करता, वह इस लोक में दुःख को प्राप्त होकर मरकर नरक को जाता है—

कृष्णजन्माष्टमीं ब्रह्मन्न करोति नराधमः।
इह दुःखमवाप्नोति स प्रेत्य नरकं व्रजेत्॥ ५॥

जो मूर्खा स्त्री कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को वर्ष-वर्ष नहीं करती, वह भयङ्कर नरक में जाती है—

न करोति च या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
वर्षे वर्षे तु सा मूढा नरकं याति दारुणम्॥ ६ ॥

जो मूढ़बुद्धि मनुष्य जन्माष्टमी को दिन में भोजन करता है, वह महानरक को जाता है, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ—

जन्माष्टमीदिने यो वै नरोऽश्नाति विमूढधीः।
महानरकमश्नाति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ७ ॥

पूर्व समय में दिलीप राजा ने श्रीमान् वसिष्ठ जी से सर्वपापनाशक व्रत को पूछा था। तब उन्होंने कहा कि एक समय में पृथिवी कंसादिक राजाओं से पीड़ित होकर महादेव जी के पास रोती हुई गई, जिसको देख महादेव देवतों के साथ ब्रह्मा के समीप गये और वहाँ जाकर कंस के मारने के कारण को कहा। तब ब्रह्मा समेत सब विष्णु जी के पास गये और सबने स्तुति की, तब विष्णु जी ने कारण पूछा तब ब्रह्मा जी ने कहा कि महादेव जी के वर से कंस से पृथ्वी पीड़ित होकर दुःखी हो रही है और महादेव जी से कंस ने यह वर मांग लिया है कि भानजे के बिना मेरी मृत्यु न हो। इसलिए आप गोकुल जाकर कंस के मारने के लिए देवकी के पेट से जन्म लीजिए। तब विष्णु ने महादेव जी से कहा कि पार्वती को दीजिए। यह एक साल रहकर चली आवेगी, तब महादेव जी और पार्वती जी ने मथुरा की यात्रा की और भगवान् ने देवकी, पार्वती जी ने यशोदा के पेट में नव मास नवदिन रहकर भादों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्रयुक्त वासदेव जी के आप पुत्र और नन्द जी की स्त्री वैराटी यशोदा जी ने कन्या को उत्पन्न किया। उस समय वसुदेव को आनन्द हुआ। तब देवकी ने कहा कि आप यशोदा जी के समीप जाकर पुत्र को देकर कन्या ले आओ, उन्होंने ऐसा ही किया। फिर कंस को यह ख़बर मिली कि देवकी जी के कुछ उत्पन्न हुआ है। दूत आये और छल से कन्या को कंस को दिया। तब उसने राक्षसों से कहा कि इसको शिला पर पटक दो, उन्होंने ऐसा ही किया। तब उस गौरी रूप कन्या ने महादेव के समान चलकर कहा कि कंस का मारने वाला नन्द के यहाँ छिपा हुआ है। तब

कंस ने पूतना से कहा कि तुम नन्द के यहाँ जाओ और कपट से पुत्र को मारकर चली आओ। वह गई दूध पर विष लगाकर पिला आप यमपुर को चली गई। श्रीकृष्ण जी शकटासुर तृणावर्त्त आदि को मार कालिया का दमन कर मथुरा को चले गये। वहां जाकर कंसादि को मारा। यह कृष्ण के जन्म के दिन का व्रत कहा। इसके सुनने से पाप नष्ट हो जाते हैं। जो स्त्री पुरुष इस व्रत को करता है, यथेष्ट अतुल फल को पाता है। धर्म, काम और अर्थ की वाञ्छा वालों को तृतीया, छठ, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी करनी चाहिए।

प्रथम महाराजा चित्रसेन नाम हुए जो महापाप परायण, महान् अगम्या गमन कर ब्राह्मण के सोने को चुराने वाला, मदिरा से सदैव तृप्त और वृथा मांस में रत। इस प्रकार पाप में युक्त होकर नित्य ही प्राणियों के मारने में रत होकर चाण्डाल और पतितों के साथ सदैव वार्तालाप करते थे। वह शिकार को गये और व्याध को देख फ़ौज से कहा कि मैं ही इसको मारूंगा। राजा पीछे पड़ा, वह भागा। राजा भूख प्यास से व्याकुल जमुना के किनारे गया। उस दिन कृष्ण की ज़न्माष्टमी रोहिणीयुक्त थी—

क्षुत्पिपासाकुलक्लेशः सन्ध्यायां यमुनातटे।
अष्टमी रोहिणीयुक्ता तद्दिनं जन्मवासरम्॥ ७५॥

प्रातः यमुना जी में कन्यायें व्रत करती भई। अनेक प्रकार की भेंट द्रव्य आदि से पूजन करती हुई। बहुत गुण वाले अन्त को देखकर राजा का मन भोजन करने को हुआ और स्त्रियों से कहा कि अन्न के बिना मेरे प्राण निकल जाते हैं। तब स्त्रियाँ बोलीं कि हे पापरहित राजा! जन्माष्टमी में आपको भोजन न करने चाहिएं। जो कृष्ण जी के जन्म में अन्न का भोजन करता है, वह गीध, गधा, कौवा और गऊ के मांस का निस्सन्देह भोजन करता है—

जन्माष्टम्यां हरे राजन्न भोक्तव्यं त्वया न च॥ ७८॥
गृध्रमांसं खरं काकं गोमांसमन्नमेव च॥ ७९॥

संसार में उत्पन्न होनेवालों के अनेक छिद्र होते हैं जिन्होंने जयन्ती का व्रत नहीं किया, उनको यमराज के यहाँ दण्ड मिलता है और उसके दिये हुए को पितर ग्रहण नहीं करते। जयन्ती में भोजन करने से सब पितर गिरा

दिये जाते हैं। यह सुन राजा ने व्रत किया, कुछ फूल चन्दन कपड़ा लेकर प्रसन्न होकर इस व्रत में युक्त होता गया और तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारायण करता तो चित्रसेन राजा इस व्रत के प्रभाव से पितरों समेत सुन्दर विमान पर चढ़कर भगवान् के स्थान को जाता भया। जो फल मथुरा जी में जाकर कृष्ण जी के मुखरूपी कमल के दर्शन करने से मिलता है, वह फल कृष्ण जी की जन्माष्टमी के व्रत से पुरुष को प्राप्त होता है और द्वारका जाकर संसार के ईश्वर भगवान् के दर्शन करने से जो फल मिलता है, वह फल दीनों को कृष्ण जन्माष्टमी व्रत करने से मिलता है—

यत्फलं द्वारकां गत्वा दृष्टे विश्वेश्वरे हरौ।
तत्फलं प्राप्यते दीनैः कृत्वा जन्माष्टमीव्रतम्॥ ८५॥

शिवरात्रि व्रत।

(शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७२)

विष्णु जी महाराज ने शिव जी से पूछा कि आप कौन से व्रत से सन्तुष्ट होते हैं? तब शिव जी ने कहा कि सबसे श्रेष्ठ शिवरात्री व्रत है, जिसका फल दशसहस्र वर्ष में भी पूर्ण नहीं कह सकते—

फलं वक्तुं न शक्येत वर्षाणामयुतैरपि॥ १०८॥

हाँ, जो अनादर से भी करता है, उसको निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त होती है—

अनादरतया चेद्वै कृतं व्रतमनुत्तमम्।
तस्यैव मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा॥ १०९॥

इतिहास।

अध्याय ७५ में लिखा है कि उज्जैन नगरी में वेद का जानने वाला एक ब्राह्मण जिसकी पतिव्रता स्त्री थी। जिसके दो पुत्र थे। एक धर्मात्मा और दूसरा दुष्ट व्यसन में लगा हुआ था। पिता को एक अंगूठी राजा के यहाँ से मिली। जिसको उसने स्त्री को दे दी, उसने घर में रख दी। दुष्टात्मा पुत्र उसको चुराकर ले गया, तो वेश्या को जाकर दे आया। जिस को धारण कर वह राजसभा में नाचने को गई। राजा ने अपनी अंगूठी देखकर सब वृत्तान्त जान पण्डित जी से कहा, उन्होंने घर जाकर कहा, लाचार होकर

वेदनिधि को घर से निकाल दिया, उसने इधर-उधर बहुत दिन व्यतीत किये। एक दिन उसको शाम तक भोजन नहीं मिला, उस दिन लोकपालनी शिवरात्री थी। कोई अनेक प्रकार की सामग्री लिए शीघ्रता के साथ शिव मन्दिर में जा रहा था, वेदनिधि उसको देख भोजनों की इच्छा से उसके पीछे-पीछे गया, जहाँ मन्दिर में और लोग भी पूजा कर रहे थे। वह भोजनों की इच्छा से रात्री में जागरण करता रहा। इधर वे सब पूजा कर नृत्य आदि से निवृत्त हो सो रहे। वेदनिधि उनको सोता देख भोजनों की इच्छा से धीरे-धीरे शिव जी के निकट आया, जहाँ दीपकों का प्रकाश मन्द-मन्द हो रहा था, जिससे वह अन्नादि अच्छे प्रकार दृष्टि नहीं आता था, इसलिए उसने अपनी पगड़ी फाड़कर बत्ती बना अन्न के लिए बत्ती को प्रज्वलित किया, इससे अन्धकार दूर हो गया, तब अन्न को ग्रहण कर वह हौले-हौले वहाँ से चला तो सोते हुए पुरुषों के पैरों पर पैर पड़ गया, जिससे वह जाग गये और कहने लगे यह कौन चोर है? तब मारे डर के यह भागा, राजा के सेवक चौकीदार उसके पीछे दौड़े, वह दौड़ा तब उन्होंने बाण छोड़े जिससे वह गिर पड़ा और मृतक हो गया परन्तु अज्ञान से उसका व्रत और रात्रि में जागरण भी हो गया—

पतितश्च मृतः सो वै श्रूयतामृषिसत्तम।
अज्ञानतो व्रतं जातं रात्रौ जागरणं तथा॥ ३७॥

शिव शङ्कर की कृपा से यमराज के दूत आ गये और शिव के गण भी आये, दोनों में झगड़ा हुआ। शिव गणों ने कहा कि तुम किस प्रकार से आये? इसको दण्ड क्योंकर हो सकता है? उन गणों ने कहा शिव भगवान् के भक्त तुम यहाँ कैसे आये? यम के गण बोले कि जन्म प्रभृति इसने पाप ही किया है, पूजन तो बहुत थोड़ा है—

जन्मप्रभृति पापं च पुण्यं तु ह्यणुमात्रकम्॥ ४१॥

शिवगण बोले कि इसमें पाप तो बहुत था परन्तु वह क्षणमात्र में भस्म हो गया, शिव के व्रत और रात्री के जागरण करने से—

पापं बहुतरं चाऽऽसीद्भस्मसादभवत्क्षणात्।
शिवस्य च व्रतेनैव रात्रौ जागरणेन च॥ ४२॥

क्या अब भी पातक रह सकता है? सब नष्ट हो गया, ऐसा विवाद

करते हुए वे धर्मराज के पास गये—

इत्येवं विवदन्तश्च धर्मराजं गतास्तदा॥ ४३॥

यमराज ने उन दोनों के वचन सुनकर कहा कि अवश्य ही उसके पाप भस्म हो गये ऐसा कह यमराज ने उन शिवगणों को नमस्कार कर ब्राह्मण को कलिङ्ग देश का राजा किया—

यमेनोक्तं च सत्यैव पापं च भस्मतां गतम्।
नमस्कारं च तान्कृत्वा कलिङ्गाधिपतिं तदा॥ ४४॥

और प्रणाम कर उस ब्राह्मण से कहा तू भाग्यवान् है। वह कलिङ्ग देश का राजा होकर शिवपूजन में परायण हुआ—

ब्राह्मणं च चकारासौ प्रणम्य भाग्यवानसि।
कलिङ्गाधिपतिर्भूत्वा शिवपूजापरायणः॥ ४५॥

फिर उसने अपने राज्य में शिवपूजा और शिवरात्री व्रत और शिवस्थानों में दीपक जलाने की आज्ञा दे दी, इस प्रकार करने से वह मुक्त हो गया। इस व्रत का माहात्म्य तो देखो अनायास ही करने से क्या फल मिला—

कारयित्वा तदा मुक्तिं लेभे च ऋषिसत्तमाः।
पश्यन्तु व्रतमाहात्म्यमनायासेन वा कृतम्॥ ४७॥

जो परमभक्ति से इस व्रत को करते हैं वह निस्संदेह परमभक्ति को प्राप्त होते हैं—

ये पुनः परया भक्त्या कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम्।
ते लभन्ते परां मुक्तिं कस्तत्र विस्मयः पुनः॥ ४८॥

उसने कुछ दीपक श्रेष्ठबुद्धि से नहीं किन्तु चोरी करने को जलाया था तो ऐसा हुआ, जो जान कर दीपक बालते हैं, वे सुन्दर परम पद को पाते हैं—

चौर्यार्थे न सुबुद्ध्या च दीपं तु कृतवान् स हि।
ज्ञात्वा दीपं च ये कुर्युर्लभन्ते ते शुभं पदम्॥ ४९॥

इस कारण इस व्रत के समान दूसरा व्रत नहीं, शिव के समान दयालु पवित्र करने वाला कोई नहीं॥ ५०॥

चतुर्थी व्रत।

भविष्य पुराण अध्याय २१ में लिखा है कि जो चतुर्थी के दिन व्रत कर गणेश का पूजन करता है और ब्राह्मण को तिलों का दान कर आप भी तिलों का भोजन करे तो दो वर्ष तक धारण करे, उससे गणेश जी प्रसन्न हो जाते हैं फिर किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता वरन् मनोवाञ्छित फल मिलता है। असाध्य कार्य्य सिद्ध होते हैं, सात जन्म वह राजा होता है। स्वामी कार्तिकेय स्त्री-पुरुषों का लक्षण बना रहे थे, उसमें गणेश जी ने विघ्न किया, उन्होंने क्रोध में आकर गणेश जी का एक दांत उखाड़ कर फेंक दिया और मारने को उद्यत हुए तब महादेव जी ने उनके कोप को शान्तकर पूछा कि तुमको क्योंकर कोप आया? तब उन्होंने कहा कि मैं स्त्री-पुरुषों के लक्षण लिख रहा था, उसमें इन्होंने विघ्न किया। तब महादेव जी ने कहा कि क्या तुम जानते हो, कहो हममें क्या लक्षण? तब कार्तिकेय ने कहा कि आपमें ऐसा लक्षण है जिससे आप थोड़े ही दिनों में कपाल धारण करेंगे और संसार में आप कपाली प्रसिद्ध होंगे। महादेव जी यह सुन क्रोध में हो उसकी पुस्तक को समुद्र में फैंक अन्तर्ध्यान हो गये। फिर कुछ काल के पीछे महादेव और ब्रह्मा का विवाद हुआ। तब महादेव जी ने कहा कि हम बड़े हैं। हमारी उत्पत्ति कोई नहीं जानता और तुम्हारा जन्म हम जानते हैं। तब ब्रह्मा का पांचवाँ मुख हँसकर बोला कि तुम्हारी उत्पत्ति हम जानते हैं। शिव को क्रोध आया, अपने नख से उनका शिर काट अपने हाथ में ले जहाँ विष्णु भगवान् तप करते थे वहाँ चले गये, इधर ब्रह्मा ने क्रोध किया तो उनके उस कटे हुये शिर से एक अति क्रूर पुरुष निकला जो श्वेत कुण्डल धार कवच पहिने धनुषबाण हाथ में लिए ब्रह्मा जी से बोला कि क्या आज्ञा, उन्होंने कहा कि जिसने मेरा शिर काटा है उसको मार दे, उसको देख। शिव जी से विष्णु ने कहा कि त्रिशूल से हमारी भुजा का भेदन करो, उन्होंने ऐसा ही किया। फिर तो उसमें से रुधिर की एक धारा निकली और उछलकर कपाल में गिरी जब वह भर गया उसको शिव जी ने तर्जनी अंगुली से मथा तब उसमें से रक्तवर्ण कवच पहिने अति भयङ्कर पुरुष निकला और शिव जी से कहा कि क्या आज्ञा? तब उन्होंने कहा कि ब्रह्मा के भेजे हुए मनुष्य को मार दो। निदान, दोनों का युद्ध होने लगा और बहुत काल तक हुआ, परन्तु हारजीत किसी की

नहीं हुई, तब आकाशवाणी हुई कि युद्ध मत करो। विष्णु महाराज ने दोनों को समझाकर युद्ध समाप्त करा दिया और कहा कि भूमि का भार उतारने के लिए तुम दोनों सहित अवतार होगा। भगवान् ने श्वेतकुण्डली सूर्य्यनारायण को और रक्तकुण्डली इन्द्र को सौंप दिया और विष्णु के कहने से कपाल महादेव जी ने धारण किया और कहा कि जो कोई उस कपाल व्रत को धारण करेगा उसको कोई पदार्थ दुर्लभ न होगा फिर शिव जी की आज्ञानुसार कार्त्तिकेय ने वह गणेश का दांत दे दिया जिसको धारण करते हैं और जो स्त्री-पुरुष के लक्षण बनाये थे वह समुद्र ने दे दिये। इसी कारण महादेव के कहने से उनका नाम सामुद्रिक हुआ।[१]

पण्डित जी—सेठ जी अब हम व्रत माहात्म्य अधिक नहीं सुनना चाहते।

वैदिक व्रत का वास्तविक स्वरूप

सेठ जी—मैं तो अभी आपको अनेकानेक व्रतों के माहात्म्य सुनाना चाहता हूँ अभी आपने इस विषय में बहुत ही कम सुना है तो भी मैं आपकी आज्ञानुसार किसी व्रत के माहात्म्य का वर्णन करूंगा, देखिए श्रीमान् पण्डित जी **यजुर्वेद** (१९.३०) में लिखा है—

(व्रतेन दी०) जब मनुष्य धर्म को जानने की इच्छा करता है तब सत्य को जानता है उसी सत्य में मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिए, असत्य में कभी नहीं। (व्रतेन०) जो मनुष्य सत्य के आचरणरूपी व्रत को दृढ़ता से करता है तब वह दीक्षा अर्थात् उत्तम अधिकार के फल को प्राप्त होता है (दीक्षयाप्नोति०) जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं क्योंकि धर्म आदि शुभ गुणों से ही दक्षिणा को मनुष्य प्राप्त होता है अन्यथा नहीं। (दक्षिणा श्र०) जब ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतों से अपना और दूसरे मनुष्यों का अत्यन्त सत्कार होता है तब उसी में दृढ़ विश्वास होता है क्योंकि सत्य धर्म का आचरण ही मनुष्यों का

---

१. पण्डित जी स्वयं विचार कीजिए, यहाँ महादेव का त्रिकालदर्शी होना नष्ट होता है। अधिक क्या कहें, ब्रह्मा ने अपने कटे शिर से विष्णु जी ने अपनी भुजा में महादेव से त्रिशूल लगवाकर एक मनुष्य उत्पन्न किया फिर दोनों में लड़ाई हुई। कहिए, श्रीमान् मनुष्य उत्पन्न करने के क्या-क्या ढंग हैं इसके उपरान्त सामुद्रिक माहात्म्य फैलाने के लिए यह कथा बनाई गई।

सत्कार कराने वाला है (श्रद्धया०) फिर सत्य के आचरण में जितनी-जितनी श्रद्धा बढ़ती जाती है, उतना-उतना ही मनुष्य लोग व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होते जाते हैं, अधर्माचरण से कभी नहीं।

इसी के अनुकूल पुराण भी कर रहे हैं।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि जब तक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहे तब तक विषय भोग से बच अखण्ड व्रत को धारण करे—

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद् भोगविवर्जितः।
विद्या समाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रतमखण्डितम्॥ ३०॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य में स्थित रहकर चोरी, लोभ और हिंसा आदि का त्याग करे, यह ब्रह्मचारी का व्रत है—

अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च त्यागोऽलोभस्तथैव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह॥ १६॥

ऐसा ही **लिङ्गपुराण** अध्याय ८९ श्लोक २४ में कहा है—

अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह॥ २४॥

महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रत का पूर्ण रूप से पालन करता है, वह इस लोक में शास्त्रकार होता है, अन्त को मोक्ष पाता है।

महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ४४ में सनत्सुजात मुनि का वचन है कि अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना, सत्य बोलना, इन्द्रियों को वश में रखना, किसी की उन्नति देखकर न जलना, निन्दा न करना, यज्ञ, दान, अर्थ समेत वेदों को पढ़ना, क्रोध न करना, तप करना, आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना यही व्रत हैं, जो इन व्रतों को धारण करता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सकता है—

धर्मश्च सत्यञ्च तपो दमश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया।
यज्ञश्च दानञ्च धृतिः श्रुतञ्च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य॥ २०॥

वाल्मीकि रामायण आरण्य काण्ड सर्ग ४७ में लिखा है कि जब रावण संन्यासी का रूप धारण कर सीता के निकट गया और उनसे वृत्तान्त पूछा तब सीता जी ने कहा कि हमारे स्वामी पिता की आज्ञा में दृढ़व्रत १४ वर्ष तक वन में रहने के लिए उद्यत हो गये क्योंकि उन्होंने दो बातों की प्रतिज्ञा की थी एक यह कि दान दें पर ले न किसी से। द्वितीय सदा सत्य बोले, झूठ कभी नहीं। हे ब्राह्मण! श्रीराम जी ने यह उत्तम व्रत धारण किये हैं।

पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय १८ में कहा है कि जो मनुष्य एकान्त में बैठने का स्वभाव रखते हैं, वह दृढ़ व्रत होते हैं, वह सब इन्द्रियों की प्रीति को उनके विषयों से निवृत्त करते हैं तथा योग में मन लगाते हैं, किसी जीव की हिंसा नहीं करते, उनकी मुक्ति होती है, सब व्रतों में परायण दम ही है, इसमें इन्द्रियों का दमन अवश्य करना चाहिए क्योंकि षडङ्ग सहित चारों वेद पढ़ने से भी बिना दम के पवित्र नहीं होता। ऐसे पुरुष के उत्तम कुल में जन्म, तीर्थ में स्नान आदि सब ही निरर्थक हैं।

वाराह पुराण के अध्याय ३७ में वाराह जी ने धरणी से कहा है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, और ब्रह्मचर्य से रह कर बिना आज्ञा के किसी दूसरे का पदार्थ नहीं लेते, उन्हीं का व्रत सफल होता है। यह व्रत रहने वालों के साधारण धर्म हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यम्प्रकीर्त्तितम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि तु धराधरे॥ ४॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्त्तनं सत्यभाषणम्।
अपैशुन्यं हितं धर्म वाचिकं व्रतमुत्तमम्॥ ५॥

पण्डित जी! यदि कोई पुरुष एक दिन जैसा कि पुराणों की आज्ञा है नियम करे और शेष १४ दिन धर्मानुकूल न चले तो एक दिन के फल से १४ गुणा पाप न होगा फिर भला क्योंकर सर्वप्रकार के आनन्द मिल सकते हैं?

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्म पितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देह पीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं, क्या यह तपस्या है? उस पर भीष्म जी ने उत्तर दिया है कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं कि एक महीना वा एक पक्ष

उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मा विद्या की विघ्न स्वरूप तपस्या है। इसलिए यह तपस्या अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीत है—

मासपक्षोपवासेन मन्यन्ते यत्तपो जनाः।

आत्मतन्त्रोपघातस्तु न तपस्तत्सतां मतम्॥ ४॥

गरुडपुराण अध्याय १६ में लिखा है कि एक बार भोजन करने आदि उपवास करके शरीर सुखाने वाले नियमों को कर मेरी माया से मोहित मूढ़ परोक्ष जो मोक्ष है, उसकी इच्छा करते हैं, सो देही के दण्ड देने मात्र से अविवेकियों की कभी युक्ति नहीं होती जैसी बांबी की ताडना करने से कहीं बड़ा सांप मरता है। पारावत कंकर आहार करता है पपिहा भूमि में गिरे जल को कभी नहीं पीता तो क्या वे व्रती हो जाते हैं, कदापि नहीं—

एके भुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः।

मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः॥ ६१॥

देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्।

वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥ ६२॥

पारावताः शिलहराः कदाचिदपि चातकाः।

न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६९॥

समीक्षा

तिस पर भी पुराणों में लिखा है कि एकादशी के दिन जो अन्न भोजन करते वह अपवित्र वस्तु को खाते हैं। देखो **पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड** अध्याय १५ में लिखा है—

येऽन्नमश्नन्ति पापिष्ठाश्चैकादश्यां हि विड्भुजः॥ १२॥

रोगी, लँगडे खांसीयुक्त पेट से कोढ़ी उत्पन्न होते हैं अर्थात् संसार में जितने पाप हैं वह सब भोजनों में बसते हैं और एकादशी के दिन जितने अन्न के दाने मनुष्य खाते हैं, उनको एक-एक दाने में करोड़ ब्रह्महत्या का पाप होता है—

नरा यावन्ति चान्नानि भुञ्जते च हरेर्दिने॥ १८॥

प्रत्यन्नञ्च ब्रह्महत्याकोटिजं वृजिनं भवेत्॥ १९॥

परन्तु श्रीमान् **अद् भक्षणे** धातु से अन्न शब्द बनता है अर्थात् जो भक्षण किया जाय वह अन्न चाहे फल हो, चाहे दूध चावल। ऐसा ही सनातन धर्म सभा के मान्य स्वामी श्रीधर जी ने **श्रीमद्भागवत** की व्याख्या करते हुए दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध अध्याय २३ में ९९वें श्लोक की व्याख्या में लिखा है—

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥

अर्थात् भक्ष्य—जो खाया जाय जैसे चना, चबेना, रोटी, पूरी, भोज्य—दाल, भात, लेह्य—जो चाटा जाय जैसे कढ़ी, खीर, चूष्य—जो चूसा जाय जैसे गन्ना और आम आदि। फिर श्रीमान् पुराण कहते हैं कि एकादशी को अन्न मत खाओ। फिर भला जो जन एकादशी को दूध, पेड़ा, रबड़ी, आम, अंगूर इत्यादि खाते हैं। वह भी अन्न खाने वाले हुए। इसके उपरान्त **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय ४२ में माघ कृष्णपक्ष की षट्तिला एकादशी के दिन ब्राह्मणों को तिल देना, तिलों से स्नान करना, उवटन कराना, तिलों समेत जल देना, तिलों का भोजन करना और हवन करना यह छह तिल पाप के नाशने वाले हैं। जैसा कि—

स्नाने प्राशनके शस्तास्तथा कृष्णास्तिला मुने।
तान्प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्ति द्विजोत्तमे॥
तिलप्ररोहजाः क्षत्रे यावत्संख्यास्तिला द्विज॥ २०॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी॥ २१॥
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥ २२॥

वाराहपुराण अध्याय ३० में लिखा है कि एकादशी के दिन अग्नि का पका हुआ अन्न जो नहीं खाता वह नित्य पवित्र है, उसको कुबेर देवता प्रसन्न होकर सब कुछ देते हैं। जैसा कि—

तस्य ब्रह्मा ददौ तुष्टस्तिथिमेकादशीं प्रभुः।
तस्यामनग्निपक्वाशी यो भवेन्नियतं शुचिः।
तस्यापि धनदो देवस्तुष्टः सर्वं प्रयच्छति॥ ६॥

इससे तो यह भी प्रकट होता है कि जो अन्न अग्नि से पका हुआ न

हो, उसको एकादशी के दिन खाले! यदि अग्नि से सूर्य का अर्थ लें तो फिर फलादि वस्तु न खानी चाहिए और यदि भौतिक अग्नि से प्रयोजन है तो फिर चावल आदि पानी से भिगोकर एकादशी को चबाकर निर्वाह कर सकते हैं, फिर भूखे रहने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके अतिरिक्त जब एकादशी के दिन ब्राह्मणों को तिल भोजन कराने की आज्ञा पुराण दे रहे हैं तो फिर अन्न का निषेध कहाँ रहा? क्या यह लेख आपकी समझ में व्यास जी जैसे योग्य महात्मा के हो सकते हैं? कदापि नहीं।

इसके उपरान्त भूखे मनुष्य की बुद्धि ठीक नहीं रहती। फिर वह अपने कार्यों को ठीक नहीं कर सकता। इसलिए वैद्यकशास्त्र में भूखे रहने और अधिक भोजन करने का निषेध किया है। पुराणों में भी लिखा है कि शक्ति, खड्ग, गदा, चक्र, तोमर, वाणादिकों से पीड़ित पुरुषों की पीड़ा से भूख की पीड़ा अधिक होती है। श्वास, कोढ़, क्षयी, ज्वर, मृगी, शूल आदि रोगों से पीड़ित पुरुषों की पीड़ा से भूख की पीड़ा अधिक होती है। सुवर्ण कुण्डलादि से भूषित पुरुष भी जब क्षुधित होते हैं, तब शोभित नहीं होते। जिस प्रकार पृथ्वी पर सब पानी सूर्यनारायण शोष लेते हैं, उसी भांति क्षुधा से पीड़ित मनुष्य के शरीर की सब नसें सूख जाती हैं और जब मूढ़ पुरुष क्षुधा से क्षुधित होते हैं तो तब उनको कुछ नहीं सूझता, वह मर्यादा से बाहर हो जाते हैं, वह लोग माता, पिता, पुत्र, स्त्री, कन्या, भ्राता स्वजन बान्धव को छोड़ देते हैं और वह देवताओं और पितरों गुरु ऋषियों धेनुओं की पूजा नहीं कर सकते हैं। और विपरीत इसके जो क्षुधित नहीं होता, वह इन सब कामों को अच्छे प्रकार कर सकता है। इसलिए कहा है कि जगत् में अन्न से श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं। यथार्थ में अन्न ही जगत् का मूल है। इस हेतु अन्न दान का बड़ा माहात्म्य कहा है। सत्य पूछो तो तप, सत्य, जप, होम, ध्यान, भोग, पदगति व स्वर्ग यह सब अन्न ही में निवास करते हैं। इस हेतु जो कोई श्रद्धा से भूखे को अन्न देता है, वह जानो सब तीर्थों में स्नान और व्रतों को करता है। देखो, **पद्मपुराण सृष्टि खण्ड** अध्याय १९।

इसलिए हमारी समझ में तो **प्रत्येक मनुष्य को सदा पथ्यापथ्य का विचार कर मिताहारी हो पञ्च कर्म-इन्द्रियां, पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और ग्यारहवां मन अर्थात् इन एकादश को जिनकी एकादश संख्या है, सदा नियम में चलाने का नाम एकादशी व्रत है, न कि अन्न न खाने**

का। प्रिय पाठकगण! यह उपर्युक्त व्रत सनातन व्रत है, इसके पालन करने से बेड़ापार हो जाता है, जिसकी सम्पूर्ण ऋषि, मुनि और महात्मा आज्ञा दे रहे हैं देखिए।

महाभारत शान्तिपर्व—अध्याय २६८ में लिखा है कि मनुष्य बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ इन चारों द्वारों की रक्षा करते हैं। वह सर्व प्रकार से सुख भोगते हैं इसलिए जुआ न खेले, मांगने का स्वभाव न बनाये, क्रुद्ध होकर किसी पर प्रहार न करे, वृथा वचन न कहे, जो जन सत्यव्रती और मितभाषी रहते हैं उनका वचनरूपी द्वार अच्छे प्रकार रक्षित रहता है। अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे और अधिक भोजन भी न करें, लोलुपता को छोड़ साधुओं का सत्सङ्ग करे। इस लोक में देहयात्रा के लिए थोड़ा सा आहार करे। जो ऐसा करते हैं उनकी जठर अग्नि की उत्तम प्रकार से रक्षा होती है। भार्याव्रत को धारण करे ऐसा करने से उपस्थ की रक्षा होती है।

वनपर्व अध्याय २५९ में कहा है कि सत्य, कोमलता, क्रोध न करना, दान, दम, शम, किसी के सुख को देखकर दुःखी न होना, हिंसा न करना, पवित्रता और इन्द्रियों को अपने वश में रखना, यही धर्म के दश लक्षण हैं इन्हीं से महात्मा लोग पवित्र होते हैं। अधर्मी, पापी और मूर्ख लोग इन दश का आदर नहीं करते, इसी से वे लोग नीच योनियों में जन्म लेते हैं और सुख को प्राप्त नहीं होते। जो जितेन्द्रिय और शान्त हैं, उनको क्लेश कभी नहीं होता। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है वह कभी दूसरे की लक्ष्मी को देख कर दुःखी नहीं होता। हिंसा न करने वाले को कभी रोग नहीं होता। जो माननीय पुरुषों का मान करता है, वह उत्तम कुल में जन्म धारण करता है।

इसलिए पण्डित जी! व्रतों के मुख्य अभिप्राय को जान यथावत् व्रतों का प्रचार कीजिए, जिससे भारत का कल्याण हो। ओ३म् शम्। श्रीमान् पण्डित जी और अन्य सभ्य गणों ने चलने की तय्यारी की।

सेठ जी ने दोनों हाथ जोड़ सब सज्जनों से नमस्ते की—श्रीमान् पण्डित जी और अन्य महाशयों ने यथायोग्य कहा और चल दिये। सेठ जी अपने मित्रों से वार्तालाप करने में लग गये।

इति एकादश परिच्छेद।

द्वादश परिच्छेद

तीर्थ प्रकरण

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को अन्य सभ्य गणों के सहित आते देख दोनों हाथ जोड़ नमस्ते कर कहा कि आइये, पधारिए।

श्रीमान् पण्डित जी और अन्य जन यथायोग्य कह विराजमान हुए।

इतने में लाला छंगेलाल व ठाकुर नेकरामसिंह व लाला मुन्नीलाल, बाबू तोताराम, लाला मूलचन्दलाल, नारायणलाल, लाला पीतमराम साहिबान जो बाहर से आये हुए थे, पधारे सब सज्जनों को यथायोग्य कह उचित स्थानों पर सुशोभित हुए।

श्रीमान् पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया।

सेठ जी ने और अन्य महाशयों ने यथायोग्य कह कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् सेठ जी ने कहा कि आज में तीर्थ विषय सुनाता हूँ।

पण्डित जी—बहुत अच्छा।

तीर्थों की संख्या तथा वास्तविक स्वरूप

सेठ जी—श्रीमान् पण्डित जी महाराज! तीर्थों की संख्या शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अध्याय १४ में छह करोड़ छह हजार लिखी है। जैसा कि—

षष्टिकोटिसहस्त्राणि षष्टिकोटिशतानि च।
षष्टितीर्थसहस्त्राणि परिसंख्या प्रकीर्तिता॥ ९॥

जिनमें से अनेकानेक तीर्थों के बड़े-बड़े माहात्म्य पुराणों में लिखे हैं, जिनको सुन और परम कल्याण का कारण जान सहस्त्रों स्त्री-पुरुष उनके दर्शन स्नानादि में लगे रहते हैं और तन-मन-धन के उपरान्त अपने प्राणों को भी दे देते हैं। परन्तु शोक इतना ही है कि पुराणों के वचनों पर विचार नहीं करते और न वेद की आज्ञा को श्रवण करते हैं। पण्डित जी! तीर्थ शब्द "**तृ प्लवनसन्तरणयोः**" इस धातु से औणादिक **थक्** प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। **तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्** अर्थात् जिससे जन

तरते हैं, उसको तीर्थ कहते हैं, देखिए यजुर्वेद (१६.६१) में लिखा है—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।

तेषांᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

अर्थात् तीर्थ दो प्रकार के हैं। पहिले तो वह हैं जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सत्सङ्ग, ईश्वर की उपासना, सत्य सम्भाषण आदि दुःख सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वह जिनसे समुद्रादि जलाशयों के पार आने-जाने में समर्थ होते हैं॥

इस मन्त्र की व्याख्या से अच्छे प्रकार विदित हो रहा है कि जिस प्रकार मल्लाह नाव के द्वारा समुद्रादि जलाशयों से पार कर देता है, ठीक उसी भांति अविद्यारूपी भवसागर से योगी जन योगरूपी नौका पर सवार कराकर पार कर देते हैं। ऐसे महान् पुरुषों को महात्मा, साधु, सन्त, वैरागी, संन्यासी आप्त इत्यादि नामों से सूचित करते हैं और उन्हीं सज्जन पुरुषों के चरणों को तीर्थ स्वरूप कहा है। देखिए—

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय १ श्लोकों में विदुर जी के चरणों को तीर्थ रूप कहा है—

गजाह्वयात् तीर्थपदः पदानि।१७।

स्कन्ध ४ अध्याय १२ में ध्रुव जी के चरणों में तीर्थ बतलाया है।

तीर्थपादपदाश्रयः।५०।

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १४ में लिखा है कि जितने तीर्थ ब्रह्माण्ड में हैं और जितने तीर्थ समुद्र में स्थित हैं वे सब ब्राह्मणों के चरणों में स्थित हैं—

ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि यानि तीर्थानि सागरे।

उदधौ यानि तीर्थानि तिष्ठन्ति द्विजपादयोः॥ १२॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्णजन्म खण्ड अध्याय ३१ में लिखा है कि ब्राह्मणों के पैर के धोये हुए जल में सर्व तीर्थ निवास करते हैं। इस कारण उनके पैरों के स्पर्श से सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है—

पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च।

तत्स्पर्शात् सर्वतीर्थेषु स्नानजन्मफलं लभेत्॥ ६४॥

श्रीमान् इस कथन का तात्पर्य यह है कि ज्ञानियों, महात्माओं, पण्डितों, साधुओं के सत्सङ्ग से ज्ञान की प्राप्त होती है। इसलिए प्राचीन काल में जहाँ कहीं ऐसे महात्मा और ऋषि निवास करते थे, वही स्थान तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो जाते थे। चाहे वह गङ्गा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, व्यास आदि नदियों के समीप हो अथवा वन जंगल और पहाड़ों की चोटियों पर क्यों न हो। जैसा कि—

महाभारत वनपर्व अध्याय २०० में कहा है कि जानने वाले, व्रत करने वाले, ज्ञानी, तपस्वी, ब्राह्मण जहाँ रहते हैं, उसी का नाम नगर है। हे राजन्! गांव में अथवा जंगल में जहाँ ब्राह्मण रहते हैं, उसी को नगर कहते हैं, वहीं तीर्थ भी माना जाता है—

वेदाढ्या वृत्तसम्पन्ना ज्ञानवन्तस्तपस्विनः।
यत्र तिष्ठन्ति वै विप्रास्तन्नाम नगरं नृप॥ ९१॥
व्रजे वाप्यथवारण्ये यत्र सन्ति बहुश्रुताः।
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थञ्च तद्भवेत्॥ ९२॥

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय १० में कहा है कि जिस स्थान पर एक दिन व आधे दिन जहाँ शिव योगी रहते हैं, वही मङ्गल स्थान पवित्र, तीर्थ है—

दिवसं दिवसार्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः।
तन्माङ्गल्यं पवित्रञ्च तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥ ६४॥

और ऐसे महान् पुरुषों के सत्सङ्ग करने की आज्ञा वेदादि सत्य ग्रन्थों में है और पुराणों में भी लिखा है। देखिए—

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २७ में कहा है कि साधु, महात्मा निश्चय तीर्थरूप हैं। तीर्थों का फल कालान्तर में होता है और साधु, महात्माओं की सङ्गति का फल तुरन्त मिलता है और अनन्त फल देता है इससे साधुओं की सङ्गति करनी आवश्यक है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

क्योंकि साधुओं के सङ्ग से शास्त्रों का सुनना होता है जिससे भगवान्

की भक्ति उससे ज्ञान और ज्ञान से गति होती है। जैसा **पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड** अध्याय १ में लिखा है—

साधुसङ्गाद्भवेद्विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः ॥ ६ ॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय १९ में लिखा है कि परमेश्वर पापवर्जित साधुओं के सत्सङ्ग से जाने जाते हैं। उनकी कृपा से मनुष्य दुःखरहित हो जाते हैं॥ १४॥ वह साधु काम, लोभ, रागादि से रहित जो कुछ वह कहते हैं वह संसार से निवृत्त करने वाला है॥ १५॥ इसलिए संसार से डरते हुए मनुष्यों को तीर्थों में अवश्य जाना चाहिए क्योंकि उन तीर्थों में उत्तम जल और वहाँ साधुओं की श्रेणी विराजती है—

तस्मात्तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।
पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणिविराजिषु॥ १७॥

षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १३२ में लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य्यनारायण के संयोग से सूर्य्यकान्त मणि में अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसी भांति साधुओं के संयोग से भगवान् में भक्ति उत्पन्न होती है॥ १३॥

इसी हेतु जब युधिष्ठिर महाराज ने तीर्थयात्रा का विचार प्रकट किया, उस समय नारदमुनि ने पाण्डवों से कहा कि तीर्थों में जाने से वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, विश्वामित्र, गौतम, देवल, मार्कण्डेय तपस्वियों में श्रेष्ठ शुकदेव, दुर्वासा, जाबालि इत्यादि ऋषियों के दर्शन होंगे और महात्मा धौम्य जी ने कहा है कि तीर्थों में वस्तु, साध्य, सूर्य, वायु और अश्विनीकुमार देवों के समान ऋषि लोग निवास करते हैं। देखो, महाभारत वनपर्व अध्याय ८५ व ९०।

मत्स्यपुराण अध्याय १९८ में लिखा है कि मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, नारद और गौतमादिक धर्म की इच्छा करने वाले ऋषि, गङ्गा, कनखल, प्रयाग, पुष्कर और गया इत्यादि तीर्थों में निवास करते हैं॥ ११॥

श्रीमान् पण्डित जी! प्राचीनकाल में जो गृहस्थ तीर्थयात्रा के जाने का विचार करते थे वह विशेषकर नियम और यम के पालन का ध्यान बनाये रहते थे, क्योंकि—

तीर्थ-फलाभाव प्रकरण

महाभारत वनपर्व—अध्याय २०० में कहा है तीन दण्ड का धारण करना, जटा बढ़ाना, शिर मुंडवाना, मौनी होना, छाल पहरना, मृगचर्म धारण करना, व्रत अर्थात् भूखे रहना, स्नान करना, अग्निहोत्र करना, वन में रहना, शरीर को सुखाना इत्यादि, यदि भाव शुद्ध नहीं तो सब ही मिथ्या है—

त्रिदण्डधारणं मौनं जटाभारोऽथ मुण्डनम्।
वल्कलाजिनसंवेष्टं व्रतचर्याभिषेचनम्॥ ९६॥
अग्निहोत्रं वने वासः शरीरपरिशोषणम्।
सर्वाण्येतानि मिथ्या स्युर्यदि भावो न निर्मलः॥ ९७॥

हे राजन्! अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खाकर इन नेत्र आदि छह इन्द्रियों को रोकना कठिन है, उसमें सबको विकार देने वाले मन को रोकना बहुत ही कठिन है जो मन बुद्धि और कर्म से पाप नहीं करते, वही तपस्वी हैं। शरीर के सुखाने वाले तपस्वी नहीं, अन्न न खाना तप नहीं कहलाता, जो घर में रहकर पवित्र रहता है, वही मुनि है—

न दुष्करमनाशित्वं सुकरं ह्यशनं विना।
विशुद्धिश्चक्षुरादीनां षण्णामिन्द्रियगामिनाम्॥ ९८॥
विकारि तेषां राजेन्द्र सुदुष्करतरं मनः।
ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः॥
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम्॥ ९९॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८० में लिखा है कि चीर वस्त्र, धारण करना, जटा रखना, दण्ड का रखना व मूड़ मुड़वाना इत्यादि चिह्न धर्म के कारण नहीं हैं—

चीरवासा जटी विप्र दण्डी मुण्डित एव वा।
विभूषितो वा विप्रेन्द्र न लिङ्गं धर्मकारणम्॥ १०४॥

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २९ में लिखा है कि रागी पुरुषों को वन में भी दोष होते हैं, घर में पञ्चेन्द्रिय निग्रह करना तप है, अकुत्सित कर्म में प्रवृत्त होने से राग रहित पुरुष को घर ही में तपोवन है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहे तपोवनम् ॥ ७ ॥

पण्डित जी ! जिस प्रकार बिना पथ्य के उत्तम से उत्तम औषधी कुछ लाभ नहीं करती, उसी प्रकार वेद व शास्त्रादि के पठन से मुक्ति नहीं होती वरन् मुक्ति का कारण ज्ञानमुक्त कर्म करना ही है। इसी हेतु पुराणों में भी लिखा है कि जो कर्म ज्ञानपूर्वक किये जाते हैं वह कल्याण के दाता होते हैं अन्यथा नहीं। इसी भांति ऋषि उपदेश भी यथार्थ में मुक्ति देने वाला है परन्तु जब तक उनकी आज्ञानुसार कार्य न किया जावे तब तक लाभदायक नहीं होता इसलिए प्राचीन जन जब तीर्थों में ज़ाते थे तब वह गङ्गा, यमुना, नर्मदा इत्यादि नदियों व अन्य तालाब आदि पवित्र जलों में स्नान कर शरीर शुद्धि के पश्चात् आत्मा शुद्धि के अर्थ महात्मा जनों का सत्सङ्ग कर आचरण सुधार आनन्द प्राप्त करते, क्योंकि मन की शुद्धि के बिना अन्य किसी प्रकार से भी यथार्थ शुद्धि नहीं होती। जैसा कि—

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६६ में कहा है कि चाहे पर्वत के समान मिट्टी मले और गङ्गाजल के सारे जल से मृत्यु पर्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं होता—

गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गात्रलेपनैः ॥ ८३ ॥
मर्त्यो दुर्गन्धदेहोऽसौ भावदुष्टो न शुध्यति।
तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शुध्यति ॥ ८४ ॥

शिवपुराण वायु संहिता उत्तरार्द्ध अध्याय ११ में लिखा है कि जिसके अन्तःकरण में अशुद्धि है वह पवित्र भी अपवित्र है ॥ ५७ ॥

शिवपुराण धर्म संहिता अध्याय ४२ में लिखा है कि जीवन पर्यन्त शुद्धता करने पर भी दुष्ट स्वभाव वाला मनुष्य तीर्थस्नान, तप करने वाला शुद्ध नहीं होता—

आमृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्ध्यति।
तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुद्ध्यति ॥ ८२ ॥

क्या कुत्ता तीर्थ में स्नान करने से शुद्ध हो सकता है। (कभी नहीं)

जो अन्तर्भाव से दुष्ट हो वह चाहे अग्नि में प्रवेश कर जाये तो उसकी देह दग्ध करने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती—

श्वातिक्षालितस्तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्॥ ८३॥
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम्॥ ८४॥

दुष्टस्वभाव वाला मनुष्य चाहे सब प्रकार गङ्गाजल से स्नान करे, चाहे मिट्टी के पर्वतों से हाथ मांज डाले, जन्मपर्यन्त जो स्नान करे तथापि वह शुद्ध नहीं हो सकता—

सर्वेण गाङ्गेन जलेन सम्यङ् मृत्पर्वतेनाप्यथ भावदुष्टः।
आजन्मनः स्नानपरो मनुष्यो न शुद्ध्यतीत्येव वयं वदामः॥ ८५॥

गङ्गादि तीर्थों में नित्य मत्स्यादि निवास करते हैं, देवालयों में पक्षी रहते हैं, भावहीन होने से वह फल तीर्थ में अवगाहन करने और दान देने से नहीं मिलता—

गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम्।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थावगाहाच्च तथैव दानात्॥ ८७॥

इसलिए शुद्धभाव होना ही सब कर्मों में प्रमाण है—

भावशुद्धं परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु॥ ८८॥

भाव के शुद्ध होने से प्राणी स्वर्ग और मोक्ष को पाता है—

भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥ ९२॥

इस हेतु जो ज्ञानरूपी जल और वैराग्यरूपी मृत्तिका से शरीर के अविद्यारूपी रागद्वेष आदि मलों को धोवे, वही शुद्ध होता है—

ज्ञानामलाम्भसा पुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः।
अविद्यारागविण्मूत्रं लेपगन्धविशोधनम्॥ ९४॥

बृहन्नारदीय उपपुराण अध्याय ३१ में लिखा है कि शुद्धि दो प्रकार की होती है। एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तर। जिसमें मृत्तिका, जल से बाहर और भाव की शुद्धि से भीतर की पवित्रता होती है। ऋषियों ने कहा है कि अन्त:करण की शुद्धि के बिना जो यज्ञ आरम्भ किये जाते हैं वे फलित नहीं होते जिस प्रकार भस्म में होम किया निष्फल है। इसलिए दुष्ट

जन हज़ार भार मृत्तिका और करोड़ों कलशों के जलों से शौच करे, पर वह चाण्डाल ही कहाता है। जो मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धि के बिना बाहर की शुद्धि करता है, वह सजाये हुए मदिरा के घड़े के समान है। इसलिए जो कोई बिना चित्त शुद्ध किये तीर्थयात्रा करते हैं तो उनको तीर्थ पवित्र नहीं करते जैसे मदिरापात्र को नदियाँ शुद्ध नहीं कर सकतीं।

लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ८ में लिखा है कि बाहर से शौच कितना ही करें और मृत्तिका से देह को लीप-लीप कर स्नान करे, जो अन्तःकरण शुद्ध न होय तो सदा ही मलिन हैं॥ ३३॥

क्योंकि मत्स्य मण्डूक आदि सदा जल में डूबे रहते हैं, वे क्या शुद्ध हो जाते हैं? इससे आभ्यन्तर शौच ही मुख्य है॥ ३४॥

इसलिए वैराग्यरूपी मृत्तिका से शरीर को लिप्त करके आत्मज्ञानरूपी जल में स्नान करें यही शौच मुख्य है क्योंकि शुद्ध पुरुषों को ही सिद्धि होती है। अशुद्ध को नहीं—

आत्मज्ञानाम्भसि स्नात्वा सकृदालिप्य भावतः।
सुवैराग्यमृदा शुद्धः शौचमेवं प्रकीर्त्तितम्॥ ३६॥
शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टा नैवाशुद्धस्य सिद्धयः। ३७।

अध्याय २५ में लिखा है कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं चाहे वो कितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्टभाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना कठिन है मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रि से संकुचित हो रहा है इसको ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से विकसित करना उचित है।

गरुडपुराण अध्याय १६ में लिखा है कि जन्म से लेकर अन्त तक गङ्गा आदि नदियों में जो मेंढक, मछली इत्यादि रहते हैं तो क्या वे योगी हो जाते हैं अर्थात् नहीं—

आजन्ममरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः।
मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्॥ ६८॥

इसी हेतु **पद्मपुराण पातालखण्ड** अध्याय ९८ में लिखा है कि जो मनुष्य गङ्गादि पुण्य तीर्थों में स्नान करते हैं और वह पुरुष जो महात्माओं का सत्सङ्ग करते हैं इन दोनों से सत्सङ्ग करने वाला ही श्रेष्ठ है—

गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा।

यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय १८ में दत्तात्रेय जी महाराज ने कहा है कि जो मनुष्य सत्सङ्ग रूपी पत्थर पर सान रूपी कुल्हाड़ी को तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को काट डालते हैं वही मनुष्य मुक्ति के मार्ग को प्राप्त हो जाते हैं॥

बिना कांटे और धूल के ब्रह्मज्ञान रूपी शीतल वन में प्राप्त होकर परमनिवृत्ति को वह ज्ञानी प्राप्त हो जाते हैं फिर संसार के आवागमन से रहित हो जाते हैं॥

गरुडपुराण अध्याय १ में स्पष्ट रूप से कहा है कि जो मनुष्य पाप में रत दया तथा धर्म रहित दुष्टों की संगत में मस्त उत्तम शास्त्र के जानने वाले सुजनों के सत्सङ्ग से दूर—

ये हि पापरतास्तार्क्ष्यदयाधर्मविवर्जिताः।

दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्सङ्गतिपराङ्मुखाः ॥ १४ ॥

जो अपने को प्रतिष्ठित जानते हैं और नम्रतारहित धन और मान के घमण्ड में चूर असुरभावयुक्त और दैवी सम्पत्ति से दूर हैं—

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानावृताः सदा।

आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः ॥ १५ ॥

जिन मनुष्यों का मन पराई स्त्री और धन में मोह से मोहित होकर भ्रम रहा है, ऐसे मनुष्य नरक में जाते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।

इसी कारण जब श्रीमान् युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डवों ने तीर्थ यात्रा की इच्छा की, उस समय ऋषियों ने उनसे कहा कि जैसा कि महाभारत वनपर्व अध्याय ८१ में लिखा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जिनके हाथ, पांव, मन, विद्या और कीर्त्ति वश में होती है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ९ ॥

जो सब घरों से लौट एक किसी स्थान पर सन्तुष्ट होकर रहता है,

जिसको अहङ्कार नहीं, वही तीर्थ के फल को भोगता है—

प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।

अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ १०॥

जो छल और कार्यों के आरम्भ से दीन, थोड़ा खाने वाला, इन्द्रियजित, सब पापों से रहित होता है, वह तीर्थों के फलों को भोगता है—

अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते॥ ११॥

जो क्रोध से रहित सत्य, शील से भरा हुआ पक्का व्रतधारी अपने समान जब प्राणियों को देखने वाला हो, वही तीर्थों के फल को भोगता है—

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीली दृढव्रतः।

आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥ १२॥

और ऐसा ही **पद्मपुराण सृष्टिखण्ड** अध्याय १९ में लिखा है।

मत्स्यपुराण अध्याय ११२ में कहा है कि जो ब्राह्मण प्रतिग्रहादिक दानों से निवृत्त, सन्तोषवृत्ती, नियमी, पवित्र और अहङ्कार से रहित होता है, वह तीर्थ के फल को पाता है—

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः।

अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ १०॥

जो क्रोध रहित, सत्यवक्ता, सब जीवों को अपने समान देखने वाला होता है, वह तीर्थ के फल को पाता है—

अकोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः।

आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥ ११॥

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय १२ में लिखा है गङ्गा आदि तीर्थों में जाने का फल वही जन पाते हैं जो सदाचार सद्भाव और श्रेष्ठ भावना से बुद्धिमान् दयायुक्त रहते हैं, अन्यथा फल की प्राप्ति नहीं होती—

सदाचारेण सद्वृत्त्या सदा भावनयापि च।

वसेद्दयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत्॥ ३५॥

इसलिए पवित्र हृदययुक्त मनुष्य शुद्ध मन से जो स्नान करते हैं, वही श्रेष्ठ स्नान कहाता है। जैसा **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय २७ में कहा है—

अगाधे विपुले सिद्धे सत्तीर्थे च शुचौ हृदि॥ २९॥
स्नातव्यं मनसा युक्तैः स्नानं तत्परमं स्मृतम्॥ ३०॥

महाभारत वनपर्व अध्याय १९९ में कहा है कि सज्जनों के संग और मीठी वाणी से जिन्होंने अपनी आत्मा को पवित्र किया है, उन्हीं को पवित्र कहते हैं।

महाभारत वनपर्व में महात्मा व्यास, पर्वत और नारद मुनि जब पाण्डवों से मिलने गये तब उन्होंने कहा है कि हे युधिष्ठिर! आप लोग अपने मन को शान्त कीजिए। मन को पवित्र करके शुद्ध होकर तीर्थों को जाइये, मुनियों ने कहा है कि शरीर शुद्धि होने से ही व्रत हो सकता है, ब्राह्मणों ने कहा है कि मन पवित्र होने से जो बुद्धि शुद्ध होती है, मन ही पवित्रता का कारण है। आप लोग अपनी बुद्धि को पवित्र और सबको मित्र बना कर तीर्थों को जाइये जब आप लोग शरीर के नियम और व्रतों से शुद्ध होंगे और पूर्वोक्त देवव्रत धारण करेंगे तब तीर्थों का यथायोग्य फल पावेंगे—

युधिष्ठिर यमौ भीम मनसा कुरुतार्ज्जवम्।
मनसा कृतशौचा वै शुद्धास्तीर्थानि यास्यथ॥ २०॥
शरीरनियमं प्राहुर्ब्राह्मणा मानुषं व्रतम्।
मनो विशुद्धां बुद्धिश्च दैवमाहुर्व्रतं द्विजाः॥ २१॥
मनो ह्यदुष्टं शौचाय पर्याप्तं वै नराधिप।
मैत्रीं बुद्धिं समास्थाय शुद्धास्तीर्थानि गच्छथ॥ २२॥
ते यूयं मानसैः शुद्धाः शरीरनियमव्रतैः।
दैवं व्रतं समास्थाय यथोक्तं फलमाप्स्यथ॥ २३॥

देवीभागवत स्कन्ध ४ अध्याय ८ में प्रह्लाद जी से च्यवन ऋषि ने कहा है कि जिनके मन वाणी देह शुद्ध हैं, उन्हें तीर्थ पद-पद पर हैं। मलिन चित्तों के लिए गङ्गा भी अपावन कीकटादि देशों से अधिक है, जो

प्रथम मन शुद्ध है तो जीवात्मा पापरहित होता है, उसे सब तीर्थ भी पवित्र करते हैं नहीं तो गङ्गा के तीर सब कहीं, मगर, व्रज अहीरों के ग्राम बसते हैं निषादों के गृह और हूण वंग, खस म्लेच्छादिकों के स्थान होते हैं और सर्वदा गङ्गा जल ही पान करते हैं, स्वच्छतापूर्वक त्रिकाल स्नान करने पर एक भी विशुद्धात्मा नहीं होता। जिनका चित्त विषयवासना से हत हो गया है, उन्हें तीर्थ क्या करें? सबका कारण मन ही है इसलिए प्रथम उसको शुद्ध करना चाहिए। तीर्थ में वास करके औरों को छला तो क्या शुद्ध हो सकता है? इसलिए प्रथम मन शुद्ध, फिर द्रव्य शुद्ध, तदनन्तर शौचादि शुद्ध करके तीर्थयात्रा अवश्य करनी चाहिए, वरन् जाना व्यर्थ है—

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्त्तव्या शुभमिच्छता।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा॥ ३७॥

क्योंकि यदि किसी के कहने अथवा देखने से तीर्थयात्रा को गये और राग, द्वेष, काम, क्रोध युक्त ही गृह को लौट आये तो बतलाईये क्या फल मिला? इसलिए तीर्थयात्रा करने पर देह से काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, निन्दा, ईर्ष्या, अक्षमा और अशान्ति ये न गईं तो केवल काम ही काम हुआ फिर फल कहां? जैसा कि **देवीभागवत** स्कन्ध ३ अध्याय ८ में कहा है।

इसी हेतु **नरसिंह उपपुराण** अध्याय ६७ में मनु महाराज ने भारद्वाज ऋषि को उपदेश किया है कि मन का निर्मल रखना रागादिकों में व्याकुल न होना, सत्य बोलना, सबके ऊपर दया करना, इन्द्रियों को जीतना, गुरु माता पिता की सेवा करना यह मानुषी तीर्थ विशेष फलदायक हैं।

वामन पुराण अध्याय ४३ में लिखा है कि जिनका अनन्तभाव वाला चित्त आत्मा में लगा हुआ है, उनको सब तीर्थों और आश्रमों से क्या प्रयोजन—

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम्।
येषां वानन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्॥ २३॥

अर्थात् बिना मन के शुद्धि किये किसी नदी आदि में स्नान किये से पापों की निवृत्ति नहीं होती। इसी हेतु **गरुड पुराण** अध्याय १७ श्लोक ५७ में लिखा है कि जिसके सत्सङ्ग और विवेक यह दो निर्मल नेत्र नहीं

हैं, वह अन्धा और कुमार्ग में जाने वाला है। जैसा कि—

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलनयनद्वयम्।

श्रीमहाराज—इसी प्रकार पुराणों में अनेकानेक वचन मिलते हैं। इस पर भी इसके विपरीत उन्हीं पुराणों में तीर्थों के दर्शन और स्नानादि की महान् महिमा लिख दी है जिनको सुन-सुन कर संसारी जन भेड़ियाधसान की भांति बिना इन बातों को विचारे यम, नियम से रहित टीड़ी दल के समान एक विशेष तिथि पर काशी, मथुरा, प्रयाग, बदरीनाथ, द्वारिका, रामेश्वर, पञ्चवटी, चित्रकूट, गोकुल, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार, गङ्गोत्री, जमनोत्री, नगरकोट, कुरुक्षेत्र, पुष्कर इत्यादि स्थानों के दर्शन कर गङ्गा, यमुना, गण्डकी और नर्मदा इत्यादि में डुबकी लगा अपने मनोरथ की सिद्धि समझते हैं। जैसा कि लिखा है आप भी संक्षेप से सुन लीजिए।

श्रीमान् पण्डित जी ने कहा कि आज यहाँ ही विश्राम दीजिए।

सेठ जी—बहुत अच्छा, जो आज्ञा, मैं यहाँ ही समाप्त करता हूँ।

ओ३म् शम्।

सर्वसज्जनों ने चलने की तय्यारी की।

सेठ जी ने सर्व महाशयों को नमस्ते की।

पण्डित जी ने आयुष्यमान् कहा और चल दिए।

अन्य महाशयों ने यथायोग्य की।

सेठ जी अपने गृह में गये।

इति द्वादश परिच्छेद॥

संसारी पुरुषों की सङ्गति छोड़ देनी चाहिये और जो न छूट सके तो साधु लोगों की सङ्गति करे क्योंकि साधुओं की सङ्गति ही संसार की औषधि है।

सब प्रकार के काम को छोड़ देना चाहिये यदि न छूटे तो मुक्ति की इच्छा से उसका यत्न करे, यह यत्न काम की ओषधि है।

—पृष्ठ ७९

त्रयोदश परिच्छेद

तीर्थयात्रा-फल प्रकरण

सेठ जी ने समय पर अनेक सज्जनों सहित श्रीमान् पण्डित जी को आते देख उठकर दोनों हाथ जोड़ नमस्ते कह कर कहा कि आईये, पधारिये, विराजमान हूजिए।

पण्डित जी व अन्य सभ्य गणों ने यथायोग्य कहा और सब अपने-अपने स्थानों पर जा बैठे।

सेठ जी ने कहा कि देखिए, श्रीमान्!

मत्स्य पुराण अध्याय १०८ में लिखा है कि जो पुरुष अज्ञान से तीर्थ यात्रा करता है वह सब कामनाओं से सम्पन्न होके स्वर्ग लोक में प्राप्त होता है और क्षीणपुण्य होके धनधान्य से युक्त हुए स्थान को प्राप्त होता है॥

अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्।
सर्वकामसमृद्धे तु स्वर्गलोके महीयते॥
स्थानञ्च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम्॥ १७॥

वामनपुराण अध्याय ३३ में लिखा है कि तीर्थों का स्मरण मनुष्यों को पवित्र कर देता है और तीर्थों का दर्शन पापों का नाश करता है, तीर्थ के स्नान से पापों की भी मुक्ति होती है। जैसा कि—

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।
स्नानं पुण्यकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः॥ ४॥

हरिद्वार माहात्म्य।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २१ में महादेव जी ने कहा कि एक समय मैं भगवान् के स्थान हरिद्वार को गया तो उस तीर्थ के प्रभाव से मैं विष्णु के रूप के तुल्य हो गया—

एकदा केशवस्थाने हरिद्वारे ह्यहं गतः।
तस्मात्तीर्थप्रभावाच्च जातोऽहं विष्णुरूपवान्॥ २१॥

और भी मनुष्यों में श्रेष्ठ जो जाते हैं, वे निरोग रहते हैं, वे मनुष्य नर-नारी सब चारभुजा वाले भगवान् के दर्शन ही से सब वैकुण्ड को जाते हैं, हमको भी यह सुन्दर हरिद्वार तीर्थ सब से अधिक है—

ये गच्छन्ति नरश्रेष्ठास्ते वै यान्ति ह्यनामयम्।
चतुर्भुजास्तु ते लोकाः नरा नार्यश्च सर्वशः ॥ २२ ॥
वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे हरेर्दर्शनमात्रतः।
ममाप्यधिकं तीर्थं तु हरिद्वारं सुशोभनम्॥ २३ ॥

जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का देने वाला है, गऊ ब्राह्मण और पिता का मारने वाला है, इस प्रकार के बहुत से पाप भगवान् के दर्शन ही मात्र से नाश को प्राप्त हो जाते हैं—

गोहन्ता ब्रह्महा चैव ये चान्ये पितृघातकाः ॥ २७ ॥
एवंविधानि पापानि बहून्यपि च वै द्विज।
विलयं यान्ति सर्वाणि हरेर्दर्शनमात्रतः ॥ २८ ॥

प्रयाग माहात्म्य।

सप्तम क्रिया योगसार अध्याय ४ में कहा है कि कोटि ब्रह्माण्ड के मध्य में जितने तीर्थ हैं वे सब प्रयाग के बराबर नहीं—

कोटिब्रह्माण्डमध्येषु यानि तीर्थानि वै मुने।
प्रयान्ति तानि सर्वाणि प्रयागप्रतिमान्तु किम्॥ ४ ॥

जो जन मकर के सूर्य माघ मास में स्नान करते हैं उनका आगमन फिर विष्णुलोक से नहीं होता ॥ ६ ॥

हज़ार करोड़ गौवों का दान, अश्वमेध इत्यादि यज्ञ, सुमेरु पर्वत के समान सोने का दान तथा और भी दान कुरुक्षेत्र पुष्कर प्रभाग और गया जी में हवन कर ब्राह्मणों को देने से जो फल पण्डितों को मिलता है तिससे करोड़ गुणा फल माघ में प्रयाग में स्नान करने से मिलता है तिससे सब तीर्थों में प्रयाग श्रेष्ठ है—

गवां कोटिसहस्राणि वाजिमेधमुखाध्वराः।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दानान्यन्यानि च द्विज॥ ७ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २४ में लिखा है कि इस प्रकार का तीर्थ तीनों लोकों में न हुआ है, न होगा। ग्रहों में जैसे सूर्य और नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा श्रेष्ठ है, उसी भांति तीर्थों में उत्तम प्रयाग जी हैं। प्रातःकाल में जो प्रयाग जी में स्नान करता है, वह महापाप से छूट परम पद को प्राप्त होता है। दारिद्र के अभाव की इच्छा करने वाले को वहाँ यथाशक्ति कुछ देना भी चाहिए॥ ३-५॥

अध्याय ९१ में लिखा है कि अन्य स्थानों में जो दश वर्ष में तपस्या का फल मिलता है, वह यहाँ एक दिन में प्राप्त होता है। और अध्याय १२९ में लोमश मुनि ने कहा है कि इस प्रयाग में बिना ज्ञान के सब प्राणी मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं। यहाँ ही प्रजापति ने महायज्ञ को कर प्रजा रचने की शक्ति को प्राप्त कर सृष्टि को रचा था और स्त्री की कामना करने वाले नारायण जी ने स्नान के प्रभाव से अमृत मन्थन कर लक्ष्मी जी को प्राप्त किया था और इसी स्थान पर छह माह स्नान कर महादेव जी ने तीन बाणों से त्रिपुरासुर को मार डाला था।

मत्स्यपुराण अध्याय १०८ में लिखा है कि विश्वासघात करके मार डालने वाला पुरुष तीन काल स्नान और भिक्षा कर भोजन करने से तीन माह में निस्सन्देह पापों से छूट जाता है—

विश्रम्भघातकानान्तु प्रयागे शृणु यत् फलम्।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्।
त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे तु न संशयः॥ १६॥

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १३८ में लिखा है कि त्रिवेणी क्षेत्र पृथिवी मण्डल में सब तीर्थों से उत्तम है, जिसमें पृथिवी मण्डल के सब देवता और तीर्थों का समाज होता है। यहाँ स्नान करने भर से मुक्ति होती है, इसका तीर्थराज नाम है—

यत्राप्लुता दिवं यान्ति मृता मुक्तिं प्रयान्ति च।
तीर्थराज इति ख्यातं तत्तीर्थं केशवप्रियम्॥ ८९॥

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योगसार।

अध्याय ४

इतिहास

प्राचीन समय में प्रणिधि नाम एक वैश्य धनवान् और देवताओं, अतिथियों की सेवा करने वाले थे। उनकी पद्मावती नाम पतिव्रता स्त्री जो शीलादि गुणों से युक्त थी। वह कालान्तर में व्यापार को गये। इधर स्त्री सखियों सहित स्नान को गई, वहाँ धनुर्ध्वज नाम एक पापी ने उस स्त्री को देख उससे कहा कि तुमको हमारे साथ आनन्द करना चाहिए। सब सखियों ने कहा कि यह पतिव्रता है, इसकी इच्छा करना मूर्खता है। परन्तु उसने न माना, फिर सखियों से कहा कि जिस प्रकार यह मिल सके वह उपाय बतलाओ, मैं तुम्हारी शरण हूँ। तब सखियों ने उत्तर दिया कि यदि तू इस स्त्री की इच्छा करता है तो शीघ्र गङ्गा-जमुना के सङ्गम पर देह का त्याग कर। इतना कह वह सब घर को गईं। इधर हज़ार हत्या करने वाला चाण्डाल मोह के कारण गङ्गा-जमुना के जल में उसका पूजन कर प्राण छोड़ा जिससे वह उसी दिन उस स्त्री के पति के समान हो गया और वह चाण्डाल ब्राह्मण उस स्त्री के घर को आया। उधर वह प्रणिधि नाम वैश्य व्यापार से वापिस आकर गृह को गया, पतिव्रता ने दोनों को एक समान देख चिन्ता की कि मैं किसकी स्त्री हूँ और मेरा कौन स्वामी है? इसके लिए भगवान् की प्रार्थना की, तब भगवान् ने कहा कि हे सुन्दर स्त्री! जिस प्रकार अनन्त रूप वाली लक्ष्मी मेरे साथ क्रीड़ा करती है उसी भांति तुम भी दोनों के संग सदैव सुख भोगो—

अनन्तरूपिणी लक्ष्मीर्यथाक्रीडे मया सह।
तथा त्वमपि सुश्रोणि भुङ्क्ष्व ताभ्यां सुखं सदा॥ ७१ ॥

यह सुन पद्मावती ने कहा कि मनुष्य समाज में जिस स्त्री के दो पति होते हैं उसकी प्रशंसा नहीं होती, इसलिए लज्जारूपी समुद्र के कल्लोल में डूबती हुई का आप उद्धार कीजिए।

तब भगवान् ने कहा कि यदि तुम अपयश से डरती हो तो इन दोनों समेत मेरे पुर को प्राप्त हो। हे पवित्र अंगवाली स्त्री! तुम भ्रम को छोड़ दो, यह दोनों तुम्हारे पति हैं। इसलिए सदैव एकभाव से सेवा करो—

भ्रमं जहीहि चार्वङ्गि द्वावेतौ हि पती तव।
एकभावेन सुश्रोणि कुरु सेवां तयोः सदा॥ ६९ ॥

तुम्हारा स्वामी प्रणिधि मेरा भक्त था, वही अपने सुख के लिए दो प्रकार का हुआ है।

तदनन्तर भगवान् की आज्ञा से विमान आया जिस पर पद्मावती दोनों पतियों को साथ लेकर वैकुण्ठ को गई। मार्ग में उधर विष्णुदूत एक मनुष्य को स्त्री समेत विमान में बिठलाकर लिए जाते थे। तब पद्मावती ने पूछा कि आप कौन हैं? किस पुण्य के फल से इसको आप लिए जाते हो, उसके व्रत को सुनाइये। तब दूतों ने कहा कि यह बृहद्ध्वज नाम राक्षस वन का रहने वाला है, बड़ा पराक्रमी, पराई स्त्री, पराये द्रव्य का हरने वाला, गायों के मांस का खाने वाला, निष्ठुर वचन कहने वाला, देवों की निन्दा में मस्त अर्थात् शुभकर्म इसने स्वप्न में भी नहीं किये। पराई स्त्रियों के हरण के लिए आकाश में घूमा करता था। एक समय भीमकेश राजा की कोशिनी नाम स्त्री को देख उससे कहा कि मैं तेरे आलिङ्गन को आया हूँ, इतना सुन स्त्री ने उससे आलिङ्गन किया। फिर प्रसन्नचित्त पति-पत्नी भाव को प्राप्त हो बड़े वेगवाले रथ में बैठ आकाश मार्ग में चले। थोड़ी देर के पश्चात् राक्षस ने कहा तुम्हारे स्वामी के राज्य से गङ्गा सागर में आ गये। जिसको देख स्त्री के प्राण निकल गये फिर राक्षस ने रो-रो कर प्राणों को छोड़ दिया। अब भगवान् की आज्ञा से दोनों के पाप नाश हो गये। इसलिए दोनों को वैकुण्ठ लिए जाते हैं क्योंकि जल, स्थल, आकाश में गङ्गा सागर के संगम में देह छोड़कर पापी भी परमगति को पाते हैं। इतना कह वह दूत उन दोनों को विष्णुलोक ले गये। इधर पद्मावती दोनों पतियों समेत विष्णु जी की सारूप्यता को प्राप्त हुई।

मत्स्यपुराण अध्याय १८० में पार्वती जी के पूछने पर शिव जी ने कहा कि हे प्रिये! जिन तीर्थों से मेरी स्थिति सुनी जाती है, वह सब तीर्थ इस अविमुक्त तीर्थ के चरणों में नित्य ही स्थित रहते हैं, यह परम प्रसिद्ध परम गति को देने वाला है, इसमें सब दान अक्षयकारी होते हैं, हजारों जन्मों का सञ्चय किया पाप सब नष्ट हो जाता है। जैसे अग्नि में रुई भस्म हो जाती है। ब्राह्मण आदि वर्णसङ्कर पातकी जीव कीट-पतङ्ग मृग-पक्षी भी इस तीर्थ में मरे, वह शिव लोक में जाता है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला भी पुरुष इस तीर्थ पर जाता है, उसकी भी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है॥ १६, १७॥

अध्याय ८३ में लिखा है कि जो गति दान, तप, यज्ञ और ब्रह्मविद्या आदि से भी नहीं मिलती वह इस तीर्थ से प्राप्त होती है। अनेक जाति वा चाण्डाल पापी तथा महाहत्या वाले इन सब पुरुषों की परम औषधी यही है कि अविमुक्त तीर्थ को प्राप्त हो जावे और जो वहाँ शिव की भक्ति करके मरते हैं, फिर वह जन्म नहीं लेते॥ ५५, ५७॥

अध्याय १८१ में लिखा है—

हे पार्वती! जैसे न मेरे समान कोई पुरुष है न तेरे समान कोई स्त्री है, इसी प्रकार अविमुक्त तीर्थ के समान कोई तीर्थ भी न है, न होगा॥ ३५॥

अविमुक्त तीर्थ पर परमयोग परम गति और परम मोक्ष है, इसी से इसके समान कोई क्षेत्र नहीं है॥ ३६॥

यही स्थान मेरी ब्रह्म हत्या का दूर करने वाला है। पापी पुरुष को यहाँ की धूल परम पवित्र कर देती है। कहाँ तक इसकी महिमा वर्णन करूं, व्याभिचारिणी स्त्री भी यहाँ पर शरीर त्यागने से परम गति को प्राप्त हो जाती है॥ २५॥

जो जन इस तीर्थ का सेवन नहीं करते, वह तमोगुण से युक्त हैं।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ५० में कहा है कि मेरे बहुत कहने से क्या है? इस तीर्थ के दर्शन से विष्णु और ब्रह्मा भी अपने पवित्र होने की कामना करते हैं—

तद्दर्शनं ह्यहं विष्णुर्ब्रह्मा चापि तथा पुनः।
कामयन्ति च तीर्थानि पावनायात्मनस्तदा॥ १५॥

पण्डित, श्रोत्रिय, चाण्डाल, पतित, संन्यासी कोई भी हो, यहाँ शरीर त्यागने से मुक्ति हो जाती है—

पण्डितः श्रोत्रियो वापि चाण्डालः पतितोऽथवा।
संन्यासी वा मृतः स्याद्वै सर्वे मोक्षमवाप्नुयुः॥

पुरुषोत्तम तीर्थ।

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योग अध्याय १८ में लिखा है कि यहाँ चाण्डाल का छुआ अन्न ब्राह्मणों के ग्रहण योग्य होता है, तिससे वहाँ पर साक्षात् विष्णु ही है॥ ७॥

वहाँ स्वयं लक्ष्मी भोजन बनाती हैं, वहाँ का भात देवताओं को भी दुर्लभ है। भगवान् के भोजन से बचा हुआ अन्न जो भोजन करता है, उसकी मुक्ति दुर्लभ नहीं है—

हरिभुक्तावशिष्टं यत्पवित्रं भुवि दुर्लभम्।
अन्नं ये भुञ्जते लोकास्तेषां मुक्तिर्न दुर्लभा॥ ९॥

जो चैत्र के महीने में वारुणी पर्व में जगन्नाथ के दर्शन करता है, वह मरकर उनकी देह में प्रवेश करता है—

चैत्रके मासि वारुण्यां यो जगन्नाथमीक्षते।
स मृतः प्रविशेद्देहं जगन्नाथस्य जैमिने॥ ३४॥

इसी भांति जो दुर्भागा, सुभद्रा जी के दर्शन करती है, वह सुभागा होती है। काकवन्ध्या निश्चय पुत्र को पाती है—

दुर्भगा काकवन्ध्या वा सुभद्रां या प्रपश्यति।
सा स्वामिसुभगा नारी बह्वपत्या भवेत्खलु॥ ४३॥

कहाँ तक कहें! रोगी रोग से, पुत्रहीन पुत्र, विद्यार्थी विद्या, धन की इच्छा वाला, स्त्री की इच्छा वाला, धन स्त्रियों और मोक्ष की इच्छा वाला मोक्ष को पाता है॥ ४७॥

इसी भांति राज्य अर्थात् सब कुछ मिलता है, यह पुरुषोत्तम तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ है।

मथुरा।

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १४६ में वाराह भगवान् ने कहा है कि हम उस तीर्थ का माहात्म्य वर्णन करते हैं जिसके तुल्य स्वर्ग मृत्यु और पाताल तीनों लोकों में दूसरा तीर्थ नहीं, जिसको मथुरापुरी कहते हैं, जहाँ हमारा निवास स्थान है और क्षेत्र तो हमारे निवास करने से पवित्र हुए और मथुरा जन्म लेने से अति पवित्र है। जो-जो जीव मथुरा में वास करते हैं, वे सब शरीर त्याग करने पर मुक्ति पाते हैं। माघ की अमावास्या का जो फल श्री त्रिवेणी के स्नान से होता है, वह फल मथुरा में नित्य-नित्य होता है। एक हज़ार वर्ष काशी वास से जो फल मिलता है, वह मथुरा स्नानमात्र से ही हो जाता है। कार्त्तिक पूर्णमासी को पुष्कर स्नान से जो फल मिलता

है, वह मथुरा जी के स्नान से मिलता है। हम कहाँ तक कहें, यह संसार हमारी माया से मोहित भया भ्रमता है और मथुरा मण्डल में नहीं जाता, जिसमें सब पापों से मुक्ति हो उत्तम गति को पाता है। स्नान करना तो वहाँ उत्तम ही है जो कहीं किसी भूमि में कोई भी 'मथुरा' इस तीन अक्षर के शब्दों का उच्चारण करते हैं वह पापों से मुक्त हो जाते हैं॥

वाराह पुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १५४ में लिखा है कि मथुरा मण्डल की परिक्रमा करने से ब्राह्मण का वध करने वाला, मद्यपान करने वाला, चोर, व्रत का खण्डन करने वाला, अगम्य स्त्री के साथ सङ्गम करने वाला, क्षेत्र स्त्री हरने वाला, सब पापों से मुक्ति हो उत्तम गति को पाता है।

शूकर क्षेत्र।

वाराह पुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १३१ में शूकर क्षेत्र के विषय में लिखा है। त्रेता के अन्त और द्वापर के आदि में कपिल नगर में ब्रह्मदत्त नाम राजा के सोमदत्त नाम सुशील और धर्मात्मा पुत्र था जो पिता जी की आज्ञा पाकर पितृकर्म के अर्थ आखेट के लिए वन को गया जहाँ अनेक जन्तु होने पर भी कोई हाथ न आया। तब वह इधर-उधर धूमने लगा। इतने में एक शृगाली आई, उसे देख उसने बाण चलाया जिसके लगते ही वह दुःखी हो भागी, गङ्गा जी में जाकर जल पिया और प्राण छूट गया और सोमदत्त क्षुधा, तृषा पीड़ित उसी वन में एक वृक्ष के निकट पहुंचा, क्या देखता है कि एक वट की शाखा पर एक गृद्ध सुखपूर्वक निवास कर रहा है। उसको देख बाण मारा, वह मर गया। इस क्षेत्र के प्रभाव से कालिञ्जर के राजा का पुत्र और शृगाली अतिरूपवान् कान्तिसेन नाम राजा की कन्या हुई, दोनों का विवाह हो गया और बड़े प्रेम से रहने लगे। राजा वृद्ध अवस्था देख राज्य पुत्र को दे वन चला गया, वह प्रजापालन करने लगा जिसके पांच पुत्र हुए। एक दिन रानी ने राजा से कहा कि आप हमको यह वर दीजिए कि मैं मध्याह्न के समय एकान्त में जाकर सोया करूं और वहाँ कोई न आने पावे, राजा ने स्वीकार कर लिया। रानी एकान्त में मध्याह्न के समय शयन करने लगी इस प्रकार ७७ वर्ष व्यतीत हो गये। ७८वें वर्ष में राजा ने एक दिन विचारा कि देखें यह मध्याह्न के समय क्या किया करती है, क्योंकि शास्त्रों और आचार्यों का यह मत नहीं है कि मध्याह्न के समय

स्त्री एकान्त में शयन करे इसलिए छिपकर देखना चाहिए। राजा मध्याह्न के समय उसके पलङ्ग के नीचे छिपा रहा, तब रानी पलङ्ग पर कह रही थी कि हे परमेश्वर! मैंने पूर्व जन्म में कौन सा पाप किया जिसका फल मैं भोग रही हूँ, देखो मेरा पति भी मेरी दशा नहीं जानता, मेरा शिर फटा जाता है इससे तो मरना ही अच्छा, अब मैं किस उपाय से शूकर क्षेत्र को जाऊं तो यह क्लेश निवृत्त हो। राजा ने सुन पलङ्ग के नीचे से निकलकर कहा कि तुमने हमसे नहीं कहा, अब सब जाता रहेगा। तब रानी ने कहा कि राज्य को पुत्र को देकर शूकर क्षेत्र को चलो। राजा ने ऐसा ही किया। रानी समेत राजा शूकरक्षेत्र में पहुंचे और कहा कि अब तो सब वृत्तान्त कह दो रानी ने कहा कि तीन दिन व्रत कर लो, जब व्रत हो गया तो रानी ने कहा कि मैं पूर्वजन्म की शृगाली थी, यहाँ ब्रह्मदत्त का पुत्र सोमदत्त आया जिसने एक मस्तक में तीर मारा जिसका घाव इस समय आप देख लें। महाराज! इस तीर्थ के प्रभाव से मैं राजकुमारी हो आपकी पत्नी हुई। इसी क्षेत्र में प्राण त्यागने के कारण हमको पूर्व स्मरण भी नहीं भूला। यह सुन राजा को भी स्मरण हो गया और कहने लगा कि मैं गृद्ध था। इसी पेड़ पर रहता था। उसी सोमदत्त ने बाण मारा, प्राण निकल गया जिससे इसी तीर्थ के प्रभाव से राजपुत्र और तुम्हारा पति हुआ। अब मैं तुम्हारे साथ प्राण त्याग करता हूँ। हमारे दूत विमान लेकर पहुंच गये। दोनों हमारा नाम स्मरण करते-करते प्राण त्याग, विमान में बैठ, श्वेतद्वीप पहुंचे। राजा के साथ जो और जन आये थे, इस आश्चर्य को देख प्रेम श्रद्धायुक्त दान कर पुण्यकर अपने शरीर त्याग, विमानों द्वारा श्वेत द्वीप में पहुंचे।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ११९ में लिखा है पांच योजन के विस्तार युक्त भगवान् मन्दिर शूकरक्षेत्र में जो गदहा भी जीव बसता है, वह चार भुजा वाले भगवान् के समान है—

पञ्चयोजनविस्तीर्णे शूकरे हरिमन्दिरे।
यस्मिन्वसति यो जीवो गर्दभोऽपि चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य अन्य जगह साठ हजार वर्ष तपस्या करता है, वह फल शूकर क्षेत्र में आधे पहर में मिलता है—

षष्टिवर्षसहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः।

तत्फलं लभते देवि प्रहरार्द्धेन शूकरे॥ ८॥

काशी में दश गुणा, वेणी में सौ गुणा, गङ्गा में हज़ार गुणा और हर मन्दिर शूकर क्षेत्र में अनन्त गुणा फल होता है—

काश्यां दशगुणं प्रोक्तं वेण्यां शतगुणं भवेत्।

सहस्रगुणितं प्रोक्तं गङ्गासागरसङ्गमे॥ १०॥

श्रीमान् इनके उपरान्त अनेकानेक तीर्थों के माहात्म्य पुराणों में लिखे हैं जिनका वर्णन करने के लिए बहुत समय चाहिए, परन्तु पण्डित जी! **महाभारत वनपर्व** अध्याय ८५ में पुलस्त ऋषि का वचन है कि कृतयुग में सब तीर्थों में स्नान करने से पुण्य होता था। त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गङ्गा ही प्रसिद्ध है। जैसा कि—

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्॥

द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता॥ ९०॥

इसलिए अब मैं अन्य तीर्थों के माहात्म्य को छोड़ गङ्गा माहात्म्य और उत्पत्ति का कल वर्णन करूंगा क्योंकि आज मुझको एक आवश्यक कार्य के लिए अपने बड़े साहिब के यहाँ जाना है। आशा है, आप आज्ञा देंगे।

श्रीमान् पण्डित जी और अन्य महाशयों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर कहा कि बहुत अच्छा, आज यहाँ ही समाप्त कर दीजिए।

सेठ जी ने बहुत अच्छा, ओं शम्।

सर्व सज्जन महाशयों ने चलने की तैय्यारी की।

सेठ जी ने सब सज्जनों को हाथ जोड़ यथायोग्य कहा।

पण्डित जी ने आशीर्वाद दिया और अन्य महाशय यथायोग्य कह कर चल दिये॥

सेठ जी भोजन कर साहिब के यहां गये।

इति त्रयोदश परिच्छेद।

अथ चतुर्दश परिच्छेद

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी नमस्ते आइये विराजमान हूजिए।

श्रीपण्डित जी—आयुष्मान् कह विराजमान हुए इतने में अन्य महाशयगण आते गये और यथायोग्य कहकर विराजते गये।

सेठ जी—अब मैं प्रथम गङ्गामाहात्म्य सुनाता हूँ, सुनिए।

गङ्गामाहात्म्य।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड अध्याय १० में कहा है कि जो मनुष्य गङ्गा-गङ्गा सैंकड़ों योजन से भी कहते हैं, वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाते हैं—

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ७०॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८१ में लिखा है। तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और दान से उस गति को नहीं प्राप्त होता, जिसको गङ्गा का सेवन कर प्राप्त होता है—

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां सेव्य यां लभेत्॥ २५॥

जैसे उदय के समय में सूर्यनारायण तीव्र अन्धकार को दूरकर शोभित होते हैं, वैसे ही गङ्गा जी के जल में स्नान करने वाला पापों को दूर कर शोभित होता है॥ २७॥

ब्राह्मण और गुरु का मारने वाला, मदिरा पीनेहारा, बालकों का मारने वाला सब पापों से छूट शीघ्र स्वर्ग को जाता है—

ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा सुरापी बालघातकः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दिवं याति च सत्वरम्॥ ३७॥

मत्स्यपुराण अध्याय १०३ में लिखा है कि हज़ार योजन से श्रीगङ्गा जी के स्मरण करने से पाप क्षय हो जाते हैं और उनके नामोच्चारण से

दुष्कृत कर्म करने वाले भी परमगति को प्राप्त होते हैं—

योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः।
अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमाङ्गतिम्॥ १३॥

कीर्त्तन से पाप नष्ट होते हैं, दर्शन करने से शुभ मंगलों को देखता है, स्नान और जलपान से अपने समेत सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है—

कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ १४॥

अध्याय १२४ में लिखा है—

यह श्रीगङ्गा जी इस पृथ्वी पर तो मनुष्यों का उद्धार करती है, पाताल लोक में नागों का और स्वर्ग में देवताओं का उद्धार करती है, यह त्रिपथगामिनी गङ्गा जी कहाती है—

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः।
दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता॥ ५१॥

प्राणियों की जितनी हड्डियाँ गङ्गा जी में पहुंच जाती हैं, उतने ही हज़ार वर्षों तक प्राणी स्वर्ग में वास करते हैं—

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति शरीरिणः।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ५२॥

यह गङ्गा सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ है, नदियों में उत्तम नदी, महापातक वाले सम्पूर्ण प्राणियों को मोक्ष देने वाली है—

तीर्थानान्तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥ ५३॥

विष्णुपुराण अंश ४ अध्याय ४ में लिखा है कि यह गङ्गाजल में ही शक्ति है जो केवल स्नान, पान और मार्जन करने वाले ही पुरुषों को तारे किन्तु सैंकड़ों हज़ारों वर्षों के सड़े, गले, वार, नोह, हाड़, राख इत्यादि पर जल पड़ने से उस प्राणी को भी तार दें॥ १५॥

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योगसार अध्याय ८ में लिखा है कि देहधारियों के जितने समय तक गङ्गा जी में हाड़ स्थित रहते हैं, उतने ही हज़ार कल्प वह विष्णुलोक में प्राप्त होता है—

तिष्ठन्त्यस्थीनि गङ्गायां यावत्कालं शरीरिणः।
तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीयते॥ २५॥

और कि जिसकी राख, हाड, नौ और बाल गङ्गा में डूबते हैं, वह बुद्धिमान् विष्णु जी के लोक में वास करता है—

यस्य मज्जन्ति गङ्गायां भस्मास्थीनि नखानि च।
शिरोरुहाण्यपि प्राज्ञः स विष्णोर्भुवनं वसेत्॥ २६॥

गरुडपुराण अध्याय १० में लिखा है जो कि मनुष्य प्रथम अवस्था में पाप करके मर गये हैं और उनकी हड्डियाँ गङ्गा में पडी हैं, वह स्वर्ग को जाते हैं—

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ८॥

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योगसार।

अध्याय ३

इतिहास

इस पृथ्वी पर सोमवंश में मनोभद्र नाम सब धर्मों का जानने वाला एक राजा हुआ जिसकी प्रिया हेमप्रभा नाम पतिव्रता स्त्री थी। एक दिन राजा ने मन्त्रियों को सभा में बुलाकर कहा कि मैं पृथिवी की रक्षा करता हूँ, पुत्र आदि भी हैं, शत्रुओं का भी नाश किया है, अपने गोत्र और दान से ब्राह्मणों की रक्षा भी की है। सज्जन और पुत्र बलवाहन समेत सब देवता भी प्रसन्न किये हैं, परन्तु तो भी वृद्धावस्था में मेरा बल हर लिया गया है, इस कारण मैं कर्म नहीं करता। सामर्थ्यहीन पुरुष को लक्ष्मी शोभित नहीं होती और न आभूषण सहित स्त्री अच्छी लगती। इस कारण अब मैं इस राज्य को पुत्रों को देना चाहता हूँ, इसमें आप सबकी सम्मति क्या है? इस पर सबने कहा कि यह आपका विचार ठीक है। राजा ने वीरभद्र, यशोभद्र को बुलाकर अपना राज्य दे दिया। इसी समय एक गृध्र स्त्री सहित सभा में आकर बैठा। तब राजा ने पूछा कि आपका आगमन किस हेतु हुआ है?

तब गृध्र बोला कि इन दोनों के वैभव को देखने आया हूँ। पूर्व जन्मों में इन दोनों को देखा गया। तब राजा ने कहा कि आपने इनके पूर्व जन्म का वृत्तान्त कैसे जाना? गृध्र ने कहा कि द्वापर युग में यह सत्यघोष नाम शूद्र के गद और सगर यह दो पुत्र थे, यह दोनों एक साथ मर गये। यमदूत बांधकर धर्मराज के सम्मुख ले गये। धर्मराज ने चित्रगुप्त से पूछा कि इनके सब कर्मों का वर्णन कीजिए, चित्रगुप्त ने कहा कि यह दोनों सत्य पुण्यकारी व्रत में बड़े अन्त:करण वाले हैं, कुछ बुरे कर्म किये हैं जो सब कर्म के नाश करने वाले हो गये हैं। उसी के कारण यह दोनों नरक जायेंगे अर्थात् इन्होंने ब्राह्मणों को दान नहीं दिया। धर्मराज की आज्ञानुसार वह नरक को गये। उसी दिन स्त्री समेत मुझको भी यमदूत ले गये। अब मेरे कर्मों का वृत्तान्त सुनिये। मैं पूर्व समय में सौराष्ट्र देश का महाकुलीन वेदादि का जानने वाला सर्वग नाम ब्राह्मण हूं और यह शस्विनी नाम पतिव्रता स्त्री है। विद्या, धन और अवस्था के मद से मतवाला हो युवावस्था में माता-पिता की मन से सेवा नहीं की और निरादर किया। हे राजन्! इसी अपराध से स्त्री समेत उपर्युक्त पापियों में छोड़ दिया गया और उनके साथ हज़ार करोड़ युग और सौ करोड़ युग नरक में महान् दु:खों को सहा, फिर अन्त को स्त्री समेत मैं मरे हुओं के मांस खाने वाले गृध्र पक्षी के कुल में उत्पन्न हुआ और यह टीडियों में। एक समय बड़ी आंधी आई जिससे यह दोनों उड़कर निर्मल गङ्गा जल में गिर पड़े और गिरते ही मर गये और सब पाप जाते रहे। तदनन्तर उनके लेने को विमान लेकर दूत आये। जिसमें बैठ वह विष्णुपुर को गये यह सुन राजा पुत्र और स्त्री समेत गङ्गा जी की सेवा में तत्पर हो गये।

अध्याय ७ में लिखा है कि जिसने गङ्गा में स्नान नहीं किया, उसका मुख देखकर शीघ्र सूर्य के दर्शन करने चाहिए और ऐसे मनुष्यों का अन्न भी ग्रहण न करना चाहिए। गङ्गा जी में स्नान करने वालों को पाप उनकी देह को छोड़कर गङ्गा स्नान न करने वालों की देह में चले जाते हैं और जो 'कुए के जल में भी गङ्गा' यह नाम कह स्नान करता है, वह गङ्गा स्नान के फल को पाता है। जो गङ्गा की सरसों बराबर बालु को मृत्यु समय में पाता है, वह परमपद पाता है।

अध्याय ७

इतिहास

त्रेतायुग में धर्मस्व नाम ब्राह्मण जो धर्मात्मा शान्तिशील आदि गुणों से परिपूर्ण थे, गङ्गास्नान कर घर चलने की तय्यारी की। उस समय रत्नकर बनियाँ सैंकड़ों सेवकों सहित आया जिसमें कालकल्प नाम ब्राह्मण भी था। उसके एक बैल को जो मार्ग में परिश्रम से थक गया था, अतिनिर्दयी होकर मारा, उसने क्रोध में आकर कालकल्प को सींगों से मार डाला, इसको देख धर्मस्व जी वहाँ गये और उसको गङ्गाजल की बूंदों से सींचा परन्तु वह प्राण रहित हो गया था इस कारण चैतन्य नहीं हुआ, इतने में यमदूत वहाँ आये, दोनों में वार्तालाप होने लगा।

यमदूत ने कहा कि यह दुराचारी, पापी, हज़ार हत्या करने वाला कृतघ्नी, गऊ और मित्रों का मारने, बुरे आशय वाला है। इसने सुमेर पर्वत के समान सोना चुराया है, हजारों वरन् करोड़ों हत्याएं और स्त्री हत्याएं की हैं। इसने माता से गमन किया है और प्रतिदिन गऊमांस खाया है और अन्यों के घरों को जलाया है, सभा में पराई निन्दा की है, विधवाओं के गर्भों को गिराया है, अतिथियों को तलवारों से मारा है, इसलिए इस महापापी को यमराज के पास जाने दो—

अयं पापी दुराचारो ब्रह्महत्यासहस्रकृत्।
कृतघ्नश्चैव गोघ्नश्च मित्रघ्नश्च दुराशयः ॥ ५७ ॥
मेरुप्रमाणहेमानि हृतानि सुबहूनि च।
परदारा हृता नित्यमनेनातिदुरात्मना ॥ ५८ ॥
कोटिकोटि सहस्राणि जन्तूनां विष्णुकिङ्कराः।
कृताश्च बहुधा हत्याः स्त्रीहत्या तथैव च ॥ ५९ ॥
अयं न्यासापहरणं स्वमातृगमनं तथा।
गोमांसभक्षणं चैव चकार प्रतिवासरम् ॥ ६० ॥
गृहमायान्तमतिथिं धनलोभेन सत्तम।
अहनन्निशितैः खड्गैर्निशायां यवनोपमः ॥ ६२ ॥

तब विष्णुदूत ने कहा—

विष्णुदूत—यह तो आपने सत्य कहा परन्तु गङ्गाजल के सींचने से यह पापों से छूट गया क्योंकि देहधारियों के पाप तब तक ही रहते हैं जब तक गङ्गाजल की बालु स्पर्श नहीं होती।

अन्त को विष्णुदूत विष्णुलोक को ले गये अर्थात् गङ्गा जी के जल के सींचने के प्रभाव से अत्यन्त पापी कालकल्प भी हरि के मन्दिर में सालोक्य प्राप्त होता हुआ॥ ६६, ६८, ९४॥

यह देख धर्मस्व ब्राह्मण गङ्गा तट पर गया और स्तुति की जिसको गङ्गा ने वर दिया। बहुत काल के पीछे मरने पर उत्तम पद को पाया।

श्रीमान् गङ्गा की महिमा कहाँ तक आपको सुनाऊं। जब विष्णु, शिव और ब्रह्मा जी भी उनका सेवन करते हैं। तो फिर कौन ऐसा है जो उनका सेवन न करे जैसा कि—**शिवपुराण ज्ञानसंहिता** अध्याय ४४ में लिखा है।

गङ्गां च सेवते विष्णुर्गङ्गां च सेवते हरः।
गङ्गां च सेवते ब्रह्मा को वा गङ्गां न सेवते॥

इसके अतिरिक्त गङ्गा के समान कुछ कम युमना जी के गुण गाये हैं। वेत्रमती के विषय में **पद्मपुराण** षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १३४ में लिखा है कि कलियुग में दूसरी गङ्गा जिसके समान पृथ्वी में कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि विष्णु आदि सब देवता उसमें स्थित रहते हैं जो एक वा दो वा तीन बार स्नान करता है, उसके पाप छूट जाते हैं।

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १३८ में लिखा है कि नर्मदा शिव जी की साक्षात् मूर्त्ति है। इनके तप करने पर शिव जी ने कहा है कि हम लिङ्गरूप होकर सर्वदा तुम्हारे गर्भ में गणेश सहित निवास करेंगे। और इसी अध्याय में गण्डकी के विषय में लिखा है कि जब गण्डकी ने अत्यन्त घोर तप किया तब विष्णु भगवान् ने कहा कि हम तुम्हारे तप से प्रसन्न हैं। तुम वर मांगो। तब गण्डकी ने भगवान् की स्तुति की और कहा कि आप मेरे गर्भ में निवासकर पुत्र हों। तब विष्णु महाराज ने विचार कर देखा तो जाना कि यह नदी हमारे संग के लोभ से वर की याचना करती है, तब भगवान् ने कहा कि हम निज भक्तों के अनुग्रह के कारण शालिग्राम शिलारूप हो पुत्र तुल्य सर्वदा तुम्हारे उदर में निवास करेंगे इसलिए तुम सब नदियों में श्रेष्ठ होगी और जो जीव तुम्हारे जलस्नान वा दर्शन, पान

आदि करेंगे वे निष्पाप हो उत्तमलोक को प्राप्त होंगे।

पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी अब आप अन्य नदियों के माहात्म्य को छोड़कर गङ्गा उत्पत्ति का वर्णन कीजिए।

सेठ जी—जो आज्ञा।

विष्णुपुराण अंश २ अध्याय ८ में लिखा है कि विष्णु जी के परमपद से देवताओं की स्त्रियों के अनुलेपचन्दनादि बहाने वाली श्रीगङ्गा जी उत्पन्न हुईं जो कि श्रीविष्णु जी के बायें चरण के अंगूठे से निकलीं और ध्रुव जी ने अपने मस्तक पर धारण किया। तिसके पीछे सप्तऋषियों के लोक में आईं व उन लोगों ने प्राणायाम कर अपनी जटा धोई। तिसके पीछे चन्द्रमण्डल को सींचती हुई सुमेरु पर्वत पर आई वहाँ से जगत् को पवित्र करने के लिए ४ दिशाओं को सीता अलकनन्दा चक्षु व भद्रा नामों से प्रसिद्ध हो चलीं। उनमें अलकनन्दा में भी सात भेद हैं उनमें से जो गङ्गा नाम से प्रसिद्ध है उसे शिव जी ने अपनी जटा में धारण कर लिया व १०० वर्ष तक न छोड़ा। शिव जी की जटा से भागीरथ राजा की तपस्या से आईं व सगर के पुत्रों की राख पर बहकर उनको तारती हुईं।

गङ्गा जी की उत्पत्ति

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अध्याय २१ श्लोक ४ में लिखा है कि—

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र। स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव-कीर्तिः॥

हे राजन्! इस वामन के चरण धोने से ब्रह्मा जी के कमण्डलु का जल लोगों को पवित्र करने के लिए गङ्गा जी बना और विष्णु भगवान् की उज्ज्वल कीर्त्ति आकाश में गिरती हुई वह धारा तीनों लोकों को पवित्र करती है।

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय ३३ में लिखा है कि गङ्गा विष्णु के चरणों में प्रादुर्भूत हो स्वर्ग से गिरती है—

विष्णुपादविनिष्क्रान्ता गङ्गा पतति वै दिवः॥ २८॥

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय १५ श्लोक ९९ से १०६ तक महादेव जी भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर बोले कि हे राजन्! वर मांगो। तब भागीरथ ने हाथ जोड़ कहा कि हे महेश्वर जी! जो आप मुझको वर देना

चाहते हैं तो गङ्गा जी देकर मेरे बड़ों का उद्धार कीजिए (१०३) तब शिव जी बोले कि हे राजन्! हमने गङ्गा दी और तिनकी परम गति अरु मोक्ष भी दी, ऐसे कह शिव जी अन्तर्धान भये (१०४) अरु शिव जी के मुकुट से निकली लोकपावनी गङ्गा जी सब जगत् को पवित्र करती भागीरथ के पीछे-पीछे चली (१०५) तभी से वह निर्मल सबके मल हरने वाली गङ्गा जी सब लोकों में (भागीरथी) ऐसे विख्यात भईं (१०६) **पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड** अध्याय २१ में लिखा है—

पूर्वजानां हितार्थाय गतोऽसौ हेमके गिरौ।
तत्र गत्वा तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तदा॥ १०॥
आदिदेवः प्रसन्नोऽभूद् योऽसौ देवनिरञ्जनः।
तेन दत्ता इयं गङ्गा आकाशात्समुपस्थिता॥ ११॥
तत्र विश्वेश्वरो देवो यत्र तिष्ठति नित्यशः।
गङ्गां दृष्ट्वाऽऽगतां तेन गृहीता जाह्नवी तदा॥ १३॥
जटाजूटे च सन्धार्य वर्षाणामयुतं स्थितम्।
न निःसृता तदा गङ्गा ईशस्यैव प्रभावतः॥ १३॥
विचारितं तदा तेन क्व गता मम मातृका।
स ध्यानेन विचार्यैवं गृहीता चेश्वरेण तु॥ १४॥
ततः कैलासमगमत्स तु भगीरथो नृपः।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ ह्यकरोदुल्वणं तपः॥ १५॥

महादेव जी बोले कि भागीरथ ने अपने पुरुषाओं के हित के लिए हिमाचल पर जाकर दस हज़ार वर्ष तपस्या की।१०। तब पापरहित आदि देव प्रसन्न हुए। उन्होंने आकाश से इन गङ्गा जी को दिया।११। वहीं पर विश्वेश्वर देव सदा स्थित रहते हैं। जब भागीरथ ने गङ्गा को आते न देखा जो महादेव जी की जटाओं में दस हज़ार वर्ष स्थित रही और उन्हीं के प्रभाव से न निकलीं॥ १२, १३। तब भागीरथ ने विचार किया कि हमारी माता कहाँ गई और ध्यान से जाना कि महादेव जी ने ग्रहण कर ली। १४। तब भागीरथ महाराज कैलास पर गये और वहाँ जाकर घोर तपस्या की। १५। महादेव प्रसन्न होकर बोले कि मैं गङ्गा जी को दूंगा, उसी समय एक

बाल गङ्गा जी को दिया॥ १६॥ भागीरथ गङ्गा को लेकर पाताल में जहाँ उनके पुरुखे भस्म हुए थे, ले गये। गङ्गा जी का पहिला नाम अलकनन्दा था—

आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम्।
एकं केशं परित्यज्य दत्ता त्रिपथगा तदा॥ १६॥
स गृहीत्वा गतो गङ्गां पाताले यत्र पूर्वजाः।
अलकनन्दा तदा नाम गङ्गायाः प्रथमं स्मृतम्॥ १७॥

शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अध्याय १२ में लिखा है कि शिव के दक्षिण नेत्र से श्वेत कान्तिवाला जल निकला, वही भूर्भुवादि सब लोकों में व्याप्त हो गया और वही यहाँ स्थित होकर पृथ्वी में आने से गङ्गा कहाती है। हे ब्राह्मणो! वह गङ्गा प्रथम नेत्रों से उत्पन्न हुई है॥ ९॥

दक्षिणान्नयनान्मुक्तो जलबिन्दुः सितप्रभा।
सा सर्वेषु लोकेषु गता वै भूर्भुवादिकम्॥
उपस्थायेमां गां प्राप्ता तस्माद् गङ्गेति चोच्यते।
नेत्राभ्यां प्रथमाज्जात गङ्गेति द्विजसत्तम॥

वाल्मीकि रामायण सर्ग ३९ श्लोक १२ से १५ तक—

चोदितो रामवाक्येन विश्वामित्रो महामुनिः।
वृद्धिं जन्म च गङ्गाया वक्तुमेवोपचक्रमे॥
शैलेन्द्रो हि भवान् राम धातूनामाकरो महान्।
तस्य कन्याद्वयं राम रूपेणाप्रतिमं भुवि॥
या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा।
नाम्ना मेना मनोज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया॥
तस्या गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा हिमवतः प्रिया।
तस्यां नाम द्वितीयाभूत्कन्या तस्यैव राघव॥

रामचन्द्र जी ने विश्वामित्र ऋषि से गङ्गा का वृत्तान्त पूछा तो उन्होंने उत्तर में कहा कि पर्वतों का राजा हिमवान् जो धातुओं की खानि तथा बड़ा है उसके यहाँ दो कन्याएं ऐसी उत्पन्न हुईं जिनके समान रूप में पृथ्वी पर कोई नहीं था, हे राम! सुन्दर कमर वाली मेरु की बेटी मेना रम्य हिमवान्

की प्यारी स्त्री इन दोनों की माता थी अय राघव! इस मैना से हिमवान् की बड़ी बेटी गङ्गा और छोटी उमा उत्पन्न हुई। देखिए **देवीभागवत** स्कन्ध ९ अध्याय ६—

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि।
प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ॥ १७॥

अर्थात् लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा तीनों विष्णु जी की स्त्रियाँ हैं, वे तीनों समान प्रीति के साथ विष्णु जी के पास सदा रहती हैं। 'गङ्गा' ने एक बार विष्णु का मुख कामातुर हुए कटाक्ष के साथ मुसकराकर बारं-बार देखना आरम्भ किया, विष्णु जी उस समय गङ्गा के मुख को देख कर हँस दिए, इस बात को देखकर लक्ष्मी ने तो क्षमा की परन्तु सरस्वती ने ऐसा न किया और क्रोधित होकर विष्णु से बोली कि धर्मात्मा और श्रेष्ठ भर्त्ता को अपनी स्त्रियों को समदृष्टि से देखना चाहिए, दुष्ट पति का स्वभाव इसके विरुद्ध होता है, गङ्गाधर! मैंने जान लिया कि तेरा सौभाग्य गङ्गा पर अधिक है और लक्ष्मी पर उसके बराबर। अय प्रभु! मुझ पर कुछ नहीं, अब मुझ अभागिन का यहाँ जीना व्यर्थ है। तुमको सब मनुष्य तत्त्वरूप कहते हैं वे सब मूर्ख हैं वेद को नहीं जानते और न तेरी मति को जानते हैं, इस बात को सुन सरस्वती को क्रोध में चूर देख विष्णु जी सभा से बाहर चल दिए। इसके पश्चात् श्लोक २८ से ४२ तक यह लिखा है कि उनके चले जाने पर सरस्वती गङ्गा को नाना प्रकार की गालियाँ देने लगीं और चौंटा पकड़ने को दौड़ी परन्तु लक्ष्मी जी ने बीचबिचाव कर दिया। इस पर सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दिया कि उस विपरीत भाव को देखकर यही तो नदी और वृक्ष के समान बैठी रही सो बन जा अर्थात् नदी और वृक्ष होजा। गङ्गा ने सरस्वती की यह दशा देखकर लक्ष्मी से कहा कि इस दुःशीला बकवासनी मरी को छोड़, देखें यह बुरे मुंह वाली सदा कलह रखने वाली मेरा क्या कर लेवेगी लोग मेरे प्रभाव को देख लें मैं भी शाप देती हूँ कि यह भी कलियुग में लोगों के पाप ग्रहण करेगी। सरस्वती ने इस पर गङ्गा को उलट कर कहा कि तू भी नदी बनकर लोगों के पाप को प्राप्त होगी।

इसके पश्चात् इसी अध्याय के ४३ श्लोक से ९७ तक लिखा है कि चतुर्भुज विष्णु जी चारभुज वाले चार पार्षदों को साथ लेकर आये और

सरस्वती को पकड़ लिया और लक्ष्मी से बोले कि तू एक कला से धर्मध्वज के घर जन्म लेकर शङ्खचूड़ की स्त्री बनेगी, फिर भाग्यवश वृक्ष बन जावेगी पीछे से फिर मेरी पत्नी बनेगी और एक कला से शीघ्र पद्मावती नाम नदी बन जा और अय गङ्गा तू भी एक अंश से नदी बन और भागीरथ के तप से महीतल में जाकर समुद्र की स्त्री हो जा एक कला से राजा शान्तनु की स्त्री बन और अय सरस्वती तू भी सौतों के साथ लड़ाई करने का फल भोग, एक कला से नदी बन ब्रह्मा के भवन में जाकर ब्रह्मा की स्त्री बन जा। गङ्गा शिव जी के घर जावे मेरे यहाँ केवल लक्ष्मी ही रहे। क्योंकि वह मेरी सुशीला, क्रोध रहित स्त्री है, मेरी भक्त तथा सतीरूप है। बहुत स्त्रियों को रखने वाला सदा दुःखी रहता है और एक स्त्री वाला सदा सुखी। यह बात सुनकर तीनों देवी परस्पर लपटकर रोने लगीं और भी भयभीत होकर शाप मोचन की प्रार्थना करने लगीं। परन्तु गङ्गा बोली हे जगत्पति किस अपराध से तुमने मुझे छोड़ दिया, मैं शरीर त्याग करूंगी और तुझको निर्दोष का दोष लगेगा। जो पुरुष पृथ्वी में निर्दोष स्त्री का त्याग करता है, वह चाहे सर्वेश्वर भी क्यों न हो नरक को प्राप्त होता है। फिर पीछे लक्ष्मी ने बहुत कुछ सरस्वती के बारे में कहा। विष्णु जी बोले कि अच्छा सरस्वती एक कल्प से नदी बने और पांच हज़ार वर्ष गुज़रने पर तुम्हारी तीनों की मोक्ष होगी और मेरे घर आओगी।

श्रीमान् पण्डित जी अब हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि गङ्गा जी इस समय भारतखण्ड में बह रही हैं वह श्रीमद्भगवत के लेखानुसार वामन महाराज के चरणों का धोवन या शिवपुराण धर्म संहिता और विष्णुपुराण के कथनानुसार गङ्गा विष्णु महाराज के चरण से उत्पन्न हुई है वा शिवपुराण सनत्कुमार संहिता लिखित शिव जी के दक्षिण नेत्र का श्वेत जल है वा वाल्मीकि रामायण के कहने के अनुसार गङ्गा हिमवान् की बड़ी बेटी है अथवा बृहन्नारदीय उपपुराण के अनुसार शिव जी के मुकुट से निकली हुई है याकि देवी भागवत स्कन्ध ९ के अनुसार विष्णु महाराज की तीनों स्त्रियों के लड़ने झगड़ने और कोसने-पीटने के कारण नदियाँ हो गई हैं और साहिबान अंग्रेज़ बहादुर ने तहक़ीक़ात कर यह तो प्रत्यक्ष प्रकार से प्रकट कर ही दिया है कि गङ्गा हिमालय पहाड़ की गङ्गोत्री नाम चोटी से निकल बंगाले की खाड़ी में जाकर हिन्द के समुद्र में मिलती है।

आप किसको ठीक मानते हैं—

गङ्गा की पापमुक्ति

इसके उपरान्त **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय ३४ को पढ़िए तो मालूम हो जायगा कि श्रीगङ्गा जी ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा है कि कलियुग में करोड़ों ब्रह्महत्यादि के पापों से युक्त पुरुष मेरे जल में स्नान करते हैं, जिसके कारण मेरा शरीर पापमय है। बतलाइये मैं क्यों कर उस पाप से बचूं? तब श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि तुम प्राची सरस्वती में स्नान करो? इस पर गंगे ने कहा कि प्रतिदिन आ नहीं सकती, तब श्रीमहाराज ने कहा कि तुम त्रिस्पृशा व्रत को करो, सब पापों से छूट जाओगी। तब गंगे ने व्रत करने का प्रण किया और उसकी विधि पूछी और व्रत किया और **ब्रह्मवैवर्त्तपुराण** के प्रकृति खण्ड अध्याय १० में लिखा है कि हे गंगे! सहस्रों पापियों के स्नान से पाप तुमको होगा वह भक्ति के दर्शनमात्र से नष्ट हो जायगा—

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति।
मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि विनश्यति॥ ७१ ॥

श्रीमान् पण्डित जी—यदि आपका विश्वास वर्त्तमान धर्मसभा के माननीय पुराणों पर है तो आप गङ्गा को क्यों पापी बनाते हैं जिसके लिए उसको त्रिस्पृशा व्रत अथवा विष्णुभक्त के दर्शन करने की आवश्यकता होती है इससे तो गङ्गा स्नान करने वाले स्वयं त्रिस्पृशा व्रत अथवा विष्णु भक्त के दर्शन कर पापों को दूर कर लिया करें तो बहुत अच्छा हो इसके लिए क्योंकि गङ्गा को क्लेश पहुंचाना अच्छा नहीं।

पण्डित जी—श्रीमान् सेठ जी अब इस विषय में आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मेरी समझ में तो आ गया कि उत्तम पुरुषों का नाम तीर्थ है और उनके सत्सङ्ग से अपने आचरणों को सुधारना ही सच्चा स्नान है। क्योंकि जल से शरीर की शुद्धि होता है आत्मा की नहीं जैसा कि प्रथम आपने हमको सुनाया।

सेठ जी—बहुत अच्छा मैं अब इस विषय को शीघ्र समाप्त करता हूँ देखिए श्रीमहाराज उपर्युक्त बातों के उपरान्त **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १२ अध्याय २ में कैसा स्पष्ट कहा है कि कलियुग में लोग दूर जल को ही

तीर्थ मानेंगे जैसा कि—

दूरे वार्ययनं तीर्थं ॥ ६ ॥

इस लेख से ही तो स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि सत्युग, द्वापर और त्रेता में जल को तीर्थ नहीं मानते थे फिर आप कलियुग में दूर जल को क्यों तीर्थ मानते हैं?

तीर्थों की निस्सारता

इसके अतिरिक्त **श्रीमद्भागवत** माहात्म्य अध्याय १ में नारद मुनि ने कहा है कि बड़े भयंकर, कुत्सित कर्म करने वाले नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थों में वास करने लगे हैं इसलिए तीर्थों का सार अर्थात् फल जाता रहा। जैसा कि—

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥

श्रीमान् पण्डित जी वा नारद जी महाराज के कथन से स्पष्ट दुराचारी, वेदविरोधी, स्वार्थी आदि अपगुण युक्त मनुष्य निवास करते हैं वहाँ जाने से कुछ लाभ नहीं होता। इसलिए जो मनुष्य उत्तम पुरुषों के सत्सङ्ग से ज्ञान रूपी कुण्ड के सत्यरूपी जल में स्नान कर राग द्वेष रूपी मल को दूर करने के अर्थ, ऐसे मानसतीर्थ में स्नान करते हैं वह मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जैसा **गरुडपुराण** श्लोक १११ में—

उपसंहार

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अध्याय १ में कहा है कि जो मनुष्य ज्ञानी हैं वे परमगति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं और दुःख पापी लोग सहित यम की यातना को प्राप्त होते हैं—

ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम्।
पापशीला नरा यान्ति दुःखे यमयातनाम् ॥

और अध्याय १६ में कहा है कि तत्त्व के जानने वाले मोक्ष को और धर्म करने वाले स्वर्ग पाते हैं और पापी दुर्गति को और पक्षी आदि के यहाँ

उत्पन्न होकर मरते हैं—

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः।
पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥ १६॥

श्रीमान् पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी अब इस विषय को समाप्त कीजिए क्योंकि हमने पुराणों के लेख से ही तीर्थ विषय के तत्त्व को जान लिया। सच तो यह है कि पुराण लीला अपार है।

सेठ जी ने कहा कि आज्ञा श्रीमान् की है मैं उसी का पालन करूंगा परन्तु मुझको अभी इस विषय में यह दिखलाना शेष रह गया है कि वेदानुकूल पुराणों में स्त्रियों के लिए पतिसेवा, पतिपूजा, पति की आज्ञा पालन करना ही सर्वोपरि तीर्थ बतलाया है और उनको स्वतन्त्रता पूर्वक किसी कार्य के करने की आज्ञा नहीं दी परन्तु फिर उन्हीं पुराणों में उपर्युक्त लेख के विरुद्ध स्नान और दर्शन करने से नाना फलों की प्राप्ति उनको बतलाई है।

श्रीमान् पण्डित जी! सेठ जी बोले इस विषय में हमारी भी यही सम्मति है जो आपको है अर्थात् स्त्रियों को पतिसेवा के अतिरिक्त बिना उनकी आज्ञा के स्वतन्त्रता पूर्वक कोई काम न करना चाहिए। इसलिए हम इस विषय को सुनना नहीं चाहते।

अन्य सज्जनों ने कहा कि हमको भी इस विषय में कुछ सुनना नहीं है क्योंकि हमने अन्य पुस्तकों में पढ़ा है और सुना है।

सेठ जी—बहुत अच्छा जो आप सब महाशयों की आज्ञा है, वही मेरा कर्त्तव्य है। इसलिए अब मैं इस विषय को समाप्त करता हूँ ओ३म् शम्।

इसी समय लाला रामसहाय जी ने बनारस से आकर श्रीमान् पण्डित जी को पालागन कर उनके बड़े भाई साहिब का पत्र दिया जिसको पढ़ श्रीमान् ने कहा कि सेठ जी मुझको मेरे बड़े भाई साहिब ने बहुत शीघ्र एक मुक़द्दमे की पैरवी के लिए बुलाया है। इस कारण मैं कल जाने का प्रबन्ध करूंगा और न जान मुझको कितना समय इस कार्य के करने में लगे इसलिए अब आप पुराण के कथन को समाप्त कर दर दीजिए।

सेठ जी ने यह सुन निवेदन किया कि अभी तो मुझको बहुत कुछ पुराणों के विषयों में सुनाना है और विशेषकर दो तीन विषय तो जरूर ही

कहना है और यह कार्य भी परम आवश्यक है इस कारण जब आप अपने भाई साहिब के कार्य से आनन्दपूर्वक लौटकर आज्ञा देंगे तब मैं फिर निवेदन करूंगा।

श्रीमान् पण्डित जी—बहुत अच्छा, अन्य सब महाशयों ने कहा कि हमारी भी यही सम्मति है।

पण्डित जी—सेठ जी! आपने इस समय तक जो-जो विषय सुनाये उनसे हमको अनेकानेक बातों का पता लगा और अच्छे प्रकार यह प्रकट हो गया कि **जिस सूरत में यह पुराण इस समय उपस्थित हैं वह कदापि महर्षि व्यास प्रणीत नहीं हैं।** क्योंकि इनमें हमारे बड़ों की निन्दा भरी पड़ी है जिसको सुन-सुन कर मेरा हृदय फटा जाता है। हाँ, इनमें जो उत्तम-उत्तम बातें हैं वह व्यास महाराज की कही हुई हों। सच तो यह है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वेदोक्त धर्म को सर्वोपरि सिद्ध कर ऋषियों और मुनियों के महत्त्व को चिरायु कर भारत के सिर का मुकुट रख लिया और सत्यसनातन धर्म के ओ३म् रूपी झण्डे को भूमण्डल में फहरा दिया।

हम तो आज मन से उन महात्मा के चरणों को सिर नवाते हैं तदनन्तर आपको आशीर्वाद देते हैं कि परमेश्वर आपको सर्वप्रकार के आनन्द दे फिर अपने कटु वाक्यों के कहने की क्षमा चाहते हैं। सेठ जी! आपकी सहनशीलता ने आज मुझको पुराणों के लेखों पर अविश्वास कर दिया ईश्वर आपको इससे भी अधिक सहनशक्ति प्रदान करे जिससे आप नाना प्रकार के कटुवाक्यों को सहन करते हुए देश के उपकार में तन, मन, धन से लगे रहें।

अब अन्त में आपसे हमारी यही आज्ञा है कि आप इस विषय को शीघ्र मुद्रित करा दीजिए जैसा कि हम आपसे प्रथम कह चुके हैं जिससे समस्त भारतवासियों को पुराणों के लेखों पर विचार करने का मौका मिले।

अन्य महाशय गणों की ओर से लाला केदारनाथ जी ने कहा कि हम आज श्रीमान् पण्डित जी और सेठ जी को धन्यवाद देते हैं जिनकी परम कृपा से हम सबको यह अवसर मिला कि जिसके कारण पुराणों की अपूर्व और अद्भुत बातें कर्णगोचर हुईं आगे और सुनने की आशा है। इसके उपरान्त श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द

सरस्वती का कोटानिकोट धन्यवाद देते हैं जिन्होंने भारत के धर्म की डूबती हुई नय्या को अपनी विद्या के बल से बचा लिया।

सेठ जी ने कहा कि प्रथम मैं उस परमेश्वर जगदीश्वर सर्वशक्तिमान् को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ जिनकी परम कृपा और दया अनुग्रह से मेरी इच्छा पूर्ण हुई और आगे को मनोकामना सिद्ध होने की आशा है।

इसके पश्चात् श्रीमान् पण्डित रामप्रसाद जी और आप साहिबान को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरी मनोकामना सफल की। श्रीमान् पण्डित जी व अन्य महाशयों ने जो कुछ मेरे लिए कहा है मैं उसके लिए कृतज्ञ हूँ और आशा है सदा मुझ सेवक पर ऐसी ही दया बनाये रहेंगे और धर्म के विषय में निष्पक्षता की कसौटी अपने हाथ से न जाने देंगे।[१] इसके पश्चात् सेठ जी ने निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ शान्ति की।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ यजु० ३६.१७॥

श्री पण्डित जी ने चलने की तैयारी की।

सेठ जी ने खड़े होकर हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से श्रीमान् को नमस्ते व अन्य महाशयों को यथायोग्य कहा।

श्री पण्डित जी ने प्रसन्नतापूर्वक आयुष्मान् कहा और चल दिए।

अन्य सज्जनों ने यथायोग्य कहा।

सेठ जी—अपने कार्य में लग गये।

इति चतुर्दश परिच्छेद।

पुराण-तत्त्व-प्रकाश का द्वितीय भाग समाप्त॥

---

१. इसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार के अधिकारी सप्तम एडवर्ड की प्रशंसा में एक भजन मुद्रित था। सम्भवतः उस समय तत्कालीन परिस्थितियों में वैसा करने के लिए लेखक की कोई विवशता रही हो। अप्रासंगिक एवं अनपयुक्त जानते हुए उसे इस संस्करण में प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। —सम्पादक

पुराण-तत्त्व-प्रकाश
तृतीय भाग

पञ्चदश परिच्छेद

एक मास व्यतीत होने पर श्रीमान् पण्डित रामप्रसाद जी बनारस से लौट अपने गृह पर विश्राम करके पश्चात् एक दिन कई महाशयों के साथ सेठ जी के यहाँ पधारे।

प्रवेश

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी और अन्य भद्रपुरुषों को अपनी कोठी में आते देख प्रसन्नचित्त हो उठकर दोनों हाथ जोड़ सब महाशयों को नमस्ते कर कहा कि आइए, पधारिए, सुशोभित हूजिए—

श्रीमान् पण्डित जी ने प्रेमपूर्वक आयुष्मान् कहा और विराजमान हुए।

अब सब महाशय—यथायोग्य कह कर उचित स्थानों पर सुशोभित हुए।

आर्य सेठ और सुयोग्य पण्डित जी के बीच प्रेमपूर्वक कुशल प्रश्न होने के पश्चात् श्रीमान् पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी मेरा मन तो यह चाहता है कि मैं बहुत दिनों तक पुराणों के विषयों को सुनता रहूँ परन्तु संसारी कार्य इतने लग गये हैं कि जिसके कारण अवकाश नहीं परन्तु फिर भी सुनने की इच्छा है इसलिए आप संक्षेप के साथ कल से वेद, बुद्धि और सृष्टिक्रम के विपरीत और गणेश महाराज की उत्पत्ति, मृतकश्राद्ध सुनाकर पुराणलीला को इस समय समाप्त कर दीजिए। और फिर समय मिलने पर देखा जाएगा।

आर्य सेठ—श्रीमान् की जो आज्ञा।

अन्य महाशयों ने—सेठ जी ने कहा कि हमारी भी यही सम्मति है इसलिए आप अपने सेवकों द्वारा पूर्वोक्त श्रोताओं को सूचना दे दीजिए कि कल से सायङ्काल के ६ बजे के पश्चात् पुराणों के विषय पर कथन होगा क्योंकि श्रीमान् पण्डित जी बनारस से आ गये हैं और उनकी यही सम्मति है।

आर्य सेठ ने बहुत अच्छा कह सेवकों को बुलाकर अच्छे प्रकार समझा दिया।

सेवकों ने सेठ जी की आज्ञानुसार सर्व महाशयों को सूचना दी जिसके अनुकूल द्वितीय दिवस नियत समय पर महाशयगण पधारे।

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख उठकर खड़े प्रेम से नमस्ते कर कहा कि श्रीमान् आइए।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह विराजमान हुए और अन्य श्रोतागणों में से बहुधा सज्जन आकर यथायोग्य के पश्चात् विराजते गये तब श्रीमान् पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी! अब आप प्रारम्भ कीजिए।

आर्य सेठ ने बहुत अच्छा कह निम्नलिखित मन्त्र से परमात्मा की प्रार्थना की—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

यजुः० २५.२१॥

हे देवेश! देव विद्वानो! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर! हे यज्ञकर्त्तारो! हम आंखों से कल्याण (मङ्गलसुख) को ही सदा देखें। हे जनो! हे जगदीश्वर! हमारे सब अङ्ग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें।

पुनः सेठ जी ने कहा कि देखिए।

विष्णुपुराण।

अंश १ अध्याय १३

राजा वेन के मरने पर देवताओं का उसकी भुजाओं को मथ कर निषाद और पृथु का उत्पन्न करना।

राजा अंग की सुनीथा नाम पत्नी से वेन नाम पुत्र हुए जो पिता के परलोकगमन होने पर गद्दी पर बैठे जिन्होंने राज्यसिंहासन को सुशोभित करते ही राज्य भर में डोढ़ी पिटवा दी कि हमारे राज्य में कोई मनुष्य यज्ञ, दान, होम न करे क्योंकि योग भोग का करने वाला हमारे सिवाय कोई दूसरा नहीं। हम ही यज्ञों के स्वामी हैं। इस पर ऋषियों ने राजा को बहुत समझाया परन्तु जब उन्होंने उनकी बात को न माना तब सब मुनियों ने कोपकर आपस में सम्मति कर कहा कि इस पापी राजा को मार डालना चाहिए क्योंकि यह सबके स्वामी विष्णु महाराज की निन्दा करता है यह कह कर मन्त्र पढ़ कुश को जल में डुबो उनके ऊपर जल छिड़क दिया। राजा तो भगवान् की निन्दा करने से प्रथम ही मर चुका था परन्तु उस पर जल के पड़ने से अच्छी भांति मृतक हो गया—

इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्मुनिगणा नृपम्।
निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना॥ २९॥

राजा के मरने के थोड़े दिनों के पीछे चारों तरफ से धूल उड़ती देख ऋषियों ने लोगों से पूछा कि यह धूल कहाँ से आती है तब सबने उत्तर दिया कि श्रीमहाराज राज्य बिना राजा के हो गया है इससे चोर लोग सबका धन लूटते और धूल उड़ाते हैं। तब सब मुनियों ने पुत्र होने के अर्थ मन्त्र पढ़कर राजा की जांघ मथी उसमें से एक अतिकुरूप बहुत ही छोटे डील का काला मनुष्य निकला और ऋषियों से पूछा कि मैं क्या करूं? तब उन्होंने उत्तर में कहा कि ''बैठ'' इससे उसका नाम निषाद हुआ और उसके वंश वाले तब ही से विन्ध्याचल पर्वत पर बसने लगे और बहुधा इन लोगों की चोरी ही जीविका थी। उस पापरूपी निषाद के होने से राजा का शरीर निष्पाप हो गया—

तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः।

निषादास्ते तथा जाता वेनकल्मषसम्भवाः ॥ ३७ ॥

फिर मुनियों ने राजा के शरीर का दाहिना हाथ मथा उससे महाप्रतापी सब शुभगुण सहित पृथु जी उत्पन्न हुए जिनका शरीर अपने तेज से ऐसा प्रकाशित था मानो दूसरी अग्नि की मूर्त्ति थी—

दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन्॥ ३९ ॥

ऐसे राजा के होते ही आकाश से महादेव के कवचादि सब आये और सब लोग प्रसन्न हुए इनके होने से वेन जैसे पापी राजा भी स्वर्ग को चले गये क्योंकि पुं नाम नर्क से जो रक्षा करे उसी का नाम पुत्र है—

सत्पुत्रेण च जातेन वेनोऽपि त्रिदिवं ययौ।
पुन्नाम्नो नरकात् त्रातः सुतेन सुमहात्मना॥ ४१ ॥

राजा पृथु ने गद्दी पर बैठकर प्रजा को सब प्रकार से आनन्दित किया और जब कभी राजा कहीं को जाते तो नदियाँ थाही हो जातीं, समुद्र का जल थम जाता, पृथ्वी में अन्न बिना जोते केवल चिन्तना करने से ही उत्पन्न हो जाता, गायें इच्छानुसार दूध देती थीं, परन्तु जिस समय कोई राजा न था उस समय अन्नादि का होना बन्द हो गया था, इससे प्रजा बड़ी दुःखी थी, जब यह राजा हुए तब प्रजा जो भूखों मर रही थी इनकी शरण में आई और निवेदन किया कि बिना राजा के होने से पृथ्वी ने अन्नादि चुरा लिया इस हेतु सब प्रजा दुःखी है। अब आप अन्नादि देकर रक्षा कीजिए। यह सुन राजा धनुष-बाण लेकर क्रोध से धरणी के मारने के लिए दौड़े वह गायका वेष धर भागी ब्रह्म आदि लोकों को गई परन्तु जब घूमकर देखा तब-तब राजा को धनुषबाण लिए पीछे खड़ा पाया इससे अपना बचाव न जानकर मारे भय के कांपती हुई राजा से बोली कि हे नाथ! क्या हमारे मारने से स्त्री हत्या का आपको कुछ दोष न होगा। हे नृप! यदि आप प्रजा के उपकार के अर्थ हमको मारा चाहते हो तो मेरे न होने पर प्रजा कहाँ रहेगी यह सुन राजा ने कहा कि तुम हमारी आज्ञा के प्रतिकूल चलती हो इसलिए मैं तुमको बाणों से उड़ा दूंगा और मैं अपने योगबल से प्रजा को रक्खूंगा। यह सुन धरणी फिर कांपने लगी और राजा से प्रार्थना कर कहा कि सब कार्य उपाय से सिद्ध होते हैं इसलिए हे नरनाथ! जो मैं आपको उपाय बतलाती हूँ आप वही कार्य करें। अन्नादि सब ओषधियाँ हममें पच

गई हैं सो आप दूधरूप दुह लीजिए आप बहुत प्रकार बछड़े बनाइये जिससे हम पल्हाकर सब पदार्थ चुआदेंगी परन्तु हमको बराबर भी अवश्य कर दीजिए जिससे दूधरूपी ओषधियाँ अपने-अपने स्थान पर जमें। यह सुनकर महाराज पृथु जी ने जो सर्वत्र पृथ्वी पर पहाड़ ही पहाड़ थे, धनुष की नोक से तोड़-फोड़ कर दूर-दूर स्थापित कर दिए—

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्त्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्धिताः॥ ८२॥

प्रथम की सृष्टि में ग्राम पुर नगरादि तथा खेतीपाती कुछ नहीं होती थी। महाराज पृथु ने पृथ्वी को बराबर कर ग्राम पुरादि बसा दिये और लोग खेतीपाती भी करने लगे। चूंकि राजा ने पृथ्वी के प्राण छोड़ दिये इसलिए वह उसके पिता ठहरे इसी से इसका नाम पृथ्वी हुआ।

यही कथा **मत्स्यपुराण** अध्याय १० में लिखी है।

कण्ड मुनि से प्रम्लोचा अप्सरा में गर्भ रहना फिर मुनि के शाप के भय से अप्सरा को मूर्च्छा का आना और गर्भ का पसीने की राह निकलना जिसको उसने वृक्षों से पोंछा फिर वायु ने इकट्ठा किया और चन्द्रमा ने पोषण किया उससे मरीषा का जन्म होना।

अंश १ अध्याय १५॥

जब प्रचेतसा तपस्या कर रहे थे उस समय कोई राजा नहीं रहा था क्योंकि प्राचीन **महर्षि** को नारद जी ने ऐसा उपदेश किया था कि वे सब छोड़ वन को तप करने चले गये थे। इसलिए पृथिवी पर सब वृक्ष ही वृक्ष हो गये, कहीं जोतने-बोने की धरती नहीं रहती। इसलिए बहुत सी प्रजा मर गई क्योंकि वृक्षों के कारण पवन भी नहीं चलती थी। जब प्रचेतसा तपस्या करके निकले तब वृक्षों को देख बड़ा ही कोप किया और मुख से पवन व अग्नि छोड़ी सब वृक्ष जलने लगे। पहिले वायु के जोर से वृक्ष उखड़ पड़ते फिर अग्नि से जलते फिर पवन उड़ा ले जाती, जब इस भांति बहुत वृक्ष जल गये, थोड़े ही रह गये तब वृक्षों के राजा चन्द्रमा जी ने प्रचेतसों से कहा कि राजकुमारो! कोप शान्त करो, इन वृक्षों से भी आप

लोगों का कुछ काम निकलेगा अर्थात् इनके एक कन्या है, ले जाओ, आधा तुम्हारी तपस्या के तेज से आधा हमारे तेज से इसमें महाप्रतापी दक्ष प्रजापति नाम पुत्र होगा उससे बड़ी सृष्टि चलेगी। यह कन्या वृक्षों को इस भांति मिली कि एक कण्डु नाम मुनि थे, वे रमणीक नदी के किनारे तपस्या करते थे, उनके चलायमान होने के लिए इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम अप्सरा भेजी, उसने मुनि को अपने वश में कर लिया। मुनि १०१ वर्ष तक मन्दराचल पर जाय उसके संग विहार करते रहे। एक दिन उसने कहा कि मैं इन्द्रलोक को जाया चाहती हूँ, आज्ञा दीजिए। मुनि उसमें आसक्त तो थे ही, कहा, कुछ दिन और रह जाओ, शाप के भय से वह रह गई, इतने में १०१ वर्ष व्यतीत हो गये। उसने मुनि से कहा, फिर मुनि ने उसको विलमाया इसी भांति कई बार कहा-सुनी हुई। एक दिन मुनि उठे और घबराते हुए नदी की ओर चले, अप्सरा ने कहा कि जाइयेगा? मुनि ने कहा बोलो मत, सन्ध्या करने का समय है, काल बीत जावेगा। उसने हँसकर कहा सैंकड़ों वर्ष हो गये आपको सन्ध्या करते नहीं देखा? मुनि ने कहा सत्य-सत्य कहती है या हंसी करती हैं? हमको तो तू प्रातः सन्ध्या के पीछे मिली थी, यह सायं सन्ध्या का समय है। सत्य-सत्य बताओ, कितना समय हुआ, हास्य न कर। अप्सरा बोली हास्य नहीं करती, आपको मेरे संग विहार करते हुए ९०७ वर्ष ६ मास ३ दिन बीते। ऋषि बोले सत्य ही कहती है? हम तो यही मानते हैं, तुम्हारे संग विहार करते एक ही दिन बीता। अप्सरा ने कहा कि आपके सामने मैं झूठ क्यों कहती? फिर पूछने पर तो ऐसे महात्मा के सामने कोई भी झूठ न कहेगा। यह सुन मुनि ने बड़ा पश्चात्ताप किया, हाय! मैंने अपनी सब तपस्या नष्ट कर दी। नाना प्रकार से विलाप कर उससे कहा कि हे दुष्टे! तू अभी इन्द्रलोक को जा, नहीं तो मैं तुझे भस्म कर दूंगा। इतने में उसको भी मूर्च्छा आ गई, सर्वाङ्ग से पसीना बहा। मुनि ने बड़ा कोप करके फिर कहा कि चली जा। यह सुन मुनि के आश्रम से प्रम्लोचा आकाश मार्ग हो भागी और वृक्षों के पल्लवों से अपना पसीना पोंछने लगी इस कारण जो ऋषि के बीज से उसके गर्भ था वह रोमों की राह निकल वृक्षों में हो रहा। पवन ने उसको उड़ा इकट्ठा कर दिया और चन्द्रमा जी कहते हैं कि हमने अपने किरणों से पोषण कर बढ़ाया उसी से मारिषा नामक कन्या हो गई वही

मारिषा नाम्नी कन्या वृक्ष आप को देती है।[१]

अंश ४ अध्याय १० से

बलदेव जी महाराज का विवाह और रेवती जी के छोटे करने की सहज रीति।

रैवत नाम राजा की रैवती नाम एक कन्या थी। राजा उसके विवाह विषय में सम्मति लेने के लिए ब्रह्मा जी के पास गये। वहाँ हा हा हूँ हूँ नाम गन्धर्व गीत गा रहे थे। जब गाना बन्द हुआ, तब राजा ने अपनी कन्या के विषय में पूछा कि किस राजा के साथ विवाह करें? तब ब्रह्मा जी ने कहा कि आप किस-किस राजा के साथ विवाह करने की इच्छा रखते हैं? यह सुन राजा ने कह सुनाया जिसको ब्रह्मा जी ने कहा कि जिन-जिन के यहाँ आपको विवाह करना अभीष्ट है, अब उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तो क्या सन्तान में भी कोई नहीं रहा। इस गान के सुनने में बहुत सी चतुर्युगियाँ बीत गईं। इस समय अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापर का अन्त हो रहा है। इससे अन्य किसी को यह कन्या दीजिए, आपके भी बन्धुवर्ग मित्रादि सब नष्ट हो गये हैं। तब राजा ने फिर पूछा कि यदि वह लोग नहीं रहे तो जो विद्यमान हैं, उनमें से बतलाइये, किसको कन्या देवें? तब ब्रह्मा जी ने अनेक प्रकार के गुण गाकर कहा कि परमात्मा परब्रह्म ने अपने अंश से आजकल पृथ्वी के द्वारिकानाम पुरी में अवतार लिया है जो बलदेव जी के नाम से प्रसिद्ध है, वही उत्तम वर है। यह सुन राजा पृथ्वी तल पर आये और देखा तो सब मनुष्य छोटे-छोटे और बलहीन हो गये थे। राजा ने द्वारिका में जाकर ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार बलदेव जी के साथ विवाह कर

---

१. पण्डित जी! अब तो आप समझ गये होंगे कि जिस ऋषि ने ९०७ वर्ष इन्द्र की भेजी अप्सरा के साथ रमण किया परन्तु ऋषि को सन्ध्या ही प्रतीत हुई ऐसी बेहोशी तो मदोन्मत्त को भी नहीं हो सकती। इस पर तुर्रा यह ९०७ वर्ष रमण करने में केवल एक ही बार गर्भ रहा और वह भी पसीने के मार्ग से निकल गया—हमने तो अभी तक वैद्यकग्रन्थों एवं डॉक्टरी से भी यही देखा सुना है कि पसीना एक प्रकार का मानुषविष है। फिर इस पर वह गर्भ पीसना होकर निकल गया जो पेड़ की पत्तियों में लग गया जिसको वायु ने उड़ाकर इकट्ठा किया और चन्द्रमा ने किरणों से पोषण किया। कहिए, श्रीमान्! यह किस नियम से उत्पत्ति है?

दिया—परन्तु जब बलदेव जी ने देखा कि यह स्त्री तो बहुत ही लम्बी है इसलिए अपने हल से दबा दिया जिससे उस समय की जैसी सब स्त्रियाँ थीं, वैसी रैवती भी हो गई।[१]

अंश ४ अध्याय ५

राजा निमि का मरना फिर देवताओं के मथने पर एक पुत्र का उत्पन्न होना।

एक समय राजा निमि ने यज्ञ करने का विचार कर अपने पुरोहित वसिष्ठ जी से कहा कि आप हमको यज्ञ कराइये। यह सुन वसिष्ठ महाराज ने कहा कि राजन्! आपसे ५०० वर्ष आगे इन्द्र ने यज्ञ कराने का न्योता दिया है इस हेतु मैं प्रथम उनका यज्ञ कराकर तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा, ऐसा न हो कि तुम किसी और को बुला लो। राजा ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह इन्द्र के यहाँ यज्ञ कराने को चले गये। इधर निमि ने गौतमादि को बुला यज्ञ कराने का आरम्भ कर दिया। उधर वसिष्ठ जी यज्ञ समाप्त कराकर इधर आये। देखा कि आधा यज्ञ हो गया। क्रोधित हो सोते हुए राजा को शाप दिया कि जाओ तुम्हारी यह देह न रहे। राजा ने उठने पर शाप का वृत्तान्त जान यह कहा कि इस दुष्ट गुरु की भी देह न रहे, शरीर छोड़ दिया। राजा के शाप से जब वसिष्ठ जी का देवलोक हुआ तो उनका तेज मित्रावरुण मुनि की देह में समा गया और उर्वशी अप्सरा को देख—च्युत हो एक कलश में गिरा जिससे वसिष्ठ-अगस्त दो पुत्र उत्पन्न हुए। उधर यज्ञ समाप्त होने पर जब देवता अपना-अपना भाग लेने को वहाँ आये, तब गौतमादि ऋषियों ने कहा कि राजा निमि का मृतक शरीर तेल में यथावत् रक्खा हुआ है, आप सब आशीर्वाद देकर जिलाइये देवों ने निमि को बुलाया तब उन्होंने कहा कि देवगण! आप सब लोग संसार के ऊपर कृपा करते हैं, पर यह नहीं जानते कि उत्पन्न होने से मरने में कितने-कितने कष्ट

---

१. कहिए, श्रीमान्! इस बात का भी कुछ ठीक है कि गान सुनते-सुनते बहुत सी चतुर्युगियाँ व्यतीत को गईं-बलदेव महाराज को पौराणिक पुरुषों ने परमेश्वर का अवतार बताया है फिर उन्होंने मदिरापान के समाचार और सूत का मारना लिखा है क्या श्रीमान् अवतारियों के यही कार्य हैं? अब यह भी सुन लीजिए कि स्त्रियों के छोटा करने का सहज उपाय बलदेव जी महाराज का हल था।

होते हैं इसलिए अब हम जीना नहीं चाहते वरन् प्रत्येक प्राणी की पलक पर बैठना चाहते हैं जिससे सबको स्मरण रहे। यह सुन देवों ने कहा कि अच्छा। उसी समय से प्राणी पलक मारने लगे और राजा के पुत्र न होने के कारण राजाहीन राज्य रहने से चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया। तब ऋषियों ने आकर राजा के शरीर को मथा जिससे एक पुत्र हुआ उसका नाम जनकविदेह होने से विदेह मथे जाने से मिथिये नाम उस बालक के हुए।

नोट—पण्डित जी योगशास्त्र (२.५) में विद्या का लक्षण इस प्रकार लिखा है कि—

अनित्याऽशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

तब क्या वसिष्ठ जैसे ऋषि को इतना भी ज्ञान न था कि यह शरीर तो वैसे ही अनित्य है, फिर इस प्रकार शाप देना कि तेरी यह देह न रहे, उनकी विद्वत्ता का परिचय करा रहा है। अब लीजिए पाठक गण! विष्णुपुराण के निर्माता की बुद्धि से भी परिचय प्राप्त कीजिए। जब वसिष्ठ मरने लगे तो उनका तेज तो मित्रावरुण की देह में समा गया और उर्वशी अप्सरा को देख.........जो कलश में गिरा उससे दो पुत्र हो गये—एक वसिष्ठ दूसरे अगस्त। कहिए श्रीमान्! यह कहाँ तक विद्या और बुद्धि के अनुकूल है।

राजा के मरने पर भी यज्ञ होता रहा परन्तु अब तो सूतक को मान सन्ध्यादि कर्मों को छोड़ देते हैं। पूर्णाहुति के समय देवता आये तो उन्होंने उसे जीवित कर दिया परन्तु वसिष्ठ ऋषि की किसी ने कुछ भी सुध नहीं ली। क्या यहाँ भी धन ही के गीत गाये गये तिस पर भी जब ब्राह्मणों ने निमि को पुनर्जीवित कर दिया तो राजा ने कहा कि मैं अब जीना नहीं चाहता क्योंकि इसमें बड़े क्लेश हैं। प्रत्येक प्राणी के ऊपर उठना, नीचे गिरना, सकोड़ना, फैलाना और चलना यह पांच कर्म हैं। एवं पञ्च प्राण पञ्च उपप्राण और ग्यारहवाँ जीवात्मा जिनकी रुद्र संज्ञा है, उनमें उपप्राणों में जो कूर्म है उसका कार्य पलख खोलना-मूंदना फिर भला यह कैसे माना जाय कि निमि जब से पलकों पर आये तब से यह क्रिया हुई ? अब राजा के मृतक शरीर के मथने से पुत्र की उत्पत्ति होना भी बाज़ीगरी का खेल है यदि यह सत्य है तो पुत्रहीन पुरुषों को इस ओषधि से अपना कार्य सिद्ध कर सुख प्राप्त करना चाहिए।

अंश ५ अध्याय २५॥

श्रीमान् बलदेव जी महाराज का मदिरापान कर यमुना को खींचना

मानुषरूपधारी धरणीधर शेषावतार बलदेव जी गौओं के साथ वृन्दावन में विहार करते थे जिन्होंने पृथ्वी का बहुत सा भार उतार डाला था, कारण पाय पृथ्वी में विचरते थे। उनके भोग के लिए वरुण जी वारुणी से बोले कि हे मदिरे! जिससे तू बलदेव जी को सदा प्यारी है, तेरे पान की उनको इच्छा बनी रहती है, इसलिए अब तू उन्हीं के भोग के लिए उनके निकट जा, यह सुन वह वृन्दावन में कदम्ब के खोड़ले में आय बसी। श्रीमान् बलदेव जी महाराज भी विचरते-विचरते वहीं आन पहुंचे क्योंकि उसकी महक उनको दूर से ही आ रही थी। निकट पहुंच मदिरा की धारा देख बलदेव जी परम आनन्दित हुए और गोप-गोपियों के साथ यथेष्ट पान किया, जब अच्छे प्रकार मतवाले हो गये तब यमुना से कहा कि हे यमुने! हमको गर्मी अधिक जान पड़ती है तुम यहाँ चली आओ, हम स्नान करेंगे। यमुना ने मतवाले समझ उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। तब क्रोधित हो हल को किनारे लगाय खींचा और कहा कि हे पापे! न आई न। अब जहाँ चाहे तहाँ चली तो जा, जब ऐसा हुआ तब यमुना उस स्थान को छोड़ जहाँ बलदेव जी महाराज थे वहाँ जाकर बहने लगी। फिर शरीर धारण कर प्रणाम कर बोली कि राम! हम पर कृपा कीजिए, हमको छोड़ दीजिए। तब बलदेव जी ने कहा कि तू हमको और हमारे बल को नहीं जानती, हम खींच कर तेरे सहस्रधारा कर देंगे जिससे जहाँ चाहे वहाँ लांघ कर चले जावें। यह सुन यमुना ने बड़ी स्तुति की तो अपना हल दुबका दिया फिर वह वहाँ बहने लगी जिसमें बलदेव जी ने अच्छे प्रकार स्नान किया।[१]

श्रीमहाराज पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी आज यहाँ ही विश्राम

---

१. श्रीपण्डित जी! इस कथा से बलदेव जी महाराज का मदिरापान करना प्रकट होता है परन्तु यह बात देवताओं के विपरीत है तिस पर बलदेव जी महाराज विष्णुमहाराज के भाई एवं अवतारी थे। फिर न मालूम व्यास जी ने इस कथा को क्यों लिखा फिर अन्य बातों का क्या कहना!

दीजिए।

आर्य सेठ—बहुत अच्छा।

इतने में सब महाशय चल दिये तब सेठ जी ने हाथ जोड़ सब महाशयों को नमस्ते की।

पण्डित जी ने आयुष्मान् और अन्य सब यथायोग्य कह चल दिए। सेठ जी अपने कार्य में लग गये।

इति पञ्चदश परिच्छेद।

पुराणों में यह अच्छे प्रकार लिख दिया कि इनके सुनने से ही बड़े-बड़े महापाप एक ही जन्म के नहीं वरन् करोड़ों जन्मों के नष्ट हो जाते हैं, इस नुसखे ने भारत पर ऐसा प्रभाव डाला कि सारे भारत में इन्हीं का डंका बज गया, भारतवासी वेदों के नाम तक भूल गये। —पृष्ठ ५५

माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि की मूर्त्तियाँ जिनके सत्सङ्ग से मनुष्य शरीर का लालन, पालन, सत्यविद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है जो परमेश्वरप्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं। अतएव ज्ञान की प्राप्ति के लिए परमेश्वर रचित उपर्युक्त मूर्त्तियों की सेवा टहल करना चाहिए जैसा पहिले समय में होता था। स्वार्थी जनों ने अपने स्वार्थसिद्धि के लिए प्रकृतिपूजा की ओर झुका दिया।

—पृष्ठ २०९-२१०

जो मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धि के बिना बाहर की शुद्धि करता है, वह सजाये हुए मदिरा के घड़े के समान है। इसलिए जो कोई बिना चित्त शुद्ध किये तीर्थयात्रा करते हैं तो उनको तीर्थ पवित्र नहीं करते जैसे मदिरापात्र को नदियाँ शुद्ध नहीं कर सकतीं।

—पृष्ठ ४१०

अथ षोडश परिच्छेद

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख प्रेमपूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये—विराजिए।

पण्डित जी—आयुष्मान् कह कर बैठ गये। इतने में अन्य महाशय भी आये और यथायोग्य के पश्चात् विराजमान हुए। तदनन्तर श्री पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी हम विष्णुपुराण से तो वेद और बुद्धि तथा सृष्टिक्रम के विपरीत बातों को सुन तृप्त हो गये अब आप पद्म, ब्रह्माण्ड, वामन, पुराण से सुनाइए।

सेठ जी ने बहुत अच्छा कह, यथाक्रम कहना प्रारम्भ किया।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड

अध्याय ६

बल के शरीर से धातुओं की उत्पत्ति।

जब विष्णु और जालन्धर का घोरयुद्ध हो रहा था उस समय बल से इन्द्र लड़ने के लिए सम्मुख आये तब उन्होंने भयङ्कर शब्द किया जिसको सुन बल हंसे तो उनके मुख से मोती निकलने लगे—

ननादेन्द्रस्ततो भीमं तच्छ्रुत्वा स बलोऽहसत्।
हसतस्तस्य निश्चेरुर्मुखतो मौक्तिकानि च॥ १६॥

तब इन्द्र ने अंग की अभिलाषा के कारण उससे संग्राम न कर उसके अत्यन्त बल की प्रशंसा करी तब बल ने कहा, वरदान मांगो। इसको सुन इन्द्र ने कहा कि यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो आप अपना शरीर दीजिए। बल ने कहा कि शस्त्रों से काट कर हमारा शरीर लीजिए, क्योंकि सज्जनों का परमकार्य यही है कि परोपकार करें। तब इन्द्र ने मुद्गर से शरीर काटने का आरम्भ किया परन्तु जब उसका शरीर मुद्गर से न कटा तब सारथी के कहने से वज्र से काटना आरम्भ किया तो अंग का एक भाग तो कनकाचल में, दूसरा हिमाचल में, तीसरा गोनग में, चौथा गङ्गा जी में, पांचवाँ

मन्दराचल में और विजय के अंग से उत्पन्न छठा भाग व्रजाकर में गिरा—

वज्राकरे पपातांशः षष्ठश्च विजयाङ्गजः ॥ २३ ॥

शुद्ध कर्म और उसके जाति में शुद्ध होने के कारण से उसकी देह के अङ्ग रत्नों के बीज के भाव को प्राप्त हुए—

तस्य जातिविशुद्धस्य परिशुद्धेन कर्मणा।

कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमागताः ॥ २४ ॥

वज्र से हाड़ों के जो कण गिरे वह छह कोण की मणि हो गये। नेत्रों से इन्द्र नीलमणि हुई, कानों से मणिका हुए—

वज्रादस्थिकणाः कीर्णाः षट्कोणा मणयोऽभवन् ॥ २५ ॥

घाव से पद्मराग मणि हुई, मेद से मरकतमणि, जीभ से मूंगे, दातों से मोती—

मज्जोद्भवं मरकतं गारुत्मतमभून्नसा।

कांस्यं पुरीषं रजतं वीर्यं ताम्रञ्च मूत्रजम् ॥ २७ ॥

मज्जा से मरकतमणि, नासिका से गारुत्मतमणि, विष्ठा से कांसा, वीर्य से चांदी, मूत्र से तांबा।

अङ्गस्योद्वर्त्तनाज्जातं पित्तलं ब्रह्मवीतिकाः।

नादाद् वैदूर्यमुत्पन्नं रत्नं चारुतरं तथा ॥ २८ ॥

अङ्ग के उद्वर्त्तन से पीतल, शब्द से वैदूर्यमणि और श्रेष्ठ रत्न।

नखों से सोना, रक्त से रस, मेद से स्फटिकमणि, मांस से मूंगा।

ये सब रत्न पृथ्वी में बल की देह से उत्पन्न हुए।[१]

---

१. पदार्थ एवं भूगर्भविद्या के ज्ञाता विचारपूर्वक देखें तो सही कि बल की देह से क्या-क्या उत्पन्न हो गया।

(१) मलमूत्रों से चांदी, कांसा, तांबा इत्यादि का होना।

(२) ये सब रत्न पृथ्वी में बल की देह से उत्पन्न हुए क्या इससे पहले रत्नादि पृथ्वी पर न थे (जिसको कि रत्नभूमि कहते हैं) मूर्त्तिपूजक भाइयों को २७वें श्लोक पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

ज्वर की अद्भुत उत्पत्ति और उसका अपूर्व इलाज।

अध्याय २५०

में लिखा है कि श्रीकृष्ण महाराज वाणासुर के संग्राम को गये और वहाँ उसकी सहायता के लिए महादेव जी उपस्थित थे। जब दोनों में संग्राम हुआ तब महादेव ने कृष्ण पर तापज्वर को छोड़ा तो कृष्ण ने शीतज्वर से उसका निवारण किया और कृष्ण और महादेव जी से छोड़े हुए दोनों ज्वर उन्हीं की आज्ञा से मनुष्य लोक में प्रवेश करते हुए जो मनुष्य कृष्ण जी और महादेव जी का युद्ध सुनते हैं, वे सब ज्वर से छूट कर रोगरहित हो जाते हैं[१] ॥ ३३, ३४ ॥

राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना।

ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घात पाद ३, अध्याय ५१ से ५३

इक्ष्वाकुवंश में सगर नाम एक प्रसिद्ध राजा थे। उनके केशनी और सुमति यह दो स्त्रियाँ थीं, परन्तु सन्तान किसी के न थी। इसलिए पुत्र की इच्छा से कैलाश पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। कालान्तर में पार्वतीनाथ उनके पास आये जिसको देख राजा ने रानी सहित प्रणाम कर कहा कि हमको पुत्र दो, यह वरदान मांगा। तब शिव जी ने कहा कि हम प्रसन्न होकर यह वरदान देते हैं कि तुम्हारी एक स्त्री के अभिमान से भरे हुए महाशूरवीर साठ हज़ार पुत्र होंगे और वे सब एक ही स्थान पर एक दिन में ही नष्ट हो जायंगे और एक स्त्री से वंश की रक्षा करने वाला महाशूरवीर एक पुत्र होगा ऐसा कह अन्तर्ध्यान हो गये। राजा भी अपने नगर को चले गये। फिर दोनों के गर्भ रहा और समय पूरा होने पर सुमति स्त्री के एक तूम्बी उत्पन्न हुई और केशिनी स्त्री के देवताओं के समान रूपवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब राजा सगर ने उस तूम्बी के फेंक देने का विचार किया। उसी समय भगवान् और्व ऋषि वहाँ आए और कहा कि राजन्! आप ऐसा साहस मत कीजिए। इस तूम्बी के भीतर पुत्र है और तूम्बी के

---

१. ज्वर की उत्पत्ति और इलाज को जान कर हम नहीं जानते कि वर्त्तमान समय में जब कि ज्वर से सम्पूर्ण प्रजा दुःखी हो रही है, क्यों नहीं सभा इस संग्राम की कथा सुनाकर आरोग्यता प्रदान कराती!

भीतर से जो बीज निकलें उनकी यत्न से रक्षा कीजिए। आप इस तूम्बी के बीजों को घी से भरे हुए किसी पात्र में रखिये तब आपको साठ हज़ार पुत्र मिलेंगे—

सम्यगेवं कृते राजन् भवतो मत्प्रसादतः।
यथोक्तसंख्या पुत्राणां भविष्यन्ति न संशयः॥ ५१.४३॥

राजा ने ऋषि के वचनानुसार कार्य किया अर्थात् राजा ने एक-एक बीज को पृथक्-पृथक् कर घी के बरतनों में रख दिया और पुत्रों की रक्षा के निमित्त एक-एक धाय सब बरतनों के समीप नियत कर दी फिर बहुत काल बीतने पर महातेजस्वी महाबली साठ हज़ार पुत्र हो गये—

एवं क्रमेण संजातास्तनयास्ते महीपते।
ववृधुः संघशो राजन् षष्ठिसाहस्त्रसंख्यया॥ ४७॥

और यह राजपुत्र बड़े होने पर बड़े-बड़े कुकर्म करके देवताओं को क्लेशित करने लगे। तब वह ब्रह्मा की शरण में गये, उन्होंने कहा कि तुम सब अपने-अपने घर जाओ। इन सबका थोड़े दिनों में नाश हो जावेगा।

फिर कुछ दिनों के बाद राजा ने यज्ञ करने का आरम्भ किया और घोड़ा छोड़ा और सब पुत्र उसकी रक्षा में लग गये। घोड़ा पृथ्वी पर घूमता हुआ समुद्र के तट पर आया तो अत्यन्त यत्न से रक्षा करने पर भी कहीं अन्तर्ध्यान हो गया। फिर सब पुत्रों ने राजा से कहा। राजा ने फिर सबको उसके खोजने के लिए भेजा परन्तु जब ढूढ़ने पर घोड़ा और चुराने वाला न मिला तब लौटकर पिता से कहा। उस समय राजा को क्रोध आया और कहा तुम अगम्यदेशों में ढूंढने को जाओ, वह चल दिए। अनन्तर सगर के पुत्रों ने पृथिवी को कुदार और फावड़ों से यत्नपूर्वक खोदना आरम्भ किया। उस समय खोदने से वरुण के स्थान समुद्र को बड़ा दुःख हुआ और चारों ओर से समुद्र खोदने से उसमें रहने वाले असुर सर्प राक्षस और अनेक प्रकार के जन्तु सगरपुत्रों से पीड़ा पाकर घोर शब्द करने लगे परन्तु बहुत काल खोदने पर भी कहीं घोड़ा नहीं मिला। अन्त को सगर के पुत्रों ने बड़ा क्रोध किया तब उत्तर पाताल के कोने में खोदना आरम्भ किया और पाताल तक खोदते चले गये, वहाँ देखा कि पृथिवी में घोड़ा घूम रहा है, उसके निकट कपिल महात्मा जी भी विराजमान हैं—

चरन्तमश्वं पाताले ददृशुर्नृपनन्दनाः । १५ ।

ददृशुश्च महात्मानं कपिलं दीप्ततेजसम् ।

संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समन्ततः ॥ ५३.१७ ॥

घोड़े को देख सब प्रसन्न हुए और महात्मा का निरादर करने के लिए काल के वशीभूत हो क्रोध सहित घोड़ा पकड़ने को दौड़े। राजपुत्रों का यह व्यवहार देख महात्मा को बड़ा क्रोध आया। फिर नेत्र खोल कर सगर के पुत्रों पर अपना तेज डाला जिसके लगते ही सगर के पुत्र भस्म हो गये। उस समय नारदमुनि वहाँ आये और उन्होंने सब वृत्तान्त पुत्रों के नष्ट हो जाने का राजा से कहा जिसको सुन राजा को बड़ा शोक हुआ।[1]

देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति

वामनपुराण अध्याय १७ में लिखा है कि आश्विन मास में जब ईश्वर की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, तब देवताओं में से कामदेव के कदम्ब और कुवेर के वट, महादेव के हृदय में धतूरा, ब्रह्मा की देह के मध्य भाग से ख़ैर, विश्वकर्मा के शरीर से कण्टकी और पार्वती के हाथ के तलवे में कुन्द, गणेश जी के मस्तक में संभालू—

कन्दर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः ।

तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥ २ ॥

यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद ।

वटवृक्षः समभवत्तस्मिंस्तस्य रतिः सदा ॥ ३ ॥

महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः ।

संजातः स च शर्वस्य रतिकृत्तस्य नित्यशः ॥ ४ ॥

ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः ।

खादिरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥ ५ ॥

---

१. **पण्डित जी**—राजा सगर के साठ हज़ार पुत्रों की उत्पत्ति को सुनकर भी आपके चित्त में क्या यह भ्रम नहीं हुआ कि यह पुराण व्यास महाराज के कहे हुए नहीं हैं। देखिए, स्त्री के तोरई होना, फिर उसके बीजों को घी के मटकों में रखने से पुत्र उत्पन्न हो गये परन्तु तूम्बी की लम्बाई भी नहीं लिखी, न जाने कितनी बड़ी होगी, जिसमें ६० हज़ार बीज थे!

गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्वजायत।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः॥ ६॥
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे।
कृष्णोदुम्बरको रौद्रो जातः क्षोभकरो वृषः।॥ ७॥
स्कन्दस्य बन्धुजीवश्च रवेरश्वत्थ एव च॥
कात्यायन्याः शमी जाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्॥ ८॥
नागानां मुखतो ब्रह्मञ्छरस्तम्बो व्यजायत।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता॥ ९॥
साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दनः।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत्॥ १०॥

धर्मराज के दाहिने पांशू में पलाश, बायें पांशू में काला गूलर, स्वामी कार्तिक के शरीर से जीयापोता, सूर्य के शरीर से पीतल, कात्यायनी के शरीर से जांटी, लक्ष्मी के हाथ में बेल, सर्पों से शरस्तम्ब और वासुकि सर्प की फैली हुई पूंछ के पृष्ठभाग में सफ़ेद और काली दूब उपजी और साध्य देवताओं के हृदय में हरिचन्दन वृक्ष उपजा। ऐसे जो-जो जिसके शरीर से उत्पन्न हुए तिस-तिस में उनकी प्रीति हुई।[१]

श्रीपण्डित जी—सेठ जी! अब समय बहुत हो गया, इसलिए अब बस कीजिए।

सेठ जी ने कहा कि बहुत अच्छा।

सब महाशय चल दिए।

सेठ जी ने श्री पण्डित जी को नमस्ते की। श्री पण्डित जी आयुष्मान् कह तथा अन्य यथायोग्य के पश्चात् चले गये। सेठ जी अपने कार्य में लग गये।

इति षोडश परिच्छेद।

---

१. इस उत्पत्ति को पढ़कर आप ही विचार करें कि यह ही व्यास महाराज के द्वारा लिखित पुराण हैं।

अथ सप्तदश परिच्छेद

सेठ जी ने श्रीमान् पण्डित जी आदि को आते देख नम्रतापूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये!

पण्डित जी ने आयुष्मान् तथा अन्य महाशयों ने यथायोग्य कहा और विराजमान हुए।

सेठ जी ने पण्डित जी की तबियत का हाल पूछा कहा कि श्री महाराज आज मैं और शेष पुराणों से वेद, बुद्धि तथा सृष्टिक्रम के विपरीत कथाएं सुनाता हूँ। देखिए—

विश्वामित्र के शाप से सरस्वती में रक्त की धारा का होना फिर अन्य ऋषियों के वरदान से शुद्ध होना।

वामनपुराण अध्याय ४० में लिखा है कि विश्वामित्र वसिष्ठ मुनि के बीच तपरूपी ईर्ष्या के कारण बड़ा वैर हो गया था। एक समय विश्वामित्र ने सरस्वती नदी को बुला कर कहा कि वसिष्ठ मुनि को अपने वेग से यहाँ बहा ला, तब मैं उनको मारूंगा, उसने दुःखित हो वसिष्ठ जी के समीप जा सब वृत्तान्त कहा और उसको बहाकर ले चली, तब वसिष्ठ महाराज ने सरस्वती की स्तुति की। इधर सरस्वती ने वसिष्ठ को विश्वामित्र को समर्पित किया, त्यों ही उन्होंने उनके मारने के लिए प्रहार किया। तब सरस्वती ब्रह्म-हत्या के भय से वसिष्ठ को उलटा बहाने लगी। उस समय विश्वामित्र जी ने क्रोधित हो कहा कि लोहूयुक्त राक्षसों से सेवित रहेगी। वह उसी प्रकार बहने लगी, जिसको देख देवता दुःखित हुए। बहुत काल पीछे बहुधा मुनि तीर्थयात्रा के अर्थ सरस्वती पर गये, फिर उसको बुला कारण को जान, प्रसन्न हो, अरुणानदी को उसमें मिलाते हुए। तदनन्तर राक्षसों की मुक्ति के अर्थ संगमतीर्थ को कल्पित करते हुए। जो कोई इस संगम पर तीन दिन वास कर स्नान करता है, वह पापों से छूट जाता है। घोर कलियुग में भी स्नान करने से मुक्ति होती है। इसके पीछे सब राक्षस

सङ्गम में स्नान कर स्वर्ग को चले गये।[१]

ब्रह्मा के कानों से दिशाओं की उत्पत्ति

वाराहपुराण—अध्याय २९ में लिखा है कि जब ब्रह्मा को चिन्ता हुई तब ब्रह्मा के कानों से दश दिशाएं उत्पन्न हुईं।

प्रादुर्बभूवुः श्रोत्रेभ्यो दश कन्या महाप्रभाः। ३।

पूर्वा च दक्षिणा चैव प्रतीची चोत्तरा तथा। ४। इत्यादि

राजा विशश्चित से नरकियों को एक अनोखा लाभ।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय १४

जब राजा विशश्चित मरकर नरक को गया तब उसने यमदूत से कहा कि मैं नाना प्रकार के धर्मकार्य करता रहा फिर मैं क्यों नरक को आया? तब यमदूत ने कहा कि तुमने थोड़ा सा पाप पिछले जन्म में किया है, उसको मैं तुम्हें बताता हूँ। देखो, विदर्भदेश की राजकन्या पीवरी नाम स्त्री ऋतु से शुद्ध हुई। तब तुमने उसके साथ गमन नहीं किया। इस हेतु जो ऐसा करते हैं, वह पिता के ऋण से पापदोषी होकर नरक में गिराये जाते हैं। यही तुम्हारा पाप है। इसी से नरकभोग कराया गया। अब तुम स्वर्ग को चलो। तब राजा ने कहा जहाँ तुम ले चलोगे। मैं वहाँ ही चलूंगा। अब यह बतलाओ कि यह लोग जो अतिदुःखी हैं, कोई कुछ, कोई कुछ दुःख उठा रहा है। यह क्यों उठा रहा है? अनेक जन्मों में जो पाप या पुण्य जाने या अनजाने से उत्पन्न होता है, वह सब कर्मों का फल है, आत्मा के साथ रहता है। देह से या मन से या वचन से जिस प्रकार जो मनुष्य करता है, उसी भांति वह मनुष्य पाता है, दूसरा कदाचित् नहीं—

अकुर्वन् पापकं कर्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते। ३२।

यद्यत्प्राप्नोति पुरुषो दुःखं सुखमथापि वा। ३३।

अर्थात् बिना पाप और बिना पुण्य के किये हुए कोई सुख या दुःख

---

१. क्या सरस्वती भी कोई शरीरधारी स्त्री थी और जब सरस्वती संगम में स्नान करने से पापों की निवृत्ति होकर मुक्ति हो जाती है तो फिर सत्यादि यमनियम के पालन करने की क्या आवश्यकता रही और जब इस संगम का ऐसा प्रताप है तो फिर अपने पतित भाइयों को स्नान कराकर क्यों नहीं शुद्ध कर लेते?

नहीं भोगता।

प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारिचेतसः। ३३ ॥

तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत्॥ ३४ ॥

जिस प्रकार ये पापी लोग इस घोर नरक में रहकर दुःख भोग रहे हैं, उसी भांति पुण्यवान् लोग स्वर्ग में ऐ राजन्! देवताओं के साथ पुण्य भोग रहे हैं—

क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तविवर्त्तिनः।

तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह॥ ३६ ॥

गन्धर्व और सिद्ध और अप्सरा इन सबों के साथ रह कर गीत और नृत्यादि से अपने पुण्य का फल भोग करके फिर देवता या मनुष्य या तिर्य्यक्योनि में जाते हैं। सविस्तर वर्णन करने के पीछे यमदूत ने कहा कि अब मैं सब आपको सुना चुका और सब नरक दिखा चुका, अब आप दूसरे स्थान को चलिए। जब राजा यमदूत को आगे कर चलने को उपस्थित हुए। तब नारकी लोग जो कष्ट में पड़े थे, बोले कि हे राजन्! आप हम सबों पर कृपा करके एक घड़ी और यहाँ ठहर जाइये क्योंकि जो हवा आपके शरीर से ठोकर खाकर आती है, उससे हम लोगों को बड़ा आराम मिलता है—

प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम्।

त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनो ह्लादयते हि नः॥ १५.४९ ॥

जितने परिताप और दुःख जो हम लोगों के शरीर में हैं, वह सब इस हवा के लगने से छूट जाते हैं, इस वास्ते ऐ नरव्याघ्र! हम सबों पर दया कीजिए—

परितापं च गात्रेषु पीडां बाधाञ्च कृत्स्नशः।

अपहन्ति नरव्याघ्र दयां कुरु महीपते॥ ५० ॥

राजा नारकियों के इस वचन को सुन यमदूत से पूछने लगे, यह लोग मेरे रहने से क्यों प्रसन्न होते हैं?

मैंने मृत्युलोक में कौन सा पुण्य किया जो इन लोगों के लिए आनन्ददायक हो रहा है? सो तुम मुझको बतलाओ। यमदूत ने कहा कि हे

राजन्! जो आपने देवता और पितर और अभ्यागत इत्यादि को पहले समर्पण करके शेष अन्न खाकर अपना शरीर पाला था और जो कि आपका मन हर घड़ी इन्हीं बातों में रहता था, इस सबसे तुम्हारे अंग की स्पर्श हुई हवा आनन्द को देने वाली है, जिसके स्पर्श से इन सब पापकर्मी लोगों को दण्ड का कष्ट नहीं जान पड़ता—

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः।
पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतञ्च मनो यतः॥ ५३॥

तब राजा ने कहा कि हे यमदूत! मेरी समझ में ब्रह्मलोक आदि स्वर्ग में वह सुख नहीं है, जो सुख दुःखी लोगों की रक्षा करने से मनुष्यों को प्राप्त होता है। यदि मेरे रहने से इन नरकियों को सजा का कष्ट नहीं जान पड़ता तो मैं इन दुःखी लोगों के लिए यहाँ ही रहूँगा। तब यमदूत ने कहा कि धर्म और इन्द्र आपके लेने के लिए आये हैं, जहाँ आपका जाना आवश्यक है सो चलिए। धर्म ने कहा कि ऐ राजन्! तुमने मेरी सब प्रकार से उपासना की है इसलिए मैं तुमको स्वर्ग को ले चलूंगा, इस पर इन्द्र ने कहा कि यह पापी लोग अपने पापकर्मों की सजा भोग रहे हैं और आपने पुण्यकर्म किया है इसीलिए आपको स्वर्ग जाना होगा। फिर राजा ने कहा कि आप दोनों यह बतावें कि मेरे पुण्य का प्रमाण कितना है? तब धर्म ने कहा कि जिस प्रकार आकाश में तारे, समुद्र के जल में कण और गङ्गा के किनारे की बालू और महावृष्टि के बिन्दु—

अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः।
यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा॥ ७२॥

अगणित हैं, उसी प्रकार ऐ राजन्! तुम्हारे पुण्य का भी हिसाब नहीं है—

असंख्येया महाराज यथा बिन्द्वादयो ह्यपाम्।
तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते॥ ७३॥

जब से तुम इन नरकियों पर कृपा कर रहे हो तब से अब तक तुम्हारा समय सौ हज़ार वर्ष तक व्यतीत हुआ—

अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वता।
तदेव शतसाहस्रसंख्यामुपगतं तव॥ ७४॥

इसलिए अब आप स्वर्ग को चलें, वहाँ का सुख भोगो, पापी लोग अपने कर्मों का फल नरक में भोग करेंगे। तब राजा ने कहा कि यदि हम से इन लोगों की भलाई नहीं हुई तो फिर कोई किस प्रकार से भलाई की आशा करेगा इसलिए हे देवराज! जो कुछ हमारा सुकृत है यानी पुण्य हो तो यह लोग उसके बदले में नरक के कष्ट से छूट जावें—

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते॥ ७६॥
तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः॥ ७७॥

तब इन्द्र ने राजा से कहा कि आपको वैकुण्ठ हुआ देखो यह नरकी लोग भी नरक के कष्ट से छूट गये और उस समय राजा के ऊपर फूल बरसने लगे और विष्णु भगवान् राजा का हाथ पकड़ कर विमान में बिठाकर वैकुण्ठ में ले गये[1]—

ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः।
विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः॥ ७९॥

एक राजा के साथ हरिणी का वार्त्तालाप।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ६३ में लिखा है कि स्वरोचि अपने तीनों पुत्रों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर ....आप अपनी स्त्रियों से विहार करने लगे, एक समय शिकार को गये और सुअर के पीछे दौड़े तब एक हरिणी ने आकर कहा कि आप इस बाण से मुझको मारिये, सुअर मारने से क्या लाभ? यदि मुझको मारोगे तो मैं अपने दुःख से छूट जाऊंगी। तब राजा ने कहा तुझको क्लेश क्या है? हरिणी ने कहा कि मैं जिस पुरुष को चाहती हूँ। वह अन्य स्त्री पर आसक्त है। तब राजा ने कहा कि कौन सा तेरा पति है जो तुझको नहीं चाहता, वह कौन पुरुष है जिसको तू चाहती

---

१. इस कथा में पूर्वापर विरोध है कारण कि पूर्व तो यह कहा कि अपने कर्म अपने ही लिए सुख या दुःखदायक होते हैं और बिना कर्म का फल भोगे कोई सुख वा दुःख नहीं पाता और अन्त में यह उक्ति कि राजा ने अपने पुण्य का फल नरकियों को दे दिया जिससे कि नरकी नरक से छूट गये।

है, तब हरिणी ने कहा कि मैं तुम्हीं को चाहती हूँ, तुम्हीं ने मेरा मन हर लिया है तुमको औरों से प्रीति है, इसलिए मैं अपने जीवन को वृथा समझती हूँ। तब राजा ने कहा कि तू हरिणी है मैं मनुष्य हूँ, मेरा तेरा संयोग किस प्रकार से हो सकता है? हरिणी ने कहा जो आप प्रसन्न हो मुझसे भोग करेंगे तो फिर जो कुछ आप चाहेंगे वह सब आपको प्राप्त होगा। जब राजा ने उसके साथ भोग किया तो उसी समय वह सुन्दर स्त्री हो गई—

आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोची हरिणाङ्गनाम्।
तेन चालिङ्गिता सद्यः साभूद्दिव्यवपुर्धरा॥ २१॥

तब स्वरोचि ने पूछा, तू कौन है? तब उसने कहा कि मैं वनकी देवता हूँ, देवता लोगों ने मुझसे विनय कर कहा कि तुम मनु को पैदा करो। इस सबसे मैंने आपसे कहा, यह सुन स्वरोचि ने हरिणी से भोग कर एक अपने समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। तब देवताओं ने फूलों की वर्षा की और द्युतिमान् उसका नाम रखा[१]—

तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम्।
द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः॥ २८॥

राजा प्रियव्रत के रथ के पहिये से सात समुद्रों का होना।

श्रीमद्भागवत पञ्चम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने यह विचार कर कि सूर्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है, इस कारण आधे जगत् में रात्रि रहती है, उसको मैं दिन करूंगा, ऐसा विचार कर अपने प्रकाशमय रथ पर बैठ के सूर्य के समान घूमने लगा—

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः॥ ३१॥

महाराज प्रियव्रत के रथ के पहिये से जो खाई बनी वही सात समुद्र हो गये और जो भूमि उनके बीच में रह गई वह जम्बू, प्लक्ष और शाल्मली आदि सात द्वीप के नाम से प्रसिद्ध हो गई[२]।

---

१. राजा का हरिणी से भोग करना और उसका स्त्री होना, आपके विचारने योग्य है।
२. कहिए श्रीमान्, क्या पहले समुद्र न थे?

मनु की पुत्री इला का पुत्र हो जाना।

श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध अध्याय १ में लिखा है कि सूर्यवंश के आदि पुरुष महात्मा मनु के दश पुत्र थे। उनकी उत्पत्ति से प्रथम मनु ने महर्षि वसिष्ठ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जिसके प्रताप से मनु की स्त्री के गर्भ से इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जिसको देख मनु को बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ। उन्होंने वसिष्ठ से कहा कि यह उलटा कार्य हुआ मैंने जो पुत्र की प्राप्ति के लिए यज्ञ किया था उससे पुत्री उत्पन्न क्यों हुई? वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया कि होता (आहुति देने वाले) के उलटे संकल्प से यह उलटा प्राप्त हुआ, परन्तु मैं अपने तेज से तुमको सपुत्र बनाऊंगा ऐसा कहके वसिष्ठ ने विष्णु की स्तुति की। उससे प्रसन्न होके जो विष्णु ने वर दिया उसी वर के प्रताप से मनु की पुत्री इला पुरुष हो गई और उस का नाम सुद्युम्न रक्खा गया[१]—

एवं व्यवसितो राजन् भगवान् स महायशाः।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ २१॥
तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः।
ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः॥ २२॥

व्यास जी के पुत्र की इच्छा से भगवती के द्वारा महादेव का तप करना और महादेव से वर पाना फिर घृताची को देख कामातुर हो-वीर्यपात हो अरणी में गिरना और शुक्र का उत्पन्न होना।

देवीभागवत स्कन्ध १ अध्याय १०, १४॥

मेरु पर्वत पर व्यास जी ने एकाक्षरी मन्त्र जप भगवती और शिव का ध्यान निराहार सौ वर्ष तक किया कि जिसमें हमारे अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष के तुल्य पुत्र उत्पन्न हों। इसको देख इन्द्र बड़ा व्याकुल हुआ और वह महादेव के पास गया। तब महादेव जी ने कहा तुम संशय मत करो क्योंकि

---

१. न जाने हमारे पौराणिक भाई इस विचित्र रीति से अब क्यों नहीं कार्य लेते! देखिए लड़की से पुत्र कर देने का क्या सरल नुसखा है।

वह शक्ति सहित हमारे पुत्र के हेतु तप करते हैं, इन्द्रासन के लिए नहीं, तुम कुछ चिन्ता न करो, हम जाते हैं। यह कह व्यास जी के पास पहुंचे और कहा सब गुण सम्पन्न तुम्हारे पुत्र होगा। वह तपस्या करते रहे। एक दिन अरणी सहित गुप्त अग्नि को अग्नि की इच्छा करके मथने लगे, उसी समय में पुत्र होने की इच्छा हुई जैसे मन्थान और अरणी के संयोग और मन्थन से अग्नि उत्पन्न होती है वैसे ही हमारे क्योंकर पुत्र उत्पन्न हो सकता है क्योंकि स्त्री तो हमारे है ही नहीं और स्त्री करना बन्धन का हेतु है। देखो, शिव जी ऐसे महात्मा, सो भी नित्य कामिनी की फांस में फंसे रहते हैं। इस चिन्ता में लग रहे थे कि इतने में घृताची नाम अप्सरा दिव्य रूप धारण किये हुए आकाश में दीख पड़ी, मुनि जो धृतव्रत थे कामातुर हो चिन्ता करने लगे कि अब मैं क्या करूं? यह मुझे छलने के लिए आई है। सम्पूर्ण महात्मा और तपस्वी मुझे हंसेंगे, देखो १०० वर्ष तपस्या करके भी काम के वशीभूत हो गये। इसके उपरान्त यह गृहस्थाश्रम के सुख जो पुत्र उत्पन्न होने के समय होते हैं, वह भी इससे न होगा क्योंकि यह तो भोग भुगाकर आकाश को चली जायेगी। इसलिए उन्होंने कहा कि यह हमारे योग्य नहीं है। अप्सरा शाप के भय से शुकी का रूप धारण करके निकल गई। व्यास जी बड़े विस्मित हुए, कामातुर तो हो ही गये थे। बहुत मन खींचने पर भी न खिंचा। मुनि का वीर्य अरणी (ढाक की लकड़ी) में पतित हो गया। वह अधिक अरणी को मथने लगे। उसमें व्यास जी के आकार का पुत्र उत्पन्न हुआ, चूंकि शुकी को देखकर काम पतित हुआ, इसलिए शुक ऐसा नाम रक्खा। सब देवताओं ने आकाश से वर्षा की और प्रसन्न हो सब उनके स्थान पर आये, वह बढ़ने लगे। वेदविधि से मुनि ने यज्ञोपवीत कराया और बृहस्पति को गुरु करके चारों वेद षट्शास्त्र पढ़े और गुरुदक्षिणा देकर पिता के पास आए।[१]

---

१. इन कथाओं के देखने से ज्ञात हुआ कि इन्द्र एक क्षुद्र कोटि का राजा और तपस्वियों का बहुतायत से विरोधी था जैसा उस के आचरणों से विदित होता है।

(२) क्या व्यासर्षि ऐसे अज्ञ थे कि बिना स्त्री के पुत्र की कामना की?

(३) अरणी अर्थात् ढाक की लकड़ी पर..........पात होने से पुत्र उत्पन्न हो गया।

(४) **"ईशुचिर् पूतीभावे"** (धातुपाठ, दिवा० ५४) धातु से शुक्र शब्द बनता है। यदि शुकी को देखकर शुक नाम रख लिया तो रेफ की अनुवृत्ति कहाँ से आई जो कि शुक्र कहा जाता है? व्याकरणाभिमानी पौराणिक इसे सिद्ध करें।

देवी भागवत।

स्कन्ध २ अध्याय १

एक उपरिचर नाम चेदिदेश के राजा हुए जो कि अतिधार्मिक सत्यसागर और द्विजपूजक थे। जिनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर इन्द्र जी ने जिन्हें स्फटिक मणि का एक विमान दिया कि जिस पर चढ़ कर वे अन्तरिक्ष में फिरा करते थे। जिनकी स्त्री का गिरिका नाम था जिसमें उन्होंने ५ पुत्र उत्पन्न करके अन्य-अन्य देशों के राजा कर दिये थे। फिर एक दिन गिरिका ऋतुस्नाता थी, उसी दिन राजा के पिता ने कहा कि श्राद्ध करने के लिए मृग मार लाओ, यह बड़ा धर्मसंकट हुआ।

चौपाई।

सुन ऋतुमती नारि नहि जाई। गर्भघात पातक त्यहि भाई।
पिता वचन माने नहि जोई। पापपुञ्ज ताहू कहैं होई॥

पर वे पिता के वचन मान शिकार ही करने चले गये। वहाँ वन में जाकर जिससे कि ऋतुस्नाता स्त्री का स्मरण था इससे वीर्यच्युत हुआ। उससे यह विचार के कि स्त्री के निकट भेजेंगे, राजा ने बरगद के पत्तों के मध्य में स्थापित कर दिया कि हम सब अमोघ वीर्यवान् हैं जो यहाँ से वीर्य प्रेरित करेंगे तो पुत्र ही होगा। एक बाज जो राजा करके पालित संग ही था उससे कहा कि इसे हमारी स्त्री के निकट पहुंचावो। यह सुन वह चोंच से कन्दर्पयुक्त वटपत्र को लेके आकाश-मार्ग हो उड़ा कि अन्य कोई बाज मांस जानके छीनने लगा, इस पर बड़ा युद्ध हुआ और वह वटपत्र का दौना यमुना जी में गिर पड़ा। बाज जहाँ के तहाँ चले गये। उसी समय एक अद्रिका नाम अप्सरा (जो कि यमुना में स्नान कर रही थी) ने एक ब्राह्मण (जो कि सन्ध्या करने में उद्यत थे) के चरण कामातुर होकर आ पकड़े। ब्राह्मण ने शाप दिया कि तू मछली हो, वह यमुना जी में मछली हो पतित (गिर पड़ी) हुई और उसी समय उस दौने का वीर्य खा गई उसके दश मास के पश्चात् किसी मत्स्यघाती ने उसे पकड़ उदर विदारण किया तो दो मनुष्याकार जीव निकले कि जिनमें एक पुत्र, एक कन्या थी। उन्हें देख विस्मित होकर उन्हीं राजा उपरिचर के पास ले गया क्योंकि वह राजा ही

के आकार के से थे। इससे पुत्र को अपने सदृश समझ के राजा ने ग्रहण किया। बालक तो अति धार्मिक, सत्यसागर, महातेजस्वी और निजपिता के तुल्य पराक्रमी मत्स्य नाम राजा हुआ और जो कन्या थी वह उसी मत्स्यजीवी को दे दी कि जिसके काली मत्स्योदरी-मत्स्यगन्धा-वासवीय नाम हुए।

एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए पाराशर मुनि आये और खेवट से कहा हमें यमुना पार करो। वह भोजन कर रहा था। उसने मत्स्यगन्धा से कहा तू पार पहुंचा दे। मुनि उसे देख कामातुर हो हाथ पकड़ अपना मनोरथ कहा, तब वह बोली आप अतिकुलीन वसिष्ठ जी के पुत्र वेदपाठी होकर मछली की गन्ध के समान स्त्री को देख कामातुर होकर ग्रहण करते हो। यह महाअनर्थ है। तब लज्जित होकर हाथ छोड़ दिये। फिर पार पहुंच पकड़ने लगे। फिर उसने प्रार्थना की कि आप मुझ दुर्गन्धा में कैसी रुचि करते हो? तब मुनि ने अपने तपोबल से उसके अंग में ऐसी सुगन्ध कर दी जो चार कोस तक कस्तूरी के समान फैल गई। तब उसने कहा कि उस पार से मेरा पिता देख रहा है और दिन में रति करना भी निषेध है, इससे रात होने दीजिए। यह सुन मुनि ने अपने तपोबल से कुहरा उत्पन्न कर दिया और प्रसङ्ग करना चाहा, तब उसने कहा मेरा अभी ब्याह नहीं हुआ है, आप वीर्यवान् हैं, रति के पीछे मैं गर्भवती हो जाऊंगी तो मैं कहाँ जाऊंगी और पिता से क्या कहूँगी? मुनि ने कहा कि तुम कन्या ही बनी रहोगी। यह सुन उसने कहा कि नहीं महाराज मैं यह चाहती हूँ कि मेरे पिता को विदित न हो और आपके समान पुत्र उत्पन्न हो और यह अङ्ग का गन्ध और नई अवस्था बनी रहे। तब मुनि ने कहा तुम्हारे विष्णु के अंश से सब पुराणों का कहने हारा पुत्र उत्पन्न होगा जो त्रिलोकी में प्रसिद्ध होगा। यह कह उससे सम्भोग कर, यमुना में स्नान करने चले गये। सत्यवती गर्भवती हुई। समय पर यमुना के द्वीप में पुत्र उत्पन्न किया जो जन्मते ही माता से बोले—हम तपस्या करने जाते हैं, तुम भी सुखपूर्वक जाओ। जब कभी हमको स्मरण करोगी, तभी हम आकर तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेंगे। यह कह कर चले गये। तब इनका नाम द्वैपायन हुआ। इन्होंने वेद शाखा निर्मित की तो व्यास नाम हुआ। सर्व पुराण महाभारतादि की

रचना की तथा इन्होंने ही वेदों के विभाग कर अपने शिष्यों को पढ़ाए।[१]

राजा शान्तनु का सन्तान उत्पन्न करना।

देवीभागवत स्कन्ध २ अध्याय ५॥

शान्तनु नाम राजा एक दिन शिकार खेलते हुए यमुना के तीर पर गये। वहाँ कस्तूरी मालती के समान सुगन्ध आई। राजा जिसको सूंघ चौकन्ने हो, नदी की ओर गये तो वहाँ जाकर देखा कि नदी के तट पर एक स्त्री शृंगार रहित मलीन वस्त्र धारण किये बैठी है और उसी के शरीर से गन्ध आ रही है। राजा ने इसका रूपयौवन देख, कामवश हो, गङ्गा का स्मरण कर उससे पूछा कि तुम किसकी कन्या हो, विवाह हो गया है या अभी नहीं, तुमको देख हमारा चित्त चाहता है कि तुम हमको अपना पति बनाओ क्योंकि हमारी स्त्री हमको छोड़कर चली गई है, दूसरी अभी नहीं की है, मैं तुम्हारा दास हूँ। तब वह स्त्री बोली कि मैं दक्ष की कन्या हूं मेरा पिता घर गया है। मैं नौका चलाती हूं, यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो मेरे पिता से कहिए। वे आपको दे देंगे तो मैं आनन्द से आपकी दासी होने को उद्यत हूँ। राजा ने पिता के समीप जाकर कहा कि हे निषाद! तुम हमको अपनी पुत्री दे दो, मैं पटरानी बनाऊंगा। तब निषाद ने कहा कि मैं पुत्री आपको इस प्रण पर देने को उद्यत हूँ कि आपके पीछे मेरी पुत्री का पुत्र ही राजा हो। राजा इसको सुन, गृह पर आ उदास रहने लगे। जिसका वृत्तान्त जब भीष्म महाराज को (जो गङ्गा के पुत्र थे) ज्ञात हुआ तब उन्होंने पिता की इच्छा पूर्ण करने के अर्थ आजन्म जितेन्द्रिय रहने का व्रत

१—एक ओर मनु का यह वचन कि "**अहिंसा परमो धर्मः**" दूसरी ओर पौराणिकी यह शिक्षा कि "श्राद्धार्थ मृग मार कर लाओ" हमारे वैष्णवी भाई किसको ग्रहण करेंगे।

२—इन घृणित बातों को बच्चे भी तो कहते और करते लज्जित होंगे। क्या यह कोई ऐसी वस्तु है जो भेजी जावे? परन्तु इस घृणित और असम्भव बात पर वाद करना ही वृथा है। बुद्धिमान् केवल संकेत से ही इसका निर्णय कर लेंगे।

३—ब्राह्मण के शाप से स्त्री मछली हो गई और पत्ते में रक्खे हुए वीर्य को खाकर मछली गर्भवती हो गई। प्यारे पौराणिक भाइयों यह व्यास महात्मा की उत्पत्ति और महर्षि पाराशर की करतूत है। क्या यह सब बातें ऋषिनिन्दक नहीं है? इसलिए इन पुराणों को व्यासकृत न कहिए।

धारण कर दक्ष से जाकर निवेदन किया उसने पुत्री राजा शान्तनु को दे दी।[१]

श्री पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी समय बहुत हो गया, इसलिए बस कीजिए।

आर्य सेठ—बहुत अच्छा, सब महाशयों ने चलने की तैयारी की।

सेठ जी ने पण्डित जी तथा सब महाशयों को नमस्ते की।

पण्डित जी ने आयुष्मान् कहा और अन्य सबों ने यथायोग्य की और प्रस्थान किया। सेठ जी विश्राम करने लगे।

इति सप्तदश परिच्छेद।

प्रथम तो पौराणिक लोग व्यास जी को परमेश्वर का अवतार मानते हैं। द्वितीय वेद को अच्छे प्रकार जान सत्रह पुराणों को बनाया तिस पर उनकी शान्ति नहीं हुई तो उन १७ पुराणों को पढ़ने वालों की शान्ति कैसे हुई होगी? विचार दृष्टि से तो यह वेदों की निन्दा वरन् महानिन्दा करना है।....

पुराणों में अनेकानेक स्थानों पर लिखा है कि वेद सनातन पुस्तक हैं, वही सनातनधर्म हैं, उसके अनुसार धर्म कार्य करना चाहिए, इसके अतिरिक्त जो कोई कार्य करता है वह पाप का भागी होता है। —पृष्ठ ११२

---

१. इसकी बेटी से तो पाराशर मुनि ने भोग किया ही जिससे व्यास उत्पन्न हुए और फिर उसको राजा शान्तनु ने ग्रहण कर विवाह किया। इस वर्णव्यवस्था पर हमारे पौराणिक भाई विशेषरूप से ध्यान दें कि खेवट जाति की कन्या को प्रथम तो पाराशर ने भोग किया, फिर उसी से शान्तनु ने विवाह किया। पक्षपात को छोड़ सत्यपूर्वक विचारो तो केवल वर्ण से जाति के मानने वाले पौराणिक भाई वसिष्ठ मुनि की उत्पत्ति पर ध्यान दें और उनके जार पिता पाराशर की करतूत को विचारें।

अथ अष्टादश परिच्छेद

सेठ जी ने श्रीमान् पण्डित जी को आते देख नम्रतापूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये पधारिए।

पण्डित जी ने आयुष्मान् कहा और विराजमान हुए। थोड़ी देर के बाद सब महाशय भी आ गये और यथायोग्य कहा और विराजमान हुए।

सेठ जी—पण्डित जी महाराज! आज मैं और दिनों से रोचक ही नहीं किन्तु अनौखी कथाएं सुनाता हूँ। देखिए—

वनिता से अरुण और गरुड़ का उत्पन्न होना

महाभारत आदि पर्व अध्याय ३१।

जब प्रजापति कश्यप जी ने पुत्र की इच्छा से यज्ञ किया तब देवता, ऋषियों गन्धर्वों ने सहायता की, तब कश्यप जी ने यज्ञ की लकड़ी लाने के लिए इन्द्र और बालखिल्य मुनि और अन्य देवों को भेजा। इन्द्र देवता अपनी शक्ति के अनुसार पर्वत के समान लकड़ी का बोझा लेकर बिना कष्ट आने लगे परन्तु सब ऋषि लोग मिलकर भी एक छोटी सी लकड़ी को अतिकष्ट से ले जाने लगे। इन्द्र जी उन ऋषियों को देख अचरज मान के उनकी हंसी करते हुए लांघकर वेग से चले गये जिससे बड़े-बड़े ऋषियों ने अतिदु:खी और क्रोधयुक्त होकर इन्द्र के भयदायी एक महान् कार्य का अनुष्ठान किया अर्थात् वे व्रतशील ऋषिगण अपने तपोबल से इन्द्र से सैंकड़ों गुण शूरता और वीरता में एक इन्द्र और उत्पन्न करने के लिए बड़े-बड़े मन्त्रों से अग्नि की आहुति चढ़ाने लगे जिसको सुन इन्द्र ने बहुत दु:खी हो फिर कश्यप जी की शरण ली।

कश्यप जी बालखिल्य आदि मुनियों के समीप गये और पूछा कि क्या आप लोगों का कार्य सिद्ध हो गया? उन्होंने कहा कि हाँ हुआ है, तब कश्यप जी ने कहा कि ब्रह्मा जी की आज्ञा से इन्होंने इन्द्र का पद पाया है, आप लोग दूसरे इन्द्र की चेष्टा कर रहे हैं, इसलिए आपको ब्रह्मा की बात झूठी न करनी चाहिए और मैं आपके संकल्प को भी मिथ्या नहीं बनाना

चाहता। आप जिसको इन्द्र बनाना चाहते हैं, वह महाबली वीर्यशाली पुरुष पक्षियों का इन्द्र होवे, देवराज इन्द्र आपसे प्रार्थना कर रहे हैं, आप उन पर प्रसन्न होवें। तब उन मुनियों ने कश्यप जी से कहा कि हम सबों ने इन्द्र की उत्पत्ति के निमित्त और आपकी सन्तान के उपजाने के हेतु इस यज्ञ का आरम्भ किया है सो हमारे कर्मफल को लेकर जो कुछ इच्छा जान पड़े, वही कीजिए। इसी काल में यशस्विनी दक्षपुत्री वनिता ऋतुस्नानपूर्वक व्रत करके शुचि होकर पुत्र की कामना से पति के पास गई। कश्यप जी उससे बोले देवि! तुम जो चाहती हो वह पूरा होगा। मेरे संकल्प और बालखिल्य मुनि के तपोबल से तुम्हारे गर्भ से बड़े भाग्यवान् तीनों भुवनों में प्रधान दो पुत्र उत्पन्न होंगे, त्रिलोक में पूजे जावेंगे। भगवान् कश्यप जी फिर वनिता से बोले—प्यारी तुम अप्रमत्त होकर अपने सुमहान् गर्भ को धारण किये रहना क्योंकि यह लोकों में माननीय महावीर कामरूपी दोनों पक्षी सम्पूर्ण पक्षियों पर अधिकार फैलाये रहेंगे। अनन्तर कश्यप प्रजापति प्रसन्न हृदय से देवराज से बोले कि हे पुरन्दर! तुम्हारी सहायता करने वाले दो पुत्र उपजेंगे, तुम सदा इन्द्र बने रहोगे। तुम कभी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों का अपमान न करना। यह सुन इन्द्र स्वर्ग को चले गये। समय आने पर वनिता ने अरुण और गरुड़ यह दो सन्तानें प्रसव कीं जिनमें अरुण विकलाङ्ग होकर सूर्य के सारथी बने, गरुड़ पक्षियों के इन्द्र पद पर बैठे।[१]

बृहस्पति जी के पुत्र कच का शुक्राचार्य के निकट जा संजीवनी विद्या पढ़ना फिर उसका राक्षसों को टुकड़े-टुकड़े कर कुत्ते-स्यारों को खिलाना और शुक्र महाराज का जीवित निकालना।

महाभारत आदिपर्व अध्याय ७६ ॥

जब देवताओं और राक्षसों में संग्राम हुआ तब देवों ने अङ्गिरा के पुत्र

---

१. श्रीमान् पण्डित जी देखिए, यहाँ वनिता नाम की स्त्री के गर्भ से दो पक्षी उत्पन्न हो गये। इस सिद्धान्त ने मिस्टर डारविन साहिब को भी जो यह लिखते हैं कि पशुपक्षियों से क्रमशः मनुष्योत्पत्ति हो गई, मात कर दिया, क्योंकि यहाँ तो डायरेक्ट स्त्री के गर्भ से पक्षी उत्पन्न कर दिये इसी से तो हम कहते हैं कि आप इन प्रमाणों पर ध्यान दें।

बृहस्पति और असुरों ने शुक्र को पुरोहित किया। ये देवता युद्ध में जितने दानवों को मारते, शुक्र संजीवनी विद्या से उनको जिला दिया करते थे। परन्तु बृहस्पति को यह विद्या नहीं आती थी, इससे देवगण अत्यन्त दुःखी होते थे। तब देवों ने बृहस्पति के बड़े पुत्र कच के निकट जाकर कहा कि हम आपकी शरण हैं अब बचाओ, सहायता करो अर्थात् तेजस्वी शुक्र में जो विद्या है, उसको जाकर सीख आओ, हम तुमको यज्ञांश देंगे। तुम्हीं उनकी पुत्री देवयानी की उपासना कर सकोगे और वह भी तुम्हारे आचार-विचार से सन्तुष्ट हुए तो तुम संजीवनी विद्या को अवश्य ही प्राप्त होगे। यह सुन कच ने शुक्र जी के पास जाकर कहा कि मैं अङ्गिरा का पौत्र और बृहस्पति का पुत्र हूँ और मेरा नाम कच है आप मुझको शिष्य बनाइये, मैं सहस्रों वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करूंगा, आप आज्ञा कीजिए, शुक्र बोले तुम्हारा कल्याण होवे, तुम्हारी बात मान ली। वह वहाँ रह कर कार्य करने लगे। इस बीच में देवयानी कच से और कच देवयानी से भी प्रसन्न रहते। तब व्रतानुष्ठान करते पांच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब एक दिन कच निर्जन वन में गौ की रखवाली कर रहे थे। दैत्यों ने यह जानकर कि यह कच है और संजीवनी विद्या के अर्थ आये हैं, क्रोध कर मार डाला और उनको टुकड़े-टुकड़े कर स्यार और कुत्तों को दे दिया—

हत्वा शालावृकेभ्यश्च प्रायच्छल्लँवशः कृतम्॥ २९ ॥

इतने में गौयें घर पर आईं और कच नहीं आये। तब थोड़ी देर देख कर देवयानी ने अपने पिता शुक्र से कहा कि सूर्य छिपा चाहते हैं, गौ घर आ गईं। परन्तु कच नहीं आये, पिता जी मुझको निश्चय जान पड़ता है कि कच मारे गये, सत्य कहती हूँ बिना कच के नहीं जी सकती। शुक्र बोले कच चले आओ, तुम मरे हो, मैं तुमको जिलाता हूँ, यह कह कर मृतक संजीवनी विद्या पढ़कर कच को बुलाया। कच बुलाये जाते ही स्यार कुत्तों के शरीर को फाड़ और निकल कर आ पहुंचे और संजीवनी विद्या का प्रभाव देखकर प्रसन्न हुए। देवयानी ने उनसे पूछा कि इतनी देर क्यों हुई? उसने कहा कि मेरी गौ एक वृक्ष की छांह में थी, असुरों ने देख मुझसे पूछा कि तुम कौन हो? मैंने कहा कि मैं कच हूं। दानवों ने मार कर मेरे टुकड़े-टुकड़े कर स्यार कुत्तों को खिला दिए।

अनन्तर देवयानी की आज्ञानुसार कच फूल बटोरने के लिए किसी वन को गया। दानवों ने फिर भी उसको देखा—

वनं ययौ कचो विप्रो ददृशुर्दानवाश्च तम्।
पुनस्तं पेषयित्वा तु समुद्राम्भस्यमिश्रयन्॥ ४१॥

पीसकर समुद्र के जल में घोल दिया। अनन्तर देवयानी ने उनको देर तक न आते देख कर पिता को वह समाचार सुनाया, इससे फिर शुक्र विद्या के बल से बुलाये गये। उन्होंने वह सब हाल कह सुनाया। इस के पीछे तीसरी बार उनको वैसे ही देख कर जला कर चूर-चूर कर मदिरा से मिला कर उन शुक्र ही को दे दिया। आगे देवयानी ने फिर पिता से कहा कि मैंने कच को फूल बटोरने के लिए भेजा था, अब भी आते नहीं दीखते, मुझको निश्चय जान पड़ता है कि वह मरे या मारे गये। मैं निश्चय कहती हूँ उस कच के बिना मैं न जीऊंगी। शुक्र बोले बेटी बृहस्पति का पुत्र कच मारा गया विद्या के बल से जिलाता हूँ। तिस पर भी असुर लोग मार डालते हैं। देवयानी तुम शोक न करना उसको जीवित रखना मेरे लिए असाध्य हो गया है। तब देवयानी ने कहा कि मैं बिना भोजनों के रहूँगी, क्योंकि उनका स्वरूप मुझे बड़ा प्रिय था। तब शुक्र दैत्यों पर अप्रसन्न हुए, फिर संजीवनी विद्या से कच को बुलाया। कच ने गुरु के पेट में रह कर गुरु हत्या के भय से भयभीत होकर धीरे-धीरे उत्तर दिया, तब शुक्र ने कहा तुम कौन पथ से मेरे पेट में जा घुसे हो? कच बोले कि हे गुरु! आपकी कृपा से मेरी स्मरण शक्ति लुप्त नहीं हुई जो जिस प्रकार से हुआ वह सब स्मरण है, इसलिए कि कहीं हमको गुरु के पेट फाड़ने के लिए पाप के कीचड़ में डूबना ना पड़े। इसलिए पेट में बसने का अपार कष्ट सह रहा हूँ। असुर ने मुझको मार जलाया और चूर-चूर कर मदिरा में घोलकर आपको दे दिया था पर हे विप्र! आपके रहते आसुरिकमाया क्योंकर ब्राह्मणिक माया से बढ़ सकेगी, तब शुक्र ने देवयानी से कहा कि बेटी देवयानि! इस समय तुम्हारा प्रियानुष्ठान करूं? मेरे नाश होने से कच जी सकता है, क्योंकि कच मेरे पेट के भीतर है मेरे बिना पेट फाड़े नहीं निकल सकेगा। देवयानी बोली कच का नाश और आपकी मृत्यु यह अग्निवत् दोनों शोक ही मुझको जलाने लगे हैं, कच के नाश होने से मेरा जीवन न रहेगा। आपको कोई हानि पहुंचने से भी जी नहीं सकती। तब शुक्र ने कच से

कहा कि हे बृहस्पतिपुत्र कच! देवयानी के प्रेमी हो देवयानी भी तुमको भज रही है। ऐसी दशा में यदि तुम कचस्वरूप इन्द्र न हो तो आज सञ्जीवनी विद्या तुमको देता हूँ। तुम उसे ले केवल ब्राह्मण के बिना दूसरा जन मेरे पेट में घुस के फिर जीवन पाकर नहीं निकल सकता सो तुम यह विद्या लो मैं तुमको जीवन देता हूँ। बेटा! मेरी देह से निकलकर पुत्रक्रयी होकर मुझको जिलाओ! गुरु से विद्या लाभ करके विद्यावान् होकर धर्मपथ पर दृष्टि रखना, अकृतज्ञ न होना। कच ने गुरु से संजीवनी विद्या लाभ कर जिस प्रकार पूर्णमासी के दिन सूर्य के अस्त होने पर पूर्ण चन्द्रमा प्रकट होता है, उसी भांति शुक्र की कांख को फाड़कर उसी क्षण साक्षात् निकल आए।

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्यां, भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः ॥ ६१ ।

अनन्तर ब्रह्मपुञ्ज शुक्र को मरे और गिरे हुए देखकर संजीवनी विद्या से उसको जिलाय और उठा करके उस सिद्ध संजीवनी विद्या को प्राप्त कर गुरु को भक्ति से प्रणाम कर अपने घर को आए।[१]

यही कथा **मत्स्यपुराण** अध्याय २५ में भी लिखी है।

राजा ययाति का अपने पुत्र पूरु को बुढ़ापा देकर युवापन को लेना फिर एक सहस्त्र वर्ष आनन्द करने के पीछे फिर पुत्र से बुढ़ापा लेना, तरुणाई देना।

---

१. उपर्युक्त कथा पर आप विचार करें कि क्या आपकी सम्मति में यह होना सम्भव है? इसके अतिरिक्त शुक्राचार्य राक्षसों के पुरोहित थे तो क्या वह नरमांस के खाने वाले भी थे? क्योंकि जब राक्षसों ने कच को चूर्ण कर और तीसरी बार उसके शरीर को जला मदिरा में मिला गुरु शुक्राचार्य को पिला दिया, उस समय उनको मनुष्य शक्ति की गन्ध भी नहीं आई? इसके उपरान्त पेट का बोलना, कोख फाड़कर निकलना, इन असम्भव बातों का क्या ठीक? अब यदि मान भी लिया जावे कि ऐसी संजीवनी विद्या शुक्राचार्य के पास थी तो महाभारत में मृतक देवासुरों को क्यों नहीं जीवित कर लिया एवं अपने आप स्वयं उस विद्या के होते भी मर गये।

हमारी सम्मति में वर्त्तमान सनातनधर्मी इस मृत संजीवनी विद्या की खोज कर मृत पितरों को जीवित कर लें तो बड़ा ही उपकार हो।

महाभारत आदि पर्व अध्याय ८४-८५।

राजा नहुष के पुत्र ययाति सम्राट् हुए जिन्होंने पृथिवी का पालन कर अनेक यज्ञ किये। जिनके देवयानी के गर्भ से यदु, तुर्वसु, शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पूरु उत्पन्न हुए। राजा बहुत काल तक राज्य करते रहे, अन्त को कठोर जरा से पकड़े गये। तब राजा ने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन पांचों पुत्रों को बुलाकर कहा कि मैं युवापन प्राप्त कर मनमाना भोग करना चाहता हूँ, तुम मेरा बुढ़ापा ले लो तो मैं तुम्हारे यौवन से बहुत काल तक सुख भोगूं, मैं दीर्घयज्ञों में दीक्षित था, उस काल में मुनि शुक्राचार्य के शाप से जराग्रस्त हुआ हूँ, इसलिए मैं सन्तापित हो रहा हूँ। परन्तु किसी ने भी स्वीकार न किया। तब छोटे पुत्र सत्यविक्रमी पूरु ने कहा कि आप मेरे यौवन को ले, नये शरीर में विराजिए, मैं आपकी आज्ञा से जरा लेकर राज्यशासन करता हूँ। यह सुन राजा ने तप और वीर्य के बल से उस महात्मा पुत्र में बुढ़ापा प्रविष्ट कराया। राजा अपने पुत्र का यौवन पाकर युवा बने। पूरु ययाति की वृद्धावस्था लेकर राज्य शासन करने लगे—

एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महातपाः।
संक्रामयामास जरां तदा पूरौ महात्मनि॥ ८४.३४॥

अब राजा को इस नये शरीर में दो पत्नियों से आनन्द करते हुए सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये और भोगों से तृप्त न हुए तब बुद्धि में यह विचार कर कि आग में घृत छोड़ने से जिस प्रकार अग्नि बढ़ती है उसी प्रकार कामोत्पादक वस्तुओं के देखने से काम बढ़ता ही है। इसी तरह अनेक प्रकार से मन को समझाकर अपने पुत्र को यौवन दे बुढ़ापा ले लिया।[१]

---

१. कहिए पण्डित जी! आपकी बुद्धि में यह आता है कि पिता ने बुढ़ापा दे पुत्र का यौवन ले लिया हो? यदि ऐसा उस समय सम्भव था तो फिर क्या कर्मों का फल निष्फल हो जाता था। पण्डित जी पुराणों के लेखों को कभी आपने विचारा ही नहीं। इनका परस्पर मिलान महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने ही किया, तिस पर भी आप सब अप्रसन्न होते हैं।

धृतराष्ट्र महाराज के सौ पुत्रों की अद्भुत उत्पत्ति।

महाभारत आदिपर्व अध्याय ११४।

एक समय भगवान् द्वैपायन भूख और थकावट से कातर होकर गांधारी के पास आये। गांधारी ने उनको सन्तुष्ट किया, उससे व्यास ने गांधारी की प्रार्थना के अनुसार यह वर दिया कि तुम्हारे पति के समान वीर्यवान् सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। अनन्तर गांधारी योग्यकाल में धृतराष्ट्र से गर्भवती हुई। गर्भ होने के पीछे दो वर्ष बीते पर तब भी सन्तान नहीं हुई, इससे वह बड़ी दुःखी होने लगी। आगे यह सुनकर कुन्ती के बाल सूर्य के समान पुत्र भये हैं, अपने गर्भ को स्थिर देखकर चिन्तायुक्त होकर अति मानसिक पीड़ा से व्याकुल होकर धृतराष्ट्र से छिपकर यत्नपूर्वक अपने पेट में आघात किया उससे दो वर्ष का वह गर्भ कटी हुई लोहे की गेंद के समान मांस पेशीस्वरूप में भूमि पर गिरा। त्यों ही व्यास जी यह जान वहाँ पहुंचे और उनको देखकर कहा कि तुमने यह क्या किया है? गांधारी ने कहा कि कुन्ती के सूर्य के समान पुत्र उत्पन्न हुए सुनकर अति दुःख से मैंने पेट में चोट मारी, आपने पहिले मुझको वर दिया था कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, अब सौ पुत्रों के बदले मांस पेशी पैदा हुई है। तब व्यास जी ने कहा कि जो कहा सो ही होगा। अब घृत से सौ घड़े भरकर अलग-अलग यत्न से रक्खो और ठण्डे जल से इस मांसपेशी को निहलाओ, अनन्तर इसके निहलाते-निहलाते मांसपेशी बहुत हिस्सों में बट गई और प्रत्येक भाग अंगूठे के पोरे के समान हुआ, अनन्तर वह सब मांसपेशी घृत भरे घड़ों में रक्षित होकर अच्छे गुप्तस्थान में भली भांति रक्खी जाने लगीं—

स्वनुगुप्तेषु देशेषु रक्षां वै व्यदधात्ततः ॥ २१ ॥

व्यास जी ने कहा कि दो वर्ष के पीछे यह सब घड़े खोलना, यह कह तप के लिए चले गये। फिर योग्य काल में उन टुकड़ों से पहले राजा दुर्योधन का जन्म हुआ।

फिर एक महीने के अन्तर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र और कन्या ने जन्म लिया।[1]

---

१. इस पर आप स्वयं विचार करें।

गौतममुनि का वीर्य एक सरकण्डे पर गिरना-उससे पुत्र और पुत्री का उत्पन्न होना जिनका राजा शान्तनु का कृपापूर्वक पालन कर कृप और कृपी नाम रखना।

आदिपर्व अध्याय १२९।

एक समय गौतममुनि तपस्या में दृढ़ता से लग रहे थे तब देवराज ने जानपदीनाम्नी देवबाला को भेजा, वह उनके आश्रम पर पहुंच उनको लुभाने लगी, गौतम ने उस परमसुन्दरी को देखा तो उनके नेत्रों में प्रफुल्लिता छा गई। उनके हाथ से धनुष-बाण धरती पर गिर पड़ा, देह कांपने लगी तो भी उत्तम ज्ञान और तपस्या में दृढ़ प्रतिज्ञा रहने से वह उत्तम धीरज धरे रहे परन्तु उसके देखने मात्र के विकार ही से उनका वीर्य गिर गया था पर वह उस बात को नहीं जान सके, अनन्तर वह धनुष-बाण कृष्णासार मृग का चर्म और उस आश्रम और अप्सरा को तजकर अन्य स्थान में चले गये। उनका वीर्य—

जगाम रेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात च।

सरकण्डे की लकड़ी पर गिरा था इसलिए वह दो भाग हो गया उसमें एक कन्या और एक पुत्र का जन्म हुआ।

शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप॥ १३॥

तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः। १४।

अनन्तर मृगया के लिए मनमाने घूमने वाले महाराज शान्तनु के एक सैनिक ने वन में उस पुत्र और कन्या को देखा। वह धुनर्बाण और मृग का चर्म देख कर समझा कि यह दोनों धनुर्वेद में दक्ष किसी ब्राह्मण की सन्तान हैं, तब उस सैनिक ने धनुर्बाण और दोनों बच्चों को ले जाकर नरनाथ को दिखलाया। उन्होंने यह कह कर कि यह मेरी सन्तान हैं, ले लिया और उनके सब संस्कार किये चूंकि राजा ने कृपापूर्वक उनको पाला था इसलिए उनका कृपा और कृपी नाम रक्खा।[१]

---

१. यह कथा उससे भी अद्‌भुत है। वहाँ तो रसौली को घड़े में रखने से पुत्रोत्पत्ति हुई परन्तु यहाँ सरकण्डे के ऊपर .....गिरने से पुत्र और कन्या की उत्पत्ति हो गई।

एक हरिणी के गर्भ से ऋष्यशृङ्ग का जन्म होना।

वनपर्व अध्याय ११०।

कश्यपमुनि एक तड़ाग के निकट तपस्या करते थे। बहुत काल बीतने पर एक दिन जल में स्नान करते समय उर्वशी अप्सरा को देखते ही उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस वीर्य को एक हरिणी पी गई, वह बहुत प्यासी थी, इसलिए गर्भिणी हो गई। वह पहिले जन्म की देव कन्या थी, जो ब्रह्मा के शाप से हिरणी बनी थी और ब्रह्मा ने उससे यह भी कह दिया था कि जब तेरे गर्भ से मुनि का जन्म होगा तब ही तू इस योनि से छूटेगी। ब्रह्मा का ऐसा वचन अमोघ होने के कारण उस हरिणी के गर्भ से महामुनि शृंगीऋषि का जन्म हुआ—

तस्यां मृग्यां समभवत्तस्य पुत्रो महानृषिः।
ऋष्यशृङ्गस्तपोनित्यो वन एवाभ्यवर्त्तत॥ ३८॥

जो तप करने के कारण सदा वन ही में रहने लगे।

तस्यर्षेः शृङ्गं शिरसि राजन्नासीन्महात्मनः॥ ३९॥

हे राजन्! महात्मा शृङ्गी ऋषि के सिर पर दो सींग थे इसलिए उनका यह नाम हुआ।[१]

राजा युवनाश्व की कोख से पुत्र का उत्पन्न होना।

महाभारत वनपर्व अध्याय १२६।

इक्ष्वाकुवंश में युवनाश्व नाम एक राजा हुए, जिन्होंने अनेक यज्ञ किये थे परन्तु कोई पुत्र न था। राजा अपना राज्य मन्त्रियों को दे आप योगाभ्यास को चले गये और एक दिन भूख-प्यास से व्याकुल हो भृगु

प्यारे सनातनी भाइयो! कुछ तो विचार करते न कि केवल "हरे नमः" महाराज ही कहते चले जाओगे? मूर्ख से मूर्ख किसान भी इस बात को जान सकता है कि अंकुरोत्पत्ति तब ही होती है जब कि पृथ्वी और बीज रीत्यनुसार मिलते हैं न कि विपरीत रीति से॥

१. **पण्डित जी**—और लीजिए हरिणी से मनुष्य की उत्पत्ति होने लगी! अब क्या अब तो जिससे चाहे मनुष्य उत्पन्न कर लीजिए।

आश्रम में पहुंचे। उसी रात्रि में भृगु ने सौद्युम्न राजा के वास्ते पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। राजा युवनाश्व सौद्युम्न से पहिले उस आश्रम में पहुंचा जहाँ मन्त्र के पवित्र किये हुए कलश में जल भरा रक्खा था। ऋषि लोग थक कर सब सो गये थे। राजा ने उसी समय ऋषियों से जल मांगा, परन्तु सूखे कण्ठ का कोमल शब्द ऋषियों ने न सुना। तब राजा ने कलश के पास जाकर जल पी लिया और बहुत शान्त हुआ जब ऋषि उठे तो उन्होंने कलश को जल से खाली देखा और सब लोगों से पूछा कि यह किसका निन्दित कर्म है? राजा युवनाश्व ने कहा कि यह मेरा कर्म है। तब भृगु ने कहा कि यह कर्म तुम ने अच्छा नहीं किया। यह जल पुत्र के वास्ते मन्त्रों से शुद्ध किया गया था। मैंने तप करके पुत्र के वास्ते यह जल रक्खा था। इसलिए तुम्हारे अतुल पराक्रमी पुत्र होगा जो अपने बल से इन्द्र को भी परास्त करेगा और गर्भाधान का दुःख भी तुम को प्राप्त न होगा। तब सौ वर्ष पूरे होने के पश्चात् महात्मा राजा युवनाश्व की बाईं कोख फटी और सूर्य के समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु राजा युवनाश्व मरे नहीं, यह एक अद्‌भुत कर्म हुआ—

वामं पार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः॥ २७॥
निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत्॥ २८॥

तब महातेजस्वी इन्द्र उस पुत्र को देखने के वास्ते आये। इन्द्र से देवताओं ने कहा कि इसे कौन पालेगा? उसने अपनी छनअंगुली उस बालक के मुख में दे दी और कहा कि मैं इसको पालूंगा, तब ही इन्द्रादि देवताओं ने उस बालक का नाम मानधाता रक्खा। इन्द्र की छनअंगुली को पीकर वह बालक बढ़ने लगा।[१]

---

१. **पण्डित जी!** अभी तक मथने अथवा मनुष्य वीर्य से अद्भुत-अद्भुत उत्पत्ति आपको सुनाईं अब आपने मन्त्रों से पढ़े जल के पीने से राजा की कोख से पुत्र उत्पत्ति सुनी अब और क्या सुनावें। राजा के दूध के स्थान नहीं जमे, उसके लिए इन्द्र की अंगुली ने काम दिया। सामान्य रीति से सन्तान १० व ११ व १२ महीने में उत्पन्न होती है परन्तु राजा के पेट में १०० वर्ष गर्भ रहा। देखिए श्रीमान् यह पुराणों के चमत्कार हैं।

राजा सोमक का पुत्रों के अर्थ जन्तु नामक पुत्र की चर्बी से हवन करना, उसकी गन्ध से रानियों के पुत्र उत्पन्न होना।

वनपर्व अध्याय १२७।

सोमक नाम राजा था उसके एक स्वरूपवती स्त्री थी जिसने पुत्र उत्पन्न करने के लिए बड़े यत्न किये पर कोई पुत्र न हुआ। जब राजा बड़ा हुआ तब जन्तु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। माताओं ने उसको लेकर पिछवाड़े फेंक दिया। जब उस जन्तु को चींटियों ने काटा तो उसने भयानक शब्द किया तब सब माताओं ने बहुत दुःखी होकर जन्तु को रोने से रोका परन्तु वह न रुका और उसके रोने के शब्द को राजा सुन मन्त्रियों समेत उठकर पिछवाड़े गया। वहाँ से पुत्र को लेकर रणवास में आया और कहा कि एक पुत्र वाले को सदा सन्देह रहता है इसलिए उसको धिक्कार है। एक पुत्र का होना अच्छा नहीं। मैंने पुत्र की इच्छा से सौ स्त्रियाँ कीं, उसमें से किसी एक के केवल यही जन्तु नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ है सो भी उत्तम नहीं इससे अधिक और मुझको क्या दुःख होगा इसके उपरान्त मेरी और मेरी स्त्रियों की अवस्था व्यतीत हो गई इसलिए हम सबके प्राण इसी में धरे रहते हैं यदि कोई ऐसा उपाय कठिन भी हो जिससे सौ पुत्र उत्पन्न हो जावें तो भी मैं करूंगा।

ऋत्विक् ने कहा ऐसा कर्म है परन्तु आप जब कर सकें। तब राजा ने कहा चाहे मेरे करने योग्य हो चाहे अयोग्य तो भी मैं सौ पुत्रों की चाहना के लिए करने का उद्यत हूँ। ऋत्विक् ने कहा कि आप जन्तु से यज्ञ कीजिए तो आपके सौ पुत्र होंगे जब चर्बी का होम किया जाएगा तब उसके धुएं को सूंघ के तुम्हारी सब स्त्रियों के पुत्र ही उत्पन्न होंगे। उस यज्ञ में मरने से उसी स्त्री के जिसका यह अब पुत्र है, उसी के फिर उत्पन्न होगा और उसी की कोख में सोने का एक चिह्न रहेगा। पुनः—

तस्यामेव तु ते जन्तुर्भविता पुनरात्मजः।
उत्तरे चास्य सौवर्णं लक्ष्म पार्श्वे भविष्यति॥ २१॥

राजा ने पुत्र की इच्छा से यज्ञ आरम्भ कर जन्तु को मारना चाहा तब

उसकी माता ने हाहाकार मचाया तो भी ऋत्विक् ने बल से उसको छीन उसकी चर्बी से हवन किया। स्त्रियों ने उसकी गन्ध को सूंघा यज्ञ के प्रताप से सब स्त्रियों के गर्भ रहा—

सर्वाश्च गर्भानलभंस्ततस्ताः परमाङ्गनाः। १२८.६॥

दशवें महीने में राजा सोमक के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें जन्तु सबसे बड़ा हुआ। सब माताओं को जैसा जन्तु प्यारा था वैसा कोई पुत्र नहीं। उसकी कोख में सुवर्ण का चिह्न भी था और वही सबमें अधिक गुणवान् था।[१]

अष्टावक्र का गर्भ के भीतर बोलना और पिता के शाप से आठ जगह टेढ़ा होना।

वनपर्व अध्याय १३२।

उद्दालक नाम ऋषि के कहोड़ नामी एक शिष्य थे। वह गुरु की बहुत सेवा करते थे और उनके ही घर में रहते थे, इस कारण बहुत दिन पढ़ते रहे। जब उद्दालक ने कहोड़ को अपना भक्त जाना तो अपनी पुत्री का विवाह कहोड़ के साथ कर दिया। तदनन्तर कहोड़ की स्त्री को गर्भ रहा। एक दिन उस बालक ने गर्भ ही में से अपने पिता से कहा कि हे पिता! तुम समस्त रात्रि पढ़ते ही रहते हो सो यह कर्म उचित नहीं

सर्वां रात्रिमध्ययनं करोषि नेदं पितः सम्यगिवोपर्त्तते॥ १०॥

---

१. ऋषिसन्तानो! कहाँ तो वेदों की यह आज्ञा कि "**मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्०**" अन्यत्र इसी के अनुयायी महर्षि गणों का यह उपदेश है कि "**अहिंसा परमो धर्मः**" और कहाँ यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में यह घोर हत्या और बालक की चर्बी का हवन?

सज्जनो! विचारो तो सही कि वास्तविक आपके पुरुषा ऐसे ही निर्दयी एवं अपवित्र कर्मों के कर्त्ता थे? यदि नहीं, तो इस दुराग्रह को आप क्यों नहीं छोड़कर एक मुख हो कह देते हो कि यह वाममार्गियों की कपोल कल्पना है न कि ऋषि-मुनियों की, पदार्थविज्ञानी एवं भिषग्वर इस बात पर विचार करें कि चर्बी के जलाने से क्या गर्भस्थिति हो सकती है? ऐसी ही बातों ने तो सनातनधर्म का गौरव इतर देश-निवासियों की दृष्टि में घटा दिया परन्तु शोक है कि फिर भी सनातनी भाई एक स्वर होकर यह नहीं कहते कि यह पुराण व्यास ऋषिकृत नहीं है।

शिष्यों के मध्य में महर्षि कहोड़ ने अपनी निन्दा सुन क्रोधित हो कर कहा कि जो तू गर्भ के भीतर ही से बोलता है इसलिए तू आठ जगह से टेढ़ा होगा जिसके कारण ही उनका नाम अष्टावक्र हुआ है।[१]

एक मत्स्य का बढ़ना और प्रलय के समय नाव का रोकना

वनपर्व अध्याय १८७।

सूर्य के पुत्र महाप्रतापवान् और प्रजापति के समान तेजस्वी मनु हुए जिन्होंने बदरिका आश्रम में जाकर ऊर्ध्वबाहु होकर एक चरण पर खड़े होकर दश सहस्र वर्ष जिह्वा, शिर और नेत्रों को स्थिर करके घोर तप किया। एक दिन भीगे वस्त्र जटाधारी मनु के पास जाकर एक मत्स्य बोला कि भगवन्! मैं बहुत छोटा हूँ, इससे मुझको बड़े मत्स्यों से बड़ा डर लगता है, आप उनसे हमारी रक्षा करो, मैं भी आपको इस प्रकार बदला दूंगा। यह सुन दया से उसको पकड़ लिया, फिर उसको एक पात्र में छोड़ दिया और पुत्र के समान उसका पालन करने लगे जब वह बहुत बड़ा हो गया तो वह बोला कि भगवन्! मेरे लिए कोई दूसरा स्थान बतलाइये। तब उन्होंने उस बरतन से निकालकर बावड़ी में डाल दिया। बहुत वर्ष बीतने पर जब वह उसमें भी न समाया तो आठ कोस लम्बी चौड़ी गङ्गा में डाल दिया। जब वह उसमें भी बढ़ने लगा तब मुनि से कहा कि मैं चल फिर नहीं सकता

---

१. पण्डित जी साहिब! ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (प्रकृतिखण्ड ३७.१७) में कहा है कि "**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**"। अर्थात् प्राणियों को अपने किये हुए कर्मों के अनुसार फल मिलता है। जैसा कि बाबा तुलसीदास जी ने कहा है कि—

कर्मप्रधान विश्व कर राखा।

जो जस कीन तैस फल चाखा॥

तो बताओ बच्चे ने कर्म ही क्या किया? यदि कहो कि उसने पेट में से कहा कि सम्पूर्ण रात पढ़ना ठीक नहीं, प्रथम तो गर्भ में बोलना ही ठीक नहीं और यदि बोला और उपर्युक्त बात कही तो क्या पाप किया, जिस पर पिता ने ऐसा शाप दिया कि तू आठ जगह से टेढ़ा होगा, ऐसा ही हुआ? देखिए महाराज बिना अपराध के ऐसा कठोर दण्ड क्या यही महात्मापन का कार्य है?

इसलिए आप प्रसन्न होकर समुद्र में डाल दीजिए। पुनः वह हंसकर बोला कि आपने मेरी बड़ी रक्षा की है इसलिए मैं कहता हूँ कि थोड़े ही काल में इस सब चर और अचर जगत् की प्रलय होगी। यह समय सब लोगों के नष्ट होने का आया है। इसलिए हम आपको हित की बात सुनाते हैं कि आप एक नाव बनाइये और उसमें दृढ़ रस्सी बांधिये, जब प्रलय का समय आवेगा तब आप सप्त ऋषियों के सहित उसी नाव में चढ़ियेगा और उसी नाव में सब जगत् के वस्तुओं के बीजों को रक्षा पूर्वक क्रम से रख लीजिएगा हे मुनिजन! आप उस नाव में बैठ हमारा मार्ग देखना, तब हम आवेंगे, आप हमारे सिर पर सींग देखकर हमको पहचान लेना, अब हम जाते हैं। आप बिना मेरी सहायता के उस घोर जल को तैर नहीं सकते आप मेरे वचन में शंका मत कीजिए। मत्स्य के वचन सुन मनु ने कहा कि हम ऐसा ही करेंगे। अनन्तर वे दोनों परस्पर आज्ञा लेकर इच्छानुसार चले गये। उसके पश्चात् महाराज मनु ने उसके कथनानुसार सब जगत् की वस्तुओं को इकट्ठा किया। फिर एक सुन्दर नाव में बैठ कर घोर तरङ्गवाले हिमालय के शिखर से बांध दिया फिर उस मत्स्य ने कहा कि हे ऋषियो! मुनि लोग, हमको ही प्रजापति कहते हैं, हमारा नाम ब्रह्मा है, हमने मत्स्यरूप धारण कर इस आपत्ति से आपको छुड़ाया है।[१]

विश्वामित्र ने चुराकर आपत्तिकाल के समय कुत्ते का मांस पकाया फिर उसको इन्द्र बाज बन ले गया।

अनुशासनपर्व अध्याय ३।

वीर्यशाली विश्वामित्र ने तपस्या के प्रभाव से महात्मा वसिष्ठ के एक सौ पुत्रों का नाश किया था। उनके शरीर में क्रोध उत्पन्न होने पर उन्होंने बहुतेरे महातेजस्वी यातुधान राक्षसों को उत्पन्न किया। एक सौ ब्रह्म ऋषियों से युक्त विद्वान् अत्यन्त महान् कुशिकवंश इस मनुष्य लोक में ब्राह्मणों के द्वारा स्तुतियुक्त होकर स्थापित हुआ। ऋचीक के पुत्र महातपस्वी शुनःशेप पशुत्व को प्राप्त होकर महायज्ञ से विमोक्षित हुए। हरिश्चन्द्र के उस यज्ञ में

१. श्रीमान् इस कथा की और बातों को छोड़ कर प्रलय की ओर आप ध्यान दीजिए कि सब स्थावर जंगम की प्रलय हुई तो रस्सी नौका जड़वस्तु और सप्त ऋषि मछली शरीरधारी यह किस प्रकार शेष रह सकते हैं, यदि रहे तो प्रलय कैसी?

विश्वामित्र ने निज के तेज के सहारे यज्ञ में देवताओं को सन्तुष्ट कर शुनःशेप को छुड़ाया, अतः शुनःशेप ने बुद्धिमान् विश्वामित्र का पुत्रत्व लाभ किया। शुनःशेप के ज्येष्ठ तथा राजा होने पर भी विश्वामित्र के अन्य पुत्रों ने उसे प्रणाम नहीं किया, इसी से उन्होंने उन पचास पुत्रों को शाप दिया, वे सब चाण्डाल हो गये। इक्ष्वाकु का पुत्र त्रिशंकु वसिष्ठ के शाप से चाण्डाल हो गया इसी से उसके बांधवों ने उसका परित्याग किया। अनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट उसके दक्षिण दिशा का अवलम्बन करके अवाक्शिरा होने पर विश्वामित्र ने उसे स्वर्ग भेजा।

विश्वामित्र की कौशिकी नाम की देवर्षियों से सेवित एक बहुत बड़ी नदी थी, उस कल्याणी पुण्य सलिलवाली श्रेष्ठ नदी की देवता और ब्रह्मर्षि लोग सदा सेवा करते थे। पांच चोटीवाली उत्तम प्रसिद्ध रम्भा नाम की अप्सरा उसकी तपस्या में विघ्न करने से शाप वश से शिला हो गई थी।

इसी ऋषि के भय से पहिले समय में वसिष्ठ मुनि रज्जुबन्धन के सहित जल में डूबे थे और विपाश (पाशरहित) होकर जल से उठे थे, तभी से पुण्य सलिलवाली महानदी महात्मा वसिष्ठ के उस ही कर्म से विपाशा नाम से विख्यात हुई।

विश्वामित्र त्रिशंकु के यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए। तब वसिष्ठ मुनि के पुत्रों ने उन्हें यह कह के शाप दिया कि जब तुम चांडाल के पुरोहित हुए हो तो स्वयं चांडाल हो जाओगे इस ही शाप के सत्य होने के निमित्त किसी आपत्ति काल में विश्वामित्र ने चौर्यवृत्ति से कुत्ते का निकृष्ट मांस चुराकर उसे पकाना आरम्भ किया। इतने ही समय में इन्द्र ने बाज पक्षी का रूप धारण कर उस मांस का हरण किया। इस समय विश्वामित्र ने भगवान् इन्द्र की स्तुति की, इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन्हें शाप से मुक्त कर दिया।[१]

---

१. प्यारे सनातनी भाईयो! क्या वास्तव में अब भी ऐसी कथा पढ़कर कि विश्वामित्र ने चुराकर खाने के लिए कुत्ते का मांस पकाया, यही कहते रहोगे कि यह व्यास प्रणीत है? कारण कि जंगली जात को छोड़ जिनको कि आप म्लेच्छ कहते हैं, वह भी तो चाहे जैसी आपत्ति क्यों न हो, कुत्ते का मांस खाना स्वीकार न करेंगे न कि आप के ऋषि विश्वामित्र ऐसे घृणित कार्य करने के लिए बद्धपरिकर हुए। शोक!!! (१) यह बात इसको स्पष्टतया प्रकट करती है कि कर्म से ही जाति

राजा भङ्गास्वन का एक जलाशय में स्नान करके स्त्री होना फिर तपस्या करके उसके सौ पुत्रों का होना।

अनुशासन पर्व अध्याय १२।

प्राचीन काल में भङ्गास्वन नाम एक धार्मिक राजा था। उसमें और इन्द्र में शत्रुता हो गई। एक समय राजा मृगया को गया, तब इन्द्र ने वही समय उत्तम समझकर उसे मोहित करना आरम्भ किया। राजा इन्द्र के द्वारा मोहित होकर अकेला ही घोड़े पर सवार हो भ्रमण को जाते हुए वहाँ भूख-प्यास से पीड़ित होकर दिशा भूल गया। तब इधर-उधर फिर कर घोड़ा एक वृक्ष से बांध दिया और फिर जल में स्वयं स्नान करने लगा, स्नान करते ही राजा स्त्री हो गया—

अथ पीतोदकं सोऽश्वं वृक्षे बद्ध्वा नृपोत्तमः।
अवगाह्य ततः स्नातस्तत्र स्त्रीत्वमुपागतः॥ १०॥

राजा अपने स्त्री रूप को देखकर बहुत व्याकुल हुआ कि क्यों कर नगर को जाऊं और अपने एक सौ और सुपुत्रों का सुख कैसे भोगूंगा, न जाने मैं क्योंकर स्त्रीत्व को प्राप्त हुआ? इस भांति नाना प्रकार के सोच-विचार कर अन्त को घोड़े पर चढ़ नगर में आया, अपने स्त्रीत्व का सब वृत्तान्त कह सुनाया, फिर कहा कि तुम सब प्रेम से राज्य करो, मैं वन को जाता हूँ, ऐसा कह वन को चला गया। वहाँ पर एक तपस्वी के आश्रम के समीप तपस्या करने लगा, जिसके गर्भ द्वारा एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए—

तापसेनास्य पुत्राणामाश्रमेष्वभवच्छतम्।
अथ सादाय तान् सर्वान् पूर्वपुत्रानभाषत॥ २४॥
पुरुषत्वे सुता यूयं स्त्रीत्वे चेमे शतं सुताः॥ २५॥

होती है न कि केवल जन्म से क्योंकि त्रिशंकु चांडाल के पुरोहित बनने के लिए विश्वामित्र भी चाण्डाल हो गये और फिर उसी जन्म में इन्द्र ने उन्हें फिर शुद्ध कर दिया। अब यदि आर्य समाज अपने वियोगी भाइयों को प्रायश्चित्त कर शुद्ध करता है तो क्या हमारे सनातनी भाईयों का यह धर्म है कि उससे द्रोह व उसके कार्य में विघ्न डालें? किन्तु ऐसे उदाहरणों को देख उनको चाहिए कि इस शुद्धि कार्य में सहायक बन वेदोक्त धर्म के अनुयायी बनें।

अन्त को सौ पुत्रों को लेकर अपने राज्य में गया और प्रथम के पुत्रों से कहा कि तुम मेरे पुरुष अवस्था के पुत्र हो और यह मेरे स्त्रीत्व प्राप्त होने की अवस्था के सौ पुत्र हैं इसलिए तुम प्रेम से रहकर राज्य भोग करो।

लीजिए **पण्डित जी**! इस कथा से तो स्पष्ट प्रकट हो गया कि ईश्वरीय नियम कुछ नहीं क्योंकि पुरुष अपने शरीर से स्त्रीशरीरधारी हो गया। फिर उसी स्त्री से सौ पुत्रों की उत्पत्ति हो गई।

श्री पण्डित जी—सेठ जी! बस कीजिए, मैं इस विषय को सुन तृप्त हो गया। अब कल से किसी और विषय को सुनाइए।

सेठ जी—श्री महाराज मुझे तो अभी और सुनाना था पर आपकी ऐसी इच्छा है तो इस समय समाप्त करता हूँ। फिर देखा जाएगा। ओम् शम्।

पण्डित जी व अन्य महाशयों ने चलने की तय्यारी की।

सेठ जी पण्डित जी को नमस्ते व अन्यों को यथायोग्य कह अपने कार्य में लग गये।

इति अष्टादश परिच्छेद।

बृहस्पति जी का मिथ्या बोलना। वसिष्ठ और विश्वामित्र जी का क्रोधी होना। कश्यप का चोरी और अगस्त्य जी का मनुष्य मांस भक्षण करना। पढ़कर रोना आता है क्योंकि हम सब ऋषियों की सन्तान होते हुए अपने प्राचीन पुरुषाओं की निन्दा को पढ़ते-सुनते चले जाते हैं और कुछ विचार नहीं करते। क्या पण्डित जी ऋषियों का रक्त शरीर में शेष नहीं रहा? जब ही तो इन निन्दायुक्त पुराणों के न मानने वाले आर्य्यों को आप निन्दक कहते हैं।

—पृष्ठ २९२-२९३

अथ एकोनविंश परिच्छेद

सेठ जी ने श्री पण्डित जी को व अन्य महाश्यों को आते देख नम्रतापूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये, विराजिए।

पण्डित जी आयुष्मान् तथा अन्य महाशय यथायोग्य कह विराजमान हुए।

सेठ जी ने कहा कि श्रीमहाराज! आज मैं आपको आपकी आज्ञानुसार पुराणों से गणेश जी की उत्पत्ति सुनाता हूँ, देखिए—

गणेश-उत्पत्ति

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३२-३३ से

शिव जी महाराज पार्वती जी के साथ विवाह करने के पीछे कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे। कुछ काल के पश्चात् जया और विजया सखी पार्वती के साथ विचार करने लगीं कि शिव जी के पास असंख्य गण हैं जो उनकी आज्ञा पाकर द्वार पर रहते हैं। हमारे कोई भी गण नहीं। यद्यपि महादेव के गण हमारे ही गण हैं तो भी हमारा मन उनसे नहीं मिलता। सखियों की यह बात सुन पार्वती जी विचार करने लगीं। एक समय पार्वती जी स्नान कर रही थीं, नन्दी द्वार पर स्थित थे। शिव जी उसके निषेध करने पर भी भीतर चले गये तब पार्वती लज्जित होकर स्नान से उठ बैठीं, फिर सखी की बात विचार हाथ में जल लेकर अपने शरीर से मैल उतार सब अवयवों सहित सुन्दर पुत्र का निर्माण कर द्वार पर बिठला दिया और कह दिया कि कोई भीतर न आने पावे—

प्रतिष्ठाप्य तदा द्वारि निवार्यो य इहागमेत्॥ १९॥

फिर दूसरी बार पार्वती जी सखियों सहित स्नान करने को बैठीं, उसी समय महादेव जी गणों सहित पधारे और भीतर जाने लगे, उस समय गणेश जी ने मना किया कि माता जी स्नान करती हैं और लकड़ी उठाई तब शिव जी ने कहा कि मैं गिरिजापति हूँ-और भीतर चलने लगे गणेश जी ने लकड़ी उठाकर ताड़न किया, उस समय शिव जी ने क्रोधित होकर

गणों को आज्ञा दी और आपस में संग्राम होने लगा और बड़ा युद्ध हुआ। इतने में ब्रह्मा जी गये, तब गणेश ने उनकी दाढ़ी-मूंछ उखाड़ ली, तब शिव जी को क्रोध आया और उनकी आज्ञा से अनेकों भूत-प्रेत-पिशाचादि आ गये। इधर पार्वती ने अपने गणों के निमित्त दो शक्ति उत्पन्न कीं जिनके साथ बड़ा संग्राम हुआ। अन्त को शिव जी ने गणेश का शिर त्रिशूल से अलग कर दिया—

एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे।
आगत्य च त्रिशूलेन शिरस्तस्य न्यपातयत्॥ ३३.६९॥

जिसको सुन पार्वती ने हज़ारों शक्तियाँ उत्पन्न कर दीं जो संहार करने लगीं, तब नारद आदि सब देवता महादेव जी सहित पार्वती जी के मन्दिर में गये और अनेक प्रकार से विनय की। तब उन्होंने कहा कि यदि मेरा पुत्र जी जावे और पूजनीय हो जावे तो सबको आराम हो सकता है, वरन् नहीं। तब शिव जी ने शिर को तलाश कराया परन्तु जब वह नहीं मिला, तब शिव जी ने कहा कि देवताओ! उत्तर की ओर जाओ, उधर से जो प्रथम आता हुआ मिले उसी का शिर लाकर इसके शरीर में दो। वह चले गये प्रथम उसको एक दांत का हाथी मिला, वे उसका शिर छेदन करके लाये और उसके गले पर अर्थात् शरीर पर लगाया तो शिव, विष्णु और ब्रह्मा जी ने कहा कि जिस महात्मा के तेज से हम सम्पूर्ण उत्पन्न हुए हैं, वही तेज आकर प्राप्त हो। इतना कहते ही वह सुन्दर अंगयुक्त बालक उठ बैठा—

इत्येवमभिमन्त्रेण मन्त्रितं च यदा पुनः। ३९॥
तदोत्तस्थौ पुनश्चायं शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा॥

तब इन गजानन का सब देवताओं ने अभिषेक किया—

अभिषिक्तस्तदा देवैर्गणाध्यक्षैर्गजाननः॥ ४०॥

वामन पुराण से गणेश जी की उत्पत्ति।

अध्याय ५४ में लिखा है कि पर्वत पर महादेव जी पार्वती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन पार्वती से महादेव जी ने काली कहा, यह सुन वह हिमालय पर्वती पर तप करने चली गई और सौ वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्मा जी वहाँ गये, और कहा कि तेरे तप से मैं प्रसन्न हूँ, तेरे सब

पाप कट गये, अब इच्छापूर्वक तुम वर मांगो। तब पार्वती ने कहा कि मेरा शरीर सुवर्ण के समान हो जावे। ब्रह्मा जी यही वर देकर चले गये और पार्वती मन्दराचल पर्वत पर जाकर महादेव जी के साथ रहने लगी। महादेव जी भी हज़ार वर्ष तक महामोह में उनके साथ लिप्त हो गये और तब सभी देवताओं इन्द्र और अग्नि को साथ लेकर वहाँ गये, तब अग्नि हंस का रूप धर वहाँ पहुंचे जहाँ महादेव आनन्द कर रहे थे, यह तुरन्त पार्वती को त्याग बाहर आये। सब देवताओं ने प्रणाम किया फिर महादेव जी ने कहा कि कहो, तब सबने कहा कि यदि आप देवताओं से प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हो तो प्रथम आप इस महा······को त्याग दीजिये, तब महादेव जी ने कहा कि मैं आपकी बात मानने के लिए तय्यार हूँ पर मेरे तेज को कौन देवता धारण करेगा ? उस समय अग्नि ने कहा कि मैं। तब उन्होंने वीर्य को छोड़ा जिसका अग्नि ने पान कर लिया, फिर महादेव जी मन्दिर में गये और पार्वती से कहा कि देवतादिक तेरे पुत्र को नहीं चाहते। इस पर पार्वती ने सबको शाप दिया। फिर शौचशाला में स्नान की इच्छा करने पर मालिनी सुगन्धित द्रव्य को ले उसके सुवर्ण शरीर पर लगाने लगी उससे जो मैल उतरा उसमें मालिनी के चले जाने पर पार्वती उस मैल से हस्ती के मुख के समान मुख वाला चार भुजाओं, पुष्ट छाती और सुन्दर लक्षणों से युक्त पुरुष को रचती हुई—

तस्यां गतायां शैलेयी मलाच्चक्रे गजाननम्॥ ५८॥
चतुर्भुजं पीनवक्षं पुरुषं लक्षणान्वितम्। ५९।

फिर उस बालक को बना, पृथ्वी पर छोड़, आप सुन्दर आसन पर स्थित हुईं और मालिनी आकर पार्वती के शिर को धोने लगी और हंसी जिसको पार्वती जी ने देखकर कहा कि तू क्यों हंसती है ? इस पर मालिनी ने कहा कि निश्चय तुम्हारे पुत्र होगा, इसलिए हंसी आती है ? यह सुन पार्वती जी विधान से स्नान करने लगीं, फिर स्नानकर महादेव जी की पूजा कर गृह को गईं। फिर महादेव जी भी स्नान करने लगे। उस समय आसन के नीचे पार्वती जी का रचा हुआ मल पुरुष वहीं स्थित रहा और महादेव जी के शरीर का पसीना और विभूति सहित पानी जो पड़ा तिसके मेल से प्रथम सूंड के द्वारा फूतकार करता हुआ पुरुष उपस्थित हुआ—

तत्सम्पर्कात् समुत्तस्थौ फूत्कृत्य करमुत्तमम्।
अपत्यं हि विदित्वा च प्रीतिमान् भुवनेश्वरः ॥ ६६ ॥

जिसको अपनी सन्तान जानकर प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर पार्वती के समीप जाकर कहने लगे कि हे प्रिय! प्रियगुणों से युक्त अपने पुत्र को देख। यह सुन पार्वती वहाँ प्राप्त हो अद्भुतरूप वाले पुत्र को देख अर्थात् जो पार्वती जी ने अपने मल का गजमुख पुरुष बनाया था, वही देखा और प्रसन्न होकर पुत्र के मस्तक को सूंघ महादेव पार्वती से कहने लगे कि हे देवि! यह पुत्र नायक के बिना उत्पन्न हुआ है इस वास्ते इसका नाम विनायक होगा—

नायकेन विना देवि तव भूतोऽपि पुत्रकः ॥ ७१ ॥
यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः ॥ ७२ ॥

लिङ्गपुराण से गणेश जी की उत्पत्ति।

अध्याय १०५ में लिखा है कि एक बार देवता लोग यह विचार कर कि दैत्य लोग महादेव जी व ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर मनमाना वर ले लेते हैं और सदा हमारा पराजय करते हैं। इस कारण शिव जी से प्रार्थना करें कि दैत्यों के कर्मों में विघ्न और हमारे कर्मों में अविघ्न करने के अर्थ तथा नारियों को पुत्र देने के लिए और मनुष्यों के सब काम को सिद्ध होने के अर्थ गणपति को उत्पन्न करें, यह मन में ठान सब देवता शिव जी के निकट जा स्तुति करने लगे, उस स्तुति को सुन शिव जी ने देवताओं को दर्शन दिये जिससे सब देवता प्रसन्न हुए और बार-बार प्रणाम करने लगे। तब शिव जी ने कहा कि अभीष्ट वर मांगो, हम प्रसन्न हैं, उस समय सब देवताओं की ओर से बृहस्पति जी ने कहा कि सब देवताओं के शत्रु दैत्य निर्विघ्न आपकी आराधना करते हैं और आप भी शीघ्र उन पर प्रसन्न हो जाते हैं। अब सब देवताओं की यह प्रार्थना है कि उनके कर्मों में विघ्न हुआ करें, यह वर मिले। इस प्रार्थना को सुन शिव जी ने पार्वती के गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया जिसका मुख हाथी का सा था, हाथों में त्रिशूल पाश धारण किये थे, उनके जन्म होते ही पुष्पवृष्टि हुई—

ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वरः।
गणेश्वरं सुरेश्वरं वपुर्दधार सः शिवः ॥ ७ ॥

और गण गणेश जी के चरणों में प्रणाम करने लगे। गजानन भी अपने माता-पिता के आगे आनन्द से नृत्य करने लगे। जिसके संस्कार शिव जी ने किये और गोद में ले मस्तक सूंघा और कहा कि हे पुत्र! दैत्यों के नाश के लिए देवता ऋषि और ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों के उपकार के लिए तुम्हारा अवतार हुआ है। भूमि पर जो दक्षिणाहीन यज्ञ करें उसके धर्म में तुम विघ्न करो। जो अन्याय से अध्ययन-अध्यापन आदि कर्म करे, उसके प्राण हरो। तुम्हारे पूजन बिना श्रौत-स्मार्त्त जो कार्य करेंगे, उनका भी अमङ्गल ही होगा। तुम्हारी पूजा बिना किये देवताओं के भी कार्य सिद्ध न होंगे। हम, विष्णु और इन्द्र भी जो कार्य-आरम्भ में तुम्हारा पूजन न करें, तो विघ्न करो।

गणेश उपपुराण से गणेशोत्पत्ति।

अध्याय ७८ से ८१ तक।

सिन्धूनाम एक दैत्य राजा हुआ। उसने अनेकानेक राजाओं को मारा जिससे बहुधा उसके सेवक हो गये। वेदोक्त कर्मों के बन्द हो जाने से हाहाकार मच गया। सब देवता और मुनि सम्मति कर विनायक जी की स्तुति करने लगे। स्तुति करते हुए उन ऋषियों के आगे तेज समूह आया जिसको देख सब देवादि विस्मित हुए, पुनः वह तेज समूह सौम्य तेजस्वी मूर्त्तिवाला हो गया। तब सबने नमस्कार किया। देव जी ने ऋषि आदिकों से कहा कि उन दैत्यों के मारने के लिए हमारा गिरिजा के घर अवतार होगा और हम तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ शीघ्र पूरा करेंगे। यह कह विनायक जी अन्तर्ध्यान हो गये। एक दिन महादेव जी को तप करते हुए देख पार्वती ने कहा कि हे देव! आपसे बढ़कर और कौन है जिसका आप ध्यान करते हैं। उन्होंने कहा कि विनायक जी का—तब पार्वती ने कहा कि मुझको उनकी कैसे प्राप्ति हो? महादेव जी ने एकाक्षर मन्त्र जपने को कहा। पार्वती जी ने इसको स्वीकार कर जपने का प्रारम्भ कर दिया और बारह वर्ष तक निरन्तर जपा जिससे प्रसन्न हो मुकुटकुण्डल धारे दशभुज त्रिशूलधारी गणेश जी उनके आगे आये और कहा हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर मांगो। पार्वती ने कहा कि तुम मेरे पुत्र होगे। तदनन्तर गणेश जी की प्राप्ति के लिए व्रतकर सब सामग्री द्वारा गजानन की मूर्त्ति बना गौरी जी ने उसकी बहुत

प्रकार से पूजा की। तब तो वह मूर्त्ति चेतन हो गई जिसके तेज से गौरी जी मूर्छित हो गईं। थोड़ी देर के पश्चात् सावधान हो पार्वती ने कहा कि मुझसे पूजा में क्या बिगाड़ हो गया? तब वह तेज सौम्यमूर्त्ति वाला हो गया। पार्वती के पूछने पर उस सौम्यमूर्त्ति ने कहा कि जिसका तुमने रात्रिदिन ध्यान किया, वह हम गणेश जी तुम्हारी पुत्रता को प्राप्त हुए हैं। तब पार्वती ने कहा कि आप बालरूप हो जाइये, जिससे हम लाड़ प्यार से खिलावें। पार्वती जी के वचन सुन वह अतिसुन्दर बालक हो गये। तब गौरी ने उनको हाथों में उठा लिया और बहुत प्रसन्न हुईं। महादेव जी भी उसको देख बहुत प्रसन्न हुए।[१]

श्री पण्डित जगन्नाथजी—सेठ जी! आज हमें तनिक काम है, अगर आपकी राय और पण्डित जी की आज्ञा हो तो आज यहाँ ही विश्राम दीजिए—और विषय कल।

पण्डित जी—अच्छा सेठ जी! रहने ही दीजिए क्योंकि नित्यप्रति के श्रोताओं का बीच में न सुनना हानिकारक होगा।

सेठ जी—जैसे श्रीमान् की आज्ञा, ओम् शम्।

सब यथायोग्य के पश्चात् चले गये।

सेठ जी अपने कार्य में लग गये।

इति एकोनविंश परिच्छेद।

प्रथम—यदि यह वेदों के अर्थों को लेकर ही बनाये गये हैं तो वेदों के अनुकूल क्यों नहीं और उनमें आपस में विरोध क्यों है? द्वितीय—जब यह स्त्री तथा शूद्र, अधम जातियों ही के लिए बनाये गये तो फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को इनके श्रवण से क्या लाभ? —पृष्ठ ५९

---

१. शिव, वामन, लिङ्गपुराण और गणेश उपपुराण से गणेश महाराज की उत्पत्ति पढ़कर स्वयं विचार कीजिए कि किस-किस प्रकार से श्रीमान् का जन्म हुआ? हम और कुछ कहना नहीं चाहते।

अथ विंश परिच्छेद

श्राद्ध प्रकरण

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी अन्य सभ्यों सहित पधारे, उनको नमस्ते की और कहा कि आइए, पधारिए।

पण्डित जी ने आयुष्मान् कहा और अन्य सज्जनों ने यथायोग्य की।

श्राद्ध का औचित्य

आर्य सेठ—आज मैं आपको मृतकश्राद्ध के विषय में सुनाता हूँ, आप कृपा कर सुनिए। श्रीमान् इस विषय में पुराणों में अनेकानेक प्रमाण हैं परन्तु वेद में कोई प्रमाण नहीं मिलता वरन् वहाँ तो निम्नलिखित प्रमाण स्पष्ट कह रहा है कि मृतक शरीर के भस्म होने के पश्चात् कोई कर्म नहीं। जैसा कि—

भस्मान्तꣳशरीरम्। यजुः० ४०.१५॥

इसके उपरान्त धर्मसभा के सभ्यगण एकस्वर होकर आवागमन को भी मानते हैं, जिसके अर्थ आने और जाने अर्थात् मरने और उत्पन्न होने के हैं, फिर भला आप ही बतलाइये कि जो मर गये, वह उत्पन्न हो गये तो फिर आप श्राद्ध किसका करते हैं? पण्डित जी जीव अनादि है। जो अपने-अपने कर्मानुसार जन्म-मरण को धारण करता है और जिस भांति मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार नये वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश करता है जैसा कि **श्रीमद्भागवत** स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ में लिखा है—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥ ३९॥

जब देही का अन्त आता है, उस समय जीवात्मा कर्मानुकूल परवश हो दूसरे देह को प्राप्त हो अपने पूर्व देह का त्याग करता है इसके अतिरिक्त जिस प्रकार मनुष्य चलते समय अगले पैर को उठा फिर पिछले पैर को उठाता है जैसे जोक। उसी भांति शरीरस्थ जीवात्मा कर्मानुकूल अपने

शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। जैसा कि—

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥

इसके पश्चात् पुराणों में अनेक लेख उपस्थित हैं गीता, महाभारत भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। फिर आप मृतकश्राद्ध को क्योंकर मानते हैं? जब कि प्रत्येक पुरुष अपने कर्मों का फल पाता है न कि पुत्रादि के कर्मों का। यदि ऐसा ही ठीक है तो जिस पर धन है वह उसको व्यय कर अपने पितादि को स्वर्ग पहुंचा सकता है तो फिर उस प्राणी के पाप, पुण्य का कोई ठीक नहीं, यथार्थ में वहाँ भी घूस काम देती है। पण्डित जी! यह सब लड़कों के खेल हैं। जिन्होंने भारतवासियों को चक्कर में डाल अपना खूब प्रयोजन निकाला है। श्रीमान्! यदि आप उन वेदमन्त्रों के अर्थों को विचार करें जो पण्डितगण श्राद्ध समय पढ़ते हैं तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जावेगा कि उनके वह अर्थ नहीं जैसा कि पौराणिक जन सुनाते हैं। प्रथम आप सत्य अर्थों को श्रवण कर लीजिए।

पितर शब्द का वास्तविक अर्थ

पितृ शब्द (निघण्टु ४. १) में पिता पद आया है। पिता का बहुवचन ही **पितरः** है। निरुक्त ४.२१ में पिता पद के व्याख्यान में नीचे लिखा मन्त्र ऋग्वेद १.१६४.३३ का प्रमाण दिया है कि—

द्यौर्मे॑ पि॒ता ज॑नि॒ता नाभि॒रत्र॑। इत्यादि।

फिर निरुक्तकार इसके अर्थ करते हुए पितापद का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि—

पिता पाता वा पालयिता वा॥

अर्थात् पिता पालने वा रक्षा करने से कहा जाता है। (द्यौर्मे पिता) मन्त्र में पिता शब्द सूर्य का वाचक है। ऐसा ही स्वामी दयान्द सरस्वती जी ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं और ऐसा ही निरुक्तकार मानते हैं। तात्पर्य यह है कि रक्षा वा पालने वाले जनकादि मनुष्य वर्ग राजा, सूर्य, चन्द्र, किरणें, वायुभेद जिनका राजा यम कहाता है, इत्यादि रक्षकों और पालन करने वालों का नाम पितर है। वेदों में बहुत स्थानों में यम पितरों का राजा लिखा है। जैसा मनुष्यों का राजा मनुष्य, मृगों का राजा मृगराज सिंह, ओषधियों

का राजा सोम नामक ओषधि, ऋतुओं का राजा ऋतुराज वसन्त है इसी प्रकार वायुभेद जो हमारे रक्षक और पालक हैं उनका भी राजा यम वायु ही है। जैसा कि—

माध्यमिको यम इत्याहुर्नैरुक्ताः तस्मात्पितॄन्माध्यमिकान्मन्यन्ते स हि तेषां राजेति॥

पितरः पद निघण्टु (५.५) में और उसकी व्याख्या निरुक्त (११.१९) में है॥

अर्थात् यम मध्यस्थान देवता है यह नैरुक्तों का मत है, इसलिए पितरों को भी मध्यस्थान देवता मानते हैं क्योंकि वह (यम) उन पितरों का राजा है। फिर निरुक्त (७.५) में—

वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः॥

वायु अन्तरिक्षस्थान अर्थात् मध्यस्थान देवता है। ऐसा ही आशय ऋग्वेद (१०.१४.१३) में—

यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निर्दूतो॥

अग्नि जिसका दूत ले जाने वाला है, वह यज्ञ वायु को प्राप्त है। यहाँ भी यम का अर्थ वायुविशेष है। और यजुः (८.५७) में—

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः।

यहाँ भी यम नाम वायुविशेष का है।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्। ऋ० ८.२४.२२

यहाँ भी यम नाम वायुविशेष का है क्योंकि इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और इन्द्र ऊपर लिखे निरुक्त (७.५) में—

वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः।

के अनुसार वायु का भी नाम है।

इसके अतिरिक्त यह भी वेद की शिक्षा है कि प्रत्येक लिङ्गशरीरी जीवात्मा स्थूल शरीर छोड़ कर आकाश में १२ दिन तक १२ आकाशी पदार्थों से आप्यायित (डिवेलप) होता है तब इसे किसी लोक में कर्मानुसार जन्म मिलता है। हां, जिनका लिङ्ग शरीर भी छूट जाता है, उन मुक्तपुरुषों की यह अवस्था नहीं है—

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥

—यजुः ३९.६, श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीभाष्यम्॥

हे मनुष्यो! इस जीव को (प्रथमे) पहले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि, तीसरे वायु, चौथे महीना, पांचवें चन्द्रमा, छठे वसन्तादि ऋतु, सातवें मरुत्, आठवें सूत्रात्मा, नवें प्राण, दशवें उदान, ग्यारहवें बिजुली और बारहवें दिन सब दिव्यगुण प्राप्त होते हैं॥

बस इससे यह भी जाना जाता है कि सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, प्राण, उदान, बिजुली और आकाशगत अन्य सब दिव्य पदार्थों का (जो देवता कहाते हैं) हवन करने से सुधार होता है, इसी को तृप्ति और अनुकूलता भी कह सकते हैं। इससे अग्नि में होम द्वारा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक इन तीनों की शुद्धि, वृद्धि और तृप्ति होने से आकाशगत पितरों=वायुविशेषों का भी उपकार सम्भव है। परन्तु मरण को प्राप्त प्राणी किसी प्रकार परमात्मा की व्यवस्थानुकूल १२ दिन में भिन्न-भिन्न नियत पदार्थों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं जा सकते और इसके अनन्तर स्थूल शरीर में जन्म लेकर भी एक लोक से दूसरे लोक में नहीं जा आ सकते। इसलिए वर्त्तमान प्रचलित श्राद्धदानादि कार्यों के पदार्थों की प्राप्ति ब्राह्मणों द्वारा पितरों को सर्वथा नहीं हो सकती। हां, अग्निहोत्र से तीनों लोकों का उपकार होता है।

और इन्हीं आकाशगत पदार्थों का तात्पर्य संस्कार विधिस्थ अन्त्येष्टि प्रकरणगत समस्त मन्त्रों में भी लग जाएगा।

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥

—यजुः० १९.४५॥

(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञानयुक्त (पितरः) प्रजा के रक्षक लोग (यमराज्ये) न्यायकारी राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उनका (लोकः) स्थान (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ हो॥

ये स॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः ।
तेषा॒ᳫं श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳬ समाः॑ ॥

—यजुः० १९.४६ ॥

(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवते हुओं में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने वाले (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते पितर हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्ष तक (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥

उदी॑रता॒मव॑र॒ उत्परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑ ।
असुं॒ य ई॒युर॑वृ॒का ऋ॑त॒ज्ञास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥

—ऋ० १०.१५.१ ॥

(ये) जो (पितरः) पिता आदि रक्षक जन (परासः) बड़े (अवरे) छोटे (मध्यमाः) मध्यावस्था वाले हैं (ते) वे (पितरः) पालक रक्षक लोग (नः) हमको (उत्-ईरताम्) उन्नत करें। (सोम्यासः) वे सौम्यलोग (असुम्) जीवन को (उत् ईयुः) उच्च=अधिक प्राप्त हों। (अवृकाः) जो किसी से शत्रुता नहीं करते और (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं वे (हवेषु) जब-जब हम पुकारें तब-तब (उत् अवन्तु) उच्चभाव से रक्षा करें॥ इसमें मृतश्राद्ध का लेशमात्र भी वर्णन नहीं।

ये नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ सो॒म्यासो॑ऽनूहि॒रे सो॑मपी॒थं वसि॑ष्ठाः ।
तेभि॑र्य॒मः स॑ᳬररा॒णो ह॒वीᳫंष्यु॒शन्नु॒शद्भिः॑ प्रतिका॒मम॑त्तु ॥

—यजुः० १९.५१ ॥

(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्त धनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरों के साथ (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करने हारा (संरराणः) अच्छे प्रकार सुखों का दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक काम को (अत्तु) भोगे।

भावार्थ—पिता आदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ

सब सुख-दुःखों के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीँ१ ॥ऽरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः॥

—यजुः० १९.५३॥

हे (पवमान) पवित्रस्वरूप पवित्रकर्मकर्त्ता और पवित्र करनेहारे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान! (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिताआदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रुः) करने वाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अवातः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान! तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं की (परिधीन्) परिधि अर्थात् जिनमें चारों ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान् (भव) हो॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुकरण कर और शत्रुओं का निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें॥

बर्हिषदः पितरऽऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
तऽआ गतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात॥

—यजुः० १९.५५॥

हे (बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठने हारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो! हम (अर्वाक्) पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिए (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) संस्कार करते हैं उनका आप लोग (जुषध्वम्) सेवन करें और (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याण कारक (अवसा) रक्षणादि कर्म के साथ (आ, गत) आयें (अथ) इसके अनन्तर (नः) हमारे लिए (शंयोः) सुख तथा (अरः) सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख को सदा हमसे पृथक् रक्खें॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

—यजुः० १९.५८॥

जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमनादि गुणयुक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के जाने-आने योग्य (पथिभिः) धर्म युक्त मार्गों से (आ यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान होके (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तः) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हमको (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) रक्षा करें॥

येऽअग्निष्वात्ता येऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया माद-यन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥

—यजुः १९.६०॥

(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्नि विद्या के ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थ विद्या के जानने हारे वा ज्ञानी पितृलोग (दिवः) विज्ञानादि प्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया वा सुन्दर भोजन से (मादयन्ते) आनन्द को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरों के लिए (स्वराड्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थन करें॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! जो अग्नि आदि पदार्थ विद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये॥

और यदि "अग्नि में डाल गये" अर्थ को भी मान लें तो भी यह अर्थ होगा कि—"जो अग्नि में डाले गये और जो न डाले गये और आकाश के मध्य वर्त्तमान हैं, उन्हें स्वराट् परमात्मा शरीर दे देता है और वे

अपने अन्नादि से (जहाँ जन्म होता है) आनन्दित होते हैं।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्वऽआगः पुरुषता कराम॥

—यजुः १९.६२॥

हे (विश्वे) सब (पितरः) पितृ लोगो! तुम (केनचित्) किसी हेतु से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषार्थता है उसको (मा हिंसिष्ट) मत नष्ट करो जिससे हम लोग सुख को (कराम) प्राप्त करें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध हमने किया है उसको हम छोड़ें, तुम लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्काररूप व्यवहार को (अभि, गृणीत) हमारे सम्मुख प्रशंसित करो हम (जानु) जानु अवयव को (आच्य) नीचे टेक के (दक्षिणतः) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठके, तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें॥

जिनके पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इनके समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इनको प्रसन्न करें, पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपनी सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें॥

आसीनासोऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तऽइहोर्जं दधात॥

—यजुः १९.६३॥

हे (पितरः) पितृलोगो! तुम (इह) इस गृहाश्रम में (अरुणीनाम्) गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिए और (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (रयिम्) धन को (धत्त) धरो (तस्य) उस (वस्वः) धन के भागों को (प्र, यच्छत) दिया करो जिससे (ते) वे स्त्री आदि सब लोग (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें॥

ऐसे ही मन्त्र दायभाग का मूल हैं।

वे ही वृद्ध हैं जो अपनी ही स्त्री के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करने हारे सन्तानों के लिए यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै॥ —यजुः १९.३७॥

सोम के योग्य पितर पूर्णायु के दाता पवित्रता से मुझको पवित्र करो, प्रपितामह पूर्णायु के दाता पवित्र से मुझको शुद्ध करो, प्रपितामह शुद्ध करो पूर्णायु को प्राप्त करूं॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत्॥ —यजुः० २.३३॥

पूर्व मन्त्र में तो पिता पितामह और प्रपितामह से प्रार्थना है कि हमें पवित्रता का उपदेश और आचरण करावें। दूसरे का यह अर्थ है— बड़ों को चाहिए कि (यथा) जिस प्रकार (इह) इस कुल में (पुरुषः) पुरुष (असत्) होवे, उस प्रकार (पितरः) पिता लोग (गर्भम्) गर्भ का (आधत्त) आधान करें और (पुष्करस्रजम्) सुन्दर (कुमारम्) पुत्र को उत्पन्न करें॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती॥

—अथर्व० १८.४.५७॥

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि मृतक को फूंकते समय जो घृत की धाराबद्ध आहुति है, वह जीवते प्राणियों और मरे हुए शवों (लाशों) की सुदशा करती है, अर्थात् जीवितों को रोगादि से बचाती और मरों को सड़ने आदि दुर्गति से रोकती है।

पदार्थ—(ये च जीवाः) जो जीते हैं (ये च मृताः) और जो मरे शरीर हैं (ये जाताः) जो बच्चे जन्मे हैं (ये च यज्ञियाः) और जो यज्ञ के उपयोगी हैं (तेभ्यः) उन सबकी भलाई के लिए (घृतस्य) घृत की (व्युन्दती) टपकती (मधुधारा) मधुरादि युक्त (कुल्या) धारा (एतु) प्राप्त होवे॥

प्रेहिप्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
उभा राजाना स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥

—अथर्व० १८.१.५४॥

अर्थात् मृत शरीर को फूंकते हुए लोग इस मन्त्र को पढ़ते हैं कि— जहाँ इससे पूर्व मरे हुये शरीर पूर्वजों के गये, वहाँ ही, और जिन मार्गों में शरीर के सूक्ष्म अवयव ही यान (सवारी) हैं उन मार्गों से यह भी जाता है और *यम तथा *वरुण नामक आकाश में विराजने वाले भौतिक देवताओं में मिल जाता है।

पदार्थ—(प्रेहि प्रेहि) जा जा (पूर्याणैः पथिभिः) पुर=शरीर ही जहाँ यान=सवारी है उन मार्गों से जा। (येन) जिन मार्गों से (ते पूर्वे) तुझ से पहिले (पितरः) बाप दादे (परेताः) मरे हुए गये और वहाँ आकाश में (यमं देवम्) वायु विशेष देव की (च) और (वरुणम्) जल के दिव्य स्वरूप को (उभा) इन दोनों (राजानौ) प्रकाशमान देवों को जो कि (स्वधया) श्मशानाहुति जो स्वधा है उससे (मदन्तौ) सुधरे हुए हैं, उन्हें (पश्यासि) देखता=प्राप्त होता है तू॥

अर्थात् मृतशरीर की दुर्गति नहीं होती, किन्तु स्वधा जो उत्तम द्रव्यों की पितृयज्ञ में आहुति हैं उससे आकाश में के (यम) वायु (वरुण) जल बिगड़ते नहीं, किन्तु (मदन्तौ) अच्छे प्रसन्न उत्तम रहते हैं और उन्हीं में मृतशरीर मिल जाता है अर्थात् शरीर का गीला अंश वरुण में और शुष्क अंश यम में मिल जाता है।

ये निखा॑ता ये परो॑प्ता ये द॒ग्धा ये चोद्धि॑ताः।
सर्वा॑स्तान॑ग्न॒ आ व॑ह पि॒तॄन्ह॒विषे॑ अत्त॑वे॥
ये अ॑ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते।
त्वं तान्वे॑त्थ॒ यदि॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धया॑ य॒ज्ञं स्वधि॑तिं जुषन्ताम्॥

—अथर्व १८.२.३४, ३५॥

इन दोनों मन्त्रों में यह कहा गया है कि जो-जो शरीर किन्हीं कारणों से भूमि में दब गये, जिनके देह ऊपर पड़े रह गये, जो बिना घृतादि फुंक गये, जो वायु में उड़ गये, अग्नि में नहीं फुंकने पाये, अग्नि में किया हुआ होम उन सब आकाशगत मृतप्राणिशरीरावयवों को प्राप्त होकर उनकी सद्गति=अच्छी दशा करता है॥

---

* देखो—निघण्टु ५.४ और निरुक्त १०.१९-२१ अन्तरिक्ष देवता प्रकरण॥

पदार्थ—(ये निखाता:) जो दब गये (ये परोप्ता:) जो इधर उधर पड़े रह गये (ये दग्धा:) जो केवल फुंक गये (ये च) और जो (उद्धिता:) ऊपर उड़ गये (अग्ने) अग्नि (तान् सर्वान्) उन सब को (हविषे) होम के पदार्थ (अत्तवे) खाने के लिए (आवह) प्राप्त करता है वा करावे॥ ३४॥

(ये अग्निदग्धा:) जो केवल अग्नि में फुंके (अनग्निदग्धा:) और जो अग्नि में भी नहीं फुंके (दिव: मध्ये) आकाश के मध्य में हैं (जातवेद:) अग्ने! (तान्) उनको (यदि) यदि (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता=प्राप्त होता है तो वे (स्वधया) स्वधा कह कर दी हुई आहुति से (मादयन्ते) प्रसन्न होते अर्थात् सड़ने को छोड़कर अच्छी दशा को प्राप्त होते हैं, अत: वे (स्वधया) उसी आहुति से (स्वधितिम्) पैतृक (यज्ञम्) यज्ञ का (जुषन्ताम्) सेवन करें॥ ३५॥

ये न॑: पि॒तु पि॒तरो॒ ये पि॑ताम॒हा य आ॑विवि॒शुरु॒र्व॑१न्तरि॑क्षम्।
य आ॑क्षि॒यन्ति॑ पृ॒थि॒वीमु॒त द्यां तेभ्य॑: पि॒तृभ्यो॒ नम॑सा विधेम॥

—अथर्व० १८.२.४९॥

(ये) जो (न:) हमारे (पितु: पितर:) बाप के बाप हैं, अतएव (ये) जो हमारे (पितामहा:) बाबा हैं (ये) जो कि (उरु अन्तरिक्षम्) इस बड़े आकाश को (आविविशु:) प्रवेश कर गये हैं (ये) जो कि (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत) और (द्याम्) आकाश को (आक्षियन्ति) छाय रहे हैं (तेभ्य:) उन (पितृभ्य:) मृत शरीरों के लिए (नमसा विधेम) हम आहुति करते हैं॥

अर्थात् पुत्रादि का कर्त्तव्य है कि पिता वा पितामहादि पूर्वजों की अन्त्येष्टि श्रद्धापूर्वक करें, ऐसा करने से पृथिवी और अन्तरिक्ष लोक में जो मृतपूर्वज लोगों के शरीराऽवयव वायु आदि में हैं वे बिगड़ते नहीं, किन्तु सुधरकर मनुष्यादि प्राणियों को दु:ख नहीं देते हैं। अन्यथा वायु जल को विकृत करके रोगादि उत्पन्न करते हैं।

अब बतलाइये कौन से वेदमन्त्र की आज्ञा से मृतक पितरों को श्राद्ध मिलता है। इसके उपरान्त श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है—

श्रत् सत्यं दधाति या क्रिया सा श्रद्धा।
श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्॥

जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय, उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय, उसका नाम श्राद्ध है। और—

तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्।

जिस कर्म से तृप्त हो, उसको तर्पण कहते हैं—यह तृप्ति जीवित माता-पिता आदि के साथ श्रद्धा से सेवा करने से होती है न कि मरने पर—मरने पर तो जीवात्मा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। फिर श्राद्ध और तर्पण कैसा है?

पण्डित जी! अब हम आपको मृतक श्राद्ध विषय की अगली कार्यवाही सुनाते हैं जो पुराणों में लिखी है, आप अच्छे प्रकार सुन उन पर विचार कीजिए।

पौराणिक श्राद्ध

देखिए, **शिवपुराण ज्ञानसंहिता** अध्याय ३० में लिखा है—

किसी समय फल्गुनी नदी के किनारे लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी आए। सीता सहित पिता की आज्ञा स्मरण कर वहाँ स्थित हुए और श्राद्ध का समय जान कहने लगे—अब क्या करना चाहिए? तब फल लेने के लिए लक्ष्मण को वन भेजा। जब बहुत समय हो गया तब स्वयं आप चले। जानकी जी अकेली रह गईं और उसने विचारा कि श्राद्ध का समय जाता है। न मालूम अभी तक क्यों नहीं आये, तब इंगुदी के पिण्ड बना कर स्वयं जानकी जी ने दिये। तब दशरथादि पितरों के हाथ निकले—

किञ्चिद्वस्तु गृहीत्वा तु तेनैव पिण्डकास्तदा।
दत्ता यदा तया तत्र हस्ताश्च निःसृतास्तदा॥ ११॥

और तृप्त होकर कहने लगे। जनकात्मजे! तुम धन्य हो। जानकी जी ने उनके अनेक प्रकार भूषणधारी हाथों को देखकर कहा कि तुम कौन हो? जानकी जी के यह वचन सुनकर उनके श्वशुर बोले कि हे पतिव्रते! मैं तेरा श्वशुर हूँ, तुम्हारे पिण्डदान से मैं तृप्त हो गया हूँ, तुम्हारा श्राद्ध भी सफल हो गया—

अहं दशरथो नाम श्वशुरस्ते च सुव्रते।
तृप्ताः स्म तव पिण्डेन श्राद्धं ते सफलं कृतम्॥ १४॥

ऐसा कहने पर जानकी बोली—इस तुम्हारे हाथ निकालने का विश्वास हमारे स्वामी न करेंगे। ऐसा कहने पर दशरथ बोले कि हे अन्ध! इस विषय में तुम साक्षी कर लो। यह सुनकर फल्गू नदी, गौ, अग्नि तथा केतकी से कहा कि तुम इस वार्त्ता को अच्छे प्रकार सुन लो, इसमें वे सब साक्षी हुए। तब वे फल्गू नदी आदि से अन्तर्ध्यान हुए—इस अवसर में रामचन्द्र जी आये और जानकी जी से बोले कि हे साध्वि! तुम शीघ्र पवित्र हो जाओ क्योंकि श्राद्ध का समय आ गया। तब जानकी विस्मित हो कुछ न बोलीं। तब राम ने उनको आश्चर्ययुक्त देख जानकी जी से पूछा—तिस पर उन्होंने पूर्व का सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब वह भ्रान्तयुक्त ही लक्ष्मण जी से बोले कि तुमने जानकी जी का कहना सुना? हमने तो कभी ऐसा नहीं देखा, जैसा यह कहती हैं—

अस्माभिर्विधिर्नानैव दृष्टश्चैवाधुना तथा॥ २३॥

इससे विदित होता है कि यह काम करने के लिए असत्यभाषण करती हैं। तब जानकी जी लज्जित हो कहने लगीं मैंने फल्गुनी नदी, गाय अग्नि और केतुकी इन चार को साक्षी कर लिया है। श्रीराम जी ने कहा कि यदि यह चारों साक्षी दे देंगे तो हम तुम्हारे वचनों को सत्य मान लेंगे। इतना कह श्रीराम जी ने उन चारों साक्षियों से पूछा तो वह सब मोहित हो कहने लगे कि हम इस विषय को नहीं जानते—

ते सर्वे मोहमापन्ना न जानीमो वयं त्विदम्॥ २६॥

यह सुन दोनों भाई आपस में हास्य कर कहने लगे कि अब श्राद्ध करना चाहिए, दिन बहुत चढ़ आया और श्राद्ध बिना भोजनों के करना चाहिए। तब जानकी अत्यन्त दुःख से दुःखी होकर कहने लगी कि यह क्या हुआ और फिर पाक बनाने लगी। इधर श्राद्ध समय श्रीराम जी ने पितरों का आह्वान किया तब सूर्य के समीप से वाणी निकली कि हे पुत्र! अब तुम क्यों हवन करते हो इसने तो हमको तृप्त कर दिया। राम ने कहा कि मैं ऐसे कभी न मानूंगा। फिर सूर्य से वाणी निकली कि पाप रहित किये हुए श्राद्ध को फिर नहीं करना चाहिए। फिर भी राम ने उनके वाक्यों

को नहीं माना। तब सूर्य साक्षी होकर बोले कि अब तुम क्यों श्राद्ध करते हो? तब राम "जय" ऐसा शब्द करके राम लक्ष्मण से बोले हम धन्य हैं जबकि कुलवधू ऐसी श्रेष्ठ है। फिर राम लक्ष्मण भोजन कर परस्पर कहने लगे कि इन साक्षियों ने साक्षी क्यों नहीं दी? इस पर सीता जी ने उन चारों को शाप दिया कि हे नदी! जो तूने सुना और देखा तथापि सत्य नहीं कहा, इससे तू पाताल में जाकर बह। केतकी आज से शिव के मस्तक पर चढ़ने योग्य न होगी। निकट खड़ी गाय से कहा कि जो तू ने सत्य नहीं कहा, इसलिए तू पूछ से शुद्ध और मुंह से अशुद्ध और अग्नि से कहा कि तू सर्वभक्षी होगी।

पण्डित जी! प्रथम तो यह विचारिये कि श्रीराम को सनातनी भाई ईश्वरावतार मानते हैं परन्तु यहाँ इतनी भी सुध नहीं कि जानकी जी श्राद्ध कर चुकीं। द्वितीय जब जानकी जी ने दशरथ जी के हाथ निकालने की बात कही तो श्रीराम जी ने कहा कि हमने तो कभी ऐसा नहीं देखा। तिस पर सीता जी ने साक्षियों को पेश किया परन्तु किसी ने साक्षी नहीं दी। फिर आप इस कथा से क्या प्रयोजन सिद्ध करते हैं? हमारी समझ में तो शिव पुराण के कर्त्ता ने श्राद्धमाहात्म्य को बढ़ाने के लिए श्रीराम के नाम से श्राद्ध की कथा को गढ़ लिया। फिर भी विचारशीलों की दृष्टि में कई दोष दृष्टिगत आ रहे हैं? अब आगे और श्रवण कीजिए।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड

अध्याय १० में लिखा है कि पूर्व समय में कुरुक्षेत्र के बीच कौशिक नाम एक महात्मा हुए जिनके सात पुत्र थे जो गर्ग ऋषि के शिष्य हुए। महात्मा कौशिक के मर जाने पर दैवयोग से बड़ा कठिन दुर्भिक्ष पड़ा। वह सब ऋषि के यहाँ गाय चराया करते थे। एक दिन अन्न के न मिलने पर सब भाइयों ने यह कुविचार किया कि अब अन्न नहीं मिलता इसलिए इस कपिला का ही भक्षण कर लें। जब सब जनों ने इस बात का विचार किया तो उनमें से छोटा भाई बोला कि यदि इसके मारने का ही विचार है तो श्राद्ध के रूप अर्थात् नाम से वध करो—

यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम्॥ ५३॥

ऐसा करने से मारने का दोष हमको न लगेगा। हालांकि पितृ लोग

भी इसको अभक्ष्य समझते हैं—

श्राद्धे नियोज्यमानायां पापं नश्यति नो ध्रुवम्॥ ५४॥

तब सब ज्येष्ठ भाइयों ने आज्ञा दी। अच्छा, श्राद्ध के लिए ही वध करो। ऐसा विचार कर सबसे छोटे ने श्राद्ध करने का उद्योग किया। तब दो भाइयों को देव और तीन भाइयों को पितृ ब्राह्मण और एक को अतिथि बनाया अर्थात् सबसे छोटा श्राद्धकर्त्ता हुआ। इस प्रकार उन सबने इस कपिला को मन्त्रपूर्वक श्राद्ध विधान से भक्षण कर लिया, इसके उपरान्त सब हत्यारों ने गुरु से कहा कि कपिला को शेर ने खा लिया, बछड़ा आप लीजिए। गुरु महाराज ने कुछ विचार किया और जाना कि ऐसा ही हुआ होगा। मरने के पीछे यह सबके सब दशार्ण देश में बहेलिए हुए चूंकि पितरों के भाव से वध किया था, इसलिए पूर्वजन्म की जाति का स्मरण बना रहा और व्याध के रूप में पाप न करने से और तीर्थयात्रा के प्रभाव से मरने पर कालिञ्जर पर्वत पर सबके सब मृग हुए। वहाँ भी विज्ञान रहने से सुकर्म करने के कारण मानससर के किनारे पर सातों चक्रवाक हुए कि इस योनि में वैराग्य रहा जिससे मरने पर ब्राह्मण हुए उसमें भी योगाभ्यासी।

फिर वह कालान्तर में परमपद को प्राप्त हुए। इसलिए ऋषियों ने कहा कि जब पितर श्राद्ध से सन्तुष्ट होते हैं तो धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, पुत्र वा राज्य और सब कुछ सुख देते हैं।

पण्डित जी महाराज! यदि इस कथा को सत्य माना जाय तो प्रथम यह कठिन मालूम होता है कि वह सातों ऋषि के बेटे और गर्ग ऋषि के शिष्य जिनको कभी भी किसी जीव की हिंसा का काम नहीं पड़ा, पिता और गुरु दोनों महात्मा थे, फिर इन सातों से (गाय) हिंसा का होना आश्चर्यजनक है। हाँ भूखे थे, शायद ऐसा हो गया हो। परन्तु इस पर छोटे ने कहा कि श्राद्ध के नाम से मारिये, पाप न होगा। फिर उन सबने सम्मति दे दी और श्राद्ध किया, जिसके फल से उन सबको जाति स्मरण बना रहा और वह कालान्तर में तर गये। क्योंकि श्रीमान् सनातनधर्मियों की सम्मति से जब पितर बड़े-बड़े कार्यों को मृतकश्राद्ध करने से देते हैं, तो क्या उनको यह भी ख़बर नहीं कि यह गाय को भूख के कारण मारना चाहते थे। पाप न लगने के कारण श्राद्ध करने के बहाने से मार श्राद्ध किया। कहिए

श्रीमान्? बिना मानसी संकल्प होने पर भी पितरों ने उनको श्राद्ध का फल दे ही दिया, क्या यह आश्चर्य नहीं है?

पुनः यह अभक्ष्य भोजन था फिर पितरों ने उसको क्यों स्वीकार किया? क्या पितर भी ऐसी हिंसा को स्वीकार करते हैं? फिर इतना फल भी मिल गया। इससे तो प्रकट होता है कि पितर-पुत्रों आदिकों को भक्ष्य भोजन न मिलने पर अभक्ष्य को भी स्वीकार कर लेते हैं।

क्या कहें श्रीमान् यह श्राद्धसिद्धि की दूसरी मिसाल हैं—अब और सुन लीजिए श्राद्ध में मांस से श्राद्ध करने की आज्ञा हैं और उससे पितरों की तृप्तिविशेष होती है।

मांस से श्राद्ध की आज्ञा और पितरों की तृप्ति

मत्स्यपुराण अध्याय १७ में लिखा है कि दही, दूध, घृत, खांड इन्हीं से युक्त अन्न का भोजन कराने से पितर एक महीने तृप्त रहते हैं—

अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्।
मासं प्रीणाति वै सर्वान् पितॄनित्याह केशवः॥ ३०॥

मत्स्य मांस से दो माह तक, हरिण के मांस से तीन महीने तक और मेदे के मांस से चार महीने तक, पक्षियों के मांस से पांच महीने तक—

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै॥ ३१॥

बकरे के मांस से छह महीने तक, बिन्दुओं वाले हिरण के मांस से सात महीने तक, एणसंज्ञक मृग के मांस से आठ महीने तक, शूकर, भैंसा इनके मांस से दश महीने तक, शशक कछुवा इनके मांस से ग्यारह महीने तक—

षण्मासाञ्छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा।
सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु॥ ३२॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु॥ ३३॥

गौ के दूध वा खीर के भोजन से वर्ष दिन तक, रौरवसंज्ञक हरिण के मांस से १५ महीने—

संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च।
रौरवेण च तृप्यन्ति मासान् पञ्चदशैव तु॥ ३४॥

मेढ़ा के मांस से १२ वर्ष तक कालशाक जीव और गेंडे के मांस से अनन्त वर्षों तक पितर तृप्त रहते हैं—

वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी।
कालशाकेन चानन्ता खड्गमांसेन चैव हि॥ ३५॥

इसी भांति अन्य पुराणों में भी मांस खाने की आज्ञायें पाई जाती हैं। कहिए, वेद के अनुकूल स्मृतियों की वह आज्ञा कि (**अहिंसा परमो धर्मः**) कहाँ रही? सच तो यह है कि स्वार्थी पुरुष अपने स्वार्थसिद्धि के सम्मुख किसी दोष को नहीं देखता, इसी प्रकार श्राद्धसिद्धि को समझिये। परन्तु इस पर भी श्राद्ध की सिद्धि नहीं होती क्योंकि पौराणिकों का यह ख़याल है कि हमारा किया श्राद्धादि जन्मान्तर में हमारे पितरों को पहुंचता है, वह भी **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय ७७ के लेख से मिथ्या प्रतीत होता है। अब मैं श्रीमान् को इसकी पुष्टि में एक कथा सुनाता हूँ॥

श्राद्ध की वास्तविकता (एक दृष्टान्त)

यही कथा **भविष्योत्तरपुराणान्तर्गत** ऋषिपञ्चमी व्रतोद्यापन विधि में आई है। जो **मुरादाबादीय पण्डित व्रजरत्न (महर्षिकुमार) भट्टाचार्य** के हिन्दी अनुवाद सहित बम्बई गणपति कृष्ण जी के प्रेस में छपी है। हम मूल और उसी का हिन्दी अनुवाद नीचे लिखते हैं—

अत्रार्थे यत्पुरावृत्तं प्रवक्ष्यामि कथानकम्।
पुरा कृतयुगे राजा विदर्भायां बभूव ह॥ १६॥
श्येनजिन्नाम राजर्षिश्चातुर्वर्ण्यानुपालकः।
तस्य देशेऽवसद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः॥ १७॥
सुमित्रो नाम राजेन्द्र सर्वभूतहिते रतः।
कृषिवृत्त्या सदा युक्तः कुटुम्बपरिपालकः॥ १८॥
तस्य भार्या सुसाध्वी च पतिशुश्रूषणे रता।
जयश्रीर्नाम विख्याता बहुभृत्यसुहृज्जना॥ १९॥

अतिचिन्तान्विता सा च प्रावृट्काले सुमध्यमा।
क्षेत्रादिषु रता साध्वी व्याकुलीकृतमानसा॥ २०॥
एकदा सात्मनः प्राप्तमृतुकालं व्यलोकयत्।
रजस्वलापि सा राजन्! गृहकर्म चकार ह॥ २१॥
भाण्डादीन्यस्पृशद्राजन्नृतौ प्राप्तेऽपि भामिनी।
कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमत्तदा॥ २२॥
तस्या भर्त्तापि विप्रोऽसौ कालधर्ममुपेयिवान्।
एवं तौ दम्पती राजन्! स्वकर्मवशगौ तदा॥ २३॥
भार्या तस्य जयश्रीः सा ऋतुसम्पर्कदोषतः।
शुनीयोनिमनुप्राप्ता सुमित्रोऽपि नरेश्वर!॥ २४॥
तस्याः सम्पर्कदोषेण बलीवर्दो बभूव ह।
एवं तौ दम्पती राजन्! स्वकर्मवशगौ तदा॥ २५॥
ऋतुसम्पर्कदोषेण तिर्यग्योनिमुपागतौ।
स्वधर्माचरणाज्जातावुभौ जातिस्मरौ तथा॥ २६॥
सुमित्रस्य च पुत्रोऽभूद् गुरुशुश्रूषणे रतः॥ २७॥
सुमतिर्नाम धर्मज्ञो देवतातिथिपूजकः।
अथ क्षयाहे सम्प्राप्ते पितुस्तु सुमतिस्तदा॥ २८॥
भार्यां चन्द्रवतीं प्राह सुमतिः श्रद्धयान्वितः।
अद्य सांवत्सरदिनं पितुर्मे चारुहासिनि॥ २९॥
भोजनीया द्विजा भीरु! पाकसिद्धिर्विधीयताम्॥ ३०॥
मुक्तं पायसभाण्डे वै सर्पेण गरलं ततः।
दृष्ट्वा ब्रह्मवधाद्भीता शुनी भाण्डानि साऽस्पृशत्॥ ३१॥
द्विजभार्या च तां दृष्ट्वा उल्मुकेन जघान ह।
भाण्डादीनि च प्रक्षाल्य त्यक्त्वा पाकं सुमध्यमा॥ ३२॥
पुनः पाकं च कृत्वा तु श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
ततो भुक्तेषु विप्रेषु नोच्छिष्टं च ददौ बहिः॥ ३३॥

भूमौ क्षिप्तं तया शुन्या उपवासस्तदाभवत्।
ततो रात्र्यां प्रवृत्तायां सा शुनी क्षुधिता भृशम्॥ ३४॥
बलीवर्दमुपागत्य भर्त्तारमिदमब्रवीत्।
बुभुक्षिताद्य हे भर्त्तर्न दत्तं भोजनादिकम्॥ ३५॥
ग्रासादिकं च न प्राप्तं क्षुधा मां बाधते भृशम्।
अन्यस्मिन्दिवसे पुत्रो मम लेह्यं ददात्यसौ॥ ३६॥
अद्य मह्यं किमप्येष उच्छिष्टमपि नो ददौ।
पायसान्ने पपाताद्य गरलं सर्पसम्भवम्॥ ३७॥
मया विचिन्त्य मनसा मरिष्यन्ति द्विजोत्तमाः।
संस्पृष्टं पायसं गत्वा बद्ध्वाहं ताडिता भृशम्॥ ३८॥
दुःखितं तेन मे गात्रं कटिर्भग्ना करोमि किम्।
ततः प्राह स चानड्वान् भद्रे ते पापसंग्रहात्॥ ३९॥
किं करोमि ह्यशक्तोऽहं भारवाहत्वमागतः।
अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलं दिनम्॥ ४०॥
मारितश्चात्मजेनाहं मुखं बद्ध्वा बुभुक्षितः।
वृथा श्राद्धं कृतं तेन जाताद्य मम कष्टता॥ ४१॥
कृष्ण उवाच—
तयोः संवदतोरेवं मातापित्रोश्च भारत!।
श्रुत्वा पुत्रस्तथा वाक्यं यदुक्तं च तदोभयोः॥ ४२॥
पितरौ तौ विदित्वा तु दत्तवान् सुमतिस्तदा।
तस्यां रजन्यां तत्कालं ददौ तस्यै च भोजनम्॥ ४३॥

भाषार्थ—इसी बीच में जो प्राचीनकथा का वृत्तान्त है सो मैं कहता हूँ, पहिले कृतयुग में विदर्भनगरी में चारों वर्णों को पालने वाले राजाओं में ऋषि के समान एक राजा श्येनजित् हुवे थे, उनके देश में अङ्गों सहित वेदों के अन्त का जानने वाला॥ १६, १७॥ सम्पूर्ण प्राणियों के हित का करने वाला, खेती के कर्म से कुटुम्ब का पालन करने वाला एक सुमित्र नामक

ब्राह्मण रहता था॥ १८॥ बड़ी पतिव्रता, पति की सेवा में तत्पर, अनेक भृत्य (नौकर) और कुटुम्बियों से युक्त जयश्री नाम वाली उस ब्राह्मण की एक स्त्री थी।॥ १९॥ एक समय वर्षाकाल में अत्यन्त चिन्ता से युक्त सुन्दर कमर वाली खेत के काम में लगी हुई उस पतिव्रता का चित्त अत्यन्त व्याकुल हुआ॥ २०॥ एक समय उस स्त्री ने अपने ऋतुकाल को आता देखा और हे राजन्! वह राजस्वला होकर भी घर के काम को करती रही॥ २१॥ हे राजन्! ऋतुकाल प्राप्त होने पर भी उसने भाण्डादिक सब छुवे और वह स्त्री थोड़े ही समय में मृत्यु को प्राप्त हुई॥ २२॥ और उसका पति भी समयानुसार मृत्यु के वश हुआ। इस प्रकार वे दोनों स्त्री-पुरुष अपने कर्मों के वश हुए॥ २३॥ उसकी वह स्त्री जयश्री ऋतुकाल की सङ्गति के दोष से कुतिया की योनि को प्राप्त हुई। और हे राजन्! वह सुमित्र ब्राह्मण भी॥ २४॥ उस स्त्री के संग के दोष से उस समय बलीवर्द (बैल) हुआ। हे राजन्! तब वे दोनों स्त्री-पुरुष इस प्रकार अपने कर्मों के वशीभूत हुवे॥ २५॥ ऋतुकाल की संगति के दोष से वे दोनों पशुयोनि को प्राप्त होकर अपने धर्म के प्रताप से अपने पूर्वजन्म को याद करते हुए॥ २६॥ हे राजन्! उसी प्रकार अपने किये हुए पहिले पाप को भी याद करते हुए पुत्र के ही घर उत्पन्न हुए। गुरु की अत्यन्त शूश्रूषा करने वाला, धर्म का जानने वाला, देवता और अभ्यागतों की पूजा करने वाला सुमति नाम सुमित्रा का पुत्र था। फिर पिता के क्षयाह के प्राप्त होने पर उस समय वह सुमति॥ २७, २८॥ श्रद्धा से युक्त होकर अपनी चन्द्रवती स्त्री से बोला कि हे मनोहर हास्य करने वाली! आज मेरे पिता की वर्षी का दिन है॥ २९॥ हे अधिक भय करने वाली! आज ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, सो तू जाकर पाक (भोजन) तय्यार कर। अपने पति सुमति की आज्ञा से उस चन्द्रवती ने सब भोजन बनाये॥ ३०॥ तदनन्तर खीर के पात्र में सर्प ने विष छोड़ दिया, उसको देखकर ब्राह्मणों के मर जाने के भय से खीर के पात्र को उस कुतिया ने छू दिया॥ ३१॥ उस पात्र को छूती हुई उस कुतिया को देखकर उस ब्राह्मण की चन्द्रवती स्त्री ने उसे जलती लकड़ी से मारा और उस सुन्दर कमर वाली चन्द्रवती ने भाजन को छोड़ सब वर्त्तनों को धोकर॥ ३२॥ फिर दूसरा पाक बनाकर बड़ी विधि से श्राद्ध करके ब्राह्मणों के जीम जाने पर उसने ज़मीन में पड़ी हुई ब्राह्मणों की जूठन बाहर नहीं

दी, तब वह कुत्ती भूखी ही रही, फिर रात होने पर अत्यन्त क्षुधा, (भूख) लगी॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अपने पति उस बलीवर्द के पास आकर वह बोली कि हे नाथ! आज मैं बहुत भूखी हूँ। किसी ने मुझे भोजनादि कुछ भी नहीं दिया॥ ३५ ॥ आज तो एक ग्रास तक भी मैंने नहीं पाया, इस कारण भूख मुझे अधिक बाधा करती है। अन्य दिन तो यह हमारा पुत्र मुझे भोजन देता था॥ ३६ ॥ आज तो इसने मुझे जरा झूठन तक भी नहीं दी। आज खीर में सर्प का विष गिर गया था॥ ३७ ॥ सो यह बड़े-बड़े श्रेष्ठ ब्राह्मण मर जायेंगे। ऐसा मैंने विचार कर जाके खीर को छू दिया, इस कारण बांधकर मुझे बहुत मारा॥ ३८ ॥ उसे मारने से मेरा शरीर बहुत दु:खित हुआ और मेरी कमर भी टूट गई, सो मैं क्या करूं? यह सुनकर वह बलीवर्द बोला कि हे सुभगे! तेरे पाप के संग्रह से॥ ३९ ॥ मैं भी अशक्त हूँ, सो क्या करूं? बोझे के उठाने को प्राप्त हूँ। आज के दिन मैं अपने पुत्र के खेत में सारा दिन चलाया गया॥ ४० ॥ और इस मेरे पुत्र ने भूख को प्राप्त हुए मेरे मुख को बांधकर, मुझे बहुत मारा, इसने यह आज श्राद्ध वृथा ही किया, क्योंकि मुझे तो आज बड़ा कष्ट हुआ॥ ४१ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी बोले—हे युधिष्ठिर! उन दोनों माता-पिता के इस प्रकार कथन करते समय जो कुछ उन दोनों ने कहा उसको उस उनके पुत्र सुमति ने सुनकर अपने माता और पिता जानकर उस रात्रि में उसी समय उस अपनी माता को भोजन दिया॥ ४२, ४३ ॥

इसी प्रकार **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय ७७ में लिखा है।

अब कहिए पुराण की पुष्टि पुराण ही रद्द कर रहे हैं। अब मैं इससे आगे आपकी वह कथा श्रवण कराता हूँ कि—गयाश्राद्ध से प्रेतभाव नहीं छूटता। देखिए **पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड** अध्याय १९६ में लिखा है कि—

गया श्राद्ध की व्यर्थता

तुङ्गभद्रा नाम नदी के तट पर वर्ण आचार ये युक्त धनधान्य संयुक्त कोहल नाम ग्राम में आत्मदेव एक श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदविद्या की विधि में निपुण रहता था। उसकी स्त्री धुंधुली नाम थी। जिसको पुत्र न होने का बड़ा शोक रहा करता था। इसी दु:ख से घर से निकल बाहर को चल

दिया। मार्ग में एक तालाब से जल पी एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। वहाँ थोड़ी देर के पीछे एक संन्यासी जी भी आए। जो बड़े शान्तचित्त थे। उनको बिठाकर उनसे प्रश्नोत्तर करने लगे; थोड़ी देर पीछे संन्यासी जी ने कहा कि आत्मदेव तुमको क्या क्लेश है ? उसने कहा कि बिना पुत्र के मैं महादु:खी हो रहा हूँ। यह सुन संन्यासी जी को बड़ी दया आई। फिर योगी महाराज ने आत्मदेव के माथे की अक्षरमाला को देखकर कहा कि तुम्हारे सात जन्म तक पुत्र की प्राप्ति नहीं है। तुम आग्रह न करो, कर्म की गति बड़ी बलवान् है, इसलिए ज्ञान को प्राप्त होकर सुखी रहो। तब आत्मदेव ने सिद्ध जी से कहा कि ज्ञान से हमारे क्या होगा ? किसी प्रकार पुत्र दीजिए वरन् मैं आपके आगे प्राणों को छोड़ दूंगा। तब योगी जी ने कहा कि इस प्रकार के पुत्र से तुमको सुख न होगा। इतना कह एक फल देकर कहा कि इसको अपनी स्त्री को देना। तुम्हारे अवश्यमेव पुत्र होगा। आत्मदेव वहां से घर आये और सब वृत्तान्त स्त्री से कहकर वह फल भी उसको दे दिया। उसने अपनी सखी को बुला सब वृत्तान्त कह कर कहा कि यदि मैंने इसको खाया तो मेरे गर्भ रह जावेगा। उसको मैं कैसे सह सकूंगी, जो गर्भ तिरछा हो गया तो मेरे प्राण निकल जायेंगे, पुत्र उत्पन्न होने पर बड़े दु:ख होते हैं, इसलिए मैं नहीं खाऊंगी। तब सखी ने भी कहा कि ऐसा ही करो। जब पति ने पूछा तो कह दिया कि खा लिया। इस बीच में उसकी बहिन अपनी इच्छा से उसके घर आई उससे सब अपना वृत्तान्त कह कर कहा कि मुझको बड़ी चिन्ता हो रही है क्या करूँ ? तब बहिन ने कहा कि मेरे गर्भ है, उत्पन्न होने पर मैं तुमको दूंगी। तुम तब तक गर्भवती के समान छिप कर घर में रहो। और परीक्षा के लिए यह फल गौ को दीजिए, यह कह वह अपने घर को गई। धुंधुली ने ऐसा ही किया, जैसा उसकी बहिन ने कहा था। काल पाकर धुंधली की बहिन के पुत्र उत्पन्न हुआ। जो वह धुंधुली को चुपके से दे गई। तब धुंधुली ने पति से कहा कि सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न हो गया। यह सुन वह बड़े प्रसन्न हुए। और ब्राह्मणों को दान दिया और जातकर्म किया। घर में गीत होने लगे। तब धुंधुली ने पति से कहा कि हमारे स्तनों में दूध नहीं है। इसलिए मेरी बहिन को बुला दीजिये जिसके एक महीना हुआ कि पुत्र होकर मर गया है। उसने ऐसा ही किया और उसने उसका नाम धुंधकारी रक्खा वह नित्य पुष्ट होने लगा।

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम्॥ १९६॥

तीन महीने के पीछे गौ के बालक उत्पन्न हुआ जो सब अंगों से सुन्दर दिव्य निर्मल दीप्तिमान् था। बालक को देख आत्मदेव ने आप ही उसके संस्कार किये। बहुधा मनुष्य उसके देखने को आए। गौ के समान कान होने के कारण गोकर्ण नाम पड़ा। दोनों जब जवान हुए तो गोकर्ण तो पण्डित और ज्ञानी हुए और धुंधकारी महादुष्ट जो खेलते हुए बालकों को कुएं में डाल दिया करता था। जिसने वेश्या प्रसंग से पिता के सब द्रव्य का नाश कर दिया। तब पिता ने कहा कि इससे तो बिना पुत्र के मैं अच्छा था। योगी के वचन सत्य हुए। अब मैं कहाँ जाऊं? क्या आग में या कुएं में गिरकर प्राण दे दूं? इतने में गोकर्ण आये और उसने उनको उपदेश दिया कि कौन पुत्र है? उससे कुछ नहीं, तुम वन में जाकर आनन्द करो।

पिता पुत्र के उत्तम वचनों को सुन वन में जा आनन्द करने लगे। इधर धुंधकारी ने माता से कहा कि द्रव्य बतलाओ, नहीं तो मैं तुझको मार डालूंगा। वह दुःखी हो कुएं में गिर कर मर गई। जिसको निकाल गोकर्ण ने उसकी जाति के ब्राह्मणों को बुला कर दाहकर्म कराया। और धुंधकारी वेश्या के साथ आनन्द करने लगा। फिर उस वेश्या ने आभूषण और वस्त्रों की इच्छा प्रकट कर कहा कि आप हमको दीजिए वरन् अन्य पुरुष के पास चली जाऊंगी। वह रात्रि को चोरी कर लाया और उसको दिया। फिर तो वेश्या अमूल्य भूषण वस्त्र देखकर विचार करने लगी कि यह चोरी करके लाता है, किसी दिन राजा से मारा जाएगा। इसलिए हमको इसको मार द्रव्य लेकर पृथक् हो जाना चाहिए। यह सोच उसको गला फांस कर मारा, जब वह इस प्रकार न मरा तो जलते हुए अंगार उसके मुख पर रख दिये, वह मर गया। वह महाप्रेत हुआ। इधर गोकर्ण उसको मरा जान तीर्थयात्रा को गया और गया में उसका श्राद्ध कर घर को आ गया। एक दिन गोकर्ण अपने मकान में सो रहा था, उस समय धुंधकारी ने अपना भयंकर रूप धारण कर उसको दिखलाया। तब गोकर्ण ने उससे पूछा। तब उसने पिछला सब वृत्तान्त कहा कि मैं धुंधकारी नामक तुम्हारा भाई हूँ। अपने कर्मदोष से प्रेत हुआ हूँ। माता को बहुत दुःख दिया। वह कुएं में गिरकर मर गई। फिर धन के लालच में मुझको फांसी देकर मारा और मुंह पर अंगारे रखकर जला दिया। इससे मैं प्रेतभाव को प्राप्त हुआ। अब आप

मुझको प्रेतभाव से छुड़ाइए और निस्संदेह कृतार्थ हूजिए॥

तब गोकर्ण दु:खी होकर धुंधकारी से बोला कि मैंने तुमको मनुष्यों के मुख से मृतक हुआ सुनकर गया जी में पिण्ड दिया था। तुम प्रेत कैसे हो गये? गया जी में पिण्ड देने से दुर्गतिवान् को भी शुभगति निस्सन्देह प्राप्त होती है। तुम कैसे स्वर्ग को नहीं गये? भाई गोकर्ण महात्मा के वचन सुन। ४७, ४८॥ अध्याय १९७—

तुभ्यं दत्तो मया पिण्डो गयायां त्वामहं मृतम्॥ ४७॥
श्रुत्वा लोकमुखाद् भ्रातस्त्वं कथं प्रेततां गतः।
गयापिण्डप्रदानेन दुर्गतोऽपि शुभां गतिम्॥ ४८॥

दु:खित आत्मा धुंधकारी बोला कि सौ गया के श्राद्ध से मेरी मुक्ति न होगी। हमारे उद्धार के लिए आपको दूसरा उपाय करना चाहिए। जिसको गोकर्ण सुन विस्मय होकर बोला—

धुंधकारी दु:खितात्मा प्रोवाच पुरतः स्थितः।
गयाश्राद्धशतेनापि न मे मुक्तिर्भविष्यति॥ ५०॥
उपायोऽन्यश्चिन्तनीयो ममोद्धाराय वै त्वया।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः॥ ५१॥

श्राद्धों से मुक्ति नहीं है तो तुम्हारी असाध्य गति है। हे प्रेत! इस समय तुम निर्भय होकर अपने स्थान को जाओ। यह सुन धुंधकारी अपने स्थान को गया। फिर गोकर्ण ने जात बिरादरी कुल बान्धवों धर्मशास्त्र के जानने वाले ब्राह्मणों से रात्रि का सब वृत्तान्त कहा, परन्तु किसी ने उसका उपाय न बताया। तब सब ब्राह्मणों ने सूर्यनारायण की स्तुति की। उस समय सूर्य जी ने कहा कि धुंधकारी के महापाप की शान्ति के लिए गोकर्ण को श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाना चाहिए, वह उसका उद्धार करेगा—

श्रीभागवतसप्ताहस्तस्योद्धर्त्ता भविष्यति॥ ७२॥

यह सुन सब ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो गोकर्ण से सब वृत्तान्त कहा। तब तुंगभद्रा नदी के किनारे पर ब्राह्मणों की समाज में सब कौतुक देखने के लिए नगर की प्रजा आती गई। तत्त्व अर्थ के जानने वाले वक्ता गोकर्ण जी सावधान होकर आसन पर बैठे—

गोकर्णो ज्ञाततत्त्वार्थो वक्ताध्यासनमास्थितः ॥ ७६ ॥

नारायण आदि देवों को नमस्कार कर सप्ताह का प्रारम्भ कर बोले कि श्री हरि जी के वचनरूप शास्त्र, चरण कमल से उत्पन्न तीर्थ—

नारायणादिकान् नत्वा सप्ताहं समवर्त्तयन्।
श्रीहरेस्तु वचः शास्त्रं तीर्थं पादाब्जसंभवम्॥ ७७ ॥

जो सत्य है। तो धुंधकारी गति को प्राप्त हो जावे। इसी प्रकार मन से श्रीमद्भागवत नाम का संकल्प कर—

यदि सत्यं तदाप्नोतु धुंधुलीतनयो गतिम्।
इति संकल्प्य मनसा श्रीमद्भागवताभिधम्॥ ७८ ॥

"**जन्माद्यस्य यतः**" यहाँ से लेकर **धीमहि** के अन्त तक अर्थात् पहिला श्लोक पूरा पढ़ चुके हैं। तिसी समय धुंधकारी प्रेत आकर इधर-उधर जगह बैठने को ढूंढ कर—

तत्र प्रेतः समागत्य स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥ ७९ ॥

सात गांठ से युक्त बांस में पवन का रूप धारण कर प्रवेश कर गया और श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मणों के सुनते हुए प्रतिदिन उसी बांस की गांठ के छिद्र में स्थित होकर सुनने लगा। जब पहिले दिन कथा समाप्त हुई। तब बांस की एक गांठ फट गई। यह अत्यन्त अद्भुत कौतुक हुआ। दूसरे दिन दूसरी गांठ फटी। इस प्रकार एक-एक गांठ फटती रही। सातवीं गांठ के भिन्न होने पर धुंधकारी शीघ्र ही प्रेतभाव को छोड़कर सुन्दर रूप धारण कर तुलसी दल से सुशोभित हो, पीताम्बर धारण कर मेघों के समान भूषणों से युक्त हो, प्रकाशित हो गया। सम्पूर्ण तत्त्वदृष्टि होकर गोकर्ण भाई को नमस्कार कर बोला हे भाई! आपने दया कर प्रेत के कष्ट से हम को छुड़ा दिया। भागवत की वार्त्ता धन्य है? वैसे ही विष्णुलोक की गति देने वाला सप्ताह भी धन्य है। जिसके प्रभाव से प्रेतभाव से अत्यन्त व्याकुल मैं विमुक्त हो गया—

त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात्।
धन्या भागवती वार्त्ता प्रेतत्वोन्मूलिनी श्रुता॥ ८५ ॥

सप्ताहोऽपि तथा धन्यो विष्णुलोकगतिप्रदः।
यत्प्रभावाद्विमुक्तोऽहं प्रेतभावाद्दशातुरः ॥ ८६ ॥
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्।
पातकं भस्मसात् कुर्यात् सप्ताहोऽग्निरिवेन्धनम् ॥ ८७ ॥

विशेष—अब आप यह बतलाइये कि गोकर्ण के गयाश्राद्ध से धुंधकारी का प्रेतत्व नहीं गया, फिर मुक्ति कैसी! फिर अन्यों के जाने का क्या प्रमाण, हाँ, सूर्यनारायण की सम्मति से जब श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाया तो उसका प्रेतत्व गया। अब बतलाइये दोनों में कौन ठीक है? इसके उपरान्त यह भी विचार कीजिए कि जब व्यास जी ने १७ सत्रह पुराणों के पश्चात् भागवत को बनाया तो उससे पूर्व प्रेतों की मुक्ति किस प्रकार हुई?

श्रीमान् वास्तव में न गया में पिण्ड देने से प्रेतत्व छूटता है, न सप्ताह सुनने से। यथार्थ में मनुष्य अपने-अपने कर्मों का फल पाता है न कि अन्य के कर्मों का फल। इसलिए आप स्वयं जान लीजिए कि मरों का गया आदि में श्राद्ध क्या लाभ देता है। सच तो यह है कि स्वार्थी पुरुषों की उस्तादी है अपने-अपने स्वार्थ की विचित्र कथायें लिखते रहे, वह सब यह ऋषि व्यास महाराज के सिर पर चपेट दीं। इस कथा में गौ के पेट से मनुष्य की उत्पत्ति लिखी है, उस पर भी आप विचार करें। वह भी एक फल के खाने से। इसलिए तो हम कहते हैं कि यह पुराण महात्मा व्यास जी के बनाये नहीं हैं और न वेदानुकूल हैं और न वेद की आज्ञा मृतक श्राद्ध की है। इसलिए मृतकश्राद्ध सनातन से नहीं है वरन् बीच से इसका प्रचार हुआ है।

श्राद्ध को कब और किसने चलाया?

देखिए, **महाभारत** अनुशासन पर्व अध्याय ९१ में लिखा है कि युधिष्ठिर महाराज पितामह से पूछते हैं कि किस काल में किस मुनि ने श्राद्ध को चलाया—

केन सङ्कल्पितं श्राद्धं तस्मिन् काले किमात्मकम्।
भृग्वङ्गिरसिके काले मुनिना कतरेण वा ॥ १ ॥

इसको सुन भीष्म जी ने कहा कि हे राजन्! अग्नि के गोत्र में एक

निमि नाम के ऋषि हुए, उनका पुत्र श्रीमान् हुआ जो कुछ काल के पीछे मर गया जिसके विरह में वह रातदिन व्याकुल रहते थे, जिससे उनकी बुद्धि विक्षिप्त हो गई जिससे वह अपने पुत्र श्रीमान् के खानपान, बैठना, उठना, चलना, फिरना आदि उसकी क्रियाओं का स्मरण करते रहते थे। एक अमावस्या को कुछ ब्राह्मणों को बुला दक्षिणाग्र कोणों पर बिठा स्वयं शुचि हो लवण वर्जित भोजन कराया और दक्षिणाग्र कोण पर श्रीमान् के नाम गोत्र का उच्चारण कर कुछ पिण्ड रख दिये और सब उन्होंने अपने मृतक पुत्र के नाम पर पिण्ड रक्खे तो उनको बड़ा शोक हुआ—

तत् कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसङ्करमात्मनः।
पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत्॥ १६॥

इससे प्रथम इस कर्म को मुनि ने नहीं किया। हाय! यह मैंने क्या अनुचित कर्म किया, ऐसा न हो कि ब्राह्मण मुझको भस्म कर दें?—

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम्।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति॥ १७॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए अपने कर्त्ता अत्रि का स्मरण किया। वे आकर सब समझा गये कि अब चिन्ता न करो, ब्रह्मा ने इस कल्प को विचारा था, अब तुमने उसका आरम्भ कर दिया। भीष्म जी कहते हैं कि उसी निमि से यह श्राद्ध चला—

निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन॥ २०॥

इसको विशेषता से जानने के लिए हम वाराहपुराण से निमि की कथा सुनाते हैं।

निमि और महात्मा नारद का श्राद्धविषयक संवाद।

वाराहपुराण अध्याय १८१ में लिखा है कि मनु के वंश में आत्रेय नाम ब्राह्मण, जिसका पुत्र निमि और उसका पुत्र श्रीमान् जो बड़ा तपस्वी था, कालवश हो परलोक गमन कर गया जिसके कारण महात्मा निमि रातदिन शोकातुर रहने लगे। कुछ दिन व्यतीत होने पर माघ मास की द्वादशी को महात्मा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि पुत्र का श्राद्ध करना चाहिए, यह विचार कर उसने बहुत प्रकार के मूल, फल, कन्द और

मांसादि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को इकट्ठा करके—

यानि तस्यैव भोज्यानि न मूलानि फलानि च।

यानि कानि च भक्ष्याणि नवश्च रससम्भवः॥ १८७.३१॥

आमन्त्र्य ब्राह्मणं पूर्वं शुचिर्भूत्वा समाहितः॥ १८७.३२॥

ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे पुत्र का स्मरण कर विधान और भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दे विसर्जन कर दक्षिण दिशा में भूमि पर कुशों को बिछा उनके ऊपर नाम और गोत्र का उच्चारण कर पिण्डदान किया। फिर समाधि से परमात्मा का ध्यान कर बहुत रात्रि व्यतीत होने पर पुत्र शोक से व्याकुल होकर कहने लगा, यह श्राद्ध आज तक किसी ने नहीं किया, मैंने मोहवश यह काम किया, जो पिण्डदान पुत्र के निमित्त दिया—

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मया तदनुष्ठितम्॥ ४१॥

यदि यह मेरा कृत्य मुनियों को विदित हो तो शाप देकर उसी क्षण भस्म कर दें—

कथं ते मुनयः शापात् प्रदहेयुर्न मामिति।

यदि इस कर्म को देवता, असुर, गन्धर्व, पिशाच, सूर्य और राक्षस जान लें तो हमको क्या कहें?—

सदेवासुरगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसाः।

किं वक्ष्यन्ति च मां सर्वे ये वै पितृपदे स्थिताः॥ ४२॥

हाय! हमने बिना विचारे क्या किया? इस प्रकार रात्रि गई, दिन आया। फिर कहने लगा कि हाय! लोक में निन्दा हुई और पुत्र का प्राण भी न मिला। हम बड़े मूर्ख हैं। हमारे पढ़ने, योग करने और ज्ञान को धिक्कार है। इस भांति अनेक प्रकार से रुदन कर रहे थे कि इतने में महात्मा नारद जी पधारे जिनका मुनि ने सत्कार कर बिठाया और निमि उसके सम्मुख खड़े हुए, जिनको देख नारद मुनि ने कहा कि विषय में महात्माजन कुछ विचार नहीं करते, क्योंकि सबका जीवन आयु के अनुकूल होता है, काल आने पर कोई एक श्वास भी नहीं ले सकता! तब मुनि ने कहा कि मैंने स्नेह में फंस कर पुत्र के निमित्त सात ब्राह्मणों को भोजन

कराया और दक्षिणा दे विसर्जन किया। भूमि में कुश रख दक्षिणमुख हो, जल के साथ पिण्डदान दे, नाम उच्चारण किया। हे महात्मन्! यह शोक मोह के वश होने से जो अयोग्य कर्म हुआ सो आप हमको नष्टबुद्धि जानके क्षमा करें और ऐसा उपदेश करें जिसके करने से हमारा पाप दूर हो।

देखिए जो यह कर्म हमने किया सो आगे के महात्मा, ऋषि, मुनि किसी ने नहीं किया, इस कारण मैं बारम्बार भयभीत हो रहा हूँ—

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरणं द्विज!।
नष्टबुद्धिस्मृतिसत्त्वो ह्यज्ञानेन विमोहितः॥ ६४॥
न च श्रुतं मया पूर्वं न देवैर्ऋषिभिः कृतम्।
भयं तीव्रं प्रपश्यामि मुनिशापात् सुदारुणात्॥ ६५॥

कृपा करके हमारे भय को दूर कीजिए। तब नारद जी ने कहा कि भय मत करो। पितरों की शरण में प्राप्त हो। जो आपने किया है। उसमें किसी भांति का अधर्म नहीं है, केवल धर्म ही है। इसको सुन निमि ने मन, वचन, कर्म से प्रार्थना की कि पितरो! मैं आपकी शरण हूँ। इतना कहते ही निमि का पिता पितृलोक से आया और निमि को पुत्रशोक से दुःखी देख समझाने लगा कि तुमने पितृयज्ञ का संकल्प किया है, इस धर्म की ब्रह्मा जी ने पितरों के लिए स्वयं आज्ञा दी है, इसलिए यह यज्ञ करना योग्य है—

पितृयज्ञेति निर्दिष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम्॥ ७०॥

इस पर नारद ने ब्रह्मा जी को प्रणाम कर पितृयज्ञ का विधान सुनाया।

जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और मरने पर धर्मराज की आज्ञा पालन करनी होती है और जन्म लेकर जितने जीव आते हैं उनमें किसी का अमरत्व (अर्थात् मृत्यु न हो) नहीं होता। इसलिए हे निमि! जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा और मरा हुआ अवश्य जन्म लेगा। इसलिए वह कर्म करना उचित है जिसके करने से मनुष्य के सब पापों का प्रायश्चित्त हो और मुक्ति प्राप्त हो। हे निमि! विचार करो कि सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन गुणों के अनुसार मनुष्य कर्म करते हैं

और उसी भांति उनकी गति होती है। सात्त्विक कर्म करना कठिन है, राजस और तामस कर्म करने से मनुष्य अल्पायु और अल्पबुद्धि होते हैं। सात्त्विक कर्म करने से, अन्त में मनुष्य प्राण त्याग करने से देवता होता है और राजस से मनुष्य। तामस कर्म करने से राक्षस होता है। हे निमि! धर्मज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यादि कर्म को सात्त्विक कहते हैं। क्रूर मिथ्या बोलने वाला जीव हिंसा करने वाला लज्जाहीन और विषाद करने वाला तामस कहाता है। जिसके करने से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होता है। और राजस गुण वे कहाते हैं कि जिनसे मनुष्य में मान अश्रद्धा और नाना भांति के भोगों की इच्छा अपनी प्रशंसा और जिनमें यह धर्म है सो सात्त्विक गिने जाते हैं, शान्ति, दान, ज्ञान, श्रद्धा, तप, ध्यान आदि करने से स्वर्ग व मोक्ष दोनों का अधिकारी होता है। इसलिए निमि निज पुत्र के मरने का शोक न करो, शोक करने से बहुत हानि होती है। शोक से बुद्धि, बल और देह इन तीनों की हानि होती है। इन्हीं की हानि होने से लज्जा, धृति, धर्म, कीर्त्ति, लक्ष्मी, नीति, स्मृति और विवेक यह सब नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हे निमि! इन बातों को विचार कर आप शोक त्याग कीजिए—

लज्जा धृतिश्च धर्मश्च श्रीः कीर्त्तिश्च स्मृतिर्नयः।
त्यजन्ति सर्वधर्माश्च शोकेनोपहतं नरम्।
एवं शोकं त्यजित्वा तु निःशोको भव पुत्रक!॥ ८४॥

इनके पश्चात् फिर नारद जी ने मरण समय का कृत्य और श्राद्ध की सब क्रिया संक्षेप से निमि को सुनाई, जिसको सुन निमि ने अपने को धन्य माना। इस पर नारद जी ने कहा कि हे निमि! तुमने निज प्रेत पुत्र के निमित्त जो श्राद्ध किया है, यह आज से चारों वर्णों के सब मनुष्य करेंगे—

कर्त्तव्य एवं संस्कारः प्रेतभावविशोधनः।
नेमिप्रभृतिभिः शौचं चातुर्वर्ण्यस्य सर्वतः।
भविष्यति न सन्देहो दृष्टपूर्वं स्वयम्भुवा॥ ७५॥
कृत्वा तु धर्मसंकल्पं प्रेतकार्यं विशेषतः।
न भेतव्यं त्वया पुत्र प्रेतकार्ये कृते सति॥ ७६॥
तस्मात् प्रभृति लोकेषु पितृयज्ञो भविष्यति। ७७।

एवं यास्यसि वत्स त्वं न शोकं कर्त्तुमर्हसि।

वाराहपुराण संस्कृत अ० १८८॥

और तुमको इसके करने से अच्छा लोक प्राप्त होगा। तुम शिवलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक आदि लोकों में जहाँ इच्छा करोगे, इस कर्म के प्रताप से वहाँ ही प्राप्त होगे—

शिवलोकं ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं न संशयः॥ ७८॥

समीक्षा

अब पण्डित जी—इस व्याख्या में विचारना यह है कि निमि महात्मा स्वयं आप वर्णन करते हैं कि मैंने मोह से पुत्र के निमित्त पिण्डदान किया। तिस पर भी पुत्र न मिला। हे नारद! ऐसा काम प्रथम किसी ने भी नहीं किया। यदि निमि और नारद के संवाद को सत्य माना जावे तो यह भी सत्य मानना पड़ेगा कि निमि से प्रथम इस कार्य को किसी ने नहीं किया तो भला निमि के पुत्र से प्रथम जितने पुरुषों का मरण हुआ उनको कौन से कर्मों ने आनन्द दिया। इसके उपरान्त जब नारद जी से मिलाप हुआ तो निमि ने अपनी भूल का फिर वर्णन किया, तब नारद जी ने पितृयज्ञ का जहाँ विधान है, सुनाया। वह कौन है? जो जन्मता है वह मरता है, जो मरता है वह जन्मता है, इसलिए मनुष्यों को ऐसे कर्म करने चाहिएं जिससे मुक्ति हो और मुक्ति सात्त्विक अर्थात् ज्ञान वैराग्य आदि के द्वारा प्राप्त होती है इसलिए हे निमि! तुम मोह को त्याग कर कार्य करो क्योंकि मोह से धृति, धर्म, कीर्त्ति, स्मृति और विवेक जाता रहता है।

फिर क्या ठीक इसके उपरान्त यदि मृतक श्राद्ध से कुकर्मी जीव नरक से बच जाते हैं तो फिर पितृश्राद्ध में नारद महाराज ने यह क्यों कहा कि सात्त्विक कर्म करने से मोक्ष होता है? फिर भला जो मरता है वह जन्मता है और जहाँ जन्मता वहाँ कर्म करता है तो फिर भला श्राद्ध करके किसको नरक से पार किया जाता है?

भला पण्डित जी! जब कर्म को प्रधान माना तो सम्पूर्ण आयु के अच्छे कर्मों का फल श्राद्ध न करने से कभी मिट सकता है? इसी भांति सारी आयु बुरे कर्म करने वाले के पुत्र के श्राद्ध करने से पाप कट सकते हैं? कदापि नहीं? यदि ऐसा होता तो फिर क्या? नहीं, नहीं, प्रत्येक को

अपने कर्मों के फलों को भोगना पड़ेगा।

श्रीमान् ने शिवपुराण, वाराहपुराण, भविष्यपुराण से श्राद्ध के विषय को सुना। इनसे भी अनोखा श्राद्ध जीवित मनुष्यों के हितार्थ सुनाता हूँ अर्थात् जब कोई माता, पिता, भाई इत्यादि परदेश में हों या कारागार में हों तो वह अपने घर से उन मनुष्यों की तृप्ति अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।

न जाने हमारे सनातनी भाइयों ने इसको क्यों भुला दिया? अतएव इसको सुनकर कार्य में लाना चाहिए। देखिए, **विष्णुपुराण** चतुर्थ अंश अध्याय १३ में लिखा है—एक समय श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के एक सम्बन्धी की मणि चोरी हो गई और वह मणि की चोरी श्रीकृष्ण महाराज को लगाई गई, परन्तु यह मणि ऋक्षराज के बिल में पहुंच गई थी क्योंकि चोर और ही था। उससे सिंह को मिली और सिंह से ऋक्ष को मिली थी। फिर कृष्ण महाराज ऋक्ष के साथ युद्ध करने को उसकी गुफा में घुस गये थे और अपने साथियों को द्वार पर खड़ा कर गये—

गिरितटे च सकलमेव तद् यदुसैन्यमवस्थाप्य..... ॥ ४० ॥

सात आठ दिन के भीतर श्रीकृष्ण महाराज को लौट कर न आते देख साथियों ने जाना कि श्रीकृष्ण जी को शत्रु ने मार डाला। अतएव वे सब द्वारिकापुरी को लौट आये और उनके भाइयों से सब हाल कह दिया। तब सब भाइयों ने उनकी श्राद्धादि क्रिया की जिससे श्रीकृष्ण जी के प्राणों की रक्षा होती रही—

.....श्रद्धादत्तविशिष्टोपपात्रयुक्तान्नतोयादिना श्रीकृष्णस्य बलप्राणपुष्टिरभूत् ॥ ५० ॥

अन्त को कुछ काल में ऋक्ष को जीत श्रीकृष्ण जी मणि ले घर आए।

श्री पण्डित जी महाराज! अब आप भले प्रकार समझ गये होंगे कि यहाँ जीवितावस्था में श्रीकृष्ण महाराज का श्राद्ध किया गया जिससे वह पुष्ट होते रहे।

श्रीपण्डित जी ने कहा कि सेठ जी अब इस विषय को समाप्त कीजिए।

सेठ जी—श्रीमान् की जैसी आज्ञा मैं वैसा ही करूंगा परन्तु अब आप विचार तो कीजिए कि वेदों में मृतकश्राद्ध का विधान है ही नहीं

उन्हीं के अनुसार पुराण भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि श्राद्ध करने से कुछ लाभ नहीं होता जैसा कि आपने **पद्मपुराण** अध्याय १९६ के इतिहास को श्रवण किया कि धुंधकारी की श्राद्ध ही नहीं किन्तु गया में पिण्डदान देने से भी मुक्ति नहीं हुई। श्री पण्डित जी! जब पुराण ही बतला रहे हैं कि निमि ने श्राद्ध को चलाया फिर किस प्रकार श्राद्धविधि वेदोक्त हो सकती है।

श्री पण्डित जी—सेठ जी! इतनी ही कथाओं से मैंने भले प्रकार समझ लिया कि केवल स्वार्थियों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए इन कथाओं को गढ़ लिया और महर्षि के नाम को बदनाम किया। लाला जी वेद, बुद्धि और सृष्टिक्रम के विपरीत बातों, गणेश महाराज की उत्पत्ति और मृतकश्राद्ध की कथाओं को सुन मेरी आत्मा तृप्त हो गई। अब मैं इस समय पुराणलीला को नहीं सुनना चाहता। हां, मैं जिन पुराणों पर बड़ा ही विश्वास करता था उनकी लीलाओं को सुन आज मेरी पुराणों से बहुत ही अश्रद्धा हो गई। सेठ जी अब आप इतने विषय को भी मुद्रित करा दीजिए। देखें, हमारे भाई इनका क्या उत्तर दें? मैं तो आज से ही अपने यजमानों को समझा बुझा इन मिथ्या रीतियों को उनसे छुड़ा वेदोक्तविधि का पालन करना सिखाऊंगा। धन्य हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को कि जिन्होंने वेदोक्तमार्ग बतलाकर हमको श्रेष्ठ विप्र बनाया। मैं तन मन से महात्मा जी के चरणों को सिर नवाता हूँ। तदनन्तर आपको आशीर्वाद देता हूँ कि परमपिता परमेश्वर आपको सब प्रकार के आनन्द मंगल दें। फिर अपने कटु वाक्यों के कहने की क्षमा मांगता हुआ आपकी सहनशीलता का धन्यवाद देता हूँ। परमात्मा आपको अधिक सहनशक्ति दे जिससे आप नाना प्रकार के कटुवाक्यों को सहन करते हुए देश का तन, मन और धन से उपकार करें। अन्य सज्जनों ने कहा कि सेठ जी अब हम सब भी पुराणों की लीलाओं को सुन सन्तुष्ट हो गये। अब आप बस करें पुनः—

अन्य महाशयों की ओर से लाला शङ्करलाल जी ने खड़े होकर कहा कि मैं आज श्रीमान् पण्डित जी को तथा सेठ जी को धन्यवाद देता हूँ जिनकी परम कृपा से हम सबको पुराणों की अपूर्व और अद्भुत बातों के सुनने का अवसर मिला पुनः हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी महाराज का कोटानुकोटि धन्यवाद

देते हैं कि जिनकी कृपा से हमारे धर्म की रक्षा हुई।

सेठ जी ने कहा कि मैं प्रथम उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ कि जिनकी महती कृपा से मेरी इच्छा पूर्ण हुई। पुनः श्रीमान् पण्डित रामप्रसाद जी और आप सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने अमूल्य समय को प्रदान कर मेरी मनोकामना सिद्ध की। आशा है कि श्रीमान् तथा आप सब निष्पक्ष होकर सत्य ग्रहण करेंगे।[१]

पुनः सेठ जी ने निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ शान्ति की—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ यजुः० ३६.१७॥

श्रीपण्डित जी ने चलने की तय्यारी की।

सेठ जी ने खड़े होकर हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से श्रीमान् को नमस्ते व अन्य महाशयों को यथायोग्य कहा।

श्रीपण्डित जी ने प्रसन्नतापूर्वक आयुष्मान् कहा और चल दिये।

अन्य सज्जनों ने यथायोग्य कहा। सेठ जी अपने कार्य में लग गये॥

इति विंश परिच्छेद।

पुराण-तत्त्व-प्रकाश का तृतीय भाग समाप्त॥

---

१. इसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार के अधिकारी जार्ज पञ्चम की प्रशंसा में एक भजन मुद्रित था। सम्भवतः उस समय तत्कालीन परिस्थितियों में वैसा करने के लिए लेखक की कोई विवशता रही हो। अप्रासंगिक एवं अनपयुक्त जानते हुए उसे इस संस्करण में प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। —सम्पादक

इस ग्रन्थ को क्यों पढ़ें?

१. क्या पुराण वेदों से भी पूर्ववर्त्ती हैं ?

२. क्या पुराण वेदों का भ्रमभञ्जन करते हैं ?

३. क्या सभी पुराण व्यास प्रणीत हैं ?

४. क्या पुराण बौद्धों/ जैनों की रचनायें हैं ?

५. पुराणों में सभी वैदिक देवता कलङ्कित किये गये हैं, जबकि बुद्ध, जिन (महावीर) की प्रशंसा है। ऐसा क्यों ?

६. क्या पुराणों में वैष्णवों का भी मिश्रण है ?

७. क्या पुराणों में मूर्त्तिपूजा को निन्द्य माना है ?

८. सभी पुराणों में अवतार-संख्या एक है या पृथक्-पृथक् ?

९. क्या पुराण स्त्री, शूद्र तथा अधम लोगों के लिए हैं ?

१०. क्या श्री राम ने रावण-विजय से पूर्व नवरात्री-व्रत किया था ?

११. क्या पुराणों की दृष्टि में स्त्री-शूद्रों को शिक्षा/वेदाध्ययन का अनधिकार है ?

१२. क्या श्राद्ध सभी पुराणों द्वारा विहित/ अनुमोदित है ?

१३. श्राद्ध का आरम्भ कब, क्यों और किसने किया ?

१४. ब्राह्मणादि वर्ण जन्म से हैं या कर्म से ?

१५. पुराणों में परस्पर विरोध क्यों ?

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय 2853 (ख)
पु. परिग्रहण संख्या
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र